गोस्वामी श्रीतुलसीदास-कृत

गीतावली

सटीक

टीकाकार

स्वर्गीय श्रीबैजनाथजी

प्रकाशक

नवलकिशोर-प्रेस

लखनऊ.

१९३७

श्रीमद्गोस्वामी

तुलसीदासजी का जीवनचरित्र

गोसाईं तुलसीदासजी सरवरिया ब्राह्मण और बाँदाप्रदेशान्तर्गत राजापुर के रहनेवाले थे। इनके गुरु का नाम नृसिंहदास था। इनका जन्म शिवसिंहसरोजकार ने संवत् १५८३ में लिखा है। किसी-किसी का मत है कि संवत् १५८६ में इनका जन्म हुआ व संवत् १६८० में स्वर्गवासी हुए गोसाईं तुलसीदासजी को भक्तमाल के कर्त्ता ने वाल्मीकिजी का अवतार लिखा है। इसमें कुछ संदेह नहीं कि उनकी वाणी में ऐसा ही प्रभाव दिखाई पड़ता है। रामचरित्ररूपी अमृत की धारा को इस कलियुग में उन्होंने बहाया है। निम्नलिखित प्रसिद्ध ग्रंथ गोसाईंजी के बनाये हैं—१ रामायण (रामचरितमानस), २ विनयपत्रिका, ३ रामायण गीतावली, ४ रामायण कवितावली, ५ दोहावली, ६ रामशलाका, ७ हनुमान्‌बाहुक, ८ जानकीमङ्गल, ९ पार्वतीमङ्गल, १० कड़खा रामायण, ११ बरवा रामायण,

१२ रोला रामायण, १३ झूलना रामायण १४ छन्दावली रामायण, १५ छप्पै रामायण, १६ कुण्डलिया रामायण १७ वैराग्यसंदीपिनी, १८ तुलसीसतसई, १६ रामाज्ञा, २० रामललानहछू, २१ कृष्णगीतावली, २२ संकटमोचन। ये प्रेमियों व उपासकों को सब जगह मिल सकते हैं और भक्तों के मुख से निश्चय हो चुका है कि जो कोई नियम करके नित्य किसी रामायण का पाठ करता है, निश्चय उसकी श्रीरघुनन्दनस्वामी के चरणों में प्रीति हो जाती है। कामना करके कांड का पाठ करे तो सिद्ध हो जाता है। रामशलाका में जो प्रश्न करे तो ऐसे दोहे निकलें कि जो होनेवाली बात हो सो ज्ञात हो जाय। तुलसीकृत रामायण को काशीजी के सब पण्डितों ने सभा करके आदि अन्त सम्पूर्ण पढ़ा। सब वेद शास्त्र पुराण गीता के अनुकूल देखकर सबने अङ्गीकार लिख दिया। किसी-किसी ने द्वेष करके वाद ठाना तो विश्वेश्वरनाथजी के अङ्गीकार करने से सबको अङ्गीकृत हुआ। गोसाईं तुलसीदासजी अपनी स्त्री से विशेष स्नेह रखते थे। एक दिन स्त्री अपने मैके में मा बाप से मिलने को गई तो गोसाईंजी को इतना कष्ट हुआ कि सहन न हो सका। ससुराल में पहुँचे। इनको देख स्त्री को लज्जा आई। क्रोध करके गोसाईंजी से बोली कि यह मेरा शरीर अस्थिमांस का अनित्य है। श्रीरघुनन्दन स्वामी नित्य निर्विकार पूर्ण ब्रह्म हैं। उनसे क्यों नहीं स्नेह

करते कि दोनों लोक में लाभ हो। इतना कहने से गोसाईंजी पण्डित और ज्ञानवान् तो थे ही, पूर्वपुण्य के पुञ्ज उदय हुए। ज्ञान-वैराग्य की आँखें खुल गईं। वहाँ से चल काशीजी में आकर श्रीरघुनन्दनस्वामी के भजन-कीर्त्तन में लगे।

गोसाईंजी शौचादि को वन में जाया करते थे और शौच-शेष पानी को एक बेर के वृत्त पर नित्य डाल दिया करते थे। उस पर एक भूत रहता था। उस पानी से उसकी तृषा मिटती थी। एक दिन प्रसन्न होकर वह बोला कि तुमको जो कामना हो सो कहो। गोसाईंजी ने कहा कि श्रीरघुनन्दनस्वामी का दर्शन करा दे। भूत ने कहा, यह सामर्थ्य मुझमें नहीं। पर हनुमान्जी का पता बतलाता हूँ। कर्णघंटा पर रामायण की कथा होती है। वहाँ हनुमान्जी सबसे पहिले ऐसे कुरूप से कि जिसको देखते डर लगे और घृणा हो, आते हैं व सबसे पीछे जाते हैं। इस पहचान से गोसाईंजी हनुमान्जी को ढूँढ़ते चले। जब उसी रूप में देखा तो चरण पकड़ लिये और छोड़े नहीं। तब हनुमान्जी ने दर्शन दिया और कहा, जो चाहना हो सो कहो। गोसाईंजी ने विनय की कि श्रीरघुनन्दनस्वामी का दर्शन चाहता हूँ। तब हनुमान्जी ने कहा, चित्रकूट में दर्शन होगा। गोसाईंजी अति अभिलाषा से चित्रकूट में आये। एक दिन इस स्वरूप से दर्शन हुआ कि श्रीरघुनन्दनस्वामी श्यामसुन्दर

राजकुमार के स्वरूप से बहुमूल्य के वसन-भूषण पहिने धनुषबाण लिये घोड़े पर सवार और लक्ष्मणजी गौर-मूर्त्ति वैसे ही सजावट के साथ एक हरिण के पीछे घोड़ा डाले हुए जाते हैं। यद्यपि स्वामी की मूर्त्ति मन और आँखों में समा गई, पर यह न जाना कि ये स्वामी हैं। पीछे हनुमान्जी आये और गोसाईंजी से पूछा कि दर्शन किये? गोसाईंजी ने विनय की कि दो राजकुमार देखे हैं। हनुमान्जी बोले, वही राम-लक्ष्मण थे। गोसाईंजी उसी रूप का ध्यान करते हुए मुख्य मनोरथ को प्राप्त हुए।

एक हत्यारा पहले राम का नाम टेरकर कहा करता कि हत्यारे को भिक्षा दो। गोसासईंजी को आश्चर्य हुआ कि यह कैसा पुरुष है कि पहले रामनाम लेता है, फिर अपने आप को हत्यारा कहता है। उसको बुलाया और प्रेमशुद्ध जानकर अपने साथ भगवत् प्रसाद जिमाया। काशीजी के पण्डितों ने सभा की और गोसाईंजी को बुलाकर पूछा कि प्रायश्चित्त बिना किस तरह इसका पाप दूर हुआ? गोसाईंजी ने कहा, एक बार रामनाम लेने का क्या माहात्म्य है? शास्त्र में देखो। इसने तो सैकड़ों बार रामनाम का उच्चारण किया। आप लोगों का शास्त्र के वचन पर जो विश्वास नहीं तो अज्ञान् का अंधकार दूर नहीं हो सकता। पण्डितों ने यद्यपि शास्त्र

को माना तथापि विश्वास न होने से यह ठहराया कि विश्वेश्वरनाथ का नन्दी इसके हाथ से भोजन करे तो सत्य मानें। सो गोसाईंजी ने नन्दी को उसके हाथ से भोजन कराया। वह नन्दी ने खा लिया। तब सब पण्डितों ने लज्जित होकर नाम की महिमा गोसाईंजी की भक्ति पर निश्चय की।

एक दिन गोसाईंजी के स्थान पर रात को चोर चोरी करने को आये तो श्रीरघुनन्दनस्वामी धनुष-बाण लेकर चोरों को डराते फिरे। वे चोरी करने न पाये। चोरों ने गोसाईंजी से प्रभात को आकर पूछा, महराज, वह श्याम-सुन्दर किशोरमूर्त्ति परम मनोहर कौन हैं, जो रात को चौकी देते हैं? गोसाईंजी सब वृत्तान्त सुनकर प्रेम में डूब गये और विचारा कि इस सामग्री के हेतु परिश्रम व रात को जागरण स्वामी का अच्छा नहीं। बहुत रोने लगे। उसी घड़ी सब धन सामग्री दान कर दिया। चोर यह वृत्तान्त देखकर घरबार छोड़ भगवत्-शरण हो गये।

एक ब्राह्मण मर गया। उसकी स्त्री विमान के साथ सती होने जाती थी। गोसाईंजी को दण्डवत् किया। गोसाईंजी के मुख से निकल गया, सौभाग्यवती हो। उसने कहा, मेरा पति मर गया, यह दासी सती होने जाती है, अब सौभाग्य कहाँ?

गोसाईंजी ने उसके कुल में भगवद्भक्ति करने की प्रतिज्ञा कराके पति को जिला दिया। जब यह बात विख्यात हुई तो बादशाह ने बड़े आदर से बुलाकर उच्चासन पर बिठाकर सिद्धता दिखलाने को विनय की। गोसाईंजी बोले, सिवा श्रीरघुनन्दन-स्वामी के दूसरी सिद्धता कुछ नहीं जानता, और न इस झूठे खेल से काम रखता हूँ। बादशाह ने कहा, अपने स्वामी ही के दर्शन करा दो। यह कहकर बंदी किया। गोसाईंजी ने हनुमान्जी का स्मरण किया। उसी घड़ी वानरों की अगणित सेना ने बादशाही क़िले में ऐसा उत्पात किया कि प्रलयकाल दिखलाई पड़ा। बादशाह जब पलँग पर से उलटा गया, तब ज्ञानशुद्ध हो गोसाईंजी की शरण में आया। चरण पर गिरा। सब वानरी सेना अन्तर्द्धान हो गई। तब गोसाईं तुलसीदासजी ने आज्ञा दी कि तुम दूसरा क़िला रहने को बना लो। यह स्थान रघुनाथजी का हुआ। बादशाह ने तुरंत छोड़ दिया। गोसाईं तुलसीदासजी काशीजी को चले आये। एक कोई भक्तों के वैरी ने गोसाईंजी के मारने को जप का अनुष्ठान किया। गोसाईंजी ने एक पद महादेवजी का बनाया, जिसके प्रताप से कुछ न हुआ। वह आप लज्जित हो रहा। फिर गोसाईंजी वृन्दावन आये। नाभाजी से मिले। उनकी रचना भक्तमाल देख-सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। यह बात जो फैली है

कि गोसाईंजी ने मदनगोपालजी के दर्शन के समय यह बात कही थी कि धनुष-बाण धारण करोगे, तब दण्डवत् करूँगा, सो यह बात निपट झूठ और बिना सिरपैर की है, क्योंकि कृष्णावली में कृष्णयश गोसाईंजी ने गाया है, सो प्रसिद्ध है। सिवा इसके सब जगत् को दण्डवत् किया है—'सीयराम-मय सब जगजानी। करौं प्रनाम जोरि जुगपानी' यह चौपाई जिसकी कही है, वह भला कब भगवत् के सामने ऐसी हठवाणी कह सकता है। इस बात के फैलने की बात यह है कि उपासक जिस देवता के मन्दिर में जाता है, अपने इष्ट का रूप ध्यान करता है, यह रीति शास्त्र के सम्मति के अनुकूल है। सो गोसाईंजी दर्शन को गये व परम मनोहर मूर्ति को देखा तो श्रीरघुनन्दन धनुषबाणधारी का ध्यान करके दण्डवत् किया। गोसाईंजी सच्चे भक्त व सिद्ध थे, इस हेतु मदनगोपालजी ने भी उनके ध्यान के अनुकूल रूप दिखा दिया। जो कोई उस समय दर्शन करनेवाले थे, उनको भी धनुषबाणधारी दृष्टि में आये। इसहेतु वह बात फैली। और किसी ने एक दोहा भी बना लिया। वृन्दावन में किसी ने गोसाईंजी से प्रश्न किया कि श्रीकृष्ण महाराज पूर्णब्रह्म और अवतारी हैं और नृसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र आदि उस अवतारी के अंश कला के अवतार हैं। तुम श्रीकृष्ण महाराज की उपासना क्यों नहीं करते?

यद्यपि शास्त्रप्रमाण से गोसाईंजी उत्तर देने को समर्थ थे, पर माधुर्यभाव में प्रेमभक्ति को दृढ़ करते हुए ऐसा उत्तर दिया कि वह चुप हो रहा और सिद्धान्त बना रहा। वह उत्तर यह है कि श्रीरामचन्द्र दशरथनन्दन को बहुत सुन्दर सुकुमार अंग मनोहरमूर्ति परमशोभायमान देखकर हमारा मन ऐसा लग गया है कि नहीं छूटता। अब जो तुम्हारे वचन से उनमें कुछ ईश्वरता भी है तो और अधिक त्र मनभाई भई।

अकारादि पदानुक्रमणिका

रामपंचायतन

श्रीगणेशाय नमः

गीतावली

(मणिदीपिका टीका सहित)

—:o:—

बालकाण्ड

शशाङ्कास्यकन्दाभकौशेयवस्त्रं
किरीटच्छविं कर्णयोः कुण्डलाढ्यम् ।
करे चापबाणं कुजावामभागं
भजे सन्ततं रामकैशोररूपम् ॥ १ ॥

दोहा—श्रीगुरुकृपा बारिधर चरनकमल सुखमूल ।
तिनको करौं प्रनाम ते हरौ सकल मम सूल ॥
जनकसुता-रघुनन्दपद बार बार सिर नाइ ।
गीतावलि-मन-दीपिका टीका रचौं बनाइ ॥
रसिकलता सिय कल्पतरु बैजनाथ पितुधाम ।
सियवल्लभपद सरनजुत गुरु दीन्हो यह नाम ॥
गुन प्रताप जस कीर्ति जो प्रभु के गावत बेद ।
जथारूप बरनन करौं न्यारे न्यारे भेद ॥

गुण यथा—जगव्यापक जगबसकरन जगत सराहत जाहि । जैग चाहत जेहि तेहि सुकबि गुनगन कहिये ताहि ॥ कीर्ति यथा—होत जो अस्तुति दान ते कीरति कहिये ताहि । यश

यथा—होत बाहुबल ते सुजस कहत सुसज्जन वाहि ॥ प्रताप यथा—कीरति सों अरु सुजससों होत सत्रुउर ताप । जग डरात सब आप ही कहिये ताहि प्रताप । प्रभु की लीला तीनि बिधि गायक चारि प्रकार। मागध, बन्दी, सूत अरु अर्थी चौथ बिचार ॥ लीला इक ऐस्वर्य कहि इक माधुर्य सराहि । दोउ मिलाइ जो भाषिये मिश्रित कहिये ताहि ॥ मागध मधुरी कीर्ति को ऐस्वर्य बन्दि प्रताप । पौरानिक मिश्रित जसै सबगुनस्वारथ आप ॥

जहाँ ऐश्वर्य-मिश्रित यश, प्रताप, कीर्ति, गुण, सबका वर्णन हो उसे चरित कहते हैं । वहाँ पौराणिक भाव से गोसाईंजी ने रामचरितमानस प्रथम वर्णन किया । पौराणिक भाव यथा—"कहौं राम की कथा सुहाई । सादर सुनहु सुजन मन लाई ॥' यहाँ श्रेष्ठ वक्ता अधिकारी किये हैं । यथा—"रामचरित मुनिवर्य बखानी । सुनी महेस परम हितमानी ॥" पुनः—"भरद्वाज मुनि प्रश्न किय याज्ञवल्क्य मुनि पाइ ॥" पुनः—"सुनु सुभ कथा भवानि, रामचरित-मानस बिमल । कहा भुसुण्डि बखानि, सुना विहगनायक गरुड़ ॥" लीला मिश्रित यथा—"गुरुगृह गये पढ़न रघुराई ॥" यह माधुर्य ॥ "जाकी सहजस्वास श्रुतिचारी ॥" यह ऐश्वर्य ॥ "सो प्रभु पढ़ यह कौतुक भारी ॥ यह मिश्रित ॥ "निज निज रुचि सब लेहिं बुलाई ।" यह माधुर्य ॥ "निमिषमात्र महँ भुवननिकाया । रचै जासु अनुसासन माया ॥" यह ऐश्वर्य ॥ "भक्तहेतु सोइ दीनदयाला । चितवत चकित धनुषमखसाला ॥" यह मिश्रित । स्तुति से कीर्ति । यथा—"गुरुआगमन सुनत रघुनाथा ॥" और "राम कस न अस कहहु तुम ॥" यह। दान से कीर्ति। यथा—"मुनि दुर्लभ जो परम गति तोहिं दीन भगवान ॥" यश यथा—"रिपु-रनजीति सुजस सुर गावत ॥" प्रताप यथा— "जब ते रामप्रतापदिनेसा ॥" और "जीतेहु मनहिं सुनी अस

रामचन्द्र के राज ॥" गुण यथा—"जहँ-तहँ नर रघुपतिगुन गावहिं॥" और "भजहु प्रनत-प्रतिपालक रामहिं । सोभासील ज्ञान-गुन-धामहिं॥" और सिद्धांत यह है कि नाम, रूप, लीला, धाम परात्पर हैं ॥ प्रभु की भक्ति बिना जीव का कल्याण नहीं ॥ नाम यथा—"राकारजनी भक्ति तुव रामनाम सोइ सोम । अपर नाम उडुगन विमल ॥" इत्यादि । रूप यथा—"सम्भु बिरञ्चि विष्णु भगवाना । उपजैं जासु अंस ते नाना ॥" लीला यथा—"बिधि हरि संभु नचावनहारे । तेउ नहिं जानहिं मर्म तुम्हारे ॥" धाम यथा—"अवध-सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ ॥" भक्ति यथा—"भक्तिहीन बिरंचि किन होई ॥" इति । मानसरामायण रामचरित्र का रोज़नामचा है । उसका खाता कवितावली और गीतावली विनय है । वहाँ मुग्ध भक्तों के मन की दृढ़ता के हेतु नामप्रताप, रूपप्रताप, गुणों का प्रताप, भक्ति का प्रताप ऐश्वर्य लीला में बन्दीभाव करके कवितावली में कहे हैं । उत्तम कवि अधिकारी कहे हैं । वीररस का अधिकार है । बंदीभाव यथा—"जय जय जय जानकीरमन ॥" जयकार बन्दीजनों की संप्रदाय है । आशीर्वाद यथा—"रंक के निवाज रघुराज राजा राजन के उमिर दराज महाराज तेरी चाहिए ॥" कवि अधिकारी यथा—"बानी बिधि गौरी हर सेसहू गनेस कही सही भरी लोमस भुसुण्डि बहुबारखी । दसचारि भुवन निहारि नर नारि देखे नारद को बरदान नारद सो पारखी ॥ तिन कह्यो जग में जगमगात जोड़ी एक दूजे को कहैया को सुनैया चख चारखी । कह्यो रमारमन सुजान हनुमान कहि सिय सी न तिय न पुरुष राम सारखी" ॥ यह शोभा का प्रताप हुआ । ऐश्वर्य यथा—"रामबिरोध न राखि सकैं तुलसी बिधि श्रीपति सँकर सौंरे ॥" नाम को प्रताप यथा—"राम नाम रावरो दाम चाम की चलाई है ॥" और "नाम प्रताप बली है ॥" रूप का प्रताप—

"लायक हैं भृगुनायक से धनुसायक सौंपि स्वभाव सों पाये ॥" अथ गुणप्रताप— गुण दस, चार, नव, तीन व इक्कीस हैं। यथा— रूप, लावण्य, सौंदर्य, माधुर्य, सौकुमार्य, नवयौवन, सौगन्ध, सौवेष, भाग्यवान्, षडंग उज्ज्वलत्व ये दश गुण माधुरी के हैं। ऐश्वर्य, वीर्य, तेज़, बल ये चार प्रताप के गुण हैं। आदम्र, नियतात्मा, वशीकरण, वाग्मी, सर्वज्ञ, संहनन, स्थैर्य, धैर्य, वदान्यता ये नव गुण ऐश्वर्य के हैं। सौम्य, रमण, व्यापक ये तीन गुण सहज हैं। सौशील्य, वात्सल्य, सौलभ, गांभीर्य, क्षमा, दया, कारुण्य, आर्द्रता, उदारता, आर्जव, शरणत्व, सौहार्द, चातुर्य, प्रीति, कृतज्ञता, दान, नीति, प्रसिद्धि, कुलीनता, अनुराग, निर्बर्हण ये इक्कीस गुण कीर्ति के हैं। इत्यादि सभी गुणों से भरे रघुवीर को निहारकर शारदा की मति पंगु हुई, समता के लायक़ उपमा न पाई इससे फिर गई। गुण के उदाहरण गीतावली के प्रथम पद में लिखेंगे, इसी से यहाँ नहीं लिखा। भक्तिप्रताप यथा—"जन को प्रन राम न राखे कहाँ ॥" वीररस ॥ युद्धवीर यथा—"राम-सरासन ते चले तीर।" इत्यादि। दानवीर यथा— "सो समाज महाराजजी के एक दिन दान भो॥ त्याग-वीर यथा— "राजिवलोचन राम चले॥" दयावीर—"तौलौं न दाप दल्यो दसकन्धर जौलौं बिभीषन लात न मार्यो॥" हेतु यथा— "जोपै जानकीनाथ सों प्रीति न लाई॥" और, "गरीबनेवाज न दूसरो ऐसो॥" और "कृपालु न दूजो॥" सिद्धान्त यथा— "मन सों प्रन रोपि कहै तुलसी रघुनाथ बिना दुख कौन हरै॥" इति कवितावली।

अथ मध्यम भक्तों की आशा पूर्ण करने को और कलियुग के भय-निवारणार्थ स्वार्थीभाव करके गोसाईंजी गुण-गानयुत बिनती करते हैं। इसमें श्रेष्ठ स्वार्थी अधिकारी किये हैं। वात्सल्य और

शांतरस की अधिकारता है। नवधा भक्ति शरणागत हेतु है। स्वार्थीभाव यथा—"कबहुँक कर कृपाल रघुनायक धरिहौ नाथ सीस मेरे॥" अधिकारी यथा—"जाके चरन बिरञ्चि सेइ सिधि पाई संकरहू॥" कलियुग का भय यथा—"कोपि तेहि कलिकाल कायर मोहिं घालत धाइ॥" दाद पाना यथा—"दई दीनहिं दादि सो सुनि सुजन सज्जन बधाइ॥" यहाँ सात भूमिका में विनय की। यथा दीनता—"केहि बिधि देउँ नाथहिं खोरि॥" मान-मर्षता—"काहे ते हरि मोहिं बिसारे॥" भयदर्शन—"राम कहत चलु॥" मत्सर—"ऐसी मूढ़ता या मन की॥" आश्वासन—"ऐसे राम दीनहितकारी॥" मनोराज—"कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो॥" विचारना—"केसव कहि न जाय का कहिये॥" अथ गुण—उदार—"ऐसो को उदार जग माहीं॥" सौहार्द—"जानत प्रीति रीति रघुराई॥" दया—"देव, दूसरो दीन को दयाल॥" प्रीति—"प्रीति पुनीत परिहरि पाँवरन पर प्रीति॥" सौशील्य—'सुनि सीतापति सीलस्वभाऊ॥" इति नवधा॥ श्रवन कथा मुख नाम हृदय हरि इति हेतु यथा—"कस मन मूढ़ राम बिसराये॥" वात्सल्य रस यथा—"सुत की प्रीति प्रतीति मित्र की॥" शान्तरस यथा—"जो निज मन परिहरै विकार॥" सिद्धान्त यथा—"हरिहि हरिता बिधिहि बिधिता सिवहि सिवता जिन दई॥ सो जानकीपति॥" (विनयपत्रिका) कुन्दन से जिनके मन निर्मल॥ (गीतावली) प्रेमा पराभक्ति में प्रौढ़ा तिनके अनुरागयुत माधुरी अवलोकन के हेतु॥ रूप की माधुरी माधुर्य लीला माधुर्य गुण मधुर कीर्ति मंगलीक मागध गायक भाव से गोसाईंजी गाते हैं। यहाँ श्रेष्ठ गायक अधिकारी हैं शृंगार रस है। गायक भाव यथा—"तुलसिदास प्रभु सोहिलो गावत उमँगि उमँगि अनुराग॥" इति श्रेष्ठगायक। अधिकारी

यथा—"गावत बिबिध बिमल बरबानी ॥" रूप की माधुरी यथा—"रहीं एकटक नारि जनकपुर लागत पलक कल्प बितये री ॥" "और निरखहु तजि पलक सफल जीवन लेखौरी ॥" रूप की माधुरी यथा—"माधुरी बिलास हास गावत जस तुलसिदास ॥" मधुरगुण यथा—"या सिसु को गुन नाम बड़ाई ॥" और "रूपसील-गुनधाम राम ॥" मधुर कीर्ति यथा—"कल कीरति गावत तुलसिदास ॥" शृंगाररस यथा—"ललित लताजाल हरत छवि वितान की ॥" और "मधुकर पिकबरहिं मुखर ॥" इति विभाव ॥ निजकरराजीव नयन पल्लवदल रचत-सयन ॥ इति अनुभव ॥ सिय अँग लिख धातुराग सुमनन भूषन विभाग ॥ इति संचारी ॥ प्यास परस्पर पियूष प्रेम पान की ॥ इति स्थायी ॥ प्रभु के अनूप रूप की माधुरी का अवलोकन सिद्धान्त है। यथा—"सखी रघुनाथ मुखछवि देखु ॥" "सखी रघुनाथरूप निहारु ॥"

अथ चारो ग्रंथों का प्रयोजन गोसाईंजी का। रामचरितमानस यथा—"मोसम दीन न दीनहित तुम समान रघुबीर। अस जिय जानि कृपानिधि हरहु विषम भवभीर ॥" कवितावली यथा—"तुलसी निहारि करि दिये सरखत हैं ॥" विनयपत्रिका यथा—"मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की पीर रघुनाथ सही है ॥" गीतावली यथा—"तुलसिदास जिय जानि सुअवसर भक्ति-दान तब माँगि लियो ॥"

कन्दाभं जलजायताक्षममलं शुभ्रम्प्रभाकुण्डलं
शोभाढ्यम्मुकुटाङ्गदादिपदिकं ग्रैवेयमुक्तावलिम् ॥
पाणौ कार्मुकसायकं कटितटे कौशेयवस्त्रेषुधिं
सीतास्याब्जमधुव्रतं रघुवरं वन्दे प्रसन्नाननम् ॥ १ ॥

नगभुजाङ्कमृगाङ्कगताब्दके असितपञ्चमिभार्गवकार्त्तिके।
जनकजापतिपादरजाश्रयं अवलिगीतकृतामणिदीपिका ॥ २ ॥

सो०—नीलकमलसमस्याम कोमल बालस्वरूप सोइ।
तेहि नित करौं प्रनाम कौसलेस महराजसुत ॥ १ ॥
जनकसुता दिसि वाम ब्याहसाज कैसोर बपु।
बसौ सु मम उरधाम श्रीरघुनन्द प्रसन्नमुख ॥ २ ॥
करिकर-सम भुजदण्ड धनुसर कर कटितून धर।
कामादिक रिपुखण्ड सरनागत रघुबीर के ॥ ३ ॥
सिंहासन सुखमूल राजत राजसमाजयुत।
रहहु सदा अनुकूल मोपै श्रीरघुनाथजी ॥ ४ ॥

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ॥
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।

अर्थ—रघुवंश के नाथ श्रीराम को मैं नमस्कार करता हूँ। कैसे हैं श्रीराम, नीलकमलसम श्यामल कोमल अंग हैं जिनके, फिर वामभाग में श्रीसीताजी विराजमान हैं जिनके, पुनः पाणि (हाथों) में अमोघ बाण और सुन्दर धनुष है जिनके। ऐसे रघुवंशनाथ श्रीराम को मैं नमस्कार करता हूँ।

कमलसम श्याम कोमल अंग कहकर बालरूप सूचित किया। सीता वामभाग में कहकर विवाह आदि सूचित किया। कर में अमोघ बाण सुन्दर धनुष कहकर रावणवध आदि वन की लीलाएँ सूचित कीं। रघुवंशनाथ कह राजसिंहासन पर आसीन सूचित किया। इति।

अथवा श्याम कोमल स्वरूप जिज्ञासु भक्त का ध्यान है। सीता-

युक्त किशोररूप ज्ञानी भक्त का ध्यान है। धनुषबाण कर धरे वीररूप आर्त भक्तों का ध्यान है। रघुवंशनाथ उदाररूप यह अर्थार्थी भक्तों का ध्यान है। अथवा श्याम रंग कोमल अंग इसमें वर्णन किया। वामांग सीता-युक्त विराजमान हैं। जहाँ ऐसा धाम रूप-वर्णन किया। धनुष बाण कर में खलों के वध हेतु, इससे लीला वर्णन की, रघुवंशनाथ रामनामवर्णन की। अथवा कोमल अंग तुरीय अवस्था है। सीतायुक्त आसीन सुषुप्ति अवस्था। धनुष-बाणयुत वेग स्वप्न अवस्था। रघुवंशनाथ राम जाग्रत् अवस्था है। अथवा कोमल अंग, यह यजुर्वेद का सिद्धान्त है। सीतायुत यह सामवेद का सिद्धान्त है। कर में धनुषबाण यह ऋग्वेद का सिद्धान्त है। नमामि रामं रघुवंशनाथं, यह अथर्वणवेद का सिद्धान्त है। अथवा रामनाम से प्रणव और बीज और सोहं, तीन महामन्त्र उत्पन्न हुए। चौथा रामनाम। चारो से गर्भित ये श्लोक के चारो चरण हैं॥ पाणौ यथा — प्रथम चरण में कोमलांग की कोमलता का ओकार व मकार का अनुस्वार मिलकर ओमिति प्रणव गर्भित है, दूसरे चरण में समारो। इति।

रकार की ओकार निकाल आदि मकार का अकार रकार में मिलाकर मकार की अनुस्वार करके विपरीत से दीर्घ राकार में अनुस्वार मिलाने से रां यह बीज गर्भित है। तीसरे चरण में महासा आदि की मकार को अनुस्वार करके हकार में मिलाकर अकार निकाल सकार में ओकार मिलाकर विपरीत कर देखिए, सोहं यह गर्भित है। चौथे चरण में राममिव वर्तमान नाम है। इति।

अब रामनाम से तीन ओं की उत्पत्ति कहते हैं। यथा—प्रथम बीज। राम इति स्थिते मोनुस्वारः। मकारस्यानुस्वारोभवति हसे-

परे पदान्ते च। इस सूत्र से मकार की अनुस्वार दीर्घ रकार मिलकर रां यह बीज सिद्ध होता है। प्रणव यथा—राम इति स्थिते वर्ण-विपर्यय सूत्र से रकार मध्य में आई, अकार आदि में गई, अरम् ऐसा हुआ। स्रोर्विसर्गः सकाररेफयोर्विसर्जनीयादेशो भवत्यधातोरसेपदान्ते च धातोःपदान्ते नतु रसे। इससे रकार की विसर्ग भई। अःम् ऐसा रूप हुआ। अतोत्युः। अकारात्परस्य विसर्जनीयस्योकारोभवत्यतिपरतः। इससे अउम् हुआ। उओ। अवर्णउवर्णेपरेसहओकारोभवति। मोनुस्वारः। मकारस्यानुस्वारोभवति। इन सूत्रों से ओमिति प्रणवसिद्धिः॥ सोहं यथा—सशब्देन हकारेण सोहमुक्तं तथैव च। वर्णागमो सूत्र से सुट् का आगम हुआ। टित्वादादौकित्वादंते। इति सराहम इति स्थिते। स्रोर्विसर्गः इस सूत्र से रकार की विसर्ग हुई। अतोत्युः। इससे उकार हुई। उओ इससे ओकार हुई। सोहम् ऐसा हुआ। एदोतोतः से अकार लोप हुई। मोनुस्वारः से मकार की अनुस्वार हुई, सोहं सिद्ध हुआ। सोहं ज्ञानकाण्ड का, प्रणव कर्मकाण्ड का, बीज उपासनाकाण्ड का और नाम सबका अधिकारी है। यों यह मंत्रमय श्लोक है।

राग आसावरी

आजु सुदिन सुभ घड़ी सुहाई।
रूप-सील-गुन-धाम राम नृप-भवन प्रगट भे आई॥ १ ॥
अति पुनीत मधुमास लग्न-ग्रह-बार-जोगसमुदाई।
हर्षवन्त चर-अचर-भूमिसुर तनरुह पुलक जनाई॥ २ ॥
वर्षहिं बिबुधनिकर कुसुमावलि नभ दुन्दुभी बजाई।
कौसल्यादि मात मन हर्षित यह सुख बरनि न जाई॥ ३ ॥

सुनि दसरथसुत-जन्म लिये सब गुरुजन-बिप्र बुलाई ।
बेदबिहित करि क्रिया परम सुचि आनँद उर न समाई ॥ ४ ॥
सदन बेदधुनि करत मधुर मुनि बहुबिधि बाज बधाई ।
पुरबासिन प्रिय प्रान-नाथहित निज सम्पदा लुटाई ॥ ५ ॥
मनि-तोरन बहु केतु-पताकन पुरी रुचिर करि छाई ।
मागध सूत-द्वार बन्दीजन जहँ-तहँ करहिं बड़ाई ॥ ६ ॥
सहज सिंगार किये बनिता चलि मंगल बिपुल बनाई ।
गावहिं देहिं असीस मुदित चिर जियो तनय सुखदाई ॥ ७ ॥
बीथिन कुंकुम कीच अरगजा अगर अबीर उड़ाई ।
नाचहिं पुर-नर-नारि प्रेम भरि देह-दसा बिसराई ॥ ८ ॥
अमित बसन-गज-तुरंग-धेनु-मनि जातरूप अधिकाई ।
देत भूप अनुरूप जाहि जोइ सकल सिद्धि गृह आई ॥ ९ ॥
सुखी भये सुर-संत-भूमिसुर, खलगन मन मलिनाई ।
सबहिं सुमन बिकसत रबि निकसत कुमुद बिपिन बिलखाई ॥ १० ॥
जो सुखसिंधु एक सीकर ते सिव-बिरंचि प्रभुताई ।
सो सुख अवध उमँगि रहो दसदिसि कौन जतन कहिगाई ॥ ११ ॥
जे रघुबीरचरन चिन्तक, तिनकी गति प्रगट दिखाई ।
अबिरल अमल अनूप भक्ति दृढ़ तुलसिदास तब पाई ॥ १२ ॥

आजु सुदिन । भौम तो सुदिन नहीं है, यहाँ सुदिन क्यों लिखा ? उत्तर—भौम को जन्मा बालक रूपवान् होता है, इससे आज सुदिन कहा । सुघरी । एक दिन में सातो दिन पौने चार-चार

दण्ड भोग करते हैं। जैसे वर्त्तमान प्रभात का छुठा दूसरे अंश में, उसका छुठा तीसरे में इत्यादि। इसे दुघरिया कहते हैं। तहाँ मध्यकाल में सोमवार की घड़ी होती है। उसका जन्मा बालक शीलवान् होता है। इसी से सुभ घरी सुहाई कहा। उसमें जन्म हुआ सुन सखी प्रति सखी वा कोविद वा देवता वा कवि की उक्ति है कि आज सुदिन, उसमें सुहावनी घड़ी। शुभ में रूप शील आदि गुण के धाम, अपने नाम रूप लीला धाम में सबको रमानेवाले। ऐसे राम श्रीरघुनन्दन महाराज श्रीकौशलेन्द्र महाराज के धाम में स्वइच्छा से प्रकट हुए। तहाँ रूपगुण से माधुर्य गुणधाम शीलगुण से ऐश्वर्यगुणधाम जानो। परमदिव्य गुण अनेक हैं। उनमें कुछ लिखते हैं। प्रथमरूप, जो विना भूषण ही भूषित हो। सौन्दर्य, सब अंग सुठौर। माधुर्य, जिसे देखने में तृप्ति न हो। सौकुमार्य। लावण्य। यथा मोती का पानी। सौगन्ध। सौवेष, सुन्दरवेष। नवयौवन। स्वच्छता, शुद्धता, सुखमा, दीप्ति, प्रसन्नता इति उज्ज्वलत्व। सौभाग्यत्व, भाग्यवान्। इति माधुर्य के गुण। सौशील—शीलवान्, वात्सल्य, सौलभ्य—सरल, गाम्भीर्य—अगाध, क्षमा, दया, करुणा, उदारता, आर्जव—सर्वपूजनीय, आर्द्रव—जन के दुःख देख द्रवित हो उठे, प्रीति, कृतज्ञता—सलूक मानना, चातुर्य, ज्ञान, नीति, लोक-प्रसिद्धि, कुलीनत्व, अनुराग, सौहार्द, शरणपाल, शत्रुनिबर्हण—जीतना। इति यश-कीर्तिदायक गुण। आदभ्र—अनन्त, नियन्तात्मा—प्रेरक, वशीकरण, वाग्मी—सहजपरावनी, सर्वज्ञ, संहजनन—अजित, स्थैर्य—स्थिरता, धैर्य, वदान्यता—सत्य, रमण, सौम्य—समता, व्यापकत्व, धृति—एक रस, श्रीमान्, धर्म, ऐश्वर्य, सत्य, मोक्ष, वैराग्य, शौर्य—सबदबिजाई, वीर्य—वीरता, तेज, बल, शक्ति—अघटघटना इत्यादि गुण अपार हैं। प्रमाणं शिवसंहितायाम्। यथा—तत्र

हेतुस्त्वदीयन्तु रूपं सौन्दर्यमुत्तमम्। माधुर्यं यौवनारम्भः सौगन्धं सुकुमारता॥ १॥ लावण्यं परमा कान्तिः सौशील्यं खलु सौहृदम्। सौलभ्यं परवात्सल्यं प्रसन्नात्तं स्वभावतः॥ २॥ शक्तिर्नानाविधा सर्वकलाप्रावीण्यमाश्रमम्। अन्येपि ते स्युः कल्याणगुणाः सर्वत्र-सर्वजित्॥ ३॥ पुनः वाल्मीकीये। इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामोनाम जनैः श्रुतः। नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतवान् वशी॥ १॥ बुद्धिमान्नीतिमान् वाग्मी श्रीमान् शत्रुनिबर्हणः। विपुलांसोमहा-बाहुः कम्बुग्रीवोमहाहनुः॥ २॥ महोरस्कोमहेष्वासोगूढजत्रुर-रिन्दमः। आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः॥ ३॥ समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्। पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः॥ ४॥ धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानाञ्च हिते-रतः॥ यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥ ५॥ प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिसूदनः। रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता॥ ६॥ रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः॥ ७॥ सर्वशास्त्रार्थ-तत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान्। सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः॥ ८॥ सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः॥ ९॥ स च सर्वगुणोपेतः कौशल्यानन्दवर्द्धनः। समुद्र इव गांभीर्ये धैर्येण हिमवानिव॥ १०॥ विष्णुनासदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः॥ कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः॥ ११॥ धनदेन समस्त्यागे सत्यधर्मइवापरः॥ तमेवं गुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम्॥ १२॥

भगवान् के अनेक रूप हैं। उनमें शीलादि गुणों के धाम रामरूप आज सुदिन शुभ घड़ी में श्रीचक्रवर्ती महाराज के घर में प्रकट हुए। अथवा शीलादि गुणों का धाम बालरूप, जिस रूप के उपासक शिव, ब्रह्मा, विष्णु हैं। तत्र प्रमाणं महारामायणे

शिववाक्यम्—अहं विधातागरुडध्वजश्च रामस्य बाले समुपासकानाम्। गुणाननन्तं कथितुं न शक्तः सर्वेषु भूतेष्वपि पावनास्ते॥ १॥ अतिपुनीत एक तो ऋतुराज, दूसरे वर्षा का आदि शिरोभाग, तीसरे शस्य से पृथ्वी परिपूर्ण, फिर अतिपुनीत चैत्र मास, जिसमें घाम शीत सम, सुन्दर कर्क लग्न, पाँच ग्रह उच्च के (मेष के सूर्य, मकर के मंगल, तुला के शनैश्चर, कर्क के बृहस्पति, मीन के शुक्र इति) यह मंडलेश्वर योग है। वार भौम योगसमूह अथवा सुकर्म है। यथा वाल्मीकीये—ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ। नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु॥१॥ ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविंदुना सह। प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम्। कौशल्याजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम् ॥ २॥ और चर जो चलते, अचर जो नहीं चलते, सो सब हर्ष सहित हुए। यथा अचर पृथ्वी हरित हो रही है, आकाश निर्मल है, वृक्ष फूल रहे हैं। चर मनुष्य आदि। भूमिसुर ब्राह्मण प्रेम से पुलकित हैं, उनके रोमाञ्च हो आया है। अथवा प्रभु को ब्रह्मण्य देव जानकर भूमिसुर वशिष्ठ विश्वामित्र के पुलक भई॥ २॥ वर्षहिं इति। विबुध देवता, निकर समूह, कुसुमावली फूलों की पंक्ति बरसा रहे हैं। नभ आकाश में दुंदुभी नगाड़ा बजाते हैं निर्भय होकर कि हमारे दुःख के हरनेवाले प्रकट हुए, अब कुछ भय नहीं। कौशल्या आदि माताओं का सुयश वर्णन करने योग्य नहीं है। चौथेपन में पुत्र होना अकथनीय हर्ष है॥ ३॥ सुनि इति। दशरथ महाराज ने पुत्र का जन्म सुनकर सब जो कुल के वृद्ध कुलरीति के जाननेवाले और विप्र जो वेदाभ्यासी हैं, तिनको बुलाया। वेदविहित अर्थात् वेदरीति से नान्दीमुख श्राद्ध, जातकर्म आदि शुचि परमपवित्र क्रियाएँ करके जो आनन्द हुआ, सो उर में नहीं समाता॥ ४॥ सदन जो मन्दिर है, उसमें मुनि

मधुर स्वर से वेदध्वनि करते हैं और बहुत प्रकार से बधाई बजती है। प्रिय नाथ जो रघुनाथ हैं, उनके हेतु पुरवासियों ने निज निज संपदा लुटा दी। इससे राजधानी सनाथ हुई, इससे प्रिय नाथ कहे॥ ५॥ मणियों सहित तोरण जो बन्दनवार हैं, बहु केतु यानी ध्वजा और पताकाएँ जो फहराती हैं (ध्वजा चिह्न-युत, यथा गरुड़ध्वज चक्रवर्ती महाराज की ध्वजा में कचनार का वृत्त है और पताका चिह्नरहित है) उन केतुओं और पताकाओं से पुरी छा गई है। मागध, ढाढ़ी आदि जो मंगलीक कीर्ति और वंश के प्रशंसक हैं, सूत पौराणिक जो पावन यश का वर्णन करते हैं, बन्दीजन जो प्रतापयुत विरदावली का उच्चारण करते हैं, वे जहाँ-तहाँ मागधराग तालयुत मंगलीक कीर्ति का गान कर रहे हैं, पौराणिक यश कह रहे हैं, और बन्दीजन प्रतापयुत विरदावली कह रहे हैं॥ ६॥ सहज श्रृंगार अर्थात् जो साधारण में पहने थीं, उसी श्रृंगार से चलीं। मंगल विपुल बनाय कै। दधि, हलदी, दूब, पुंगीफल, तुलसीदल, फल, फूल, कंचन-थाल में घृत, अगर, धूप, कपूर आदि की आरती सजते में श्रृंगार करना भूल गईं। प्रेमानन्द में मग्न उठ धाईं। वे मधुर स्वर से गान करती और आशीर्वाद देती हैं कि भूप के तनय हमारे सुख के देनेवाले आनन्द से चिरंजीव रहें॥ ७॥ वीथी जो गली हैं, उनमें कुंकुम, केसर, चन्दन, कपूर, अरगजा आदि की कीच मच रही है। अगर धूप का धूम और अबीर उड़ रहा है। पुरवासी नरनारी प्रेमानन्द से भरे नाच रहे हैं। देहदशा बिसारि, लज्जा-रहित॥ ८॥ वसन दुशाला आदि, गज हाथी, तुरंग घोड़े, धेनु, गौ, मणि-मुक्तादि, जातरूप सोना इत्यादि। अधिकाई, बहुत, अमित, संख्यारहित। अनुरूप अर्थात् जिसकी जिसमें रुचि है उसे वही वस्तु चक्रवर्ती महाराज देते हैं। और कमती नहीं होती; क्योंकि सकल अणिमादि सिद्धि गृह

में आई, इससे परिपूर्ण हैं ॥ ६ ॥ देवता, सन्त, ब्राह्मण आदि सब सुखी हुए और खलगण जो दुष्ट राक्षस आदि हैं, उनके मन मलिन हुए। यथा प्रभातसूर्य का उदय होने से सब सुमन विकसित कहे प्रफुल्लित होते हैं, और कुमुद जो कोकाबेलि है, उसके वन बिलखात यानी सम्पुटित होते हैं। यथा कुचाली रात्रि में खल कुमुद सम प्रफुल्लित रहे। और सज्जन कमलसम मलीन रहे। जब सुचालरूपी दिन हुआ, तब सज्जन प्रफुल्लित और खल मलिन हुए ॥ १० ॥ सुख-सिंधु, यथा आनन्द जल, उत्सव तरंग, क्रीड़ा जल जन्तु, शोभा सुखमा सौकुमार्य रत्न, भक्ति तट, सुजन भक्त अधिकारी इत्यादि। श्रीरघुनाथजी गोलोक साकेतविहारी हैं वही। आनन्दसिंधु में से एक सीकर अर्थात् बूँदमात्र से अर्थात् जिनके अंशांश से विरंचि, विष्णु, शिव की प्रभुताई उत्पत्ति-पालन-संहार की शक्ति हैं। तत्र प्रमाणं सदाशिवसंहितायाम्—तदूर्ध्वं तु स्वयं भातो गोलोकः प्रकृतेः परः। वाङ्मनोगोचरातीतो ज्योतीरूपः सनातनः ॥ १ ॥ तस्य मध्ये पुरं दिव्यं साकेतमिति संज्ञकम्। योषिद्रत्नमणिस्तंभप्रमदागणसेवितम् ॥ २ ॥ तत्रास्ते भगवान् रामः सर्वदेवशिरोमणिः। तत्रादौ चिन्तयेत्तेजोवह्निरूपं सुशक्तिकम् ॥ ३ ॥ तेजसा महताश्लिष्टमानन्दैकाग्रमन्दिरम्। यदंशेन समुद्भूता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। उद्भवन्ति विनश्यन्ति कालज्ञानविडम्बनैः ॥ ४ ॥ सो जिसकी एक बूँद से ब्रह्मा आदि की प्रभुताई है, वही सुखसिंधु अवध में दसोदिशि उमँग रहा है। उसको कौन यत्न से गाकर कहूँ ॥ ११ ॥ जिनका चित्त प्रभु के चरणकमल का चिन्तन अहर्निश करता है, ऐसे जो रघुवीर के चरणचिंतक मनु महाराज आदि हैं, तिनकी गति प्रकट देख पड़ती है। अभिप्राय यह कि जिनको ब्रह्मादि ने ध्यान में न पाया, वह परमेश्वररूप भक्तों के बालक हुए, स्ववश से पराधीन हुए।

इसमें प्रभु का सौलभ्य गुण दिखाया है । भगवद्गुणदर्पणे—आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् । योऽहं यस्य यतश्चाहं तं मां ब्रूत महेश्वराः ॥ तब उसी समय में, अविरल अन्तर-रहित, अनन्य, अमल, वासनारहित, अनूप, कुटिल जीवों का उद्धार करनेवाली भक्ति दृढ़ करि तुलसीदास पाई ॥ १२ ॥

राग जयतश्री

सहेली सुन सोहिलो रे !

सोहिलो सोहिलो सोहिलो सोहिलो सब जग आज ।
पूत सुपूत कौसिला जायो अचल भयो कुल-राज ॥ १ ॥
चैत चारु नौमी सित पाखै मध्य गगन गत भान ।
नखत जोग ग्रह लग्न भले दिन मंगल मोद निधान ॥ २ ॥
ब्योम पवन पावक जल थल दिसि दसहु सुमंगलमूल ।
सुर दुन्दुभी बजावहिं गावहिं हर्षहिं बर्षहिं फूल ॥ ३ ॥
भूपति-सदन सोहिलो सुनि बाजे गहगहे निसान ।
जहँतहँ सजहिं कलस ध्वज चामर तोरन केतु बितान ॥ ४ ॥
सींचि सुगंध रचे चौकैं गृह आँगन गली बजार ।
दल फल फूल दूब दधि रोचन घर घर मंगलचार ॥ ५ ॥
सुनि सानन्द उठे दसस्यन्दन सकल समाज समेत ।
लिये बोलि गुरु सचिव भूमिसुर प्रमुदित चले निकेत ॥ ६ ॥
जातकर्म करि पूजि पितर सुर दिय महिदेवन दान ।
तेहि अवसर सुत तीनि प्रगट भये मंगल मुद कल्यान ॥ ७ ॥

आनँद महँ आनंद अवध आनंद बधावन होय ।
उपमा कहौं चारि फल की मोहिं भल न कहै कवि कोय ॥ ८ ॥
सजि आरती विचित्र थार करि जूथ जूथ भरि नारी ।
गावत चलीं बधावा लै लै निज निज कुल अनुहारी ॥ ९ ॥
असही दुसही मरहु मनहिं मन बैरिन बढ़हु विषाद ।
नृपसुत चारि चारु चिरजीवहु संकर-गौरि-प्रसाद ॥ १० ॥
लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चलि भाँति भाँति भरि भार ।
करहिं मान करि आन राय को नाचहिं राजदुवार ॥ ११ ॥
गज रथ बाजि बाहिनी बाहन सबन सवाँरे साज ।
जनु रतिपति ऋतुपति कोसलपुर बिहरत सहित समाज ॥ १२ ॥
घंटा घंटि पखाउज आउज झाँझ बेनु डफ तार ।
नूपुर पुनि मंजीर मनोहर कर कंकन झनकार ॥ १३ ॥
नृत्य करहिं नट नटी नारि नर अपने अपने रंग ।
मनहुँ मदन रति विविध रूप धरि नटत सुदेस सुढंग ॥ १४ ॥
उघटहिं छन्द प्रबन्ध गीत पद राग ताल बन्धान ।
सुनि किन्नर गन्धर्ब सराहत बिथके बिबुध बिमान ॥ १५ ॥

सहेलियों सों अपर सहेली कहती हैं—हे सहेली, सोहिलो, सुन। बालक-जन्म-उत्सव का गान सोहिला कहलाता है। श्री रघुनन्दन का जन्मोत्सव सब ब्रह्मांड में हो रहा है, इससे बहु बार लिखा। अथवा भूपसदन में सोहिला सुन सब चारो दिशाओं में सोहिला हुआ, पाँच बार लिखा। अथवा मागध, सूत, बन्दी-जन, ब्राह्मण, ग्रामस्त्री आदि पाँच शब्द हैं, अथवा पाँच देश

आनन्द हुए। अथवा पाँच तत्वों को आनन्द हुआ। या प्रेमावेश से पाँच बार लिखा, क्योंकि सब जगह सोहिला हुआ। श्रीकौशल्या महारानी ने पूत सपूत जाया। एक तो बड़ी रानी के, दूसरे भाइयों में बड़े, तीसरे शुभ घड़ी, चौथे पाँच ग्रह उच्च इससे सपूत पूत जाये। अब कुल का राज अचल हुआ॥ १॥ चैत मास, चारु सुन्दर, नौमी तिथि, सित शुक्ल-पक्ष, मध्य आकाश में सूर्य, अभिजित् मुहूर्त, नक्षत्र पुनर्वसु, योग सुकर्मा आदि। अथवा राजयोग, मण्डलेश्वर, पाँच ग्रह उच्च, यथा मेष के सूर्य, मकर के मंगल, तुला के शनैश्चर, कर्क के बृहस्पति, मीन के शुक्र। लग्न कर्क। भला मंगल दिन इत्यादि। सब मोद यानी आनन्द के निधान हैं॥ २॥ व्योम आकाश निर्मल हो रहा है। अग्नि समाधान है। पवन शीतल मन्द सुगन्ध बह रही है। जल निर्मल मन्द मन्द बहता है। थल पृथ्वी हरित हो रही है। दसो दिशाओं में सुमंगल मूल कहे विविध प्रकार के शकुन होते हैं। आकाश में देवता विमानों पर हर्ष से दुन्दुभी बजाते और फूल बरसाते हैं। अप्सरा नृत्य और मंगलमय गान कर रही हैं॥ ३॥ भूपति के सदन में सोहिला सुन निशान नगाड़े गहगहे उत्सव के भरे बजे। जहाँ तहाँ कलश, ध्वजा, चँवर, तोरण बन्दनवार। और केतु ध्वजा दो लिखे। केतु छोटी, ध्वजा बड़ी। वितान शामियाना इत्यादि सजत कहे रचते वा शोभा दे रहे हैं॥ ४॥ सौगन्धित जल गुलाब आदि छिड़ककर मोतियों की चौकें रचते भये। गृह के आँगन में, गलियों में, द्वारद्वार, बजारों में दुकानों के आगे। इससे तीन जगह लिखा। और तुलसीदल, फूल, रोचन, हल्दी, दूब, दही इत्यादि से घर घर द्वार द्वार में मंगलाचार हो रहा है॥५॥ दशस्यन्दन श्रीदशरथ महाराज पुत्र का जन्म सुन सहित समाज आनन्द से उठे। गुरु वशिष्ठ सचिव सुमंत आदि। भूमिसुर अपर

ब्राह्मण। तिनको बुलाकर निकेत जो है राजमन्दिर उसके भीतर को प्रमुदित चले। एक आनन्द से उठना, एक आनन्द से भीतर चलना, इससे दो बार लिखा॥ ६॥ जातकर्म आदि दस कर्म हैं। प्रथम गर्भाधान, द्वितीय सीमन्तकर्म, तृतीय जातकर्म, चतुर्थ नामकरण, पञ्चम अन्न-प्राशन, षष्ठ चूड़ाकर्म, सप्तम कर्णबेध, अष्टम यज्ञोपवीत, नवम विवाह, दशम मृतककर्म, ये कर्म होने से जीव शुद्ध गति को प्राप्त होता है। जातकर्म से विवाहपर्यंत सात कर्मों के आदि में अद्भुत एक नाम नान्दीमुख श्राद्ध का अधिकार है, तथापि जातकर्म बालक के जन्म के समय होता है, उसके आदि में विशेष होता है। यथा नान्दीमुख श्राद्ध माङ्गलिक है। इससे पूर्व मुख बैठते हैं। सर्वत्र सव्येनैव कर्त्तव्यं, सव्य से सब कर्म होते हैं। गौरी आदि चतुर्दश मातृकाओं की और गणेश वरुण की पूजा होती है। पिष्टस्य बदरान्निर्माय तेषु तिलान्दधिहरिद्रार्कं च प्रक्षिप्य। चौरीठा, बेर के फल, तिल, दधि, हल्दी मिलाकर उसके नव पिण्ड बनते हैं। पुनः दूर्वासने नवधा विभज्य, वेदी पर दूब बिछाकर नौ पिण्डदान होते हैं। देवतीर्थे नैव कर्त्तव्यता। देवतीर्थ कहे सम्मुख हाथ से पिण्ड देना। मात्रादित्रय पित्रादित्रय मातामहादित्रय इति गन्ध दूर्वाक्षतताम्बूलैस्संपूज्य कुशस्थाने। दूब, चन्दन, अक्षत, पान से पिण्डों की पूजा संकल्प दक्षिणा। यों नान्दीमुख श्राद्ध करके जातकर्म। यथा प्रथम सूतिकागृह में पिता और आचार्य जातं स्वर्णेन मधुघृतं चतुर्वारं भोजयति। सुवर्ण की अँगूठी या अशर्फ़ी से घृत शहद मिलाकर चार बार बालक के मुख में लगाते हैं। भूप इति मन्त्र से पुनः कुशोदकैः बालं प्रोक्षयति। कुश से जल बालक पर छिड़कते हैं। पुनः अग्नि इति मन्त्र बालक के दाहने कान के पास आठो कण्डिका आचार्य पढ़ता है। पुनः पंचविप्र स्थापयति। पुनः श्रित इति मन्त्र से देश अभिमन्त्रयति

पुनः बालक अभिमन्त्रयति, पुनः बालक की माता को अभिमंत्रित करते हैं। पुनः माता दोनी में जल लेकर अपना दक्षिण स्तन धोकर बालक की नाल पर डालती है। आपो इति मन्त्र से पुनः वर्णदक्षिणा, पुनः भूमि-पंच संस्कार करके बेदी बना उस पर दोनैया में अग्नि रख गणेश गौरी वरुण पूज पीपल, सरसों, घृत से सात आहुतियाँ सांडा इति मन्त्र से सौ मूठी नाज भर पूर्णपात्र द्रव्य सहित विप्र को देते हैं। पुनः पुत्र पिता अभिषेक। पुनः तिलदान। पुनः शिवमंत्र से छुरे और सूत की पूजा कर सूत से बाँध नाल को छुरे से काटते हैं। तब नाई, बारी, डोमिन, ढाढ़ी दान पाते हैं। तब तो सूतक मानते हैं। सो दशरथ महाराज मन्दिर में गये। नान्दीमुख श्राद्ध करके पुनः जातकर्म करके श्राद्ध से पितर पूजे, जातकर्म से सुर पूजे और महिसुरों को दान दिये। प्रजा को दान न देने पाये कि इसी अवसर में तीन सुत और प्रकट हुए। मंगलरूपी भरत, मुदरूपी लक्ष्मण, कल्याणरूपी शत्रुघ्न, इससे मंगल मुद कल्याण लिखा ॥ ७ ॥ श्रीरघुनाथजी का जन्म सुन विशुद्ध आनन्द हुआ। पीछे तीनों भाइयों का जन्म सुना, इससे आनन्द में आनन्द हुआ। श्रीअयोध्याजी में आनन्द बधावने होते हैं जो चारो भाइयों को चार फल की उपमा कहूँ, तो कोई कवि मुझको भला कवि न कहेगा, और विवाह समय में जो कहा है—"जनु पाये महिपालमनि क्रियन सहित फल चारि।" उसका यह अभिप्राय है कि प्रथम उद्यम क्रिया करके शत्रुनाश होने से अर्थ-फल की प्राप्ति होती है, सो कल्याणरूपी शत्रुघ्न हैं; द्वितीय विधिपूर्वक अनुष्ठान से अधर्म का नाश होता है, उससे धर्म-फल की प्राप्ति सो मंगलरूपी भरतजी हैं। तृतीय रतिक्रिया से मन में मोद बढ़ता है, उससे काम-फल की प्राप्ति, सो मदरूपी लक्ष्मणजी हैं। चतुर्थ भक्ति-क्रिया द्वारा वासना का नाश

होने से मोक्षफल प्राप्त होता है। सो आनन्दरूपी रघुनाथजी हैं। जन्मपर्यन्त तीन फलों का लाभ और अन्तकाल में मोक्ष। सो यहाँ मोक्षरूपी रघुनाथजी प्रथम ही प्राप्त हुए, धर्म-अर्थ-कामरूपी तीन भाई पीछे प्राप्त हुए। अतः कर्मविपर्यय हो जाने से उपमा समता के लायक़ न हुई और विवाह में जो कहे हैं, वहाँ रघुनाथजी जनकपुर में मुनि के संग गये हैं, यहाँ धर्म-अर्थरूपी भरत-शत्रुघ्न महाराज के संग ही गये, पीछे रघुनाथजी जनकपुर में मिले, यथा—"सुत उर लाय दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे॥" वहाँ रघुनाथजी पीछे मिले, अतः उत्प्रेक्षालंकार में कहा। यहाँ प्रतीत है॥ ८॥ मणियों से विचित्र कंचन के थालों में आरती सजि सजि हाथ में लिये यूथ के यूथ श्रेष्ठ स्त्री बधावे ले ले गाती चलीं। निजकुल की अनुहारि, अर्थात् ब्राह्मणी हल्दी, दूब, अक्षत और गान, भूषण, वस्त्र, चाल, सतोगुणी क्षत्रानी मोती, मणि, द्रव्य आदि चाल, गान, भूषण, वस्त्र, रजोगुणी बनेनियाँ द्रव्य-मेव आदि लिये चाल, गान, भूषण, वसन, रजोगुणी-सतोगुणी मिश्रित इत्यादि तीन वर्णों के बधावे व आरती॥ ९॥ शत्रु तीन प्रकार के हैं—असही, जो कुछ कर न सके, पर बिगाड़ने की आशा रक्खे; दुसही, जो समय पाकर घात करे, सो मन ही मन मरें। वैरी, जो बिगाड़ने का सामान सदा करे। उनके विषाद बढ़े, यह आशीर्वाद तीन वर्णों का है। नृपसुत सुन्दर चारो शंकर-गौरि-प्रसाद से चिरंजीवि रहो, यह आशीर्वाद ब्राह्मणी देती हैं॥ १०॥ ढोवा मांगलिक पदार्थ, अपनी जाति अनुहार। यथा—माली फूल-फल, दरज़ी वस्त्र, अहीर दधि, मनिहार झालर, तँबोली पान इत्यादि सब भार यानी डाली भर भाँति भाँति लिये चले। वे राजद्वार पर नाचते-गाते आनन्द से राजा की दुहाई देते हैं॥ ११॥ राजों

का यह संप्रदाय है कि उत्सव में चतुरंगिनी सेना सजते हैं। सेना के मालिक जो हैं, वे अपनी अपनी फ़ौज में वाहन आदि सबके साज सँवारते भये। हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल, प्रथम हाथियों पर झूलें ज़री की उन पर हौदा अंबारी मणियों से जटित सोने की उन पर भूषण-वस्त्र पहने अस्त्र-शस्त्र लिये राज-समाज सवार है। रथों में ध्वजा-पताका ज़री के फहराते हैं। बजनी घंटी और विविध भूषण वस्त्र सहित घोड़ा नहे हैं। उनमें महा-रथी सवार, घोड़ों पर ज़री की जीनें हैं। हैकल, हमेल, पूजी, दुमची झलझलाती हैं। उन पर राजकुमार षोड़श वर्षवाले, किरीट-कुण्डल पहने सवार हैं। बाहिनी पैदल सेना वर्दी पहने, अस्त्र सजे, व्यूह बाँधे, कामदार दाहने-बायें क़वायद से सजग राजमार्ग में घूमते हैं। इस पर उत्प्रेक्षा करते हैं—सेनापति मानों कामदेव है, सेना मानों वसंतऋतु है। सो सहित समाज अयोध्या जी में घूमते हैं ॥ १२ ॥ हाथियों के घंटे, रथों की घंटी, पखावज, मृदङ्ग, आउज, ताशे, झाँझ आदि सेना में बजते हैं। मृदङ्ग, बेनु, डफ, करताल, नूपुर आदि नृत्य के समाज में बजते हैं। मंजीर, पाजेब, उसकी मनोहर ध्वनि, कङ्कण की झनकार ग्राम-स्त्रियों के होती है ॥ १३ ॥ नट, नटी, ढाढ़ी, कलावंत, कथिक, बारमुखी (वेश्या) अपने-अपने रंग में नृत्य करती हैं। कोई संगीत, कोई तांडव, शार्दूल, उलथाटे की आदि गतियाँ नाचते हैं। मानो मदन रति विविध वेष धरि शुद्ध अंग शोभा समेत नाचते हैं ॥ १४ ॥ छंद के प्रबन्ध को गीत की गति में घटत याने गाते हैं। यथा—"आजु सुदिन" यह पद हरिपद छंद है, राग में आसावरी लिखा है। "सहेली सुनि" यह पद काहू छंद में है, राग जैतश्री लिखा है। "आज महामंगल" पद चौपैया छंद है, राग बिलावल लिखा है। "अवध बधावने" पद में दोहा हरिगीतिका छंद है, राग केदार

लिखा है। राग भैरव, मालकौस, हिंडोर, दीपक, श्री, मेघ इत्यादि हैं; उनकी तान ताल स्वर की बन्धान अर्थात् कम ज़्यादा नहीं होती। उनको सुन किन्नर गन्धर्व प्रशंसा करते हैं, और देवतों के विमान थकित हो रहे हैं॥ १५॥

कुंकुम-अगर-अरगजा छिरकहिं भरहिं गुलाल-अबीर।
नभ प्रसून झरि पुरी कोलाहल भइ मन भावत भीर॥ १६॥
बड़ी बयस बिधि भयो दाहिनो गुरु-सुर-आसिरबाद।
दसरथ-सुकृत-सुधासागर सब उमँगे तजि मरजाद॥ १७॥
ब्राह्मन बेद बदत बिरदावलि जय धुनि मंगलगान।
निकसत-पैठत लोग परसपर बोलत लगि लगि कान॥ १८॥
वारहिं मुक्ता-रतन राजमहिषी पुर-सुमुखि समान।
बगरे नगर निछावरि मनिगन जनु जुवारि-जव-धान॥ १९॥

केसर, कपूर, अगर, चन्दन में मिलाकर उसका अरगजा छिड़कते हैं। उस पर अबीर-गुलाल लगाते हैं। नभ से देवतों ने फूलों की झड़ी लगाई पुर में। कोलाहल शब्द, जो बहुत दिनों से चाहते रहे। सो पाया, उससे मन-भावते भीर हुई॥ १६॥ बड़ी बयस, चौथी अवस्था में विधाता दाहिने हुए। उससे गुरु वशिष्ठ, सुर, अग्नि आदि उनके आशीर्वाद से साठ हज़ार वर्ष की अवस्था पीछे चार पुत्र हुए। यथा वाल्मीकि के श्लोक— "षष्टिर्वर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक।" दशरथ महाराज के सुकृतरूपी सुधासमुद्र मर्यादा छोड़कर उमँगे। उससे ब्रह्माण्ड भर आनन्द में डूब गया॥ १७॥ ब्राह्मण की वेदध्वनि, बन्दीजनों की विरदावली प्रताप का वर्णन, प्रजाओं की ध्वनि, नारियों का

मङ्गलगान, गुणियों का कीर्ति-गान उस शब्द के आगे सुन नहीं पड़ता। इससे ज़ोर से कान में लगकर कहते हैं। कामकाजी निकसते-पैठते राजद्वार में ॥ १८ ॥ गजमुक्ता, मोती, रत्न, पद्मराग, वैडूर्य, फ़ीरोज़ा, विद्रुम, मरकत, पुखराज, हीरा आदि वारती हैं। राजा की रानी और पुर की स्त्री। समान बराबर। रानियों के बराबर। पुर-नर-नारि के वारने में यह देख पड़ता है कि रानियों के समान सुख पुरवासिनियों को भी हुआ। निछावर करते में जो मणिगण गिरे, वे नगर में बगरे, बिखर पड़े। कैसे शोभित होते हैं मानो जुआर, यव, धान। और नाज बाली के भीतर व छीमी में गुप्त रहते हैं। जुआर, यव, धान, बाली में खुले रहते हैं। वे खेत कटे पर जैसे बिथरते हैं, वैसे मणिगण पुर में बिथरे ॥ १९ ॥

कीन्ह बेदबिधि लोकरीति नृप मन्दिर परम हुलास।
कौसल्या केकयी सुमित्रा रहसबिबस रनिवास ॥ २० ॥
रानिन दिये बसन मनि भूषन राजा सहन भँडार।
मागध सूत भाट नट जाचक जहँ तहँ करहिं कबार ॥ २१ ॥
बिप्रबधू सनमानि सुवासिन जन पुरजन पहिराय।
सनमाने अवनीस असीसत ईस रमेस मनाय ॥ २२ ॥
आठ सिद्धि नव निद्धि भूति सब भूपति भवन कमाय।
समौ समाज राज दसरथ को लोकप सकल सिहाय ॥ २३ ॥

वेदरीति जातकर्म। पोत नार छीनना। लोकरीति तलवार वेलसउठा, सरसों, उड़द, गोबर की उपली से सूतिकागृह में अग्नि रखना इत्यादि। महाराज ने हुलासपूर्वक किया। कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा आदि सब रनिवास रहसविवश यानी परमहर्ष

के वश हैं ॥ २० ॥ कपड़ा, मणियों के भूषण रानियों ने दिये। सहन भण्डार, रुपया-अशरफ़ी आदि ख़ज़ाना राजा ने दिया। सो पाकर मागध, सूत, बन्दीजन परस्पर कबार यानी जहाँ-तहाँ क्रय-विक्रय करते हैं ॥ २१ ॥ विप्र-वधुओं का सम्मान किया और सुवासिनियों (सौभागिनियों) को सहस्र भाँति पहिरावन दिये। जन आसरेवाले, पुरजन अंतःपुरवासी। तिनका दशरथ महाराज ने सम्मान किया। वे पाकर शिव-विष्णु को मनाकर आशीर्वाद देते भये ॥ २२ ॥ आठसिद्धि – अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशिता, ईशता। निधि यथा—खर्ब, नील, मुकुन्द, कच्छप, मकर, शंख, पद्म, महापद्म, कुंद इति द्रव्य की गिनती निधि कही। भूति सप्तांग राजश्री यथा—राजा, मन्त्री, मित्र, कोश, देश, कोट, सैन्य। यथा—स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि चेत्यमरः। इत्यादि आठ सिद्धि नवनिधि भूति, ऐश्वर्य, सप्तांग राजश्री, सो महाराज के भवन में कमाहिं सेवा में लगी हैं। पुत्र-उत्सव-समय में जो महाराज का समाज है उसे देख लोकप इन्द्र वरुण कुबेर आदि सिहात ललचाते हैं ॥ २३ ॥

को कहि सकै अवधवासिन को प्रेम-प्रमोद-उछाह।
सारद सेस गनेस गिरीसहि अगम निगम अवगाह ॥ २४ ॥
सिव बिरंचि मुनि सिद्ध प्रसंसत बड़े भूप के भाग।
तुलसिदास प्रभु सोहिलो गावत उमँगि उमँगि अनुराग ॥ २५ ॥

जो प्रेमप्रमोद उछाह अवधवासियों को है, उसे कहने में शारदा, शेष, गणेश, शिव, शास्त्र, वेद को अगम है। उसे और कौन कह सके ॥ २४ ॥ शिव, ब्रह्मादि देवता, नारद, वाल्मीकि, वशिष्ठ, अगस्त्य आदि मुनि, लोमश आदि सिद्ध, सो सब भूप महाराज

दशरथ के भाग्य की प्रशंसा करते हैं कि महाराज का बड़ा भाग्य है। उसी समय का समाज हृदय में लाकर तुलसीदास अनुराग में बूड़े उमँगि उमँगि प्रभु के जन्म-उत्सव के सोहिलो सोहर गाते हैं॥ २५॥

राग बिलावल

आजु महामंगल कोसलपुर सुनि नृप के सुत चारि भये।
सदन सदन सोहिलो सुहावन नभ अरु नगर निसान हये॥ १॥
सजि सजि यान अमरकिन्नर मुनि जानि समय सुर गान ठये।
नाचहिं नभ अप्सरा मुदित मन पुनि पुनि बरसत सुमन चये॥ २॥
अति सुख बेगि बोलि गुरु भूसुर भूपति भीतर भवन गये।
जातकर्म करि कनक-बसन-मनि-भूषित सुरभिसमूह दये॥ ३॥
दल-रोचन-फल-फूल-दूब-दधि जुवतिन भरि भरि थार लये।
गावत चलीं भीर भइ बीथिन बंदिन बाँकुर बिरद बये॥ ४॥

श्रीचक्रवर्ती महाराज के चार पुत्र हुए सुनकर आज अयोध्याजी में महामंगल हो रहा है। सो कहते हैं। सदन सदन यानी घर घर में सोहिलो सुहाये यानी श्रवणरोचक हो रहे हैं। नभ में देवतों के विमानों पर नगर में द्वार द्वार निशान हये अर्थात् बाजे बज रहे हैं मंगलीक॥ १॥ विमान सज सजकर देवता, किन्नर, मुनि आये सो समय जान सुर जो गंधर्व उन्होंने गान ठाने। नभ में विमानों पर अप्सराएँ मुदित मन से नाच रही हैं। बारबार समूह फूल बरस रहे हैं॥ २॥ अत्यन्त सुखपूर्वक जल्दी से बुलाया। गुरु वशिष्ठ भूसुर ब्राह्मण सहित दशरथ महाराज भवन के भीतर गये। तहाँ नान्दीमुख श्राद्ध जातकर्म कर पितृ देवतों को पूज सुवर्ण और वसन मणि सोने से सींग खुर मढ़े ऐसी भूषित गऊ समूह दान दीं॥ ३॥ दल तुलसी, रोचन हल्दी,

सुपारी, नारियल, फूल, दूब, दही इत्यादि कञ्चन के थालों में भर भर युवती मधुर स्वर से गाती चलीं। इससे बीथी जो हैं गली, तिनमें भीर हुई। वन्दीजन विरद सनातन यश वंश का बाँकुर कहे उत्तम सो बये वर्णन किया अथवा महाराज के यश प्रताप को वन्दीजनों ने बये बोया, सो नवांकुर हुआ यहाँ पुत्र-जन्मोत्सव खेत है। पुराना यश-प्रताप बीज है। बन्दीजन बोनेवाले हैं। बखान करना ही बोना है। सुनकर हर्ष होना नवीन अंकुर है ॥ ४ ॥

कनक कलस चामर पताक ध्वज जहँ-तहँ बन्दनवार नये।
भरहिं अबीर अरगजा छिरकहिं सकल लोग यक रंगरये ॥५॥
उमँगि चल्यो आनन्द लोक तिहुँ देत बसन मंदिर रितये।
तुलसिदास पुनि भरे देखियत राम-कृपा चितवनि चितये॥ ६ ॥

सुवर्ण के कलश चामर पताका ध्वजा जहाँ तहाँ रचित हैं। बन्दनवार झालर नये नवीन झुकी हैं। केसर, कपूर, चंदन मिलाकर अरगजा छिड़कते हैं उस पर अबीर लगा देते हैं। उस रंग से सकल लोक एकरंग रंग गया तिहूँ लोकों में आनन्द उमँग चला उससे निछावर देते में सबने अपने घर रितये खाली कर दिये, सब दे डाला। गोसाईंजी कहते हैं कि श्रीरघुनाथजी की कृपा चितवनि के चितये से फिर भरे घर देख पड़ते हैं ॥ ५ । ६ ॥

राग जैतश्री

गावैं बिबुध बिमल बर बानी।
भुवन कोटि कल्यानकन्द जो जाये पूत कौसिला रानी ॥ १ ॥
मास पाख तिथि बार नखत ग्रह जोग लगन सुभ ठानी।
जल-थल-गगन प्रसन्न साधुमन दसदिसि हिय हुलसानी ॥ २ ॥

बरखत सुमन बधाव नगर-नभ हर्ष न जात बखानी ।
ज्यों हुलास रनिवास नरेसहि भो जनपद-रजधानी ॥ ३ ॥
अमर नाग मुनि मनुज सपरिजन बिगत बिषाद गलानी ।
मिलहिं माँझ रावन रजनीचर लंक संक अकुलानी ॥ ४ ॥

विबुध देवता विमल वर वाणी से यश गाते हैं कि जो कौशल्या रानी ने पुत्र जाया है, सो कोटियों भुवनों के कल्याण-रूपी जल देने को कन्द कहे मेघ उत्पन्न हुआ अथवा कल्याणफल के वृक्ष का कन्द यानी मूल है ॥ १ ॥ मास चैत, शुक्ल पक्ष, तिथि नवमी, वार भौम, नक्षत्र पुनर्वसु, ग्रह उच्च, योग सुकर्म, लग्न कर्क, उसमें उच्च बृहस्पति, चन्द्रमा स्वक्षेत्री इति। शुभ ठानी शुभ स्थान में हैं। जल निर्मल, थल पृथ्वी हरित, आकाश विमल, सो प्रसन्नता है। साधुओं के मन और दसों दिशा हृदय में हुलसती भई ॥ २ ॥ नगर में बधावे बजते हैं । नभ से देवता फूल बरसते हैं। सो हर्ष कहा नहीं जाता। जो हर्ष रनिवास और राजा को है वही जनपद देशवासी, राजधानी अयोध्यावासियों को है ॥ ३ ॥ अमर इन्द्र आदि, नाग वासुकी आदि, मुनि कश्यप आदि, मनुज पृथ्वी के राजा । सपरिजन प्रजा सहित । विषाद दुःख, ग्लानि, लज्जा । विकसत भये, विषाद ग्लानि छूट गई । यहाँ इन्द्र आदि जो मालिक हैं, तिनके रावण से पराजय की ग्लानि रही, इससे प्रजा के विषाद रहा। प्रभु का जन्म होने पर यहाँ से छूटकर वही विषाद ग्लानि शंका अकुलानी लंका में रावण और निशाचरों को मिली। इन्द्रादि की ग्लानि आकुलतारूप हो रावण को मिली और प्रजा का विषाद शंकारूप हो निशाचरों को मिला। यथा "यहाँ निसाचर रहहिं ससंका" और "दसमुख बोलि उठा अकुलाना" ॥ ४ ॥

देव पितर गुरु-बिप्र पूजि नृप दिये दान रुचि जानी ।
मुनि-बनिता पुरनारि सुवासिनि सहसभाँति सनमानी ॥ ५ ॥
पाइ अघाइ असीसत निकसत जाचकजन भये दानी ।
ज्यों प्रसन्न केकयी सुमित्रहि होहु महेस-भवानी ॥ ६ ॥
दिन दूसरे भूपभामिनि दोउ भई सुमङ्गलखानी ।
भयो सोहिलो सोहिलो भो जनु सृष्टि सोहिले-सानी ॥ ७ ॥
नाचत-गावत मो मन भावत सुख सो अवध अधिकानी ।
देत-लेत पहिरत - पहिरावत प्रजा प्रमोद-अघानी ॥ ८ ॥

प्रथम नान्दीमुख श्राद्ध कर पितृ पूजे । जातकर्म करके देव पूजे । पीछे गुरु वशिष्ठ तथा अपर ब्राह्मणों को रुचि देखकर दान दिये । मुनिवनिता अरुन्धती आदि पुरनारि । सुवासिनी सौभागिनी। जिनको लोकप्रसिद्ध सोहागिलें कहते हैं । पितृमातृ के संतोष हेतु पूजी जाती हैं । तिनका सहसभाँति सम्मान किया । यथा—आसन, नमस्कार, मधुरवचन, इच्छा भोजन, सर्वांग भूषण वस्त्र द्रव्य इत्यादि ॥ ५ ॥ अघाकर दान पाये, इससे याचक दानी भये । मन्दिर से निकसते में अशीस देते हैं—हे महेश भवानी, ऐसे ही कैकेयी सुमित्रा पर प्रसन्न होओ ॥ ६ ॥ नवमी पुनर्वसु, कर्क में रघुनाथजी भये। दशमी पुष्य, मीन में भरतजी भये । इससे दूसरे दिन रानी कौशल्या, कैकेयी सुमंल खानि कही । एकादशी श्लेषा, कर्क में लक्ष्मण शत्रुघ्न संग ही भये । इससे सोहिलो में सोहिलो लिखा । उत्सव में सब मगन हैं, इससे सब सृष्टि मानो सोहिलो में सानी है । प्रथम तेहि अवसर सुत तीनि प्रकट भये यह लिखा। यहाँ दिन दूसरे भूप भामिनि ोउ भई सुमंगल खानी और

छुठी तीनि दिन में लिखी। यथा--जो आज कल, परसों जागरण होयँगे, इसका उत्तर—नवमी, मध्याह्नकाल, कर्क में रघुनाथजी भये, दशमी, बुध, मीन में भरतजी भये; कर्क से मीन तक सैंतीस घड़ी सैंतालीस पल का अन्तर है सो प्रभु जन्म के पीछे दो दण्ड में सबको बुलाया, बीस दण्ड तक नान्दीमुख श्राद्ध जातकर्म किया, पन्द्रह दण्ड तक ब्राह्मणों को प्रजाओं को दान देते बीते। उसी समय में भरतजी भये, इससे तेहि अवसर लिखा। एकादशी, बृहस्पति, कर्क में लक्ष्मण शत्रुघ्न भये। सो नवमी में कर्क से एकादशी के कर्क तक एक सौबीस दण्ड का अन्तर है। साठदण्ड की दिनरात्रि के हिसाब से दो दिन होते हैं, इससे दिन दूसरे लिखा गिनती में तीन दिन हुए, इससे तीन दिन में छुठी लिखी, व कल्पान्तर समझो॥ ७॥ प्रथम चार भाइयों के जातकर्मादि अलग-अलग भये, इससे विप्रों को दान लिखा। अब प्रजा का दान लिखते हैं। मनभावत पाये, इससे अवध में सुख अधिक हुआ। सब नाचते-गाते हैं। डाली ढोवा निछावर देते हैं, इनाम बकसीस लेते हैं। झँगूली टोपी पहनाते हैं और जामा पगिया दुशाला पहनते हैं। प्रजा प्रमोद में अघाने हैं॥ ८॥

गान निसान कुलाहल कौतुक देखत दुनी सिहानी।
हरि बिरंचि हर पुर-सोभा कुलि कोसलपुरी लुभानी॥ ९॥
आनँद अवनिराजरवनी सब माँगहु कोखि जुड़ानी।
आसिष दै दै सरहहिं सादर उमा रमा ब्रह्मानी॥ १०॥
बिभव बिलास बैठि दसरथ को देखि न जिनहिं सोहानी।
कीरति कुसल भूति जे ऋधि सिधि तिन पर सबै कुहानी॥ ११॥

गान बाजे का कोलाहल उसका कौतुक देख दुनी सिहानी लल-

चानी। हरिपुर वैकुण्ठ, विरंचिपुर ब्रह्मलोक,हरपुर कैलास, तिनकी समग्र शोभा कोशलपुरी पर लोभानी, इससे अन्यत्र शोभा नहींहै॥ ६॥ अवनि पृथ्वी, उसके पति की रवनी रानी सब आनन्द हैं। क्योंकि पतिसुख ते माँग जुड़ानी, पुत्रसुख से कोखि जुड़ानी। अथवा जो आनन्दसमय हुआ, उसकी अवनी कहे भूमि। काहेसे माँग कोख जुड़ानी। उमा, रमा, ब्रह्माणी आशीर्वाद दै दै सराहती हैं कि ब्रह्माण्ड के स्वामी इनके पुत्र होने से अहोभाग्य हैं॥ १० ॥ श्रीदशरथ महाराज का विभव विलास बढ़ा देखकर जिन्हें नहीं सोहाया, तिन पर कीर्ति, कुशल, भूति, ऋद्धि-सिद्धि सब कुहानी रिसा गईं। प्रथम विभव दो प्रकार का, एक सुनकर, एक देखकर सब दब जायँ। सो यज्ञरक्षा करना, अहल्या तारना रघुनाथजी का विभव जनकपुर में कुटिल राजों ने सुना, परन्तु उन्हें सुहाया नहीं। उन्होंने कुटिलता की। उन राजों पर कीर्ति कुहानी, इससे अपकीर्ति को प्राप्त हुए। दूसरा विभव प्रसिद्ध धनुष तोड़ने का परशुरामजी ने देखा, परन्तु उन्हें सुहाया नहीं, दुर्वचन कहे। उनकी जय कुहानी, पराजय को प्राप्त हुए। विलास भी दो प्रकार एक शोभा-अवलोकन सुखविलास, एक भोगसुखविलास। शोभाअवलोकन सुखविलास रघुनाथजी का फटिकशिला पर रहा, सो जयन्त को नहीं सोहाया। उसने सीता महारानी के चोंच मारी। उस पर ऋद्धि कुहानी। एक धन ऋद्धि पिता का धाम, उससे रहित हुआ ("रामबिमुख राखा तिन नाहीं"), दूसरी तनऋद्धि, सर्वांग-शोभायुत। सो नेत्रहीन हुआ। दूसरा भोगविलास सदा संयोग, सो रावण को नहीं सोहाया, जानकीजी का वियोग कराया। उस रावण पर कुशल कुहानी, जिससे वंश-समेत नाश भया। वृद्धि भी दो प्रकार की है। एक बल से परहित। सो सुग्रीव के हित को बल भेजा, जो बाली को न सुहाया। उस पर सिद्धि कुहानी। सिद्धि यह कि सम्मुख वीर न

जीते, सो कुहाइ गई। इससे तुरन्त प्राणनाश भया। दूसरी बाढ़ अपना हित वचन करके। समुद्र से लंका जाने को राह माँगी सो समुद्र को नहीं सोहाई। उस पर भूति कुहानी, ऐश्वर्यरहित हुआ। अगाध समुद्र पर वानरों के हाथ से सेतु बाँधा इत्यादि रघुनाथजी की कर्तव्यता दशरथ महाराज की है॥ ११॥

छठी-बारहों लोक-बेद-बिधि करि सो बिधान-बिधानी।
राम-लषन-रिपुदवन-भरत धरे नाम ललित गुरु ज्ञानी॥१२॥
सुकृत सुमन तिल मोद बासि बिधि जतन जंत्र भरि घानी।
सुख सनेह सब दियो दसरथहि खरि खलेल थिर थानी॥१३॥
अनुदिन उदय उछाह उमँगि जग घर घर अवध-कहानी।
तुलसी राम-जन्म-जस गावत सो समाज उर आनी॥ १४॥

लोकरीति वेदविधानसहित छठी-बरहाँ करते भये। विधान जानै सो विधानी। गुरु ज्ञानी वशिष्ठ ने राम, लषण, रिपुदमन, भरत ये ललित नाम रक्खे। आगे छठीबरहें का विस्तार है॥१२॥ प्रथम सुगन्धित फूल तिल में मिला बन्द कर रखते हैं। फूलों की सुगंध तिल में आ जाती है। इसे बसाना कहते हैं। सो बासे तिल पेरत। जो कोल्हू में रही सो खली, जो छन्ना में रही सो खलेल। छनके शुद्ध हुआ सो फुलेल। उसे बड़े आदमी लगाते हैं। ग़रीब खलेल पैसे का लेकर पानी में घोल बाल मल-धोकर सफ़ा करते हैं; कुछ तेल सुगंधित बालों में रह जाता है। महाग़रीब दमड़ी की खली ले घोल-मींज बाल धोकर खली निकाल डालते हैं। कुछ सुगन्ध बालों में रह जाती है। इति दृष्टांत। अब दृष्टांत। यथा मनु महाराज की सुकृति फूल है। पुत्र की वासना सुगन्ध है। सोई सुकृतरूपी फूलों से वासना सुगन्ध वरदान पाने के मोदरूपी तिलों

में मिली। सो बसाना हुआ। विधाता गंधी है। यत्न यन्त्र है। यथा "जय जय सुरनायक" यह प्रार्थना कारण हुई। यत्न यंत्र से "तुमहिं लागि धरिहौं नरवेषा" यह कार्य सिद्धि भई, सो पेरना है। अवतार होने पर शुद्ध प्रेमानन्द का सुख, सो फुलेल है। दशरथ महाराज का शुद्ध प्रेम सुख हुआ। वही सनेह कहे फुलेल है। और परमार्थ-स्वार्थसहित प्रेम ही खलेल व खली है। थिर नाम पृथ्वी, उसका स्वार्थिक प्रेमभार उतारने को विधाताने खली दी, और थानी नाम है दिग्पालों का। पारमार्थिक प्रेम जगत् सहित अपना भला चाहता है। तिनको विधाता ने खलेल दिया ॥ १३ ॥ जैसे चन्द्रमा की एक कला प्रतिदिन उदय हो बढ़ती तथा पन्द्रह दिन में पूर्ण होती है, वैसे अवध में उत्सवरूपी चन्द्र प्रतिदिन उछाहरूपी कला के उदय से बढ़ता है। यथा प्रथम दिन में जन्म, तीन में पानी, तीन में छठी, तीन में बरहाँ उछाह इत्यादि। उमँगि कै जग में घर घर अवध की कहानी, सोई चाँदनी है। सो रामजन्म के उज्ज्वल शीतल प्रकाश का यश गाते हैं। तुलसीदास उस समाज के उत्सवरूपी चंद्रमा को हृदय में लाते हैं, जिससे हृदय की मलिनता अंधकार जाय ॥ १४ ॥

राग केदार

अवध बधावने घर घर मंगलसाज समाज।
सगुन सुहावने मुदित करत सब निज निज काज ॥ १ ॥
छं०—निज काज सजत सँवारि पुर नर नारि रचना अनगनी।
गृह अजिर अटनि बजार बीथिन चारु चौकैं बिधि घनी ॥ २ ॥
चामर पताक बितान तोरन कलस दीपावलि बनी।
सुख सुकृत शोभामय पुरी बिधि सुमति जननी जनु जनी ॥ ३ ॥

दो०—चैतचतुर्दसि चाँदनी अमल उदित निसिराज ।
उडुगनअवलि लसी दसदिसि में उमँगत आनँद आज ॥ ४ ॥

पुरी की शोभा वर्णन करते हैं । श्रीअयोध्याजी में घर घर में मंगल के साज सहित समाज बधावा होता है । और सगुन सोहावने होते हैं। सब आनन्द से अपने काज करते हैं ॥ १ ॥ पुर के नर-नारी अपने काज की रचना अनेक सँवार कर सजते हैं। घर घर, प्रति आँगन, प्रति अटारियों पर, बाज़ारों में, गलियों में सुन्दर चौकें बहुत विधि से बनी हैं ॥ २ ॥ चँवर, पताका, चँदोवा, बन्दनवार, सुवर्ण के कलश, मणि दीपों की पाँति गलियों में, घरों में बनी हैं। ऐसी पुरी सुखसुकृत-शोभामयी। उसे विधि की सुन्दरि मति सोई जननी मानो जनी अर्थात् उत्पन्न की है ॥ ३ ॥ अब आकाश की शोभा कहकर पुर में मिलावेंगे। चैत-चतुर्दशी को निर्मल उदय होने से चाँदनी शोभित है । रेणु-धूममेघ-तमरहित आकाश में उडुगण नक्षत्रों की पाँति लसी शोभित है। इससे आज दशदिशाओं में आनन्द उमँगता है ॥ ४ ॥

छं०—आनन्द उमँगत आजु बिबुध बिमान बिपुल बनाइकै ।
गावत बजावत नटत हरषत सुमन बरषत आइकै ॥ ५ ॥
नर निरखि नभ सुर पेखि पुरछबि परसपर सचुपाइकै ।
रघुराज-राज सराहि लोचन-लाहु लेत अघाइकै ॥ ६ ॥
जागिये राम छठी सजनी री रजनी रुचिर निहारि ।
मंगलमोद मढ़ी मूरति जहँ नृप के बालक चारि ॥ ७ ॥

आज कौन आनन्द उमँगता है । विबुध देवता । विमान समूह बनाकर उन पर सवार अवध के देखने को आये । देख हरषते हैं, इससे नाचते-गाते-बजाते फूल बरसाते हैं यह उमंग है ॥ ५ ॥ अब

पुर की और आकाश की शोभा एक में दिखाते हैं। नर आकाश देख और देवता पुर की शोभा देख परस्पर आनन्द पाकर रघुराज के राज्य की प्रशंसा करके लोचन नेत्रों का लाभ अघा कर लेते हैं॥ ६॥ पुरी और व्योम रात्रि की शोभा देख सखी से सखी कहती है—हे सजनी, आज रघुनन्दन की छठी है। उसकी रजनी रुचिर निहार कर जागिये। जहाँ मङ्गल-मोदरूपी मंदिर में नृप के चार बालक मूर्तिमान् हैं॥ ७॥

छं०—मूरति मनोहर चारि बिरचि बिरंचि परमारथमई।
अनुरूप भूपहि जानि पूजन जोग बिधि संकर दई॥ ८॥
तिनकी छठी मंजुलमठी जग सरस जिनकी सरसई।
किय नींद भामिनि जागरन अभिरामिनी जामिनि भई॥ ९॥
दो०—सेवक सजग भये समय साधन सचिव सुजान।
मुनिबर गुरु सिखये लौकिक बैदिक बिबिध बिधान॥१०॥
छं०—बैदिक बिधान अनेक लौकिक आचरत मुनि जानिकै।
बलिदान पूजा मूलिका मुनि साधि राखी आनिकै॥११॥

विरंचि जो ब्रह्मा, सो चार मूर्तियाँ मनोहर परमार्थ-मयी विरचकर तिनके पूजने को अनुरूप श्रीदशरथ महाराज को जान विधि और शंकर ने मिलकर दिया है। सृष्टि द्वारा विधि को देना। "जो सरूप बस सिव-मन माहीं" इससे संकर को देना॥ ८॥ मंजुल मठी मन्दिर में तिनकी छठी है, जिनकी सर-सता से जगत् सरस है। वे नींद किये हैं और भामिनी जागरण करती हैं, इससे यामिनी रात्रि सो अभिरामिनी आनन्ददायक हुई। इसमें अभिप्राय यह है कि जगत् की उत्पत्ति, पालन व नाश-कर्त्ता परब्रह्म भक्तों के लिये बालक हुए। प्रमाण शिवसंहितायाम

उद्भवे प्रलये हेतूरामएव इतिश्रुतिः ॥६॥ समय के साधनेवाले सेवक और सुजन सचिव, ते सब सजग भये। मुनिवर जो गुरु वशिष्ठ हैं, उन्होंने लौकिक वैदिक विधान विविध प्रकार के सिखाये॥ १० ॥ वैदिक विधान मुनि से सुनकर लौकिक विधान अनेक प्रकार के जानकर उनको आचरत पूजते हैं। लौकिक विधान में छठी में स्त्री जरानाम की राक्षसी, जिसने जरासन्ध को जोड़ दिया। भागवत में इसकी कथा है। उसकी पूजा। भीत में हलदी चौरीठे से चित्र मन्दिर बनाते हैं, उसके बीच जरा राक्षसी की मूर्त्ति बनाते हैं। उसकी पूजा के हेतु छः कलश रखते हैं। उनमें बीरा बतासा द्रव्य रख दीपक बाल जल, अक्षत, सेंदुर, हलदी, घी, मिठाई से पूजते हैं। माता बालक को लेकर बैठती है। इसका छठी नाम प्रसिद्ध है। पुतला रखना, दीपक बालना, काजल देना, झालर बाँधना इत्यादि लौकिक कार्य हुए। अथ वैदिक प्रमाण षष्ठि विधाने प्रथम पार्वती की पूजा। श्लोक—आदौ स्वस्त्ययनं कृत्वा गौर्यास्संपूजनं पुनः ॥ पीछे स्वामिकार्त्तिक की पूजा। गौर्याः पुत्रो यथा स्कन्दः शिशुसंरक्षिता पुरा। तथा ममाप्ययम्बालो रक्षतां षष्ठये नमः ॥ इत्यादि वैदिक। तिनकी पूजाहेतु बलिदान कुम्हड़ा की बतिया आदि का। मूलिका मणि नवग्रह की। यथा रवि के मदार; मोती चन्द्रमा के; पलाश, विद्रुम, भौम के; खैर, पन्ना बुध के; चिर्चिरा, पुखराज गुरु के; पीपल, हीरा शुक्र के; गूलर नीलक शनि के; शमी, लहसुनिया राहु के; दूब, फ़ीरोज़ा, केतु के; कुश, श्याममणि मूलिका मणि आदि लाकर साध रक्खी ॥ ११ ॥

जे देव देवी इष्ट निज हित लागि चित सनमानिकै।
ते जन्त्र-मन्त्र सिखाइ राखत सबन सों पहिचानिकै ॥१२॥

दो०—सकल सुवासिनि गुरुजनन पुरजन पाहुन लोग ।
विबुधविलासिनि सुरमुनी जाचक जो जेहि जोग ॥१३॥
छं०—जेहि जोग जे तेहि भाँति ते पहिराय परिपूरन किये ।
जय कहत देत असीस तुलसीदास ज्यों हुलसत हिये ॥१४॥
ज्यों आजु काल्हिहु परहुँ जाग्रत होहिंगे नेवते दिये ।
ते धन्य पुन्य पयोधि जो तेहि समय सुखजीवन जिये ॥१५॥

षट्मुख आदि देवता, पार्वती आदि देवी, तिनको अपने हित के लिये चित्त से सन्मान करके पूजते हैं। वे देव-देवी पूजने-वालों से प्रथम ही पहचान करके अपने यन्त्र-मन्त्र तथा षोडशोपचार पूजा सिखा रखते हैं। इससे इस समय का पूजा पाना हमारा अहोभाग्य है। कदाचित् प्रेमवश विधिपूर्वक भूल न जायँ। यन्त्र-मन्त्र तन्त्रसार में प्रसिद्ध हैं॥ १२॥ सकल सुवासिनी उत्तम कुल की अहवाती स्त्री, गुरुजन अपने से ऊँचे पदवाले, पुर-जन सामान्य नगरवासी, नेहवाले, पाहुने सम्बन्धी लोग। विबुध-विलासिनी देवस्त्री। सुर देवता। मुनि वशिष्ठादि। याचक सूत बन्दी मागध आदि॥ १३॥ जो जिस लायक है उसे उसी भाँति का पहि-रावा (पोशाक) देकर परिपूर्ण किया। ते जयजयकार करते आशीश देते भये। सबके हृदय में कैसा हुलास है, जैसे तुलसी-दास का हृदय हुलसता है॥ १४॥ ज्यों आज कौशल्यानन्दन की छठी, त्यों कल कैकेयीनन्दन की तथा परसों सुमित्रापुत्रों की छठी जागरण तीन दिन होय, ऐसे कहकर जिन्हें नेवता दिया ते पुण्य के पयोधि धन्य हैं, जो उस समय के सुख-जीवन में, जिये अथवा जो उस समय में रहे॥ १५॥

दो०—भूपतिभागावली सुर-नर-नागादि सिहाहिं ।

तिय बरबेष अली बनी सम्पति सिद्धि कमाहिं ॥ १६ ॥
छं०—अनिमादि-सारद-सैलनन्दिनि बाल लालहि पालहीं।
भरि जन्म जे पायो न ते परितोष उमा-रमा लही ॥ १७ ॥
निज लोग बिसरे लोकपति घर कीन चरचा चालही।
तुलसी तपत तिहुँ ताप जग जनु प्रभु छठी छाया लही ॥१८॥

भूप की भागावली की त्रिलोक में प्रशंसा होती है। सब सिहाते हैं। सम्पत्ति लक्ष्मी। वर स्त्री-वेष से। अणिमादि सिद्धि अलिवेष से। कमात परिचर्या करती हैं ॥ १६ ॥ अणिमादि सिद्धियाँ शारदा पार्वती बालरूप प्रभु का लालन-पालन करती हैं। जो सुख जन्म भर न पाया, सो बालरूप श्रीरघुनन्दन को खिलाकर बालभाव का परितोष उमा रमा को प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ इन्द्रादिक को अपना लोक ऐसा भूला कि घर की चर्चा तक नहीं करते हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि जगत् तीन ताप में तपता है। प्रभु की छठी मानों छाया पाई है। इससे सब सुख है ॥ १८ ॥

राग जैतश्री

बाजत अवध गहगहे आनंद बधाये।
नामकरन के रघुबरन के नृप सुदिन सोधाये ॥ १ ॥
पाय रजाय सुराय को ऋषिराज बोलाये,
शिष्य सचिव सेवक सखा सादर सिर नाये ॥ २ ॥
साधु सुमति समरथ सबै सानंद सिधाये।
जल दल फल मनि मूलिका कुलकाज लिखाये ॥ ३ ॥
गनप गौरि हर पूजिकै गोवृन्द दुहाये।
घर घर मुद मंगल महा गुनगान सुहाये ॥ ४ ॥

आज अवध में आनन्द बधावे गहगहे ललिताई से बजते हैं। चारो राजकुमारों के नामकरण के अर्थ नृप सुदिन शोधाये हैं ॥ १ ॥ श्रीदशरथ महाराज की आज्ञा पाकर ऋषिराज वशिष्ठ जी ने बुलाया। उसे सुनकर ऋषि के शिष्य, सेवक सब, और महाराज के सचिव, सेवक, सखा आदि ने आदर से आकर माथ नवाया ॥ २ ॥ शिष्य, सेवक सब साधु हैं। सचिव सुमति हैं। सखा समर्थ हैं, तिनको आनन्द हुआ। वशिष्ठजी ने सामग्री लाने को जलतीर्थादि, दल-तुलसी, आम्र, बिल्व, दूर्वादि, पान। मणि—मुक्ता, विद्रुम, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम, लहसुनिया, श्याममणि। मूलिका—नवग्रह की क्रम से लजारू, कूट, बरियारा, ककूदन, मोथा, सरसों, दारुहरदी, सरफोंका, लोध अथवा सातो ओषधियाँ आसपदी आदि फल—नारियल, सुपारी आदि लाने को लिखाया ॥ ३ ॥ प्रथम आरम्भ में मंगल के अर्थ गणेश, गौरी, शिव पूजे। पुनः पंचामृत पंचगव्य के हेतु गौओं के वृन्द दुहाये। सो उत्सव सुन पुर में घर घर मुदमंगल सगुन के गान सुन्दर होते हैं ॥ ४ ॥

तुरत मुदित जहँ तहँ चले मन के भय भाये।
सुरपति सासन घन मनौ मारुत मिलि धाये ॥ ५ ॥
गृह आँगन चौहट गली बाजार बनाये।
कलस चमर तोरन ध्वजा सुवितान तनाये ॥ ६ ॥
चित्र चारु चौकैं रचीं लिखि नाम जनाये।
भरि भरि सरवर वापिका अरगजा सनाये ॥ ७ ॥
नर नारी पल चारि में सब साज सजाये।
दसरथपुर छबि आपनी सुरनगर लजाये ॥ ८ ॥

मनभावना भया, इससे कार्य करनेवाले तुरत ही आनन्द से जहाँ तहाँ को चले। ऐसी शीघ्रता से, मानो इन्द्र की आज्ञा से पवन से मिलकर मेघ धाये॥ ५॥ बाज़ार, गली, चौहट्टा सुन्दर बनाये। गृह के आँगन लिपवाये। उसमें सोने के कलश धरे। चमर और बन्दनवार बँधाये। ध्वजा रोपीं। चँदोवा ताने॥ ६॥ चित्र-विचित्र चारु चौकें रचीं तिनमें नाम लिख जनाया कि यह चौक कौशल्यानन्दन की है, यह कैकेयीनन्दन की है, यह सुमित्रासुतों की है। सर तड़ाग। वर श्रेष्ठ। वापिका बावली। तिनमें केसर, कपूर, चन्दन आदि का अरगजा भराया॥ ७॥ जो कार्य वशिष्ठजी ने कहे, सो सब चारि पल कहे थोड़े ही समय में नर-नारियों ने सब साज सज दिया। इससे पुर की शोभा देखकर सुरनगर लजाता है॥ ८॥

बिबुध बिमान बनाइकै आनंदित आये।
हरष सुमन बरषन लगे गये धन जनु पाये॥ ९॥
बरे बिप्र हू बेद के रघुकुलगुरु ज्ञानी।
आपु बसिष्ठ अथर्बनी महिमा जग जानी॥ १०॥
लोकरीति बिधि बेद की करि कह्यौ सुबानी।
सिसु समेत बेगि बोलिये कौसल्या रानी॥ ११॥
सुनत सुबासिनि लै चलीं गावत बड़भागी।
उमा-रमा-सारदा-सची देखि सुनि अनुरागी॥ १२॥

सुरनगर के लजाने का कारण यह है कि विबुध जो देवता हैं, सो विमान बनाकर आनन्द से अपनी पुरी छोड़ यहाँ को चले आये, इससे वे शोभारहित अपने को मानकर लजाते हैं। हर्षसहित देवता फूल बरसाते हैं, मानो गया हुआ धन पाया। रावण

का भय करके ऐश्वर्य जाता रहा था, सो अब प्रभु की कृपा से पावेंगे, इसी से कहा मानो गये धन पाये ॥ ६ ॥ मंगल कार्य में चार वेदों के आचार्य चारो दिशाओं में बैठाए । वे अपने अपने वेद के मन्त्र उच्चारण करते हैं। इसके लिये रघुकुल के गुरु ज्ञानी वशिष्ठजी ने और भी ब्राह्मणों का वरण किया । और पुरोहिती कार्य के लिये वशिष्ठजी आप ही अथर्वणी हैं । तिनकी महिमा जगत् जानता है ॥ १० ॥ उन वशिष्ठजी ने वेद की विधि करके लोकरीति करने को कहा । वेदविधि यथा नामकरणविधाने—अभ्युदयकादि कृत्वा नान्दीमुखप्रतिज्ञावरणसंकल्पस्वस्त्ययनशान्तिगणेशवरुणगौरीपू-- जनं चतुर्दशमातृपूजनं ब्राह्मणान् भोजयेत् घृतेन हवनं कुर्यात् अश्वत्थपत्रे नाम लिखित्वा पूजनं इत्यादि । लोकरीति यथा बालक को स्नान कराकर नवीन वस्त्र पहनाकर उसकी माता उसे गोद में लेकर चौक पर पूर्वमुख बैठती है और बालक का नाम पीपल के पत्ते पर लिख पूजन कर वह नाम बालक के कान में सुना देती है तीन बार । विप्र का शर्मान्त, क्षत्रिय का वर्मान्त, वैश्य का गुप्तान्त, शूद्र का दासान्त नाम होता है । लोकरीति करने को वशिष्ठजी ने मधुर वाणी से कहा कि शिशु सहित कौशल्या रानी को शीघ्र चौक पर बुलाओ ॥ ११ ॥ सो सुन बड़भागिनी सुवासिनी गाती हुई उन्हें ले चलती हुई । सो समाज देख, गान सुन उमा, रमा इंद्राणी अनुरागती भईं ॥ १२ ॥

निज रुचि बेष बिरंचि के हिलमिल सँग लागी ।
तेहि अवसर तिहुँ लोक की सुदसा जनु जागी ॥ १३ ॥
चारु चौक बैठत भईं भूपभामिनि सोहैं ।
गोद मोद मूरति लिये सुकृतीजन जोहैं ॥ १४ ॥
सुख सुखमा कौतुक कला देखि सुनि मुनि मोहै ।

सो समाज कह बरनिकै ऐसो कबि को है ॥ १५ ॥
लगे पढ़न रच्छा ऋचा ऋषिराज बिराजे ।
गगन सुमन झरि जयजय बहु बाजन बाजे ॥ १६ ॥

ते उमा आदि अपनी रुचि के अनुरूप वेष रच हिलमिल कर स्नेहपूर्वक साथ चलीं। आगे त्रैलोक्य में रावण के भय से मानो संकटा दशा रही, सो व्यतीत हुई। जिस अवसर में रघुनाथजी आँगन को निकले, उस अवसर में आज तीनो लोक की सुदशा मंगल दशा जगी, इससे मंगल की दशा उदय हुई। प्रमाण जातके—मंगला सकलमंगलोदया ॥ १३ ॥ भूपभामिनी कौशल्या आदि सुन्दरी चौक पर बैठी शोभित हैं। गोद में आनन्द की मूर्ति लिये जिनको सुकृतीजन जोहत हैं ॥ १४ ॥ उस समय का सुख शोभा कौतुक की कला को देख सुन मुनियों के मन मोह जाते हैं। उस समाज को कौन कवि है, जो उपमा देकर वर्णन करे ॥ १५ ॥ ऋषिराज वशिष्ठजी रक्षाऋचा पढ़ने लगे। प्रमाणं नामकरणविधाने। यथा—ओम् अंगांगादभिजातोऽसि हृदयादभिजायसे। आत्मा वै पुत्रनामासि त्वं जीव शरदांशतम् ॥ विराजे शोभित हैं। गगन से देवता जय जयकार करके फूल बरसाते हैं। बहुत प्रकार के बाजे बजने लगे ॥ १६ ॥

भये अमंगल लंक में सक संकट गाजे ।
भुवन चारिदस के बड़े दुख दारिद भाजे ॥ १७ ॥
बाल बिलोकि अथर्वनी हँसि हरहि जनायो ।
सुभ को सुभ मोद मोद को राम नाम सुनायो ॥ १८ ॥
आलबाल कल कौसल्या दलबरन सुहाये ।
कन्द सकल आनन्द को जनु अंकुर आये ॥ १९ ॥

जोहि जानि जपि जोरि कै कर पुट सिर राखे ।
जयजयजय करुनानिधे सादर सुर भाखे ॥ २० ॥

सक शंका । संकट संकटादशा । गाजे गरजे । इससे लंका में अमंगल होने लगे । जो चौदह भुवन के दुःखदारिद्र्य भागे, उन्होंने लंका में निवास किया ॥ १७ ॥ बालरूप प्रभु को देख अथर्वणी वशिष्ठजी ने हर शिवजी से हँस के जनाया कि जो रूप तुम अपने मन में गुप्त रखते थे, सोई रूप आज जगत् में प्रसिद्ध है, और जो नाम गुप्त जपते थे, सोई इनका नाम सब जगत् आज से प्रसिद्ध जानेगा । हँसे इससे कि भक्त ऐसे होते हैं । शुभकर्त्ता भक्ति, उसका शुभकर्त्ता रामनाम । मोदकर्त्ता ज्ञान, उसका मोदकर्त्ता रामनाम । सोई रामनाम सुनाया, प्रसिद्ध किया । अथवा पीपल के पत्ते पर लिख उसकी पूजा करके सो बालक के कान में सुनाया । प्रमाणं नामकरणविधाने—अश्वत्थपत्रैर्नाम लिखित्वा पूजनं पाद्मे स्वदक्षिणकर्णे अमुकवर्माऽसीतित्रिबारं श्रावयति । माता बालक को चौक में लेकर पूर्वमुख बैठे, आचार्य तीन बार बालक के कान में नाम सुनावे ॥ १८ ॥ प्रथम जन्मसमय कल्याणकन्द कहकर मूल सूचित किया । अब नामकरण में उसका अंकुरित होना कहते हैं । आलबाल थाल्हा कौशल्याजी हैं । अंक में बालरूप सोई अंकुर हैं । रामनाम के दो वर्ण नामकरण में प्रकट होना, सोई दो दल हैं । प्रभु को प्रसिद्ध देखना ही मानो सब आनन्द का कन्द अंकुर आया है ॥ १९ ॥ शंकर को वशिष्ठजी ने जो जनाया, सो सुन । जोहि देखकर जानकर । जो नाम सुना सो जोरि मिलाकर कि जो हमारे मन में है, सोई रूप है, जो हम जपते हैं, सोई नाम है, यह जानकर करपुट हाथ जोड़ माथे धर नमस्कार करके । हे करुणानिधे, जय हो जय हो ऐसा आदर से सुरों सहित शिवजी ने कहा ॥ २० ॥

सत्यसंध साँचे सदा जे आखर आखे ।
प्रनतपाल पाले सही जे फल अभिलाखे ॥ २१ ॥
भूमिदेव देव देखिकै नरदेव सुखारी ।
बोलि सचिव सेवक सखा पटधारी भंडारी ॥ २२ ॥
देहु जाय जे चाहिये सनमान सँभारी ।
लगे देन हिय हरषिकै हेरि हेरि हँकारी ॥ २३ ॥
रामनिछावरि लेन को हठि होत भिखारी ।
बहुरि देत तेहि देखिये मानहुँ धनधारी ॥ २४ ॥
भरत लखन रिपुदलन हू धरे नाम बिचारी ।
फलदायक फल चारि के दसरथसुत चारी ॥ २५ ॥
भये भूपबालकन के नाम निरूपम नीके ।
गये सोच संकट मिटे तब ते पुरती के ॥ २६ ॥
सफल मनोरथ विधि किये सब विधि सब ही के ।
सब ह्वैहै गाये सुने सबके तुलसी के ॥ २७ ॥

जे आखर आखे ते साँचे हैं, इससे सत्यसंध सदा हो । कौन आखर आखे ? नृप ने तनय होने का वर माँगा था । सोई आकर आप प्रकट हुए । जो कहा सो किया । मनु महाराज ने "चाहत तुमहिं समान सुत" कहकर जो फल अभिलाषे, वही पाये । इससे आप प्रणतपाल हो ॥ २१ ॥ भूमिदेव वशिष्ठजी के और देवतों के वचन सुन नरदेव श्रीदशरथ महाराज को पूर्वजन्म की सुध आई । उससे सुखी होने के कारण उन्होंने दान देने की इच्छा की । सचिव, सेवक, सखा,

पटधारी वसनशाला के अधिकारी, भंडारी ख़ज़ाञ्ची आदि बुलाये ॥ २२ ॥ सबको आज्ञा दी कि जिसे जो रुचे, उसे वही दो। वे आदर से सँभाल करके हृदय में हर्ष सहित देने लगे। हेरि देख हँकारी बुलाकर ॥ २३ ॥ देवता प्रभु की निछावर हठ करके लेते हैं। मानो भिखारी हैं। तिनहीं को पीछे दान देते देखो। मानो धनधारी कुबेर हैं ॥ २४ ॥ जैसे रामनाम रक्खा, वैसे भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न नाम विचार कर धरे। श्रीदशरथ महाराज के जो चार पुत्र हैं वे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष आदि चारि फल हैं। उनके भी फलदायक हैं ॥ २५ ॥ जब तक बरहाँ नहीं होता, तब तक सूतिकागृह में अनेक प्रकार का भय रहता है। इसी से स्त्रियों को शोच संकट रहा, सो जब भूप-बालकों के नाम अनूप भये, नीके निर्विघ्न बरहाँ पार हुआ, तब पुर की स्त्रियों के शोच गये, उससे संकट मिटे ॥ २६ ॥ तब सब विधि के मनोरथ विधाता ने सफल किये। सोई चरित्र गाये-सुने। अब भी सबके और तुलसी के मनोरथ सफल होंगे ॥ २७ ॥

राग बिलावल।

सुभग सेज सोहत कौसल्या रुचिर राम सिसु गोद लिये।
बारबार बिधुबदन बिलोकत लोचन चारु चकोर किये ॥ १ ॥
कबहुँ पौढ़ि पयपान करावत कबहुँक राखत लाइ हिये।
बालकेलि गावत हलरावत पुलकित प्रेमपियूष पिये ॥ २ ॥
बिधि महेस मुनि सुर सिहात सब देखत अंबुद ओट दिये।
तुलसिदास ऐसो सुख रघुपति पै काहू पायौ न बिये ॥ ३ ॥

बालकेलि वर्णन करते हैं। मणिमय प्रकाशमान मंदिर में क्षीरफेन-सम कोमल सुन्दर सेज पर विराजमान कौशल्याजी सुन्दर

बालरूप रघुनाथजी को गोद में लिये अपने नेत्र-चकोर किये प्रभु का मुखचन्द्र बारबार देखती हैं ॥ १ ॥ कभी लेटकर के दूध पिलाती हैं; कभी हृदय में लगा रखती हैं; कभी पुलकांग हो प्रेम-अमृत पिये, हाथ पर बालकेलि गाकर हलराती हैं ॥ २ ॥ ब्रह्मा, शिव। मुनि नारदादि। सुर इन्द्रादि। मेघों की ओट देकर देखते हैं। सिहात ललचाते हैं। सम्मुख देखने से सुख न रहेगा, इससे बादल की ओट से देखते हैं। श्रीतुलसीदास कहते हैं कि जो सुख कौशल्या रानी को है, ऐसा सुख रघुपति से काहू बियो किसी दूसरे ने नहीं पाया ॥ ३ ॥

राग सोरठ।

ह्वैहौ लाल कबहिं बड़े बलि मैया।
राम लखन भाय ते भरत रिपुदवन चारु चारौ भैया ॥ १ ॥
बालबिभूषन बसन मनोहर अंगन बिरचि बनैहौं।
सोभा निरखि निछावरि करि उर लाइ वारने जैहौं ॥ २ ॥
छगनमगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुकि ठुमुकि कब धैहौ।
कलबल बचन तोतरे मंजुल कहि मा मोहिं बोलैहौ ॥ ३ ॥
पुरजन सचिव रावरानी सब सेवक सखा सहेली।
लेहैं लोचन लाहु सफल लखि ललित मनोरथबेली ॥ ४ ॥
जा सुख की लालसा लटू सिव सुक सनकादि उदासी।
तुलसी तेहि सुखसिन्धु कौसिला मगन पै प्रेमपियासी ॥ ५ ॥

मैया बलि जाय, हे लाल, कब बड़े होओगे। राम लक्ष्मण के मन में भावते, भरत शत्रुघ्न के मनभावते। सो सुन्दर चारों भैया कब बड़े होओगे ॥ १ ॥ नूपुर, करधनी, कठुला, पहुँची

कड़ा, अङ्गद इत्यादि बाल-विभूषण। भँगुली, टोपी आदि बसन ते अंग अंग में विरच कर बनाऊँगी। अंग में उबटन, नेत्रों में अंजन, कपोल पर कपोल-पत्र, भाल में तिलक-डिठौना, शीश में बाल गुहकर सोने की किरन की लटकनी आदि बनाकर उसकी शोभा देख निछावर कर उर में लगाकर मैं निछावर हो जाऊँगी॥ २॥ पैरों से दौड़, हाथ से खेलौना ले, कान से सुन, नेत्रों से देख, मुखसे बोल रसनासे मीठी चीज़ खाकर इति। यों छः अँगों से मगन हो कब आँगन में खेलोगे और मुझको मिलकर कब ठुमक ठुमककर भागोगे? कल सुनने में मधुर। बल बुद्धि में बलिष्ठ। उसे कलबल कहिए। वे तोतरे शब्द में होते हैं। उन तोतरे मंजुल वचनों से मुझको कब मा कहकर बुलाओगे। वचन तीन प्रकार के होते हैं—प्रथम बावले, जो आकार आदि स्वर बकार अक्षर उच्चारण होते हैं, उनका अर्थ भाव से जान पड़ता है। जिनको बोलनेवाला बावला कहाता है। दूसरे तोतरे वचन हैं, जो तवर्ग के तले के वर्गों के अक्षर उच्चारण होते हैं। तवर्ग के ऊपर तीन वर्ग के अक्षरों का तवर्ग से बोध होता है। यथा कूकुर को तूतुर, चलौ को तलौ, टूट को तूत इत्यादि। इन्हें बोलनेवाला तोतला कहलाता है। ये वचन सुनने में कल, अर्थबूझने में बल चाहिये। तीसरे चातुरे वचन हैं जो चवर्गादि सब वर्ण शुद्ध उच्चारण से होते हैं। यथा गणेश आदि। सुनते ही अर्थ जिनका समझ पड़े, उसका बोलनेवाला चतुर कहिए॥ ३॥ महाराज के सब सखा, सचिव, सेवक, रानियों की सहेली, वे सब मनोरथ-बेली फलित देखि कब लोचन को लाहु लेहैं॥ ४॥ जिस सुख पर शिवजी लटू कहे आसक्त हैं, जिस सुख पर शुक-सनकादि जगत् से उदास रहते हैं, गोसाईं जी कहते हैं; उसी सुखसिन्धु में कौशल्या मगन हैं; पर प्रेम की प्यासी हैं। आनन्द मगन। ज्ञानदेश। उसका त्याग प्रेम भक्तिदेश।

उससे ग्रहण प्रेम की विह्वल दृष्टि से लालन-पालन की पियास भक्ति प्रेम के आगे ज्ञानानन्द तुच्छ। प्रमाण भागवते—श्रेयः-श्रुतिम्भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये । तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥ ५ ॥

पगन कब चलिहौ चारौ भैया ।

प्रेम पुलकि उर लाइ सुवन सब कहत सुमित्रा मैया ॥ १ ॥
सुन्दर तन सिसु बसन बिभूषननखसिख निरखि निकैया।
दलि तृन प्रान निछावरि करि करि लेहैं मातु बलैया ॥ २ ॥
किलकनि नटनि चलनि चितवनि भजि मिलनि मनोहर तैया ।
मनिखम्भन प्रतिबिम्बझलक छवि छलकहि भरि अँगनैया॥ ३ ॥
बालबिनोद मोद मंजुल बिधु लीला ललित जोन्हैया।
भूपति पुन्यपयोधि उमँगि पुर घर घर अनँदबधैया ॥ ४ ॥
ह्वैहैं सकल सुकृत-सुख-भाजन लोयन-लाहु लुटैया ।
अनायास पाइहैं जन्मफल तोतरे बचन सुनैया ॥ ५ ॥
भरत राम रिपुदवन लखन के चरित-सरित-अन्हवैया ।
तुलसी तब कस अजहुँ जानिबे रघुबर नगर बसैया ॥ ६ ॥

सुमित्रा मैया सब पुत्रों को उर में लगाकर प्रेम से पुलक कर कहती हैं कि चारो भैया कब अपने पैरों चलोगे ॥ १ ॥ सुन्दर तनु में बाल अवस्था के वसन भूषण। नख शिख लौं निकैया शोभा निरख तृण तोड़कर माता सब बलैया लेंगी ॥ २ ॥ किलकना, नाचना, चलना, भागकर मिलना इत्यादि बाल-केलि की मनोहर छवि का प्रतिबिम्ब मणिखंभों में पड़ा । उसकी छवि की झलक अँगनाई भर के छलक जाती है, आकाश आदि सब

दिशाओं को ॥ ३ ॥ चारो भाइयों के बालचरित का मोद, सोई मंजुल उज्ज्वल विधु पूर्ण चन्द्रमा है। पूर्ण चन्द्र देख समुद्र उमँग कर कोलाहल करता है ; यहाँ पुण्य के पयोधि भूपति उमँगेंगे। घर घर में आनन्द-बधाई बजेगी, सोई कोलाहल है। चन्द्र में चाँदनी होती है। यहाँ लीला सोई जोन्हैया चाँदनी है ॥ ४ ॥ जो लोचन-लाभ के लूटनेवाले जनकपुरवासी आदि हैं, जिन्होंने बालचरित के तोतरे वचन नहीं सुने. वे किशोर अवस्था की छबि का लोचनों से लाभ लूटें। यथा "राज समाज भूरि भागी जिन लोयन लाहु लहे।" इकट्ठे ही वे सकल सुकृत के भाजन होंगे। यथा—"हम सब धन्य सुकृत सुखरासी। भये जग जनमि जनक पुर-वासी ॥" अरु जो तोतरे वचन के सुनैया अवधवासी हैं वे अनायास विना परिश्रम जन्म का फल पावेंगे, सुकृतार्थ होवेंगे। यथा अवध-वासी सब नरनारी कृतार्थ-रूप ॥ ५ ॥ यहाँ माधुर्यलीला का वर्णन है। उसका सिद्धान्त है माधुरी छवि प्रभु के अवलोकन से जीव कृतार्थ होता है। लीला-श्रवण आदि साधनों से माधुरी सिद्धि की प्राप्ति होती है। उसके अर्थ तुलसीदासजी कहते हैं, जो राम भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न चारो भाइयों के चरित्ररूपी सरिता के अन्हवैया अर्थात् लीला-श्रवण में मग्न हैं, वे। जैसे तब के चरित के देखनेवाले अवधवासी कृतार्थ रहे, वैसे अब के लीला के श्रवण करनेवाले अवध-वासी भी जानना चाहिये। इसी से रघुबर-नगर-बसैया कहे ॥ ६ ॥

राग केदार

चुपरि उबटि अन्हवाइकै नयन आँजे,
रचि रुचि तिलक गोरोचन को कियो है।
भ्रू पर अनूप मसिबिन्दु बारे बारे बार
बिलसत सीस पर हेरि हरै हियो है ॥ १ ॥

मोदभरे गोद लिये लालत सुमित्रा देखि
देव कहैं सबको सुकृत उपबियो है।
मातु पितु प्रिय परिजन पुरजन धन्य
पुञ्ज पुन्य पेखि पेखि प्रेमरस पियो है ॥ २ ॥
लोहित ललित लघु चरन कर कमल चारु
चाल चाहि सो छबि सुकबि जिय जियो है।
बालकेलि बातबस झलकि झलमलत
सोभा की दियटि मानो रूपदीप दियो है ॥ ३ ॥
राम सिसु सानुज चरितचारु गाइ सुनि
सुजनन सादर जनमलाहु लियो है।
तुलसी बिहाइ दसरथ दसचारि पुर
ऐसो सुखजोग बिधि बिरच्यो न बियो है ॥ ४ ॥

चार मास की अवस्था का वर्णन है। उबटन लगाकर, सुगंधित तेल चुपड़कर, स्नान कराके नेत्रों में अंजन दिया। माथे पर रुचिपूर्वक रचि कहे सँवारकर सुन्दर गोरोचन का तिलक किया। भ्रू नाम भौंह, उस पर अनूप मसि-बिंदु दिया, जिसको डिठौना कहते हैं। शीश पर बारे बारे याने छोटे कोमल सच्चिक्कन बाल बिलसते शोभित हैं। सो हेरि देखने से हृदय को हर लेते हैं॥ १॥ मोद आनन्द से भरी सुमित्राजी श्रीरघुनाथजी को गोद में लिये लालत अर्थात् दुलराती हैं। देखकर देवता कहते हैं कि सबका सुकृत उपबियो अर्थात् उदय हुआ है। वही कहते हैं—माता के, पिता के, प्रिय स्नेही परिवार के जन पुरवासी ते पुण्य के पुञ्ज धन्य हैं, जो प्रभु की माधुरी छबि पेखि

देखकर प्रेमरस नेत्र भर पान करते हैं ॥ २ ॥ लोहित लाल । ललित सुन्दर । लघु छोटे चरण हैं । हाथ कमल से । उनकी चाल डोलना । उसकी छवि देख सुकवि का जी जिया है। शोभा कहने को हर्ष हुआ, उससे उत्प्रेक्षा करते हैं । सुमित्रा जो हाथों पर लिये हैं, सोई मानो शोभा की दीवट है । प्रभु का रूप दीपक है। बाल-केलि, सोई वात नाम हवा है । उसके वश हो जो हाथ-पाँव डुलाते हैं, सोई मानो टेम लौ झलमलाकर झलकती है ॥ ३ ॥ सानुज भाइयों सहित । प्रभु का बालचरित सुजनों ने आदर से गा और सुनकर जन्म का लाभ लिया, कृतार्थ हुए । गोसाईंजी कहते हैं कि एक दशरथ को छोड़ चौदह भुवन में ऐसे सुख के योग्य ब्रह्मा ने दूसरे को नहीं रचा है ॥ ४ ॥

राम सिसु गोद महामोद भरे दसरथ
कौसिला हु ललकि लखन लाल लयो है ।
भरत सुमित्रा लये केकई सुवन सत्रुहन
प्रेम पुलक मगन मन भयो है ॥ १ ॥
मेढ़ी लटकनि मनिकनक रचित बाल
भूषन बनाइ आछे अंगअंग ठयो है ।
चाहि चुचकारि चूमि लालत लावत उर
तैसे फल पावत जैसे सुबीज बयो है ॥ २ ॥
घन ओट बिबुध बिलोकि बरसत फूल
अनुकूल बचन कहत नेह नयो है ।
ऐसे पितु मातु पूत पुर परिजन बिधि
जानियत आपु भरि एई निरमयो है ॥ ३ ॥

अजर अमर होहु करैं हरि हर छोहु
जरठ जठेरिन सुआसिर्बाद दयो है।
तुलसी सराहैं भाग तिनको जिनके हिये
डिम्भरामरूप अनुरागरंग रयो है॥ ४॥

श्रीदशरथ महाराज महामोदभरे गोद में रामलाल को लिए हैं। वैसे ही ललककर कौशल्याजी ने लषणलाल को लिया। सुमित्राजी ने भरतजी को, कैकयी ने शत्रुघ्नजी को लिया। चारों के तन में प्रेम पुलका, उसमें मन मगन हुआ॥ १॥ मेढ़ा दो चोटी दाहने बायें की, एक बीच की, तीनों चोटा गुहकर पीछे बाँधते हैं, उसको मेढ़ी कहते हैं सो कलाबत्तू से बाँध उसमें किरन के गुच्छों की लटकनी लगीं। मणिकनकजटित बाल अवस्था के भूषण कड़ा, पहुँटा, पहुँची, कठुला, बजरबटा, बघनहा, करधनी आदि अंग अंग में ठये पहनाये हैं। अच्छी तरह से चाह से चुचकार कर, चूमकर, लालत दुलारकर उर में लगाते हैं। वैसे फल पाते हैं, जैसे पूर्वजन्म में सुकृतरूपी बीज बोया था॥ २॥ घनओट देवता देखते और फूल वर्षि नेह नये होने की चाह से अनुकूल वचन कहते हैं कि पिता दशरथ से, माता कौशल्या सी, पुत्र राम से, पुरी अयोध्या सी। परिजन रामसम्बन्धी। ऐसा समाज विधाता ने जन्म भर में एक यही निर्माण किया है॥ ३॥ जेठे बड़ी उमर के स्त्री-पुरुष आशीर्वाद देते हैं कि अजर अमर होओ। हरि हर सदा छोह करें। यह माधुर्य दशा है। और ऐश्वर्य देश में ऐसा है कि अजर अमर तुम्हारा रूप सदा एक रस होते तुम होओ जिस रूप की छोह हरि हर करते हैं, बालरूप की उपासना करते हैं। प्रमाण महारामायणे शिववाक्यम्—अहं विधाता गरुड-ध्वजश्च रामस्य बाले समुपासकानाम्। अथवा जरठ मनु, जठेरी

शतरूपा। तिनको पूर्व ही आशीर्वाद दिया, उनसे प्रकट हुए। तुलसी उनकी भाग्य को सराहते हैं, जिनके हृदय डिंभ बालरूप के अनुराग-रंग में रँगे हैं ॥ ४ ॥

राग आसावरी

आजु अनरसे हैं भोर के पय पियत न नीके।
रहत न बैठे ठाढ़े पालने झुलावत हूँ रोवत राम मेरे सोच सबही के १
देव पितर ग्रह पूजिये तुला तौलिये घी के।
तदपि कबहुँक बहुँक सखि ऐसे ही आरत जब परत दृष्टि दुष्टती के २
बेगि बोलि कुलगुरु छुयो माथे हाथ अमी के।
सुनत आइ ऋषि कुस हरे नृसिंहमन्त्र पढ़ि जो सुमिरत भय भी के ३
जासु नाम बरबस सदा सिव पारबती के।
ताहि झरावत कौसल्या यह प्रीति की रीति हिय हुलसत तुलसी के ४

आज भोर ही से अनरस उदास हैं। नीके पय दूध नहीं पीते। न बैठे रहें, न खड़े रहें। पलना में झूलते हुए भी रोते हैं। सो सोच मेरे है और उससे सभी के सोच है ॥ १ ॥ देव, पितृ, ग्रह आदि नित्य पूजती और घृत का तुलादि दान रोगनिवारण के अर्थ करती हूँ। हे सखी, उस पर भी कभी-कभी ऐसे आरत मचलते हैं, जब कभी दुष्ट स्त्री की दृष्टि में पड़ते हैं ॥ २ ॥ कुल के गुरु वशिष्ठ जी को वेग बुलाओ। अमृतरूपी हाथ से छुवें। सो सुनते ही ऋषि ने आकर कुशहरे कहे कुश हाथ में ले हरे नरसिंह मंत्र से बाँधे। तंत्र-शास्त्रे यथा—ॐ नमो नृसिंहाय हिरण्यकशिपुवक्षस्थलविदारणाय त्रिभुवनव्यापकाय भूतप्रेतपिशाचशाकिनीडाकिनीकीलनोन्मूलना-

यस्तम्भोद्भव समस्तदोषान् हन हन शर शर चल चल कम्प कम्प मथ मथ हुं फट हुं फट ठंठः महारुद्रजापितस्वाहा। जिस के सुमिरते भीय जो भूतबाधा आदि उसे भी भय होता है ॥ ३ ॥ जासु जिन रघुनाथजी का नाम शिव-पार्वतीजी का सदा सर्व-साधन है। कूर्मपुराणे शिववाक्यम्—गोप्यं गोप्यतमं भद्रे सर्वस्वं जीवनं मम। रामनाम परं ब्रह्म कारणानां च कारणम् ॥ १ ॥ आदित्यपुराणे शिववाक्यम्—अहं जपामि देवेशि रामनामाक्षरद्वयम्। श्रीसीतायाः स्वरूपस्य ध्यानं कृत्वा हृदिस्थले ॥ २ ॥ केदारखण्डे शिववाक्यम्—रामनामसमं तत्त्वं नास्ति वेदान्तगोचरम्। यत्प्रसादात्परां सिद्धिं संप्राप्ता मुनयोमलाम् ॥ ३ ॥ ऐसे रघुनाथजी को माधुर्य में कौशल्याजी झराती हैं। यह प्रीति की रीति भक्तवत्सलता प्रभु की तुलसी के हृदय में हुलास कही आनन्द देती है ॥ ४ ॥

माथे हाथ ऋषि जब दियो राम किलकन लागे।
महिमा समुझि लीला बिलोकि गुरु सजलनयन तन पुलकि
रोम रोम जागे ॥ १ ॥
लियो गोद धाये गोद ते मोद मुनि मन अनुरागे।
निरखि मातु हर्षीं हिये आली ओट कहत मृदु वचन
प्रेम के से पागे ॥ २ ॥
तुम सुरतरु रघुवंश के देत अभिमत माँगे।
मेरे बिसेषि गति रावरी तुलसी प्रसाद जाके सकल
अमंगल भागे ॥ ३ ॥

वशिष्ठजी के माथे पर हाथ रखते ही प्रभु किलकने लगे। वशिष्ठजी ने पुरोहिती कर्म हमारी प्राप्ति के हेतु ग्रहण किया है, उसके सुफल

हेतु। यह कृतज्ञ ऐसा लभ्य गुण है। महिमा यथा शिवसंहितायाम्। अयोध्यापतिरेवस्यात्पतीनां पतिरीश्वरः। अन्येषां मथुरादीनां रामांशाः पतयो यतः॥ १॥ महेश्वरतन्त्रे शिववाक्यम्—वासुदेवादियद्रुपमवताराःप्रकीर्तिताः। तेषामैश्वर्यदातृत्वात् स्वयं पूर्णोत्तमोत्तमम्॥ २॥ इति रामो विग्रहवान् स्वयं ब्रह्मसनातनः। आत्मारामश्चिदानन्दो भक्तानुग्रहकारकः॥ ३॥ इति महिमा समझ वर्तमान लीला विलोक वशिष्ठजी के रोम-रोम में प्रेम जगा, नेत्रों में जल भर आया॥ १॥ चित्त उमँगि रोमांच होइ कण्ठ वचन रुकि जाय। विह्वल दृष्टि प्रेम की दृगन द्वार दरसाय। वशिष्ठजी का ऐसा प्रेम देख माता की गोद छोड़ प्रभु धाये। तब वशिष्ठजी ने गोद में ले लिया। इससे मोद में मन अनुरागे रँग गया। सो देख मातु हिय में हर्षी। इससे आली की ओट से अमृत के से पागे कोमल वचन कहती हैं॥ २॥ तुम रघुवंश के कल्पवृक्ष सदा हो। माँगे से वाञ्छित फल देते हो। फिर मेरे तो केवल रावरी कहे आप ही की गति है, सिवा आपके और दूसरा भरोसा नहीं। गोसाईंजी कहते हैं, क्योंकि कौशल्याजी कहती हैं, प्रसाद अर्थात् जिनकी कृपा से हमारे सकल अमंगल भाग गये॥ ३॥

अमियबिलोकनि करि कृपा मुनिवर जब जोये।
तब ते राम अरु भरत लखन रिपुदवन सुमुखि सखि सकल
तनय सुख सोये॥ १॥
लाइ सुमित्रा लिये हिये फनि मनि ज्यों गोये।
तुलसी निछावरि करत मातु अति प्रेममगन तन
सजल सुलोचन कोये॥ २॥
मातु सकल कुलगुरुबधू प्रिय सखी सुहाई।

सादर सब मंगल किये महि-मनि महेस पर
सुवन सुधेनु दुहाई ॥ ३ ॥
बोलि भूप भूसुर लिये अति बिनय बड़ाई।
पूजि पायँ सनमानि दान दिये लहि असीस मुनि
बरषें सुमन सुरसाई ॥ ४ ॥
घर घर पुर बाजन लगी आनन्द बधाई।
सुख सनेह तेहि समय को तुलसी जानै जाको चेरो
है चित चहुँ भाई ॥ ५ ॥

मुनिवर वशिष्ठजी ने कृपा करके अमृतरूपी दृष्टि से जब देखे, हे सखी, तब से श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न इत्यादि सब तनय सुख से सोये ॥ १ ॥ फणि सर्प जैसे मणि को गोय चुराकर रखता है, वैसेही सुमित्राजी बालकों को हृदय में लगाये हैं। गोसाईंजी कहते हैं—कौशल्याजी निछावर करती हैं, अत्यन्त प्रेम में मगन होने से नेत्रों के कोयों में जल भरा है ॥ २ ॥ प्रथम तीन पद जन्म के छोड़ बारह पद बारह महीनों के कहे हैं। पन्द्रहवाँ पद चैत्र में वर्षोत्सव का है। माता कौशल्यादि। कुलगुरुवधू अरुन्धती आदि। अपर जो प्रिय सखी हैं, वे सब आनन्द-मंगल करती भईं आदर से। महि पृथ्वी, सोई मणि। उसके महेश यानी पार्थिव-पूजा कराकर स्नान हेतु सबों ने सुधेनु कपिला आदि दुहाई। अथवा क्षीरेश्वर महादेव की पूजा के लिये सुधेनु दुहाई। महिम्न-स्तोत्र पढ़ दूध से स्नान कराया। अथवा मही के मणि, नाग, तिनके महेश नागेश्वर पर दूध चढ़ाने के हेतु सबों ने सुधेनु दुहाई ॥ ३ ॥ श्रीदशरथ महाराज ने ब्राह्मणों को बुलाकर, तिनको

अतिआदर से बिनती बड़ाई करके पैर पूज दान दे सन्मान करि अशीष लहे सो सुनि सुरसाई इन्द्र फूल वर्षे ॥ ४ ॥ आनन्द बधाई घर घर में बाजने लगी पुर में तासमय को सुख सोई जानै जाको चित्त चारो भाइन को चोरो है अथवा पुरबासिन को प्रभु पर जो सनेह ताको सुख ताही अवसर को तुलसी जानत जाको चित्त चारो भाइन को चेरो है ताते ॥ ५ ॥

राग धनाश्री

या सिसु के गुन नाम बड़ाई ।
को कहि सकै सुनौ नरपति श्रीपतिसमान प्रभुताई ॥ १ ॥
जद्यपि बुधि बय रूप सील गुन समय चारु चारौ भाई ।
तदपि लोकलोचनचकोरससि राम भक्त सुखदाई ॥ २ ॥
सुर नर मुनि करि अभय दनुज हति हरिहि धरनि गरुवाई ।
कीरति बिमल बिस्व-अघमोचन रही सकल जग छाई ॥ ३ ॥
याके चरनसरोज कपट तजि जे भजिहैं मन लाई ।
सो कुल जुगल सहित तरिहैं भव यह न कछू अधिकाई ॥ ४ ॥
सुनि गुरुबचन पुलकि तन दम्पति हर्ष न हृदय समाई ।
तुलसिदास अवलोकि मातुमुख प्रभु मन में मुसकाई ॥ ५ ॥

वशिष्ठजी कहते हैं कि यह शिशु कौशल्यानन्दन श्याम सुन्दर जो हैं उनके रूप के गुणनाम की बड़ाई अत्यन्त है। हे नरपति, उसको कौन कह सके। कदाचित् श्रीपति के तुल्य कहिये। पर तिनकी प्रभुताई समान कहे थोड़ी है इनके आगे। प्रमाण शिवसंहितायाम्—ब्रह्मकोटिश्च विष्णुश्च रुद्रकोटिशतानि च। सृष्टिस्थितिलयानांच कर्त्ता श्रीरघुनन्दनः ॥ १ ॥ सदाशिवसंहितायाम्—विष्णु-

कोटिप्रतीपालं ब्रह्मकोटित्रिसर्जनम्। रुद्रकोटिप्रमथनं मातृकोटि-विनाशनम् ॥ २ ॥ सर्वसौभाग्यनिलयं सर्वानन्दैकदायकम्। कौशल्यानन्दनं रामं केवलम्भवखण्डनम् ॥ ३ ॥ पुनः महारामायणे—धर्मादिरक्षणविधौ सुरपालनाय ये चासुरान्दलयितुं बहुशोवताराः। सर्वस्यकारणकला रघुनाथ एकोऽयोध्याधिनाथसुत एव परः परेशः ॥ ४ ॥ विनयपत्रिका यथा—"हरिहि हरिता विधिहि विधिता सिवहि सिवता जिन दई। सो जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगल-मई ॥" इत्यादि ॥ १ ॥ यद्यपि बुद्धि, अवस्था, रूप, शील से चारो भाई बराबर सुन्दर हैं, तथापि लोक के लोचन-चकोरों को रामचन्द्र पूर्ण सुखदायक भक्तों के सुख देनेवाले हैं ॥२॥ अब स्वरूप का गुण कहते हैं। सुर नर मुनियोंको अभयकारी है। दनुज रावणादि को मारकर पृथ्वी की गरुवाई भार हरा है। इनकी कीर्त्ति संसार के पाप छुड़ानेवाली है। निर्मल कीर्त्ति सब जग में छा रही है। यहाँ दनुज मारने में यह कहना चाहिये, सो नहीं कहा। इससे सुर नर मुनियों ते पृथ्वी का भार हरने सेदनुजों को मुक्ति-दान से कीर्त्ति कही। यहाँ सुर-मुनियों को अभयदान में करुणा दया गुण है। दनुज मारने में शौर्य गुण है। तिनको मुक्ति देने में करुणा गुणों से कीर्त्ति विशेष होतीहै। इस ग्रन्थ में कीर्त्ति ही का अधिकार है ॥ ३ ॥ अब नाम की बड़ाई करते हैं। याके यानी इनके पदकमल में मन लगाकर कपट छोड़ इनके नाम को भजो। भजनेवाला मातापक्ष, पितापक्ष, दोनों कुलों सहित भवसागर तरेगा। यह प्रभुता कुछ अधिक नहीं। नाम का प्रताप अनन्त है। प्रमाण विष्णुपुराणे ब्रह्मवाक्यम्—अहं च शंकरो विष्णुस्तथा सर्वे दिवौकसः। रामनामप्रभावेण संप्राप्ताः सिद्धिमुत्तमाम् ॥ १ ॥ भविष्योत्तरपुराणे नारायणवाक्यम्—भजस्व कमले नित्यं नाम सर्वेशपूजितम्। रामेति मधुरं साक्षान्ममांशं कीर्तयेदिति ॥ २ ॥ अग्निपुराणे शिववाक्यम्—न भयं यमदूतानां न भयं

रौरवादिकात्। न भयं प्रेतराज्यस्य श्रीमन्नामानुकीर्त्तनात् ॥ ३ ॥ इत्यादि ॥४॥ वशिष्ठजी के वचन सुन दम्पति, रानी व राजा दोनों का तन पुलककर प्रेम में मगन भया। हर्ष हृदय में नहीं समाता। गोसाईं-जी कहते हैं— प्रभु माता का मुख देख मन में मुसकाते हैं कि आज दैत्यवध से भूमिभार का उतारना सुन हर्षि हिय इसी को फिर दुःख मानेंगी, वनयात्रा आदि में ॥ ५ ॥

राग बिलावल

आज अवध आगमी यक आयो।
करतल निरखि कहत सब गुनगन बहुतन परचौ पायो ॥ १ ॥
बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो।
सँग सिसु सिष्य सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो ॥ २ ॥
पाँय पखारि पूजि दियो आसन असन बसन पहिरायो।
मेले चारु चरन चारौ सुत माथे हाथ दिवायो ॥ ३ ॥
नखसिख बालबिलोकि विप्रतनपुलकि नयन जल छायो।
लै लै गोद कमलकर निरखत उर प्रमोद न अमायो ॥ ४ ॥
जन्मप्रसंग कह्यो कौसिक मिस सियास्वयंबर गायो।
राम भरत रिपुदवन लखन को जय सुख सुजस सुनायो ॥ ५ ॥
तुलसिदास रनिवास रहसबस भयो सब के मनभायो।
सनमानो महिदेव असीसत सानँद सदन सिधायो ॥ ६ ॥

आज श्रीअयोध्याजी में एक आगम का कहनेवाला अर्थात् सामुद्रिकी आया है। सो करतल हाथ देखकर गुणगण, गुण और अवगुण, जो कुछ होता है, सो सब सच कह देता है। कैसे जाना? उसका परचौ (परिचय) बहुत जनों ने पाया है,

इससे सच है ॥ १ ॥ शङ्कर नाम का वह बूढ़ा ब्राह्मण प्रामाणिक है। छोटे लड़के सङ्ग में शिष्य हैं। गणेश, स्वामिकार्तिक, काकभुशुण्डि आदि। सो सुन श्रीकौशल्याजी ने भवन के भीतर बुलाया ॥ २ ॥ श्रीकौशल्याजी ने विप्रों के पाँव धो, आसन पर बैठा, भोजन करवा, नवीन वसन पहिराये। तब चारो पुत्रों को पाँव लगवा माथे पर हाथ दिवाया ॥ ३ ॥ नख से शिखा तक बालकरूप प्रभु को देख शङ्करजी का तन प्रेम से पुलक उठा। नेत्रों में जल भर आया, गोद में लेकर कर-कमल देखते ही, जो स्वरूप मन में, सो हाथ पर पाकर प्रमोद मन में नहीं अमाता, इसी से नेत्र जल से भर आये हैं ॥ ४ ॥ जन्मप्रसङ्ग। पूर्वजन्म की तपस्या से विश्वामित्र की यज्ञरक्षा के लिये जावेंगे, जनकपुर में स्वयंवर में धनुष तोड़ श्रीविदेहकन्या से विवाह करेंगे। यज्ञरक्षाहेतु अहल्या तारेंगे, धनुषभङ्ग करेंगे, लङ्का जीतेंगे इत्यादि जय रघुनाथजी की कहीं। प्रभु में प्रीति भक्ति का सुख भरतजी का कहा। मेघनाद-वध आदि सुयश लक्ष्मणजी का और अश्वमेध में जाते हुए यज्ञ का घोड़ा लाना सुयश शत्रुघ्नजी का कहा ॥ ५ ॥ गोसाईंजी कहते हैं कि सबके मन-भाया भया, इससे रनिवास ने आनन्दवश हो विप्र का सम्मान किया। आशीर्वाद देते शिवजी आनन्द-सहित अपने धाम को सिधाये ॥ ६ ॥

राग केदार

पौढ़िये लाल पालने हौं झुलावों।
कर पद मुख चख-कमल लसत लखि लोचन भ्रमर भुलावों ॥ १ ॥
बालबिनोद मोद मंजुल मनि किलकनि खानि खुलावों।
तेइ अनुराग ताग गुहिबे कहु मति मृगनयनि बुलावों ॥ २ ॥

तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराय फुलावौं।
चारु चरित रघुबर तेरेहि मिलि गाइ चरन चित लावौं ॥ ३ ॥

यहाँ बालकेलि में कौशल्याजी सहित गोसाईंजी की विलक्षण उक्ति है। उसे भाविकजन जानते हैं। चित्त, बुद्धि, अहंकार, मन, वचन कर्म से आसक्ति बरनी है। हे लाल, पलना पर पौढ़िये। हौं कहे मैं झुलावौं। यहाँ हाथ कर्म-इन्द्रियों में बली हैं, उन्हें झुलाने में लगा कर्म में आसक्त किया। हाथ, पाँव, मुख, चक्षु (नेत्र) इत्यादि कमल हैं। ते लसत शोभित देख उनमें लोचन भ्रमर बनाकर भुलाऊँ। यहाँ लोचन ज्ञान-इन्द्रियों में बली हैं, इससे लोचन द्वारा मन को भ्रमर करि भुलाया। मन चंचल है। इससे कर, पद, मुख, नेत्र आदि चार स्थानों में मन आसक्त किया ॥१॥ बालकेलि का आनन्द ही उज्ज्वल मंजुल मणि है। उसके प्रकट होने की किलकन खान है। उसे खुलाऊँ। खानसे मणि निकलाना। तिनके गुहने को अनुराग सोई डोरा है। उसे गुहनेवाली मति जो है बुद्धि, मृगनयनी सुन्दर बड़े हैं नेत्र जिसके, उसे बुलाऊँ गुहने को। यहाँ किलकन खान से बालकेलि मणि प्रकटी। उसे गुहनेवाली बुद्धि सुनयनी स्त्री है। उसका अनुराग धागा है। अनुराग से बाल-केलि का जोड़ना गुहना है पद बनाना हार है। यहाँ बालकेलि में बुद्धि आसक्त की ॥ २ ॥ ऐसा जो हार है उसे पहनने को स्त्री चाहिए। तहाँ तुलसी की भनित कहे काव्यरूप भामिनी के उर में पहिना-कर। कविता रामचरित्र के संग भली है। उसके उर में बालकेलि का हार, बुद्धि का गुहा। आगे "रविकुलमंडन रामलला' यह पद हार सरीखी बालकेलि का है, सो काव्य के कंठभाग में है। यही पहनाना है। सो पहनाकर फुलाऊँ प्रफुल्लित करूँ। बाल-चरित हार पहिन काव्य भली भई देख हृदय को हुलास हुआ।

उसमें अभिमान आसक्त हुआ। हे रघुवर, सोई भनित के संग तुम्हारे सुन्दर चरित्र गाऊँ इसमें वचन आसक्त हुआ। वचनों में लगाकर चित्त आसक्त हुआ ॥ ३ ॥

सोइये लाल लाड़िले रघुराई।
मगन मोद लिये गोद सुमित्रा बारबार बलि जाई॥ १ ॥
हँसे हँसत अनरसे अनरसत प्रतिबिम्बनि ज्यों झाँई।
तुम सबके जीवन के जीवन सकल सुमंगलदाई॥ २ ॥
मूल मूल सुरबीथि बेलि तमतोम सुदल अधिकाई।
नखत सुमन नभ बिटप ओट मनु छपा छटकि छबि छाई॥ ३ ॥
हौं प्रभात अलसात तात तेरी बानि जानि मैं पाई।
गाय गाय हलराय बोलिहौं सुख नींद री सुहाई॥ ४ ॥
बछरू छबीले छौना छगन मगन मेरे कहत मल्हाय मल्हाई।
सानुज हिय हुलसत तुलसी के प्रभु किलकत लरिकाई॥ ५ ॥

सुमित्राजी गोद में लिये मोद में मगन हो बार-बार वारी जाकर कहती हैं, हे लाल लाड़िले, रघुराई, सोइये ॥ १ ॥ बालविनोद में मगन हो कहती हैं—हे लाल, तुम हँसने से हँसते हो, उदास हुए से उदास होते हो। यथा प्रतिबिम्बों में झाईं। सो मैं जानती हूँ कि तुम सब जीवों के जीवन जिलानेवाले हो, सबको सुन्दर मंगल देनेवाले हो। अथवा हँसे से हँसते हो, यथा सुग्रीव, विभीषण आदि सज्जनों से अनरसे से अनरसते हो, यथा बालि, रावण आदि से। जैसे प्रतिबिम्बनि कहे दर्पण में जैसा मुख करो, वैसी ही देख पड़ती है। झाईं परछाहीं। इससे तुम तो सब जीवों के जीव सुन्दर मंगल देनेवाले सबको समान हो, परंतु जो जैसा भाव करता है, उसे

वैसे ही हो जाते हो ॥ २ ॥ अब रात्रि की शोभा बेलि के रूपक से वर्णन करते हैं। उसमें मूल नक्षत्र सोई मूल है। सुरबीथी सोई बेलि है। तम अन्धकार। तोम समूह। सोई दलों की अधिकता है। नखत सोई फूल हैं। नभ सोई वृक्ष है। उस पर बोड़ी कहे आश्रित हो क्षपा जो रात्रि है, सोई फलित बेलि सी, छटकि कहे फैलकर छबि से छा रही है। मूल नक्षत्र को मूल में इससे लिखा कि श्रावण में पूर्व से धन राशि के संग में साँझ को मूल का उदय होता है, और पूर्व ही से रात्रि का विस्तार है। श्रावण में पूर्व ही से सुरवीथी (छायापथ) साँझ समय पश्चिम को सीधी रहती है। वहाँ शिशुमारचक्र के व वामकोण के समीप मूल नक्षत्र होता है। सिंह की पूँछ के आकार में लंबे ग्यारह तारों में मूल का उदय है। एक तो सुरवीथी के मूल स्थान में, दूसरे लम्बा परिमाण, तीसरे मूल नाम। इसी से मूलनक्षत्र को सुरवीथी बेलि की मूल कहा। मुहूर्त्तचिन्तामणि में प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥ हे तात, तेरी बानि मैंने जान पाई है कि अलसाते हो, काहे से कि जमुहाते हो। इसलिये गा-गाकर हलराकर सुन्दरि सुख नींद को बुलाऊँगी ॥ ४ ॥ मल्हाइ दुलरा-दुलराकर कहती हैं—हे मेरे बछरू छबीले छौना, छगन-मगन, अब सोइये। गोसाईंजी कहते हैं कि सहित अनुज प्रभु की ललित लरिकाई (बालकेलि) मेरे हृदय में हुलसती है। यह पद श्रावणमास का है ॥ ५ ॥

ललन लोने लेरुवा बलि मैया।
सुख सोइये नींद बेरियाँ भई चारु चरित चारौ भैया ॥ १ ॥
कहत मल्हाय लाय उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया।
मोदकन्द कुलकुमुदचन्द मेरे रामचन्द रघुरैया ॥ २ ॥
रघुबरबालकेलि संतन की सुभग सुभद सुरगैया।

तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सुप्रेम घनोघैया ॥ ३ ॥

जिनके ऐसे सुन्दर चरित्र तिन चारो भैयों पर मैया बलि जाय। हे ललन, लोने बछुरा, अब नींद की बेला हुई। सोइये॥ १ ॥ मल्हाइ दुलराकर। क्षण क्षण पर हृदय में लगाकर कहती हैं सोइये। पद, हृदय, कर, नेत्र, श्रवणादि छः अंगों से छबीले बालक को प्यार से छैया कहते हैं। मोदकन्द आनन्द का मूल। कुल-कुमुद कोकाबेली। उसके चन्द्रमा। ऐसे मेरे रामचन्द्र रघुकुल के रैया इत्यादि बार-बार कहती हैं॥ २ ॥ रघुबर की बालकेलि सन्तों को सुन्दर शुभ देनेवाली कामधेनु है। प्रेम दूध है उसे तुलसी दुहकर पीता है। घनो बहुत। अघैया अघाकर। सोई पय पान कर सुखपूर्वक जीता है। यहाँ एदोतोतः सूत्र के अनुसार अकार लुप्त है। पदान्त में स्थित एकार व ओकार से परे अकार का लोप इस सूत्र से होता है। घनो अघैया का घनोघैया हो गया॥ ३ ॥

सुखनींद कहत आली आली आइहौं।
राम लखन रिपुदवन भरत सिसु करि सब सुमुखि सोवाइहौं ॥ १ ॥
रोवनि धोवनि अनखानि अनरसनि डीठ मूठ निठुर नसाइहौं।
हँसनि खेलनि किलकनि आनन्दनि भूपति भवन बसाइहौं ॥ २ ॥
गोद बिनोद मोदमय मूरति हरषि हरषि हलराइहौं।
तनु तिल तिल करि वारि राम पर लेहौं रोग बलाइ हौं ॥ ३ ॥
रानी राव सहित सुत परिजन निरखि नयन फल पाइहौं।
चारु चरित रघुबंसतिलक के तहँ तुलसी मिलि गाइहौं ॥ ४ ॥

लालन पालने में। सुमित्राजी की नवीन उक्ति है। हे लालन,

सुखनींद कहती है, हे आली, मैं आइहौं आऊँगी, और श्रीराम आदि शिशुओं को सुमुख कहे प्रसन्नता से सोवाऊँगी ॥ १ ॥ रोवनि धोवनि। लोक की कहनावत है। अनखानि, जो दुर्भाव से हो। हमारे उसकी नज़र न लगे। अनरसनि उदासीनता। डीठि नज़र। मूठ टोना आदि। इन्हें नसाऊँगी। हँसना, खेलना, किलकना, आनन्द आदि। इन्हें भूपति के भवन में बसाऊँगी। जब बालक सुख से सोता है, तब जगे पर आनन्द से खेलता है ॥ २ ॥ बालकेलि की आनन्दमय मूर्ति को गोद में ले हर्षित हो हलराऊँगी और तनु को तिल तिल करके श्रीरामलाल पर वारके रोगरूपी बलाय मैं लेऊँगी ॥ ३ ॥ रानी राजा पुत्र परिवार सहित निरखकर नेत्रों का फल पाकर श्रीरघुवंशतिलक के सुन्दर चरितों को तुलसी से मिलकर गाऊँगी ॥ ४ ॥

राग आसावरी

कनकरतनमय पालनो रच्यो मनहुँ मारसुत-हार।
बिबिध खिलौना किंकिनि लागे मंजुल मुकताहार ॥
रघुकुलमण्डन रामलला ॥ १ ॥
जननि उबटि अन्हवाइ कै मनिभूषन सजि लियो गोद।
पौढ़ाये पट पालने सिसु निरखि मगन मन मोद ॥
दसरथनन्दन रामलला ॥ २ ॥
मदन मोर की चन्द्रिका झलकनि निदरत तन जोति।
नील कमल मनि जलद की उपमा कहे लघु मति होति ॥
मातु सुकृतफल रामलला ॥ ३ ॥
लघु लघु लोहित ललित है पद पानि अधर एकरंग।

को कबि जो छबि कहि सकै नखसिख सुन्दर सब अंग ॥
परिजनरंजन रामलला ॥ ४ ॥

इस पद में जो कवि की उक्ति है उसमें तीन अभिप्राय हैं। प्रथम पलना पर बालस्वरूप की शोभा का वर्णन, दूसरे बालचरित में चन्द्रमा के सोलह पदों से सोलह कलाओं का वर्णन, तीसरे चन्द्रहार का वर्णन। चंद्रहार चन्द्रमा की कलाओं के आकार के बनते हैं। उन्हें स्त्री गले में पहनती हैं। बालचरित चन्द्रमा की सोलह कलाओं का चन्द्रहार भणितिरूपी भामिनी के गले में शोभित है। उदाहरण—"तुलसी भनिति भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावों।" चन्द्रमा की सोलह कला यथा—अमृतां मानदां तुष्टिं पुष्टिं प्रीतिं रतिं तथा। लज्जां श्रियं स्वधां रात्रिं ज्योत्स्नां हंसवतीं तथा ॥ १ ॥ छायां पूर्णां तथा वामाममां चन्द्रकलाः स्मरेत् इति ॥ रामार्चनचन्द्रिका के तीसरे खण्ड शंख-स्थापन में देखो। यथा—चन्द्रकला तथा रघुकुल-मंडनादि सोलह विशेषण इस पद में हैं। उस चन्द्रहार में दो पत्तों की कलाओं के सुवर्ण के मणिजटित आकार बनते हैं। इस चन्द्रहार में सोलह पद की छाया है। आदि के अन्त के सोलह पद, तिनकी छाया लेकर ये पद कहे हैं। उस चन्द्रमा की अमावस को पन्द्रह कला लोप हो एक कला रहती है सो ओषधियों में वास कर उन्हें सजीव करती है। तिनको गौवें चरती हैं। उनके दूध-घी में अमृत का अंश रहता है। उस घी के होमादि से देवता प्रसन्न होते हैं। तब फिर एक-एक कला बढ़ती है। यह चन्द्रमा-स्तोत्र में प्रसिद्ध है। यथा अमावस को ओषधियों में सजीव चन्द्रमा की एक कला तथा बाल-चरित-चन्द्रमा में सुमित्राजी के गोद में शयन वर्णन किया है। सोई अमावस है। यथा—"सोइये लाल लाड़िले रघुराई।" पूर्णिमा को

सोलह कला पूर्ण रहती हैं । सो कौशल्याजी के द्वारा जगाने में वर्णन किया है । यथा—"जननी कहै बार-बार भोर भयो प्यारे।" यही पूर्णिमा है । अब बालचरित-चन्द्रमा की सोलह कला के चन्द्रहार सरीखा वर्णन करते हैं । कनक सुवर्ण, रत्न, वज्र, पद्मराग, वैदूर्य, मुक्ता, फ़ीरोज़ा, मरकत आदि से जटित पालने को मानो सुतहार कहे बढ़ई, मार जो कंदर्प उसी ने रचा है । जयपुर आदि पश्चिम देश में बढ़ई को सुतहार कहते हैं । उस पालने में विविध खिलौना, किंकिणी, मंजुल मुक्ताओं के हार लगे हैं । चन्द्ररथ में मृग है, बालचरित-चन्द्रमा में पालना मृगनयनी झुलानेवाली है । चन्द्रमा की एक कला अमावस को ओषधियों का संजीवन करती है, बालचरित में ओषधि रघुकुल के मंडन रामलला हैं । चन्द्र-हार में अमावस की अमाकला सुमेरुस्थान में रहती है, बाल-चरित चन्द्रहार में सुख नींद कहत आली आइहौं, और पालने रघुपतिहि झुलावै, इन दो पदों का आशय लेकर सुमेरुस्थान है । वहाँ ओषधि-सजीवन अमाकला, यहाँ रघुकुलमंडन रामलला ॥ १ ॥ जननी श्रीकौशल्याजी श्रीरामलला को उबटन लगा, स्नान करा, मणियों के भूषण कठुला, कड़ा, पहुँची, अंगद आदि सज झँगुली टोपी पहना मोद की भरी गोद में लेती भईं । पुनःपटु सुन्दर पलना पर पौढ़ाकर शिशुरूप प्रभु को निरख मोद में मग्न भईं । अब यथा चन्द्रहार में एक जन्म-रात की दूसरी चौदस की कला के आकार सुमेरु समीप गुही रहती है, उसी भाँति बालचरित-चंद्रमा के दो पद का आशय इस पद में गुहा है । प्रथम नामकरण का पद । यथा— "गोदमोदमूरति लिये सुकृतीजन जो हैं ।" नामकरणों में उबट, स्नान करा, वसन पहना माता गोद में लेती हैं । उसका अभिप्राय यह है कि जननी ने उबट नहलाकर मणिभूषण सजि लियो गोद । दूसरा अभिप्राय इस पद का है । "झूलत राम पालने सो हैं । भूरि

भाग जननी जन जोहैं ॥" इसके लिये पौढ़ाये पटु पालने। उस चन्द्र की जन्मरात्रि को चराचर सुखी होता है, बालचरित में, नामकरण में, नाम सुन सब सुखी हुए । जन्मरात्रि को वाम कला सुन्दर, यहाँ दशरथनंदन रामलला अतिसुन्दर ॥ २ ॥ तनु की ज्योति मदन के मोर की चंद्रिका को निदरती है। और नीलकमल की कोमलता चिकनाई, मणि की झलक, मेघ की श्यामता इत्यादि उपमा कहिये तो मति थोड़ी होती है। यहाँ उपमा वृथा होने से प्रतीप अलंकार है । वहाँ चन्द्रहार में शुक्ल द्वितीया और कृष्ण तेरस की कला के आकार सुमेरु के तीसरे स्थान पर गुही रहती है। बालचरित चंद्रमा के दो पदों का आशय यहाँ है। एक तो "नील कञ्ज जलदपुंज मरकतमनि सहस स्याम काम कोटि सोभा अंग-अंगन पर वारी" और दूसरा "सुभग सेज सोहत कौसल्या रुचिर राम सिसु गोद लिये।" वहाँ द्वितीया को अमृतकला सुकृती जान सब नमस्कार करते हैं। यहाँ "मातु सुकृतफल रामलला" को अनेक ब्रह्माण्ड नमस्कार करते हैं। वहाँ द्वितीया की अमृतकला, यहाँ मातु सुकृत-फल रामलला। ब्रह्माण्ड के मंगलकर्त्ता ॥ ३ ॥ लघु छोटे-छोटे। सुन्दर लाल हाथ, पाँव ओठ एकरंग के हैं, और नख से शिखा तक सब अंग अत्यन्त सुन्दर हैं। तिनकी उपमा को कौन ऐसा कवि है, जो कह सके। वह परिजन के आनन्द-दाता रामलला अनूप हैं। हाँ, चन्द्रहार में शुक्ल तीज कृष्णद्वादशी की कला के आकार से चतुर्थ स्थान पर रहती है, तथा बाल-चरित्र-चन्द्रमा के दो पदों का आशय यहाँ पद में है, एक तो बंधूक-सुमन और पदकञ्ज, दूसरे पुरजन, सचिव, राव, रानी, सब सेवक, सखा, सहेली लेहैं लोचनलाहू । इति । वहाँ तीज को मानदा कला, यहाँ परिजनरञ्जन रामलला सबको सम्मान-दायक ॥ ४ ॥

पग नूपुर कटि किंकिनी करकंजन पहुँची मंजु।
हिय हरिनख अद्भुत बनो मनु मनसिज मनिगनगंजु॥
पुरजन सुरमनि रामलला ॥ ५ ॥
लोचननीलसरोज से भ्रू पर मसिबिन्दु बिराज।
जनु बिधुमुखछबिअमी को रच्छक राखे रसराज॥
सोभासागर रामलला ॥ ६ ॥
गभुवारी अलकावली लसै लटकन ललित ललाट।
जनु उडुगन बिधु मिलन को चले तमबिदारि करिबाट॥
सहजसुहावन रामलला ॥ ७ ॥
देखि खिलौना किलकहीं पद पानि बिलोचन लोल।
विचित्र विहँग अलि जलज ज्यों सुखमा सर करत कलोल॥
भक्तकलपतरु रामलला ॥ ८ ॥

पग में नूपुर, कटि में किंकिणी, करकमलों में सुंदर पहुँची, हृदय में कठुला, उसमें बघनहा इत्यादि कैसे शोभित हैं मानो कंदर्प की मणिगणों के गञ्जनेवाले भूषण हैं। यहाँ रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार है। चन्द्रहार में शुक्ल चतुर्थी, कृष्ण एकादशी की कला पंचम स्थान पर गुही रहती है। यहाँ दो पदों का आशय उसकी जगह है। एक पद तो "रुचिर नूपुर किंकिणी मन हरत रुनु-झुनु करनि" और दूसरा "तुलसी तब कैसे अजहुँ जानि वे रघुवर-नगर-बसैया" वहाँ चौथि को तुष्टिकला तुष्टि की दाता है, यहाँ "पुरजन-सुरमणि रामलला" पुरवासियों को चिन्ता-मणि हैं ॥ ५ ॥ नील-कमल-सम नेत्र, तिन पर सुन्दर भौंहें, उन पर मसिबिंदु डिठौना कैसा विराजमान है मानो मुख-चन्द्रमा ने छवि-

रूप अमृत की रक्षा हेतु रसराज शृंगार को रक्षक कर रक्खा है। यहाँ पूर्णोपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार हैं। वहाँ चन्द्रहार में शुक्ल पंचमी व कृष्णदशमी का आकार षष्ठ स्थान पर रहता है, यहाँ बालचरित के इन दो पदों का आशय है। एक तो "भ्रू पर अनूप मसिबिंदु वारे २ बार" दूसरे "नेकु बिलोकि धौं रघुबरनि"। वहाँ पंचमी को पुष्टिकला है, यहाँ शोभासागर रामलला ॥ ६ ॥ गभु-वारी कहे नवीन सचिक्कण श्याम अलकावली। सुवर्ण के तारों से गुहकर मोतियों के गुच्छों की लटकन ललाट पर शोभित है, सो मानो उडुगण जो नक्षत्र, वे अपना स्वामी जान मुख-चन्द्रमा को मिलने चले। तम अंधकार को विदारकर। यहाँ लटकन नक्षत्र है, मुख चन्द्रमा है, बाल तम हैं। उनको दोनो ओर समेटने से होने-वाली लकीर बाट है। यहाँ उत्प्रेक्षा है। वहाँ चन्द्रहार में छठ और नवमी की कला, यहाँ बालचरित के दो पदों का आशय। एक तो "टेढ़ी लटकन मनिकनकजटित बालभूषन बनाइ आछे अंगअंग ठयो है" दूसरा "है बरु बि ंग बिलोकिये बालक बसि पुर उपबन बाग।" वहाँ छठ को प्रीतिकला प्रीति-गुण सहज शोभायमान थे तथा यहाँ सहज सुहावन रामलला। सहज ही में सबसे प्रीति, इससे सबको सुहावने ॥ ७ ॥ खिलौनों को देख किलकते हैं, और हाथ, पाँव नेत्र चंचल हैं सो कैसे शोभित होते हैं ज्यों शोभासर में विचित्र पक्षी और भँवरे कमल से परस्पर कल्लोल कर रहे हैं। यहाँ तोता, कबूतर, मोर आदि खिलौना विचित्र पक्षी हैं, हाथ पद कमल हैं, नेत्र और अलकावली भँवर हैं। किलकने की शब्दचंचलता कल्लोल है। उत्प्रेक्षालंकार है। वहाँ चन्द्रहार में शुक्लसप्तमी, कृष्ण अष्टमी की कला के आकार एक सामने गुही रहती है, बालचरित चन्द्रमा के दो पदों का आशय यहाँ है। एक तो "छगनमगन अँगना खेलत चारु चारौ भाई" दूसरा "जासु नाम सरबस सदा सिव पार्वती के

ताहि झरावत कौसल्या यह प्रीति की रीति हिये हुलसत तुलसी के" वहाँ सप्तमी को रतिकला सुख का स्थान है, तथा "भक्तकल्पतरु रामलला" भक्तों के मनवाञ्छित सुख देने को कल्पवृक्ष के समान सदा हैं ॥ ८ ॥

बालबोल बिनु अर्थ के सुनि देत पदारथ चारि ।
जनु इन बचनन ते भयो सुरतरु तापस त्रिपुरारि ॥
नाम कामधुक रामलला ॥ ९ ॥
सखी सुमित्रा वारहीं मनिभूषन बसन बिभाग ।
मधुर झुलाइ मल्हावईं गावैं उमँगि उमँगि अनुराग ॥
हैं जगमंगल रामलला ॥ १० ॥
मोती जायो सीप में अरु अदिति जन्म्यो जगभान ।
रघुपति जायो कौसिला गुनमंगलरूपनिधान ॥
भुवनविभूषन रामलला ॥ ११ ॥
राम प्रकट जब ते भये गये सकल अमंगलमल ।
मीत मुदित हित उदित हैं नित बैरिन के उर सूल ॥
भवभयभञ्जन रामलला ॥ १२ ॥

बाल अवस्था के वचन कैसे हैं बिन अर्थ के । परन्तु सुनते में सुननेवाले को चार फल देते हैं। तिनको सुन अपने को लघु मान कल्पवृक्ष वृक्ष हुआ । त्रिपुरारि अपने को लघु मान तापस हुए । अथवा ये ही वचन सुन वृक्ष कल्पवृक्ष और त्रिपुरारि तापस, ते चार पदार्थों के दाता हुए । वहाँ चन्द्रहार में शुक्ल अष्टमी व कृष्ण सप्तमी की कला हैं, यहाँ इन दो पदों का आशय है । एक तो "कलबल बचन तोतरे बोलत" दूसरा "महिमा समुझि लीला

बिलोकि गुरु सजल नयन रोम रोम जागे।" वहाँ अष्टमी को लज्जाकला सबको सन्तोषदायक है, यहाँ नाम-कामधुक रामलला का नाम कामधेनु है ॥ ६ ॥ सखियों सहित सुमित्राजी निछावर करती हैं मणिभूषण, वसन-विभाग कहे अलग-अलग । और धीरे से झुलाकर दुलराकर अनुराग से उमँगकर गाते हैं। चन्द्रहार में शुक्ल नवमी और कृष्ण अष्टमी के आकार कला सामने रहती है, यहाँ दो पद बालचरित-चन्द्रमा के हैं। एक तो "लाइ सुमित्रा लिये हिये फनिमनि ज्यों गोये" दूसरा "बालकेलि अवलोकि मातु सब प्रेममगन आनँद अनमाये" वहाँ नवमी को श्रीकला मङ्गलदायक है, यहाँ जगमंगल रामलला है ॥ १० ॥ सीप ने मोती जाया, सो रूप मंगल गुण का निधान है । क्योंकि मंगलीक चौक में पूरा जाता है, और मंगलीक भूषण में गुहा जाता है, जो सोहागिनें पहिनती हैं । अदिति ने भानु को जन्म्यो पैदा किया सो रूपगुण के निधान प्रतापवान् लोक-भूषण हैं । रघुपति को श्रीकौशल्याजी ने जाया । वह मङ्गलगुण, रूपगुण, प्रतापगुण आदि सबके निधान और अनेकों भुवनों के विभूषण हैं । रूपगुणनिधान, यथा प्रमाणं माहेश्वरतन्त्रे—रूपौदार्यगुणैः श्रीमाञ्जगन्मोहनविग्रहः। परं साधारणं रूपं नित्यं द्विभुजशोभनम् ॥ मंगल यथा सनत्कुमार-संहितायाम्—मंगलायतनं देवं रामं राजीवलोचनम् । यहाँ तुल्य-योगिता अलङ्कार है । वहाँ चन्द्रहार में शुक्ल दशमी, कृष्ण पञ्चमी की कला, यहाँ बालचरित के दो पद ।एक तो "सादर सब मंगल किये" दूसरा "मुखसोभा पर वारौं अमित असमसर ।" वहाँ दशमी को स्वधाकला सबको सुखदायक है । यहाँ भुवन-विभू-षण रामलला ॥ ११ ॥ एकादशी को चन्द्रमा का प्रताप विशेष प्रकट होता है, उसी भाँति बालचरित-चन्द्रमा को प्रकट कहते हैं। चन्द्र-उदय होने से तम नाशता है, श्रीराम के प्रकट होने

से अमंगल का नाश हुआ। वहाँ चकोर-कोकी मुदित, यहाँ मीत मुदित। वहाँ नक्षत्र मुदित, यहाँ हितकार मुदित, वहाँ कमल के फूल होते हैं, यहाँ वैरियों के शूल हुआ। वहाँ दिन का तापनाश होता है, यहाँ भवभयभञ्जनवाले श्रीराम हैं। वहाँ चन्द्रहार में शुक्ल एकादशी, कृष्णचतुर्थी की कला, यहाँ बालचरित के दो पद। एक तो "या सिसु के गुन-नाम बड़ाई; को कहि सकै सुनहु नरपति श्रीपतिसमान प्रभुताई।" पुनः "तदपि लोकलोचन चकोर ससि रामभक्त सुखदाई। याके चरनसरोज कपट तजि जो भजिहै मन लाई। सो कुल जुगल सहित तरिहै भव यह न कछू अधिकाई।" यह है। राम प्रकट जब से हुए और दूसरा पद "सादर सुमुखि विलोकि राम सिसु-रूप अनूप भूप लिहे कनियाँ। सुनि कुलबधू झरोखन झाँकत रामचन्द्र छबि चन्द्रबदनियाँ॥" यह उदय होना है। वहाँ रात्रि कला एकादशी को तीन पहर तक प्रकाशित और दिन के ताप के भय को नशानेवाली रात्रि-कला है। यहाँ भवभय-भंजन रामलला। भव संसार। उसका भय जन्ममरण। उसका नाश करनेवाले। प्रमाण सदाशिवसंहितायाम्—कौशल्यानन्दनं रामं केवलं भवखण्डनम्॥ १२॥

अनुज सखा सिसु संग लै खेलन जैहैं चौगान।
लंका खरभर परैगी सुरपुर बाजिहैं निशान॥
रिपुगनगंजन रामलला॥ १३॥

राम अहेरे चलहिंगे जब गज रथ बाजि सँवारि।
दसकन्धरउर धकधकी अब जनि धावैं धनुधारि॥
अरिकरिकेहरि रामलला॥ १४॥

गीत सुमित्रा सखिन के सुनि सुनि सुरमुनि अनुकूल।

दै असीस जयजय कहैं हर्षित बर्षें फूल ॥
सुरसुखदायक रामलला ॥ १५ ॥
बालचरितमय चन्द्रमा यह सोरह कलानिधान।
चितचकोर तुलसी कियो करि प्रेमअमीरस पान ॥
तुलसी के जीवन रामलला ॥ १६ ॥

भरतादि अनुज और सखा। अपर बालकों को संग लेकर चौगान कंदुक के खेलने को जायँगे, तब लंका में खरभर पड़ेगी। उससे सुरपुर में नगाड़े बजेंगे। यहाँ भविष्य बात है सो एक पद भूप की गोद की शोभा और तीन पदों में कौशल्याजी का रघुनाथजी को जगाना कहा, सो चन्द्र का उदय होना है। कौशल्याजी पूर्णिमा हैं। पाँचवें पद का आशय यहाँ है। इससे कहा है। खेलन जैहैं यह भविष्य है। वहाँ शुक्ल द्वादशी कृष्ण तीज चन्द्रहार में, यहाँ तीन पद हैं। एक तो "संग अनुज अनेक सिसु" और "कर-तल गहि ललित चापभञ्जन रिपु-निकर दाप" तीसरा शिवजी ने ज्योतिषी हो कहा है—"राम लखन रिपुदमन भरत को जय सुख सुजस सुनायो ॥" वहाँ द्वादशी को ज्योत्स्नाकला प्रकाश से तमनाशक है, यहाँ रिपुगनगञ्जन रामलला हैं॥ १३ ॥ जब श्रीरघुनाथजी हाथी, रथ, घोड़ा सजकर शिकार को चलेंगे, तब दशकंधर के उर में धकधकी उठेगी कि "धनु धारि इहाँ जनि दौरैं।" वहाँ चन्द्रहार में शुक्ल त्रयोदशी और कृष्ण द्वितीया की कला, यहाँ दो पदों का आशय। एक तो "रावण दुरित दुख दलै सुर कहैं आजु अवध सकल सुख को सुकाल", दूसरा "चारु चरित रघुबर केरे ते हिय में लगाइ चरनन चितलावौं।" वहाँ तेरस को हंसवती कला, यहाँ प्रतापवान् तथा अरि-करि-केहरि रामलला ॥ १४ ॥ सखियों सहित सुमित्राजी के गीत सुन

देवता, मुनि अनुकुल हो अशीष दे जय जय कह हर्ष से फूल बरसाते हैं। चन्द्रहार में शुक्ल चतुर्दशी व कृष्ण परेवा की दो कला, यहाँ दो पद। एक तो "मगनमोद लिये गोद सुमित्रा बार-बार बलि जाई" दूसरा "मनहुँ बेदबंदी मुनिवृन्द सूतमागधादि विरद बदत जय जय जय जयति कैटभारे।" वहाँ चतुर्दशी की छायाकला सुखदायक, यहाँ "सुरसुखदायक रामलला" हैं॥ १५॥ जैसे चन्द्रमा सोलह कला का निधान है, वैसे यहाँ बालचरित-चन्द्रमा सोलह कला का निधान है। वहाँ चकोर, यहाँ तुलसीदास का चित्त-चकोर। वहाँ अमृत, यहाँ प्रेमअमृत वहाँ ओषधियों का जीवन, यहाँ तुलसी का जीवन। वहाँ चन्द्रहार में चन्द्र की जन्म से पूर्णिमा तक और एक अमावस की सोलह कला, और पूर्ण चन्द्रमा नीचे बीच में रहता है, यहाँ बालचरित के दो पद हैं। एक पूर्णिमा का आशय "रहे सब पल रोकि थकित निकर चकोर मानो शरद-इन्दु बिलोकि।" चकोर के सम्बन्ध से पूर्णिमा है। दूसरी अमावस की कला "तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सुप्रेम घनोऽघैया।" अमा को ओषधि सजीव होती हैं, उन्हें गौवें चरती हैं। उनके क्षीर में अमृत होता है। उसका आशय "तुलसी के जीवन रामलला।" पूर्णिमा को चकोर खुश होते हैं। उसका आशय "चित चकोर तुलसी कस्यो।" इन्हीं दो आशयों से तुलसी का नाम दो बार कहा। अब चन्द्रहार और बालचरित चन्द्रहार का रूपक। यथा वहाँ चन्द्रहार सुवर्ण व मणियों से बनता है, तथा यहाँ "बालबिनोद मोद-मंजुलमनि।" वहाँ मणि खान से निकलती हैं, यहाँ "किलकनि खानि खोलावों।" यहाँ सुन्दर वर्ण सुवर्ण और कवि स्वर्णकार है। वहाँ पटहारिन धागा गुहती है, यहाँ उस अनुराग-ताग के गुहने को "मति मृगनयनि बोलावों।" वहाँ चन्द्रहार पहन कोई सुन्दरी स्त्री खुश होती, यहाँ "तुलसी-भनिति

भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं।" वहाँ चन्द्र की हाव-कला रच बटोर एक हार बना अपनी मेहनत लगाती है; यहाँ "चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चित लावौं।" इस पद में अभेदरूपक और श्लेष अलंकार है। युक्ति इस पद की बड़ी गूढ़ है, जो अच्छी तरह से साफ़ चित्त कर विचार करे, तब चित्त में इसका आशय चढ़ेगा ॥ १६ ॥

राग कान्हरा

पालने रघुपतिहि झुलावै।

लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै ॥ १ ॥
केकिकण्ठ दुति स्याम बरन बपु बालबिभूषन बिरचि बनाये।
अलकैं कुटिल ललित लटकनि भ्रू नील नलिनदौ नयन सुहाये २॥
सिसु सुभाव सोहत जब कर गहि बदन निकट पद पल्लव लाये।
मनहुँ सुभग जुग भुजंग जलज भरि लेत सुधा ससि सो सचुपाये ३॥
उपर अनूप बिलोकि खिलौना किलकत पुनि पुनि पानि पसारत।
मनहुँ उभय अम्भोज अरुन सो बिधुभय बिनय करत अति आरत ४॥
तुलसिदास बहु बास बिबस अलि गुंजत सो छबि नहिं जात बखानी।
मनहुँ सकल श्रुति ऋचा मधुप है बिसद सुजस बरनत बरबानी ५॥

पालने में रघुपति को लै लै नाम झुलावती हैं। मोदकंद, कुल-कुमुदचन्द्र, मेरे रामचन्द्र, रघुरैया, बाछरू, छौना, छबीले इत्यादि नाम लेकर स्वर-सहित प्रेम से प्रभु की कीर्ति सुन्दर उसको कौशल्याजी गाती हैं ॥ १ ॥ पलना में कैसा है प्रभु का रूप, मोर कंठसम द्युति श्याम वर्ण तनु है। उसमें बालविभूषण नूपुर

कड़ा, किंकिणी, पहुँची, बघनहा, कठुला आदि विचित्र स्वर्ण और मणियों से बनाये हैं। अलकैं बाल। कुटिल टेढ़े। वे कलाबत्तुओं से गुहे मोतियों के गुच्छों की लटकनी सुन्दर भौंहों पर शोभित। नीलकमल सम दोनों नेत्र सुहावने लगते हैं। यहाँ रूपक और लुप्तोपमा अलंकार है ॥ २ ॥ बालस्वभाव से कर से। गह्व पकड़। पद की कोमल लाल पौली को मुख के निकट को लाते हैं। सो कैसी शोभित होती है, मानों दो सुन्दर सर्प सचुपाये कहे आनन्द से कमलों में भर-भर अमृत चन्द्रमा से लेते हैं। हाथ सर्प। पद कमल। मुखचंद्र छबि अमृत। यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है ॥ ३ ॥ ऊपर पलना में मणियों के खिलौना प्रकाशमान अनूप हैं। तिनको देखके किलकते हैं, और बारबार हाथ पसारते हैं। सो मानों दो कमल चन्द्रमा का भय करके अति आर्त हो रवि से बिनती करते हैं। प्रयोजन यह कि अस्त न होओ। खेलौना प्रकाश से सूर्य। हाथ कमल। मुख चन्द्रमा। फैलाना आर्तता। किलकना बिनती। चन्द्रमा के विरोध से भय के मारे संपुट हो जाना। यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है ॥ ४ ॥ श्रीगोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु के अंग की बास के वश हो भ्रमर गुंजरते हैं। सो छबि बखान करते नहीं बनता। मानों सब वेदों की ऋचा भ्रमर होकर विशद उज्ज्वल सुन्दर यश वर श्रेष्ठ। वाणी से वर्णन करती हैं गान करके ॥ ५ ॥

राग विलावल

झूलत राम पालने सोहैं।
भूरि भाग जननी जन जोहैं ॥ १ ॥
तन मृदु मंजुल मेचकताई।
झलकत बालबिभूषन झाईं ॥ २ ॥

अधर पानि पद लोहित लोने ।
सरसिंगार भवसारस सोने ॥ ३ ॥
किलकत निरखि बिलोकि खिलौना ।
मनहुँ बिनोद लरत छबिछौना ॥ ४ ॥
रंजित अंजन कंज बिलोचन ।
भ्राजत भालतिलक गोरोचन ॥ ५ ॥
लसै मसिबिन्दु बदनबिधु नीको ।
चितवत चितचकोर तुलसी को ॥ ६ ॥

श्रीरामलला पलने में झूलते सोहते हैं । उस शोभा को बड़े भाग्यवाली माता जोहै देखती है ॥ १ ॥ कैसी शोभा है, सुन्दर कोमल तनु की श्यामता में बाल-अवस्था के भूषण झलकते हैं। तिनकी झाईं परछाईं अंग में झलकती है ॥ २ ॥ ओठ, हाथ, पाँव, लाल और प्यारे हैं। सो सब शोभा मिलने से ऐसी उपमा दिखती है कि श्याम तनु शृंगार-रस का तड़ाग है। उसमें हाथ, पद, ओठ ते सारस कहे कमल भव नाम उत्पन्न हुए। और भूषण आदि सोने के सारस पक्षी शोभित हैं। सारस का अर्थ पक्षी और कमल दोनों है। यथा—सारसः पक्षिभेदः स्यात् क्लीबे तु सरसीरुहः। इत्यमरः। झूला में जो खेलौना हैं, सो झूलते में चञ्चल हो रहे हैं। तिनको निरखि आप भी चञ्चल हो किलकते हैं। सो मानों विनोद आनन्द में छबि के छौना छोटे बालक परस्पर लड़ते हैं। चञ्चलता छोटे हाथ पद खिलौनों की । मुख की किलकारी लड़ना है ॥ ३-४ ॥ कमलसम नेत्रों में अंजन शोभित है। भाल गोरोचन का तिलक राजता है ॥ ५ ॥ मुखचन्द्र

पर डिठौना शोभित है। उस सुन्दर मुख-चन्द्र को चकोर हो तुलसी का चित्त निरखता है॥ ६॥

राग चंचरीक

राजत सिसुरूप राम सकल गुन निकाय धाम,
कौतुकी कृपाल ब्रह्म जानु-पानिचारी।
नील कंज जलद्‌पुंज मरकतमनि सद्दस स्याम,
काम कोटि सोभा अंग अंग उपर वारी॥ १॥
हाटक मनि रत्न खचित रचित इन्द्रमंदिराभ,
इन्दिरानिवास सदन बिधि रच्यो सँवारी।
बिहरत नृपअजिर अनुज सहित बालकेलिकुसल,
नील जलदलोचन हरिमोचन भयहारी॥ २॥
अरुन चरन अंकुस धुज कंज कुलिस चिह्न रुचिर,
भ्राजत अति नूपुरबर मधुर मुखरकारी।
किंकिनी बिचित्र जाल कम्बु कंठ ललित माल,
उर बिसाल केहरि-नख कंकन करधारी॥ ३॥
चारु चिबुक नासिका कपोल भाल तिलक भ्रुकुटी,
स्रवन अधर सुन्दर द्विज छबि अनूप न्यारी।
मनहुँ अरुन कंजकोस मंजुल जुग पाँति प्रसव,
कुन्दकली जुगल जुगल परम सुभ्र वारी॥ ४॥
चिक्कन चिकुरावली मनो खडंघ्रि-मंडली,
बनी बिसेषि गुंजत जनु बालक किलकारी।

इकटक प्रतिबिम्ब निरखि पुलकत हरि हरषि हरषि,
लै उछंग जननी रस-भंग जिय बिचारी ॥ ५ ॥
जा कहँ सनकादि सम्भु नारदादि सुक मुनीन्द्र,
करत बिबिध जोग काम क्रोध लोभ जारी ।
दसरथ गृह सोइ उदार भंजन संसारभार,
लीला अवतार तुलसिदास त्रासहारी ॥ ६ ॥

सकल समूह गुणों के धाम श्रीराम हैं। प्रमाण शिवसंहितायाम्—"रूपसौंदर्यमाधुर्यचातुर्यस्थिरतादयः । सौकुमार्यं च सौगन्ध्यं त्वयि सर्वे गुणाः स्फुटाः ॥ १ ॥ चक्रवर्त्तिकुलोद्भूतोहंसचिह्न-दुकूलवान् । विद्याविनयसम्पन्नः शौर्यवीर्यपराक्रमी ॥ २ ॥ गन्धर्व-शास्त्रनिपुणः कामशास्त्रविशारदः । वदान्यो दर्शनीयश्च नित्य-स्वाधीनयौवनः ॥ ३ ॥ कलासु कुशलोऽक्लेशः स्वभावः स्मित-भाषणः । कोमलः पेशलः साधुर्वत्सलोकशमलाशयः ॥ ४ ॥ कोश-लेशसुतः श्रीमान् कौशलेयगुणाम्बुधिः ॥" इत्यादि । गुणों के धाम श्रीराम परब्रह्म हैं । प्रमाण रामतापिन्याम्—"रमन्ते योगिनोनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥" पुनः सनत्कुमारसंहितायाम्—"रामं सत्यं परब्रह्म रामात्किञ्चिन्न विद्यते ॥" इत्यादि । परब्रह्म श्रीराम जानुपाणिचारि अर्थात् बैयाँ बैयाँ चलते हैं। कृपालु हैं । और गुणों के धाम सो शिशुरूप राजते हैं, इससे कौतुकी हैं। वह श्रीराम कैसे शोभित हैं, यथा नीलकञ्ज तद्वत् कोमल श्याम । पुनः जलद मेघवत् गंभीर श्याम । पुनः मरकत मणिसदृश प्रकाशमान । उस स्वरूप के अंग-अंग पर कोटियों मारों की शोभा वारन करिये । यहाँ उपमेय के चार विशेषण हैं, इससे चार उपमा कहीं ॥ १ ॥ जिन नृप दशरथ

महाराज के मन्दिर में कंचन में मणिरत्नों से खचित चित्रसारी रचित हैं। यथा इंद्रमन्दिर की आभा शोभा अथवा इन्दिरा लक्ष्मी का ऐसा निवास। सदन मंदिर। उसे ब्रह्मा ने रच के सँवारा। उसमें अजिर जो आँगन है, उसमें हरि श्रीरघुनाथजी बालकेलि में कुशल अनुज जो भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न हैं, तिन सहित विहरते हैं। जिनके नेत्र नीलकमल सम हैं, वह भारी भय जो भवसागर का जन्ममरण आदि बन्धन, उसके मोचन छोड़ानेवाले हैं। मणि सर्प के, रत्न पर्वत में, इससे मणिरत्न कहे॥ २॥ अरुण लाल चरणों में अंकुश, ध्वज, कमल, वज्रादि चिह्न शोभित हैं। सुन्दर मधुर शब्द जिनमें होता है, ऐसे श्रेष्ठ नूपुर शोभित हैं। किंकिणी विचित्र मणि और सुवर्ण से रचित। जाल कहे सघन, सो कटि में शोभित है। कम्बु शंख तद्वत् कंठ में तीन रेखा। उसमें सुन्दर माला, उसमें बघनहा, सो विशाल उर पर शोभित है। कर-कमल में कंकण शोभित हैं॥ ३॥ ठोढ़ी, नासिका, कपोल। भाल पर तिलक। भ्रुकुटी, कान, ओठ आदि सुन्दर हैं। ओठों के बीच में दो दाँत, तिनकी छवि अनूप न्यारी है। सो मानो लाल कमल के कोश में दो पाँति (पंक्ति) का प्रसव है। परम सुन्दर बारी कहे छोटी दो-दो कुन्द की कली यहाँ लाल कमल का कोश, उसमें दाँतों के स्थान पर दो का प्रसव है। दो-दो दतियाँ कुन्द की कली हैं॥ ४॥ बाल चिक्कन। सो मानों भौंरे हैं। किलकन सोई गुंजार है। इकटक प्रतिबिम्ब को निरख हर्षित हो पुलकते हैं। इसको देख जननी ने रस भंग जी में विचार कर डर न जायँ, या नज़र न लग जाय यह विचार कर कनियाँ गोद में ले लिया॥ ५॥ सनकादि, शम्भु, नारद, शुकदेव आदि जिन रघुनन्दन के पाने को विविध प्रकार का योग व यत्न करते हैं। काम, क्रोध, लोभआदि को जलाकर वह श्रीरघुनन्दन

श्रीदशरथ महाराज के घर में लीला करने के हेतु और संसार का भार भंजिबे उतारने को तुलसीदास के त्रास हरनेवाले सोई क्षिति भूतल में विराजमान हैं ॥ ६ ॥

राग कान्हरा

आँगन फिरत घुटुरुवन धाये।
नील जलज तनु स्याम राम सिसु
जननि निरखि मुख निकट बोलाये ॥ १ ॥
बन्धुकसुमन अरुन पदपंकज
अंकुस प्रमुख चिह्न बनि आये।
नूपुर जनु मुनिबर कलहंसन
रचे नीड़ दै बाँह बसाये ॥ २ ॥
कटि मेखल बर हार ग्रीव दर
रुचिर बाहु भूषन पहिराये।
उर श्रीवत्स मनोहर हरिनख
हेम मध्य मनिगन बहु लाये ॥ ३ ॥
सुभग चिबुक द्विज अधर नासिका
श्रवन कपोल मोहिं अति भाये।
भ्रू सुन्दर करुना रस पूरन
लोचन मनहुँ जुगल जलजाये ॥ ४ ॥
भाल बिसाल ललित लटकन वर
बाल दसा के चिकुर सोहाये।

मानौं दोउ गुरु सनि कुज आगे करि
ससिहि मिलन तम के गन आये ॥ ५ ॥
उपमा एक अभूत भई तब
जब जननी पट पीत ओढ़ाये।
नीलजलद पर उडुगन निरखत
तजि सुभाव मनु तड़ित छपाये ॥ ६ ॥
अंग-अंग परमान निकर मिलि
छबि समूह लै लै जनु छाये।
तुलसिदास रघुनाथ रूप गुन
तौ कहौ जो विधि होहिं बनाये ॥ ७ ॥

आँगन में बैयाँ बैयाँ धाये दौड़े फिरते हैं। नीलकमल-सम श्याम श्रीरघुनाथजी के बालरूप का मुख निरख माता निकट बुलाती भई ॥ १ ॥ बन्धूक (दुपहरी) के फूलसम लाल पदकमल में अंकुश है मुख्य जिनमें वे चिह्न बनि आये अर्थात् शोभित हैं। प्रमाण महारामायणे। रेखोर्ध्वा वर्तते मध्ये दक्षिणस्यांघ्रिपंकजे ॥ पार्श्वयोः स्वस्तिकं ज्ञेयमष्टकोणं तथैव च ॥ १ ॥ लक्ष्मीर्हलं च मुसलं सर्पो बाणोऽम्बरं तथा ॥ पद्ममष्टदलं चैव स्यन्दनं वज्रमेव च ॥ २ ॥ वामांगुष्ठे तथाप्येते रेखोर्ध्वा वामतः स्थिता ॥ रेखोर्ध्वा दक्षिणे चैव स्वस्तिको वज्रिपादपः ॥ ३ ॥ अंकुशं च ध्वजं चैव मुकुटं चक्रमेव च ॥ सिंहासनं यमोदण्डं चामरं छत्रमुद्यतम् ॥ ४ ॥ नृचिह्नं यवमालेमे चतुर्विंशतिलक्षणाः ॥ क्रमेणैव प्रवर्तंते श्रीरामस्यांघ्रिदक्षिणे ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वरेखा यथा सव्ये वामतः सरयूस्तथा ॥ गोष्पदं पादमूले च तदाद्या सागराम्बरा ॥ ६ ॥ कुम्भं

चैव पताका च जम्बूफलमथोद्यतम् ॥ अर्द्धचंद्रोदरश्चैव षट्कोणं च त्रिकोणकम् ॥ ७ ॥ गदा तथा च जीवात्मा बिन्दुरंगुष्ठमध्यगः ॥ सख्या दक्षिणे कोणे लक्षणं ज्ञेयमुत्तमम् ॥ ८ ॥ गोपदाद्या तथा शक्तिः सुधाकुण्डमथोद्यतम् ॥ त्रिबली कामपात्रं च पूर्णसिन्धुसुतस्तथा ॥ ९ ॥ वीणा वंशो धनुस्तूणो मरालश्चन्द्रिकेति च ॥ चतुर्विंशतिचिह्नानि चरणे वामके विभोः ॥ १० ॥ यानि चिह्नानि रामस्य चरणे दक्षिणे सति ॥ तानि सर्वाणि जानक्याः पादे तिष्ठंति वामके ॥ ११ ॥ नूपुरों की शोभा कैसी है । मुनि जन मननशील, वे कलहंस हैं । तिनके बसाने को रघुनाथजी ने नीड झोंझ रचकर उसमें मुनियों के कलहंसरूपी मन बाँह दे बसाये हैं । नूपुर झोंझ । मुनिमन हंस । वेद-उपदेस बसाना अम्बरीष, प्रह्लादादि पर भक्त-वत्सलता सोई बाँह देना है ॥ २ ॥ कटि में मेखला किंकिणी है । शंखसम कण्ठ में हार है । बाहु-भूषण कंकण, भुजबल, अंगद, जोशन, कड़ा, पहुँची आदि पहनाये । उरमें श्रीवत्सचिह्न दक्षिणावर्त पीत रोमराजी है । जहाँ मन को हरनेवाला बघनहा है, सुवर्ण-मणियों से जड़ित कठुला है ॥ ३ ॥ सुन्दर ठोढ़ी, दाँत, ओठ, नासिका, कान, कपोल मुझे अति भाते हैं । भ्रू भौंहें सुन्दर हैं । करुणा रस से पूर्ण दया के भरे कमल-सम नेत्र हैं ॥ ४ ॥ भाल विशाल सुन्दर ऊँचा । उसपर ललित शोभायमान श्रेष्ठ मणियों और हेमतारों से गुही लटकनी माथे पर लटकती है । बालअवस्था के कोमल बालों की कवि उत्प्रेक्षा करता है, मानों दोनों गुरु बृहस्पति व शुक्र शनि और मंगल को आगे करके चन्द्रमा के मिलने को अन्धकार के गण समूह आया है । चन्द्रमा से तम डरता है । बृहस्पति देवगुरु हैं और शुक्र दैत्यगुरु वंश एक है । कश्यपादि इससे दोनों गुरु हैं । शनि ग्रहराज रवि के पुत्र हैं, इससे बड़े हैं । कुज भौम

चन्द्रमा के मित्र हैं, इससे इनको आगे करबाल सोई तमगण सो चन्द्रमा से मिलने आया है। सुवर्ण बृहस्पति है। हीरा शुक्र है। लालमणि मंगल है। नीलमणि शनि है। मुख चन्द्रमा है। विरोध मिटाने को आया है॥ ५ ॥ सब भूषण पहनाने पर जननी ने पीतपट ओढ़ाया। उसकी एक अभूत उपमा हुई। सो कहते हैं। श्याम तनु सोई नीलमेघ। उस पर भूषणरूप नक्षत्रों को देख पीतपट दामिनी ने मानों चंचल स्वभाव छोड़ स्थिर हो मेघ नक्षत्रादि को अपने में छिपा लिया है। जो न हुई, न हो, सो अभूत उपमा है। अंग-अंग पर समूह छवि ले ले मानों अनेकों कामदेव छाये हैं। उस श्रीरघुनाथजी के रूप की शोभा गुणों की प्रशंसा को न कर सके। गोसाईंजी कहते हैं, कहो तो ब्रह्मा के बनाये हों प्राकृत, यह तो स्वयं अव्यक्त है।

राग केदार

रघुबर बालछबि कहौं बरनि।
सकल सुख की सींव कोटि मनोज आभाहरनि॥ १ ॥
बसी मानहुँ चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि।
रुचिर नूपुर किंकिनी मनहरनि रुनुझुनु करनि॥ २ ॥
मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरत भूषन भरनि।
जनु सुभग सिंगार सिसु तरु फर्‌यो अद्भुत फरनि॥ ३ ॥
भुजनि भुजग सरोज नयनन बदन बिधु जीत्यो लरनि।
बसे कुहरनि सलिल नभ उपमा अपर दुरि डरनि॥ ४ ॥
लसत कर प्रतिबिम्ब मनिआँगन घुटुरुवनि चलनि।
जलजसम्पुट सुछबि भरि-भरि धरत ज्यों उर धरनि॥ ५ ॥

पुन्यफल अनुभवति सुतहि बिलोकि दसरथघरनि ।
बसत तुलसी हृदय प्रभु किलकनि ललित लरखरनि ॥ ६ ॥

श्रीरघुनाथ के बालस्वरूप की छवि वर्णन कर कहता हूँ। कैसी छवि है, सब सुख की मर्यादा है, और कोटियों काम की छवि हरनेवाली है ॥ १ ॥ चरण में जो लाली है सो मानों सूर्य को तज कर अरुणता पैरों में बसी है। नूपुर सुन्दर किंकिणी का रुनुझुनु शब्द मन को हरे लेता है ॥ २ ॥ सुन्दर श्याम कोमल तन में भूषणों की भरन पहिराव अनूप है। सो मानों शृंगार का छोटा वृक्ष अद्‌भुत फलों से फला है। शृंगार श्याम है, इससे शरीर छोटा वृक्ष है। भूषण फूल हैं। एक तो छोटे वृक्ष का फलना, दूसरे अनेक रंग के फल, इससे अद्‌भुत फलना है ॥ ३ ॥ उपमा-रूपी युद्ध में भुजों ने सर्पों को जीता, नयनों ने कमलों को जीता, मुखचन्द्र ने चन्द्रमा को जीता। लरनि समतारूप युद्ध में हार मान भाग गये। ते कहाँ रहे ? सर्प बिल में बसे, कमल जल में बसे, चन्द्र आकाश में बसा, और अन्य उपमा डरकर दूर कहे छिप रहीं ॥ ४ ॥ मणि-अँगनाई में बैयाँ चलने में हाथों का प्रतिबिम्ब कैसी शोभा देता है, मानों कमल के सम्पुट में सुन्दर छवि भर-भर धरणी अपने उर में धरती है। हाथों का प्रतिबिम्ब कमल का सम्पुट है। चलते में परछाहीं मिटती सो धरणी के उर में धरना है ॥ ५ ॥ श्रीकौशल्याजी पुत्र को देख पुण्य के फल का अनुभव करती हैं। उस अवसर का किलकना, सुन्दर लड़-खड़ाना प्रभु का, सो तुलसी के हृदय में बसता है ॥ ६ ॥

नेकु बिलोकि धौं रघुबरनि ।
चारि फल त्रिपुरारि तोको दिये कर नृपघरनि ॥ १ ॥
बाल भूषन बसन तन सुन्दर रुचिर रजभरनि ।

परसपर खेलनि अजिर उठि चलनि गिरिगिरि परनि ॥ २ ॥
झुकनि झाँकनि छाहँ सों किलकनि नटनि हठि लरनि ।
तोतरी बोलिन बिलोकनि मोहनी मनहरनि ॥ ३ ॥
सखिबचन सुनि कौसिला लखि सुढर पाँसे ढरनि ।
लेत भरि-भरि अंक सैंतत पैत ज्यों दुहुँ करनि ॥ ४ ॥
चरित देखत बिबुध तुलसी ओट दै जलधरनि ।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भयो चहै तरनि ॥ ५ ॥

किसी समय कौशल्याजी की नज़र अन्यत्र है। तब कोई सखी कहती है, हे नृपघरनि, चारों कुमारों को नेक देख तो। तुझे त्रिपुरारि ने चारों फल कर हाथ में दिये हैं ॥ १ ॥ बाल-अवस्था के सुन्दर भूषण बसन तिनमें रज लगी है। आँगन में परस्पर खेलते, उठके चलते, गिरगिर पड़ते, झुककर झाँकते और अपनी छाँहींसे लड़ते, किलक-किलक नाचते हैं। तोतली बोलन, विलोकन मोहनी और मनोहर है ॥ ३ ॥ सखी के वचन सुन कौशल्याजी गोद में भर लेती हैं, मा ों उठाना नहीं (जीते दाँव पर जैसे द्रव्य रक्खा, जिसका पाँसा पड़ा वह उस द्रव्य को दोनों हाथों से खींच लेता है। इसे पैत सैंतना कहते हैं सोई) जीते दाँव सा पैत दोनों हाथ से कौशल्याजी सैंतती हैं ॥ ४ ॥ ऐसे चरित्रों को मेघों की ओट से देख देवता तृप्त नहीं होते। इससे सुर सुरपति होना चाहते हैं, जिसमें हज़ार नेत्रों से देखें, और इन्द्र सूर्य हुआ चाहते हैं, जिसमें विश्व भर के नेत्रों से देखें ॥ ५ ॥

राग जैतश्री

भूमितल भूप के बड़भाग ।
राम लखन रिपुदवन भरत सिसु निरखत मन अनुराग ॥ १ ॥

बाल विभूषन लषत पाइ मृदु मंजुल अंग बिभाग।
दसरथ सुकृत मनोहर बिरवनि रूपकरह जनु लाग ॥ २ ॥
राजमराल बिराजत बिहरत जे हरहृदयतड़ाग।
ते नृपअजिर जानुकर धावत धरन चटक चल काग ॥ ३ ॥
सिद्ध सिहात सराहत मुनिमन बड़े भूप के भाग।
है बरु बिहँग बिलोकिय बालक बसि पुर उपबन बाग ॥ ४ ॥
परिजन सहित राव रानिन कियो मज्जन प्रेमप्रयाग।
तुलसी फल ताके चारो मनि मरकत पंकजराग ॥ ५ ॥

पृथ्वीतल में श्रीदशरथ महाराज के बड़े भाग्य हैं, इससे चारों कुमारों को अति अनुराग से देखते हैं ॥ १ ॥ बाल समय के सुन्दर भूषण कोमल शरीर पाकर विभाग कहे अलग-अलग कैसे लसत शोभा देते हैं, मानो दशरथ महाराज के सुकृतरूपी मनोहर सुन्दर वृक्षों के करह (फूलों की कली जब निकलने लगती हैं, करह कहते हैं) लगे हैं ॥ २ ॥ जो राजमराल हंसरूपी हर के उरमानसर में विहरते हैं, वे ही श्रीरघुनाथजी दशरथ महाराज की अँगनाई में। चटक गौरैया। चाल चंचल। काग के पकड़ने को। जानुकर बैयाँबैयाँ। धावत दौड़ते हैं। इससे भूप का बड़ा भाग्य है ॥ ३ ॥ सिद्ध सिहात वाञ्छा करते हैं कि ऐसा भाग्य हमारा न हुआ। मुनि सराहते हैं कि दशरथ महाराज सबसे धन्य हैं। देवता किन्नर नाग कहते हैं कि देवतनु छोड़ पशु-पक्षी होइये, सुरपुर छोड़ बरु बाग बन में बसिये, जिसमें रघुनाथजी के बालरूप को नेत्र भरकर देखिये ॥ ४ ॥ परिवार रानियों सहित राव श्रीचक्रवर्ती महाराज ने प्रेमरूपी प्रयाग में मज्जन किया। गोसाईंजी कहते हैं कि उससे उन्होंने चारों फल पाये। मरकत श्याममणि। पंकज-

राग हीरा। प्रेम-प्रयाग का रूपक। यथा प्रीति के अधीन दृष्टि, सो श्वेत रंग गंगाजी हैं। नेह की ललित दृष्टि, सो हरित रंग यमुनाजी हैं। लगन की उत्कण्ठा दृष्टि, सो अरुण रंग सरस्वतीजी हैं। प्रेम की विह्वल दृष्टि सो नील-श्वेत-अरुण मिली त्रिवेणी हैं। आसक्ति की एकटक दृष्टि, सो अचल अक्षयवट है। लाग की चोपदृष्टि, सो सुन्दर क्षेत्र है। अनुराग की मत्तदृष्टि माधव हैं। प्रणय की सौम्यदृष्टि, सो भरद्वाज हैं। जैसे प्रयाग में मन मग्न हुआ, तब चार कुमार सोई चार फल पाये। मरकतमणि श्रीराम, भरत पंकजराग, लक्ष्मण, शत्रुघ्न ॥ ५ ॥

राग आसावरी

छगनमगन अँगना खेलत चारु चारौ भाई।
सानुज भरत लाल लषन राम लोने लोने,
लरिका लखि मुदित मातुसमुदाई ॥ १ ॥
बालबसन भूषन धरे नखशिख छबिछाई,
नीलपीत मनसिज सरसिज मंजुल,
मालान मानो इन देहन ते दुति पाई ॥ २ ॥
ठुमुकि ठुमुकि पगु धरनि नटनि लरखरनि सुहाई,
भजनि मिलनि रूठनि ठिठकनि किलकनि
अवलोकनि बोलनि बरनि न जाई ॥ ३ ॥
जननी सकल चहुँ ओर आलबाल मनि अँगनाई,
दशरथसुकृत बिबुधबिरवा बिलसत
बिलोकि जनु बिधि बर बारि बनाई ॥ ४ ॥

हर बिरंचि हरि हेरि रामप्रेम बरबसताई,
सुखसमाज रघुराज के बरनत
विशुद्ध मन सुरनि सुमनझरिलाई ॥ ५ ॥
सुमिरत श्रीरघुबरनि की लीलालरिकाई,
तुलसिदास अनुराग अवध आनन्द
अनुभवत तब को सो अजहुँ अघाई ॥ ६ ॥

हाथ, पाँव, मुख, नेत्र, कान, रसना आदि छः अंगों से मग्न हो आँगन में खेलते सुन्दर चारो भाई भरत, शत्रुघ्न, श्रीराम, लक्ष्मण आदि लोने लोने लड़का देख सब माता आनन्द हैं ॥ १ ॥ बालसमय के भूषण-वसन धारण किये। उससे नख-शिख छवि छाई है। काम के सुन्दर नील पीत कमलों की माला ने मानों इन्हीं देहों से द्युति पाई है ॥ २ ॥ ठुमुक ठुमुक पग रखना, गिर पड़ना, सुन्दर नाचना, भागना, मिलना, रूठरहना, परस्पर ठठकना, प्रसन्न हो मिलना, किलकना, अवलोकना, बोलना आदि वर्णन नहीं हो सकता ॥ ३ ॥ मणिआँगना मानों आलबाल थाल्हा है। चारोपुत्र मानों दशरथ महाराज के सुकृत के कल्पवृक्ष हैं। तिनको विलसते देख ब्रह्मा ने मातारूप बारी बनाई चारो दिशा से रूँध दिया है ॥ ४ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि श्रीरघुनाथजी में प्रेम की बरबसता अधिकता देख रघुराज दशरथजी के सुखसमाज का विशुद्ध मन से वर्णन करते और देवता फूल बरसाते हैं। विशुद्ध परम पवित्र ॥ ५ ॥ श्रीरघुनाथ आदि चारो भाइयों की लड़काई लीला सुमिरते ही गोसाईंजी अनुरागरूप अवध में आनन्द का अनुभव तभी का ऐसा अजहूँ आज भी अघाकर करते हैं ॥ ६ ॥

राग विलावल

आँगन खेलत आनन्द कन्द ।

रघुकुलकुमुद सुखद चारु चन्द ॥ १ ॥

सानुज भरत लखन संग सोहैं ।

सिसु भूषन भूषित मन मोहैं ॥ २ ॥

तनु दुति मोर चन्द्र जिमि झलकै ।

मनहुँ उमँगि अँग अँग छबि छलकै ॥ ३ ॥

कटि किंकिनि पग पैंजनि बाजैं ।

पंकजपानि पहुँचिया राजैं ॥ ४ ॥

कठुला कंठ बघनहा नीको ।

नयनसरोज मैन सरसी को ॥ ५ ॥

आनन्द के कन्दमूल वे आँगन में खेलते हैं । रघुकुल कोकी के लिये सुन्दर चन्द्रसम सुखदायक हैं ॥ १ ॥ सहित अनुज शत्रुघ्न, भरत, लक्ष्मण संग में शोभित हैं । बाल समय के भूषण भूषित अंग-अंग में पहने हैं, सो मन को मोहते हैं ॥ २ ॥ तनु की द्युति मोर की चन्द्रिका सम झलकती है । कैसी द्युति है, मानों छवि उमँग कर अंग अंग पर छलक रही है ॥ ३ ॥ कटि में किंकिणी और पैरों में पैंजनी बजती है । कमल से कर में पहुँची राजती है ॥ ४ ॥ कंठ में कठुला उसमें बघनहा राजता है । सुन्दर नयन कामसरोवर के कमल ऐसे हैं ॥ ५ ॥

लटकन लसत ललाट लटूरी ।

दमकत द्वै-द्वै दतुरियाँ रूरी ॥ ६ ॥

मुनिमन हरत मंजु मसिबुन्दा ।
ललित बदन बलि बालमुकुन्दा ॥ ७ ॥

कुलही चित्रबिचित्र झँगूली ।
निरखत मातु मुदित मन फूली ॥ ८ ॥

गहि मनि खम्भ डिम्भ डगडोलत ।
कलबल बचन तोतरे बोलत ॥ ९ ॥

किलकत झुकि झाँकत प्रतिबिम्बनि ।
देत परमसुख पितु अरु अम्बनि ॥१०॥

सुमिरत सुषमा हिय हुलसी है ।
गावत प्रेम पुलकि तुलसी है ॥ ११ ।

माथे पर बालों की लटुरी उनमें मणि-हेम की लटकनी शोभित है। रूरी सुन्दर। चमकदार दो दो दतियाँ विराजती हैं ॥ ६ ॥ मसिबिंदु सुन्दर। जो मुनियों का मन हरता है। सुन्दर बदन बालरूप मुकुन्द पर माता बलिहारी है ॥ ७ ॥ कुलही टोपी जिसमें चित्रसारी है। झँगुली विचित्र। जिसमें विशेष चित्रता है। उसको निरखती माता आनन्द मन फूली है ॥ ८ ॥ मणि-खम्भ पकरे। डिंभ कहे बालक ते डगडोलते में। कल कहे सुनने में सुन्दर। बल सो जो न समझ पड़े। ऐसे सुन्दर तोतले वचन बोलते हैं। राग के तले के वर्ण उच्चार तोतले ॥ ९ ॥ प्रतिबिम्ब को झुककर झाँकते, तब किलकते हैं। इससे माता-पिता को परम सुख देते हैं ॥ १० ॥ स्मरण-मात्र से सुषमा शोभा हृदय में हुलसती है। इससे प्रेम में मग्न हो तुलसी गाता है ॥ ११ ॥

राग कान्हरा

ललित सुतहि लालति सचुपाये।
कौशल्या कल कनक अजिर महँ,
सिखवत चलनि अँगुरिया लाये ॥ १ ॥
कटि किंकिनि पैंजनियाँ पाँयन,
बाजत रुनुझुनु मधुर रिंगाये।
पहुँची करनि कंठ कठुला बन्यो,
केहरिनख मनि जटित जराये ॥ २ ॥
पीत पुनीत बिचित्र झँगुलिया,
सोहत स्याम शरीर सुहाये।
दतियाँ द्वै-द्वै मनोहर मुख छवि,
अरुन अधर चित लेत चोराये ॥ ३ ॥
चिबुक कपोल नासिका सुन्दर,
भाल तिलक मसि बिंदु बनाये।
राजत नयन मंजु अंजन जुत,
खंजन कंज मीन मद नाये ॥ ४ ॥
लटकन चारु भृकुटिया टेढ़ी,
मेढ़ी सुभग सुदेस सुभाये।
किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि,
डरपत जननी पानि छुटाये ॥ ५ ॥

गिरि घुटुरुवन टेकि उठि अनुजन,
तोतरि बोलत पूप देखाये।
बालकेलि अवलोकि मातु सब,
प्रेम मगन आनँद न अमाये ॥ ६ ॥
देखत नभ घन ओट चरित मुनि,
जोग समाधि बिरति बिसराये।
तुलसिदास जे रसिक न यहि रस,
ते जन जड़ जीवत जग जाये ॥ ७ ॥

श्रीकौशल्याजी सचु कहे आनन्द पाये ललित सुत रघुनाथजी को लालति कहे दुलरावती हैं। कल सुन्दर। कनकमणिजटित अँगनाई में प्रभु की अँगुरिया पकड़े चाल सिखाती हैं ॥ १ ॥ मधुर रिंगाये चलाने से कटि में किंकिणी पैरों की पैंजनी रुनुझुन बजती हैं। करमें पहुँची, कंठ में कठुला बना है। उसमें बघनहा जड़ा कनकमणियों से जटित है ॥ २ ॥ पवित्र कौशेय वस्त्र, पीत रंग की झँगुली सुन्दर श्याम शरीर पर शोभित है। मुख की मनोहर छवि उसमें दो-दो दतियाँ उसपर लाली अधर की चित्त को चुराये लेती है ॥ ३ ॥ ठोढ़ी, कपोल, नासिका सुन्दर है। माथे पर तिलक। तहाँ मसिबिंदु डिठौना बना है। अञ्जन सहित नयन कैसे राजते हैं, जो कंज, मीन खंज का मद नवाये हैं ॥ ४ ॥ टेढ़ी भौंहों पर सुन्दर लटकनी है। उस पर मेढ़ी गुहे बाल हैं। सुदेस कहे माथे पर शोभा देते हैं। सुभाय कहे सहज ही में शोभा देते हैं। माता की चुटकी सुन-सुन किलक किलक कर नाचते हैं। हाथ छोड़े पर जननी मन में डरती हैं कि ऐसा न हो कि गिर पड़ें ॥ ५ ॥ गिर कर घुटुनों

से टेक सहित अनुज उठते। जब माता मालपुआ दिखाती हैं, तब तुतलाकर बोलते हैं इत्यादि। बालकेलि देख सब माता प्रेम में मग्न हैं। आनन्द उर में नहीं अमाता ॥ ६ ॥ आकाश में मेघओट ते मुनिजन ने चरित देख योग समाधि वैराग्य बिसार दिये। गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु की प्रेम भक्ति-रस में जो रसिक न हुए, वे जन जड़ हैं। उनका जीवन जाये वृथा है। इहाँ भक्ति के आगे ज्ञान तुच्छ है। प्रमाण महारामायणे—ये रामभक्तिममलां सुविहाय रम्यां ज्ञाने रताः प्रतिदिनं परिक्लिष्टमार्गे ॥ आरान्महेन्द्रसुरभिं परित्यज्य मूर्खा अर्कं भजन्ति सुभगे सुखदुग्धहेतुम् ॥ ७ ॥

राग ललित।

छोटी छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीली छोटी
नख दुति मोती मानो कमलदलन पर।
ललित आँगन खेलैं ठुमुकि ठुमुकि चलैं
झुंझुन झुंझुन पायँ पैंजनी मृदु मुखर ॥ १ ॥
किंकिनि ललित कटि हाटक जटित मनि
मंजु करकंजन पहुँचियाँ रुचिरतर।
पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली
बालक दामिनि ओढ़ी मानों बारे वारिधर ॥ २ ॥
उर बघनहा कंठ कठुला झँडूले केस
मेढ़ी लटकनि मसिबिंदु मुनिमन हर।
अँजनरंजित नैन चित चोरै चितवनि
मुखसोभा पर वारौं अमित असमसर ॥ ३ ॥

चुटुकि बजावती नचावती कौसल्या मातु
बालकेलि गावति मल्हावति सुप्रेम भर।
किलकि किलकि हँसै द्वै द्वै दँतुरियाँ लसैं
तुलसी के मन बसैं तोतरे बचन बर ॥ ४ ॥

छबीली उँगली छोटी-छोटे पैरों में। उन पर नख की द्युति मानों कमल दलों पर मोती हैं। सुन्दर आँगन में खेलते, ठुमुक ठुमुक चलते में पाँवों की पैंजनी झुंझुन झुंझुन मृदु मधुर मुखर शब्द कर रही हैं॥ १॥ कटि में सुन्दर किंकिणी शोभित हैं। हाथों में हेम-मणि जटित सुन्दर पहुँची शोभित है। साँवले शरीर पर शोभा देनेवाली महीन पीत रंग की झँगुली शोभित हैं। सो मानों छोटा दामिनी छोटा मेघ ओढ़े है॥ २॥ कंठमें कठुला, उसमें बघनहा, सो उर पर शोभित। गभुवारे बालों की लटकनी-युत मेढ़ी माथे पर। मसिबिन्दु मुनियों का मन हरता अंजनयुत नयनों की चितवन चित्त को चोराय लेती है। मुख-शोभा पर काम अमित वारों॥ ३॥ श्रीकौशल्याजी प्रेम की भरी बालकेलि दुलरा कर गाती और चुटकी बजाती हैं। उससे प्रभु नाचते हैं और किलक किलक हँसते हैं। उसमें दो दो दतियाँ मुख में शोभा देती हैं। श्रेष्ठ तोतले बचन बोलते हैं। सो तुलसी के मन में बसते हैं॥ ४॥

सादर सुमुखि बिलोकि राम सिसुरूप अनूप भूप लिये कनियाँ।
सुंदर स्यामसरोजबरन तन नखसिख सुभग सकल सुखदनियाँ १
अरुन चरन नख जोति जगमगत रुनुझुनु करत पायँ पैंजनियाँ।
कनक रतन मनिजटित रटतकटि किंकिनि कलित पीतपट तनियाँ२

पहुँची करनपदिक केहरिनख उर कठुला कंठ मंजु गजमनियाँ।
रुचिर चिबुक रद अधर मनोहर ललितनासिका लसत नथुनियाँ ३
बिकट भृकुटि सुषमानिधि आनन कल कपोल कानन नगफनियाँ।
भाल तिलक मसिबिन्दु बिराजत सोहत सीस लाल चौतनियाँ ४
मनमोहनी तोतरी बोलनि मुनिमनहरनि हँसनि किलकनियाँ।
बालसुभाय बिलोल बिलोचन चोरत चितहि चारु चितवनियाँ ५
सुनि कुलबधू झरोखन झाँकत रामचन्द्रछबि चन्द्रबदनियाँ।
तुलसिदास प्रभु देखि मगन भइप्रेमबिबस कछुसुधि न अपनियाँ ६॥

सखियों की उक्ति कुलवधुओं से, कहती हैं—हे सुमुखि, आदर सहित देख तो अनूप बालरूप श्रीराम को भूप कनियाँ में लिये हैं। सुन्दर श्याम कमल वर्ण तन में सब अंग सुन्दर, सब सुख के दानी हैं॥ १॥ लाल चरणकमलों में मोतियों की सी ज्योति नख जगमगा रहे हैं। पैंजनी रुनझुन करती हैं। सुन्दर कनकमणि रत्न-जटित किंकिणी कटि में रटत वारंवार शब्द करती है। कलित शोभित पीतपट, तनियाँ कछनी शोभित है॥ २॥ कर में पहुँची, उर पर पदिकहार, बघनहायुत कठुला, कण्ठ में गजमोतियों का कण्ठा शोभित है। सुन्दर ठोढ़ी, दाँतों सहित ओठ मन हरते हैं। सुन्दर नासिका में बुलाक शोभित है॥ ३॥ टेढ़ी भौंहें, शोभा-निधि मुखारविन्द, सुन्दर कपोल। कानों में नगफनियाँ कर्ण-भूषण सोहते हैं। माथे पर तिलक, मसिबिन्दु डिठौना विरा-जता है। शीश पर लाल रंग की चौतनियाँ चौगोशिया टोपी सोहती है॥ ४॥ मन को मोहनेवाली तोतली बोलनि, हँसनि, किलकनि मुनियों के मन मोहती है। बाल स्वभाव से चञ्चल नेत्रों की सुन्दर चितवन चित्त को चोराये लेती है॥ ५॥

इत्यादि सखी के वचन सुन कुल की वधू झरोखे से झाँकती हैं। श्रीरामचन्द्र की छवि देख चन्द्रवदनियाँ चन्द्रवदनी स्त्री। गोसाईंजी कहते हैं, प्रभु की छवि देखते ही स्त्री प्रेम में मग्न हो गई। कुछ भी अपनी सुधि न रही। यह सत्योपाख्यान में प्रसिद्ध है॥ ६॥

राग बिलावल

सोहत सहज सोहाए नैन।

खंजन मीन कमल सकुचत तब जब उपमा चाहत कबि दैन॥ १॥
सुन्दर सब अंगनि सिसु भूषन राजत जनु सोभाआय लैन।
बड़ो लाभ लालची लोभबस रहि गये लखि सुषमा बहु मैन॥ २॥
भोर भूप लिये गोद मोद भरे निरखत बदन सुनत कल बैन।
बालकरूप अनूप रामछबि निबसत तुलसिदास उरऐन॥ ३॥

बिना अंजन सोहते हैं, इससे सहज सोहाये नयनों की उपमा देने को कवि जब चाहता है, तब खञ्जन, मीन, कमल संकोच को प्राप्त होते हैं॥ १॥ सुन्दर सब अंगों में बालविभूषण कैसे राजते हैं, मानों भूषण नहीं हैं, अनेक रूप धरे काम है, सो यहाँ शोभा लेने को आया है। तहाँ बहुत सुषमा शोभा देख बड़ा लाभ मान लालच-वश पड़ यहाँ प्रभु के रूप में अंगों पर रह गया॥ २॥ प्रभात काल भूप श्रीदशरथ महाराज मोद कहे आनन्दवश गोद में लिये प्रभु के सुखसदन वदन को निरखते और सुन्दर अमृत-मय मधुर वचन सुनते हैं। प्रभु का बालरूप ऐसा है जिसकी छवि अनुपम है। सो तुलसीदास के उरऐन हृदयमन्दिर में सदा निबसत बसती है। यह पद द्वारदर्शन का है, जो कवितावली में मंगलाचरण है। यहाँ बालअवस्था समाप्त। आगे पौगण्ड है॥ ३॥

राग ललित ।

भोर भयो जागहु रघुनन्दन । गत ब्यलीक भक्तनउरचन्दन ॥१॥
ससिकर हीनछीन दुति तारे। तमचुर मुखर सुनहु मेरे प्यारे॥२॥
बिलसत कंज कुमुद बिलखाने । लै परागरस मधुप उड़ाने ॥३॥
अनुज सखा सब बोलन आये। बन्दिन अति पुनीत गुन गाये॥४॥
मनभावतो कलेऊ कीजै । तुलसिदास कहँ जूठनि दीजै ॥५॥

माता कहती हैं—हे रघुनन्दन, भोर भया, जागो। कैसे हो तुम, व्यलीक जो है कपट, सो गत कहे जाता रहा है जिनके, ऐसे जो भक्त हैं, तिनके उर के चन्दन हो ॥ १ ॥ चन्द्रमा की किरण हीन हुई । नक्षत्रों का प्रकाश थोड़ा रहा । तमचुर कुक्कुट बोलते हैं । उसे सुनो हे मेरे प्यारे ॥ २ ॥ कमल प्रफुल्लित हुए । कोकाबेली संपुट हुई । कमलकोश से रस धूल ले भ्रमर उड़े ॥ ३ ॥ अनुज और सखा सब तुमको बुलाने आये । अत्यन्त पवित्र यश वंदीजन गा रहे हैं ॥ ४ ॥ जो इच्छा हो, सो कलेवा करके तुलसीदास को जूठन दीजिये ॥ ५ ॥

प्रात भयो तात बलि मातु बिधुबदन पर,
मदन वारौं कोटि उठौ प्रानप्यारे ।
सूत मागध बन्दी बदत बिरदावली,
द्वार सिसु अनुज प्रियतम तिहारे ॥ १ ॥
कोक गत सोक अवलोकि ससि छीन छबि,
अरुनमय गगन राजत रुचिर तारे ।

मनहुँ रबिबाल मृगराज तमनिकर करि,
दलित अति ललित मनिगन बिथारे ॥ २ ॥
सुनहु तमचुर मुखर कीर कलहंस पिक
केकि रवकलित बोलत बिहँग प्यारे ।
मनहुँ मुनिबृन्द रघुबंसमनि रावरे,
गुनत गुन आश्रमनि सपरिवारे ॥ ३ ॥
सरनि बिकसत कंजपुञ्ज मकरन्द बर,
मंजुतर मधुर मधुकर गुञ्जारे ।
मनहुँ प्रभुजन्म सुनि चैन अमरावती,
इन्दिरानन्द मन्दिर सँवारे ॥ ४ ॥
प्रेमसंमिलित बर बचन रचना अकनि,
राम राजीवलोचन उघारे ।
दास तुलसी मुदित जननि करैं आरती,
सहज सुन्दर अजिर पाँव धारे ॥ ५ ॥

हे तात, प्रात हुआ। मैं मातु बलि जाऊँ। तुम्हारे चंद्रवदन पर कोटियों मदन वारूँ। हे प्राणप्यारे, उठो। पौराणिक कहे कथक भाट, सो विरदावली गान कर रहे हैं। द्वार पर बालक प्रिय सखा अनुज खड़े हैं॥ १॥ शशि की छविहीन देख चक्रवाक शोक-रहित हुआ। भानु उदय आगम की ललाई में आकाश में नक्षत्र कैसे राजते हैं, मानों बालरविरूप सिंह ने तमसमूह हाथियों को विदार माथा फाड़ मणि सुन्दर गजमुक्ता बिथराये हैं। रवि सिंह। तम हाथी। नक्षत्र मुक्ता ॥ २॥ कुक्कुट बोलते और शुक, हंस, कोयल, मोर रवकलित कहे सुन्दर शब्द करते हैं। तिनके

बच्चे बोलते हैं, सो सुनो। हे रघुवंशमणि, मानो आपका गुणानुवाद मुनिजन परिवार सहित आश्रमों में गुनते कहे वर्णन करते हैं। पक्षी मुनि। झोंझ आश्रम। शब्द गुण-वर्णन ॥ ३ ॥ तड़ागों में विपुल कमल फूले हैं। तिनके श्रेष्ठ रस के लिए तिन पर मंजुतर कहे अतिसुन्दर भौंरे मधुर-मधुर गुंजते हैं। सो मानों प्रभु का जन्म सुन देवपुरी में आनन्द हुआ, और यह तिन देवतों का नृत्यगान है। कमल फूले सो मानों इन्दिरा लक्ष्मी ने आनन्द-मंदिर सँवारे हैं ॥ ४ ॥ प्रेम सहित श्रेष्ठ वचनों की रचना सुन श्रीरघुनाथजी ने कमल-से नेत्र खोले। गोसाईंजी कहते हैं कि मुदित मन से माता आरती करती भईं। सहज ही में सुन्दर। आँगन को आते भये ॥ ५ ॥

जागिये कृपानिधान जानराय रामचन्द्र,
जननी कहैं बारबार भोर भयो प्यारे।
राजिवलोचन बिसाल प्रीतिबापिकामराल,
ललित कमल बदन उपर मदन कोटि वारे ॥ १ ॥
अरुन उदित बिगत सरबरी ससांककिरन,
हीनदीन दीपजोति मलिनदुति समूह तारे।
मनहुँ ज्ञानघन प्रकास बीते सब भवबिलास,
आस त्रास तिमिर तोष तरनि तेज जारे ॥ २ ॥
बोलत खगनिकर मुखर मधुकर परतीतिसुनहु,
स्रवन प्रान जीवनधन मेरे तुम बारे।
मनहु बेद बन्दी मुनिबृन्द सूत मागधादि,
बिरद बदत जय जय जय जयति कैटभारे ॥ ३ ॥

बिकसित कमलावली चले प्रपुञ्ज चंचरीक,
गुंजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे।
जनु बिराग पाइ सकल सोक कूप गृह बिहाइ,
भृत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिहारे ॥ ४ ॥
सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसयदयाल,
भागे जंजाल बिपुल दुखकदम्ब टारे।
तुलसिदास अति अनन्द देखिकै मुखारबिन्द,
छूटे भ्रम-फन्द परमद्वन्द भारे ॥ ५ ॥

हे कृपानिधान, हे ज्ञानराय। ज्ञान ब्रह्मा, शिव आदि तिनके राजा। अथवा कृतज्ञ। राय रामचन्द्र। प्यारे! भोर भयो, जागिये। इत्यादि बारबार जननी कहती हैं। राजीव कमलसम सुन्दर नेत्र। प्रीति-रूपी बावली के हंस। ललित सुन्दर। वदन-कमल पर कोटियों मदन वारे हैं ॥ १ ॥ अरुण सूर्य उदय हुआ। शर्वरी जो रात्रि सो बिगत कहे बीत गई। शशांक चन्द्रमा किरण हीन हुआ। दीन दीप की ज्योति मलिन हुई। तारों नक्षत्रों का प्रकाश मलिन हुआ। सूर्य नहीं, मानों ज्ञानघन कहे समूह प्रकाश हुआ। इससे रात्रि नहीं है। भव के विलास में "मेरा-तेरा" इत्यादि का भाव बीत गया। आस त्रासरूप अंधकार को तोषरूप सूर्य के तेज ने जारे भस्म किया ॥ २ ॥ हे प्राण जीवन-धन, मेरे वचनों की प्रतीति करो। पक्षी-समूह शब्द कर रहे हैं। भ्रमर गुंजार रहे हैं। तिनको श्रवण दे सुनो। मानों मुनि वेदध्वनि और वंदी, सूत, मागध आदि विरदावली कहते हैं। उसमें जय जय ध्वनि होती है। यहाँ हंस, तोते मुनि वेदध्वनि करते हैं। मुर्गा वंदी विरदावली कहते हैं। कोकिला, मोर पौराणिक यश वर्णन करते हैं। भ्रमर मागध

कीर्ति गाते हैं। यहाँ मेरे बारे शब्द में माधुर्य और कैटभारे में ऐश्वर्य है ॥ ३ ॥ विकसित फूले कमलों की पंक्ति में साँझ के संपुट में पड़कर भ्रमर जो बन्द रहे, ते निकस चले। कमलों को त्याग कर भ्रमरसमूह न्यारे हो मधुर ध्वनि से गुंजन करते हैं, मानों कमलों को त्याग भृङ्ग नहीं गुंजते, भृत्य तुम्हारे सेवक हैं। तुम्हारी कृपा से वैराग्य पाकर शोक कोप-रूपी घर विहाय छोड़कर प्रेम में मग्न तुम्हारे गुणानुवाद को गुनते कहे गान करते हैं ॥ ४ ॥ रसाल प्रिय वचन सुन अतिशय दयालु श्रीरघुनाथजी जागे। गोसाईंजी कहते हैं, प्रभु का कमलवदन देख दास अत्यन्त आनन्द हुए; क्योंकि जंजाल जो मोह, सो भागा। उससे वे भ्रम-फन्द से छूटे। परमद्वन्द्व राग-द्वेष भारे भारी। इत्यादि दुःख-कदम्ब समूह। उसे टारे अर्थात् छोड़ाइ दिया। इससे दास आनन्द हुए ॥ ५ ॥

बोलत अवनिपकुमार ठाढ़े नृपभवन द्वार,
रूपसील गुनउदार जागहु मेरे प्यारे।
बिलखित कुमुदिनि चकोर चक्रबाक हरष भोर,
करत सोर तमचुर खग गुंजत अलिन्यारे ॥ १ ॥
रुचिर मधुर भोजन करि भूषन सजि सकल अंग,
रंग अनुज बालक सब बिबिधबिधि सँवारे।
करतल गहि ललित चाप भंजन रिपुनिकरदाप,
कटितट पटपीत तून सायक अनियारे ॥ २ ॥
उपबन मृगया बिहार कारन गवने कृपाल,
जननीमुख निरखि पुन्यपुञ्ज निज बिचारे।

तुलसिदास संग लीजै जानि दीन अभय कीजै,
दीजै मति बिमल गावै चरित बर तिहारे ॥ ३ ॥

राजभवन के द्वार पर राजों के बालक खड़े बोल रहे हैं। तुम्हारे दर्शन के हेतु। रूप आदि माधुर्य गुणों के धाम। शील आदि उदार गुणों के धाम हैं। मेरे प्यारे, जागो। भोर हुआ। कुमुदिनि कोकाबेली और चकोर विलखित कहे दुःखित हुए। भोर होने से चक्रवाक को वियोग से संयोग हुआ, इससे वह हर्षित हुआ। तमचुर कुक्कुट बोल रहे हैं। अपर पक्षी बोलते हैं। अलि भ्रमर कमलों से निकल न्यारे बाहर गूँजते हैं। इत्यादि वचन सुन जागे इति शेषः। इसका अध्याहार कहा ॥ १ ॥ अनुजों और बालकों के संग सुंदर मधुर भोजन कर सब भूषण अंगों में सज संग में अनुज और अपर बालकों को अनेक विधि से सँवारे कर में धनुष लिये सुन्दर जोड़ी। रिपुगन के दाप अहंकार को दलनेवाली है। कटि में पीतपट और तरकस। जिनमें शायक बाण अनियारे पैने हैं ॥ २ ॥ उपवन को मृग के शिकार के लिए कृपालु रघुनाथजी गवने जाते भये। उस अवसर में प्रभु का मुख देख जननी ने अपने पुण्य के पुंज समूह विचारे। मृग मारि कृतार्थ करते हैं, इससे कृपालु कहे। गोसाईंजी कहते हैं कि दीन जान मुझको संग लीजिये। कृपा कर भवभय से अभय कीजिये और निर्मल मति दीजिये, जिससे तुम्हारे वर कहे श्रेष्ठ चरित गाऊँ ॥ ३ ॥

राग नट

खेलन चलिय आनँदकन्द।
सखा प्रिय नृपद्वार ठाढ़े बिपुल बालकबृन्द ॥ १ ॥
तृषित तुम्हरे दरस कारन चतुर चातक दास।

बपुष बारिद बरषि छबिजल हरहु लोचनप्यास ॥ २ ॥
बन्धुबचन बिनीत सुनि उठे मनहुँ केहरिबाल ।
ललित लघु सर चाप कर उर नैन बाहु बिसाल ॥ ३ ॥
चलत पद प्रतिबिम्ब राजत अजिर सुषमापुंज ।
प्रेमबस प्रतिचरन महि मनु देत आसनकंज ॥ ४ ॥
देखि परमबिचित्र सुषमा चकित चितवहिं मात ।
हरषबिबस न जात कहि निज भवन बिहरहु तात ॥ ५ ॥
देखि तुलसीदास प्रभुछबि रहे पल सब रोकि ।
थकित निकर चकोर मानहुँ सरदइंदु बिलोकि ॥ ६ ॥

भरतादि की उक्ति है। आनन्द के कन्द कहे मूल या आनन्द-जलदायक मेघ श्रीरघुनाथजी, खेलने को चलिये। तुम्हारे प्यारे सखा और बालकों के वृन्द राजद्वार पर खड़े हैं तुम्हारे लिए ॥१॥ चतुर अनन्य चातक दास। ते तृषित कहे दरश के प्यासे हैं। स्वाती के समान अपने वपुष देहरूप वारिद मेघ से छविरूप जल बरसकर तिनके नेत्रों की प्यास हरो ॥ २ ॥ अनुज भरतादि के कोमल वचन सुन उठे। मानों केहरि कहे सिंह के बालक। ललित लघु कहे सुन्दर छोटे-छोटे बाण धनुष कर में सोहते हैं। हृदय चौड़ा, बड़े-बड़े नेत्र, विशाल कहे लम्बायमान सुन्दर भुजा॥ ३ ॥ अजिर आँगन। मणिमय। जिसमें शोभासमूह है, उसमें चलते हैं। पद का प्रतिबिम्ब पड़ता है, सो कैसा राजता है, मानो आपको कठोर जान पृथ्वी प्रेमवश प्रभुके प्रतिचरण-पद प्रति पद कमल का आसन देती है ॥ ४ ॥ प्रभु की परमविचित्र शोभा निरख माता चकित चितवत। प्रेमवश यह नहीं कह सकती कि हे तात, निज भवन में विहरो, बाहर न जाओ ॥ ५ ॥ गोसाईंजी

कहते हैं, उस समय प्रभु की छवि देख पलक रोक सब एकटक हो रहे हैं। कैसे ? जैसे शरद ऋतु की पूर्णिमा को पूर्ण चन्द्रमा निरख अनेक चकोर थकित हो रहे हों। यहाँ बाल-पौगण्ड लेकर बालचरित-चन्द्रमा की पूर्णिमा है। आगे पौगण्डकिशोर-संधि है ॥ ६ ॥

विहरत अवधबीथिन राम।
संग अनुज अनेक सिसु नवनीलनीरदस्याम ॥ १ ॥
तरुन अरुन सरोज पद बनि कनकमय पदत्रान।
पीतपट कटि तून बर कर ललित लघु धनु बान ॥ २ ॥
लोचनन को लहत फल छबि निरखि पुरनरनारि।
बसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि ॥ ३ ॥

भरतादि अनुज और अनेक बालक संग लिये नवीन मेघसम श्याम श्रीरघुनाथजी अवध की वीथियों गलियों में विहरते हैं ॥ १ ॥ तरुण नवीन। अरुण लाल कमलसम पैरों में सुवर्णतारों से रचित पदत्राण पनहीं पहने शोभित कटि में पीतपट और तरकस धारण किये। श्रेष्ठ करकमलों में छोटे-छोटे धनुषबाण लिये ॥ २ ॥ सो छवि निरख पुर के नरनारी नेत्रों का फल पाते हैं। गोसाईंजी कहते हैं, अवधेश महाराज के चार पुत्र मेरे उर में विहरते हैं ॥ ३ ॥

जैसे राम ललित तैसे लोने लषन लाल।
जैसेई भरत सील सुषमासनेहनिधि
तैसेई सुभग संग सत्रुसाल ॥ १ ॥
धरे धनु सर कर कसे कटि तरकसी,
पीरे पट ओढ़े चलैं चारु चाल।

अंगअंग भूषन जराय के जगमगात,
हरत जन के जी को तिमिरजाल ॥ २ ॥
खेलत चौहट घाट बीथिन बाटिकन
प्रभु सिव सुप्रेम मानसमराल ।
सोभा दान दै दै सनमानत जाचकजन
करत लोक लोचननि निहाल ॥ ३ ॥
रावन दुरित दुख दलैं सुर कहैं आजु
अवध सकल सुख को सुकाल ।
तुलसी सराहै सिद्धि सुकृत कौसल्याजी के
भूरि भाग भाजन भुआल ॥ ४ ॥

जैसे सुन्दर श्रीरघुनाथजी, वैसे लोने लावण्ययुत लक्ष्मणलाल। वैसे ही शीलशोभा सनेह के समुद्र भरतजी। वैसे ही सुन्दर संग में शत्रुघ्नजी ॥ १ ॥ धनुष बाण हाथ में लिये, कटि में तरकस कसे, पीताम्बर ओढ़े, सुन्दर हंस की सी चाल चलते। हेममणियों के जड़ाऊ भूषण अंग-अंग में जगमगाते हैं। सो जनन के जी का तिमिरजाल कहे अज्ञान हरते हैं ॥ २ ॥ शिवजी के मनरूपी मानसर के हंस प्रभु सरयू के घाटों में, चौक में, गलियों में, बागों में खेलते हैं। शोभारूपी दान दे दे अनुरागी याचकों का सम्मान और समग्र लोक जनों के नेत्रों को निहाल करते हैं ॥ ३ ॥ देवता कहते कि अयोध्याजी में तो सब सुख का सुकाल है; परन्तु हमको रावण-पापरूपी दुःख है। उसे आज ही दलें, जिसमें त्रैलोक्य में सुख का सुकाल हो। गोसाईंजी कहते हैं कि श्रीदशरथ महाराज और कौशल्याजी बड़े भाग्य के पात्र हैं। तिनको सुकृती सिद्धजन सराहते हैं ॥ ४ ॥

ललित ललित लघु लघु धनु सर कर
　　तैसी तरकस कटि कसे पट पियरे।
ललित पनहीं पाँय पैंजनी किंकिनि धुनि
　　सुनि सुख लहै मन रहै नित नियरे॥ १ ॥
पहुँची अंगद चारु हृदय पदिकहारु
　　कुण्डल तिलक छबि गड़ी कबिजियरे।
सिरसि टोपी लाल नीरजनयन बिसाल
　　सुन्दर बदन ठाढ़े सुरतरु सियरे॥ २ ॥
सुभग सकल अंग अनुज बालक संग
　　देखि नर नारि रहे ज्यों कुरंग दियरे।
खेलत अवध खोरि गोली भौंरा चकडोरि
　　मूरति मधुर बसैं तुलसी के हियरे॥ ३ ॥

कर में छोटे बाण धनुष, कटि में छोटी तरकसी, पीतपट बाँधे, पैरों में जड़ाऊ पनहीं और पैंजनी, कटि में किंकिणी की ध्वनि सुन सुख को पाकर मन सदा समीप रहता है॥ १॥ कर में पहुँची, भुजाओं में अंगद बहूटा, उर पर पदिकहार, कानों में कुण्डल, भाल पर तिलक की छवि कवि के जी में बसी है। सिर पर लाल टोपी धारण किये। कमल से नयन। वह प्रभु सुरतरु कल्पवृक्ष सियरे कहे उसकी छाँह में खड़े हैं॥ २॥ अनुज और बालकों के संग सब अंग सुन्दर प्रभु को देख सब नर नारी कैसे रहे, यथा मृग दीपक को एकटक हो देखता है। अवध की गलियों में गोली, भौंरा-चकई खेलते हैं। ऐसी मधुर मूर्ति प्रभु की तुलसी के हिय में बसती है॥ ३॥

छोटिए धनुहियाँ पनहियाँ पगन छोटी,
छोटिए कछोटी कटि छोटिए तरकसी।
लसत झँगूली झीनी दामिनि की छबि छीनी
सुन्दर बदन सिर पगिया जरकसी॥ १॥
बय अनुहरत बिभूषन बिचित्र अंग
जोहे जिय आवत सनेह की सरकसी।
मूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै
जानै सोई जाके उर कसकै करक सी॥ २॥

सुन्दर छोटी धनुही कर में, पगों में सुन्दर छोटी-छोटी पनहीं, कटि में कछनी और सुन्दर छोटी सी तरकसी, सुन्दर श्याम तनु में पीत रंग की महीन झँगुली, जो दामिनी की छवि छीने है, सुन्दर मुख, सिर पर जरकसी पाग है॥ १॥ अवस्था की अनुहार सुन्दर भूषण अंग में। जिनको देखने से सरकसी कहे ज़बरदस्ती सनेह हृदय में आता है। उस मूर्ति की सूरति तुलसी से नहीं कही जाती। यह गति सो जानै, जिसके उर में करक सी कसके छबि। सो मूर्ति की सूरति को जाने॥ २॥

राम लखन इक ओर भरत रिपुदवनलाल इक ओर भये।
सरजुतीर सम सुखद भूमितल गनि गोइयाँ बाँटि लये॥ १॥
कंदुककेलि कुसल हय चढ़ि चढ़ि मन कसि कसि ठोंकि ठोंकि खये।
करकमलन बिचित्र चौगाने खेलन लगे खेल रिझये॥ २॥
ब्योम बिमानन बिबुध बिलोकत खेलत पेखक छाँह छये।
सहित समाज सराहि दसरथहि बरषत निज तरु कुसुमचये॥ ३॥

इक लै बढ़त एक फेरत सब प्रेम प्रमोद बिनोद नये।
एक कहत भइ हार राम की एक कहत भइया भरत जये॥ ४॥
प्रभु बकसत गज बाजि बसन मनि जय धुनि गगन बिमान हये।
पाइ सखा सेवक जाचक भरि जन्म न दुसरे द्वार गये॥ ५॥
नभपुर परत निछावरि जहँ तहँ सुर सिद्धन बरदान दये।
भूरि भाग अनुराग उमँगि जे गावत सुनत चरित नित ये॥ ६॥
हारे हर्ष होत हिय भरतहि जीते सकुच सिर नयन नये।
तुलसी सुमिरि सुभाव सील सुकृती तेइ जे यहि रङ्ग रये॥ ७॥

श्रीराम, लक्ष्मण एक ओर; भरत, शत्रुघ्न एक ओर हुए। सरयू के तीर। बराबर भूमि, कंकड़-काँटों से रहित। सुखद थल में गोइयाँ गिनगिन बाँट लिए॥ १॥ गेंद के खेल के जो सधे घोड़े, तिन पर चढ़-चढ़ मन को मज़बूत कर ठोंक लिया कि हम हारेंगे नहीं। मन मज़बूत कर खये कहे खड़े हुए। करकमलों में सुन्दर मणि-चित्रित चौगान खेलने का दाँव लिये खेलने लगे। जिनको खेलने की रीझ है॥ २॥ आकाश में देवता विमानों पर से देखते हैं। तिन पेखक कहे देखनेवालों की छाँह से खेलनेवाले छाये हैं। ते देवता समाज सहित राजा दशरथ को सराहते और अपने तरु कल्पवृक्ष के फूल चये कहे समूह अथवा चुनकर बरसाते हैं॥ ३॥ एक ओर से गदा के डंडे मारमार लेकर बढ़ते हैं कि सींव सीमा पार कर दें, जिसमें हमारी जीत हो। तब दूसरी ओर से एक दल डण्डा मारकर फेरता है कि हम गदा को सीमा पार कर दें, जिसमें हमारी जीत हो। इत्यादि नये नये विनोद कहे क्रीड़ाकौतुक करके सब प्रेमप्रमोद कहे आनन्द के वश हैं। एक कहते हैं कि श्रीरामजी की हार अर्थात् जीत हुई;

एक कहते हैं, भैया भरत जीते । इस अवसर में हाथी, घोड़ा, दुशाला, मणि आदि रघुनाथजी बकसते बख़्शते हैं । इससे याचकों की जयध्वनि और विमानों पर देवतों ने नगाड़े बजाये । इस अवसर का दान पाकर सखा, सेवक, याचक पूर्ण-काम हो गये । जन्म-पर्यन्त उन्होंने दूसरे द्वार पर न याचना की । इसी से कहा है—"रघुबरदानिसिरोमनि साँचे ।" हनुमन्नाटके—या विभूति-र्दशग्रीवे शिरश्छेदेपि शंकरात् । दर्शनाद्रामदेवस्य सा विभूति-र्विभीषणे ॥ १ ॥ वाल्मीकीये—सत्येन लोकान् जयति दीनान्दानेन राघव ॥ ४-५ ॥ पुर अयोध्या में निछावर पड़ती है पुरवासियों की, आकाश में देवतों की निछावर पड़ती है । जहाँ-तहाँ देवता इन्द्रादि सिद्ध लोमशादि आशीर्वाद प्रभु को देते हैं कि तुम्हारी सदा जय रहे । इत्यादि जो चरित हैं, तिनको अनुराग से उमंग कर जो गाते अथवा सुनते हैं सदा, वे भी भूरि कहे बड़भागी हैं ॥ ६ ॥ खेल में हारने पर तो भरतजी को हर्ष होता है, पर जीतने पर सकुचाकर सिर, नेत्र तले को नवा लेते हैं । इससे प्रभु हारा हुआ खेल भी भरत को जिता देते हैं । मानेच्छाहीन दासों का प्रभु अपने से अधिक मान रखते हैं । ऐसा शील-स्वभाव प्रभु का स्मरण कर जो इस अनुराग-रंग में रँगे हैं, गोसाईंजी कहते हैं, वे परम सुकृती हैं ॥ ७ ॥

खेलि खेल सुखेलनहारे ।

उतरि उतरि चुचकारि तुरंगनि सादर जाइ जोहारे ॥ १ ॥

बन्धु सखा सेवक सराहि सनमानि सनेह सँभारे ।

दिये बसन गज बाजि, साजि सुभ साजि सुभाँति सँवारे ॥ २ ॥

मुदित नयन फल पाइ गाइ गुन सुर सानन्द सिधारे ।

सहित समाज राजमन्दिर कहँ रामराय पग धारे ॥ ३ ॥

भूपभवन घर घर घमण्ड कल्यान कुलाहल भारे।
निरखि हरखि आरती निछावरि करत सरीर बिसारे ॥ ४ ॥
नित नव मंगल मोद अवध सब बिधि सब लोग सुखारे।
तुलसी तिन सम तेउ जिनके प्रभु ते प्रभु के चरित पियारे॥ ५ ॥

खेलकर खेलनेवालों ने उतरकर तुरंगों को चुचकारकर अपने मालिकों को आदर-सहित जोहारा ॥ १ ॥ बन्धु, वंश, वर्ग, सखा, मित्र, सेवक, दास, तिनको सराहि सम्मान कर सनेह को सँभारा, अर्थात् सेवकों को सराहा, सखाओं का सम्मान किया, भाई सनेह सँभारे, खेल में भूले रहे सो सँभारे। सेवकों को बसन दिये। सखाओं को घोड़े व भाइयों को हाथी दिये। शुभ साजि मंगलीक। सुभाँति अच्छी तरह। पोशाक आदि साजकर सँवार कर दिये ॥ २ ॥ देवता नेत्रों का फल पाकर प्रभु के गुणगण गाते आनन्द-सहित अपने लोक को गये। समाज सहित श्रीरघुनाथजी राजमन्दिर को आये ॥ ३ ॥ भूप के भवन में और घर-घर में कल्याण का कोलाहल शब्द घमंड गूँजता हुआ भर रहा है। प्रभु को निरख कौशल्यादि माता आनन्द से आरती उतारती हैं। प्रेमवश देह की सुध नहीं है ॥ ४ ॥ इस प्रकार नित नये मंगल उत्सव मोद आनन्द अयोध्याजी में प्रतिदिन होते हैं। इससे सब तरह सब लोग सुखी हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि पुरवासियों के समान वे भी हैं, जिनको प्रभु के चरित प्रभु से बढ़कर प्यारे हैं। यहाँ तक किशोरलीला अर्थात् प्रभु की चतुर्दश वर्ष पाँच महीनों की अवस्था कही है ॥ ५ ॥

इति बालकाण्ड पूर्वार्द्ध।

राग सारंग

चहत महामुनि जाग जयो ।
नीच निसाचर देत दुसह दुख कृस तन ताप तयो ॥ १ ॥
सापे पाप नये निदरत खल तब यह मंत्र ठयो ।
बिप्र साधु सुर धेनु धरनि हित हरि अवतार लयो ॥ २ ॥
सुमिरत श्रीसारंगपानि छन में सब सोच गयो ।
चले मुदित कौसिक कोसलपुर सगुनन साथ दयो ॥ ३ ॥
करत मनोरथ जात पुलकि प्रकटत आनंद नयो ।
तुलसी प्रभु अनुराग उमँगि मग मंगलमूल भयो ॥ ४ ॥

क्षत्रिय से ब्रह्मर्षि हुए, ऐसे महामुनि विश्वामित्रजी यज्ञ और जय दोनों चाहते हैं। दुसह कहे जो सहा न जाय, ऐसा दुःख नीच निशाचर देते हैं। उस ताप में तपने से शरीर दुर्बल हो रहा है ॥१॥ शापे पाप कहे शाप दीजिये, तो पाप होता है, और नये झुककर रहिये, तो खल निन्दा करते हैं। ऋषि से कुछ बनाया नहीं बनता। यहाँ यह शंका होती है कि त्रिशंकु के यज्ञ हेतु वशिष्ठजी के पुत्रों को शाप देकर जब ऋषीश्वर ने भस्म कर दिया था, तब न पाप बिचारा! बलिदान के लिये अपने पुत्रों को शाप दे भस्म कर दिया, तब पाप न बिचारा! धर्मात्मा हरिश्चन्द्र की बुरी दशा की, तब पाप न बिचारा! अब दुष्ट राक्षसों को शाप देने में पाप बिचारा। इससे प्रथम अर्थ ठीक नहीं। दूसरा अर्थ यह है कि शापे पापन, पूर्व ही पापों करके शापे हैं। पापों करके शापे गये, इससे राक्षस हुए। उन मरों को कैसे मारिये। और ये निदरत नित अरत अभिड़ते हैं खल नित्य ही। यहाँ "चपा अबे जबाः" सूत्र से त और अकार मिलकर दकार हुई, जिससे

नित अरत का निद्रत हुआ। पूर्व पापों के शापे राक्षस खल नित अरत अभिड़ते हैं। तब यह विचारा कि हरि ने मही, ब्राह्मण, गऊ, देवता, साधुओं के लिये रघुवंश में अवतार लिया है। प्रमाण महारामायणे—"सम्यग्वदन्तिनिगमाबहुशोवलारान्सद्ब्रह्मणोभुवि तले निजभक्तहेतोः॥" सबका प्रयोजन भक्तों का हित है॥ २॥ शार्ङ्ग-पाणि धनुषधारी श्रीरघुवंशनाथ का नाम स्मरण करते ही हृदय से सब शोच जाता रहा। प्रभु के नाम ही का ऐसा प्रभाव है कि उसके स्मरण-मात्र ही से सब विघ्नों का नाश होता है। प्रमाण नारदीयपुराणे—श्रीरामस्मरणाच्छीघ्रं समस्तक्लेशसंक्षयः। मुक्तिं प्रयाति विप्रेन्द्र तस्य विघ्नो न बाधते॥ ऐसा नाम स्मरण करते हुए श्रीविश्वामित्रजी अयोध्या को चले। इससे सब विघ्न नष्ट हुए, और मंगलीक शकुनों ने साथ दिया। शकुन होते ही आये। सो क्यों न हो। जो नाम स्मरण करते हैं, सो मंगल की खान हैं। प्रमाण रहस्यनाटके—मधुरमधुरमेतन्मंगलं मंगलानां सकल-निगमवल्ली तत्फलं चित्स्वरूपम्। सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा स भवति भवपारं रामनामानुभावात्॥ ३॥ बहुत प्रकार मनोरथ करते। प्रेम से पुलकित गात। नवीन आनन्द है प्रभु की रूपमाधुरी का अवलोकन, मधुर वचन-श्रवण आदि। नवीन मनोरथ के आनन्द प्रकट करते विश्वामित्रजी मार्ग में चले जाते हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि विश्वामित्रजी के उर में प्रभु का अनुराग उमँगता है, उससे मग मंगल का मूल हुई। यह रीति है कि जब जीव प्रभु के संमुख होता है, तब सब मंगल आप ही होते हैं। प्रमाण वाल्मीकीये—सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥ ४॥

आजु सकल सुकृतफल पाइहौं।

सुख की सींव अवधि आनँद की अवध बिलोकिहौं पाइहौं॥ १॥

सुतहि सहित दसरथहि देखिहौं प्रेम पुलकि उर लाइहौं ।
रामचन्द्रमुखचन्द्र सुधाछबि नयनचकोरनि प्याइहौं ॥ २ ॥
सादर समाचार नृप बुझिहैं हौं सब कथा सुनाइहौं ।
तुलसी ह्वै कृतकृत्य आस्रमहि राम लखन लै आइहौं ॥ ३ ॥

अब विश्वामित्रजी का मनोरथ कहते हैं। विश्वामित्र अपने मन में कहते हैं कि आज मैं सब सुकृतों का फल श्रीरघुनन्दन का दरश पाऊँगा। सुख की सींव। सुख दो प्रकार का है। एक प्राकृत सर्व-सौभाग्य-युक्त सुत-वित्त-कलत्रादि और दूसरा दिव्य सुख प्रेमा पराभक्ति। आनन्द तीन प्रकार का है। विषयानन्द, भजनानन्द, ब्रह्मानन्द। अथवा सुखमयी भक्ति, आनन्दमय ज्ञान इत्यादि। सुख-सौभाग्य के स्थान आनन्द के दाता रघुनाथजी हैं। प्रमाण सदाशिवसंहितायाम्—सर्वसौभाग्यनिलयं सर्वानंदैकदायकम्। कौशल्यानंदनं रामं केवलं भवखण्डनम् ॥ १ ॥ ऐसे श्रीरघुनाथजी का नित्य विहारस्थान श्रीअयोध्याजी हैं। यथा श्रुतिः—"याऽयोध्यापुरी सा सर्ववैकुण्ठानामेव मूलाधारा मूलप्रकृतेः परा तत्सद्ब्रह्मरूपा सद्विस्तारा दिव्यरत्नकोशाढ्या तस्यां नित्यमेव सीतारामयोर्विहार-स्थलमस्तीतीत्यथर्वणे उत्तरार्द्धे।" अतः श्रीअयोध्याजी सुख और आनन्द दोनों की मर्यादा हैं। श्रीविश्वामित्रजी कहते हैं कि उस श्रीअयोध्याजी को जाकर देखूँगा ॥ १ ॥ सुत जो श्रीरघुनाथजी तिन सहित श्रीदशरथ महाराज को देखते ही प्रेम से पुलककर उर में लगाऊँगा। और श्रीरामचन्द्र का मुख जो पूर्णचन्द्रमा-सम है, उसमें छविरूपी जो अमृत है, वह अपने नेत्ररूपी चकोरों को पिलाऊँगा ॥ २॥ आदर सहित समाचार कुशल-प्रश्न श्रीमहाराज दशरथजी पूछेंगे। उनसे मैं अपने दुःख-सुखकी समग्र कथा सुनाऊँगा, अर्थात् हमको राक्षस सताते हैं, तिनके वध हेतु

श्रीराम लक्ष्मण को हमें दो। इस प्रकार धर्मज्ञ दशरथ महाराज से माँगकर कृतार्थ-रूप प्रभु को पाकर कृतार्थ हो श्रीराम-लक्ष्मण को अपने आश्रम को लाऊँगा ॥ ३ ॥

राग नट

देखि मुनि रावरे पद आज ।
भयो प्रथम गनती में अब तहँ जहँ लौं साधुसमाज ॥ १ ॥
चरन बन्दि कर जोरि निहोरत कहिय कृपा करि काज ।
मेरे कछु न अदेय राम बिनु देह गेह सब राज ॥ २ ॥
भली कही भूपति त्रिभुवन में को सुकृती सिर ताज ।
तुलसी रामजनम ते जनियत सकलसुकृति को साज ॥ ३ ॥

श्रीदशरथ महाराज कहते हैं, हे मुनि, आपके चरण देखे, सो आज से मैं साधुसमाज मात्र में गिनती में प्रथम हुआ। एक तो ऐश्वर्य-लीला का प्रारम्भ है, दूसरे प्रभु प्रसिद्ध हो साधुओं की रक्षा करेंगे, इससे जहाँ साधुओं का समाज है, वहाँ हमारी प्रथम गिनती या अवतार को प्रसिद्ध जानेंगे। यथा राम कौन दाशरथि इत्यादि ॥ १ ॥ नमस्कार कर, हाथ जोड़, निहोरा करके कहते हैं कि कार्य कहिये जिस कार्य के हेतु आप आये हों, सो कृपा करके कहिये। एक श्रीरघुनाथ को छोड़ अपर देह घर राज्य आदि सर्वस्व मेरे अदेय नहीं है, जो न दे सकूँ ॥ २ ॥ विश्वामित्रजी कहते हैं, हे महाराज, तुमने भली कही। ऐसा कौन तीन लोक में सुकृतियों में सिरताज दूसरा है, एक तुम्हीं हो। सुकृतियों में सिरताज हो। गोसाईंजी कहते हैं कि श्रीरघुनाथजी के जन्म ही से जान पड़ता है कि सुकृत का साज प्रभु के साथ ही है ॥ ३ ॥

राजन राम लखन जो दीजै।
जस रावरो लाभ ढोटन को मुनि सनाथ सब कीजै ॥ १ ॥
डरपत हौ साँचे सनेहबस सुत-प्रभाव बिनु जाने।
बूझिय बामदेव अरु कुलगुरु तुम पुनि परम सयाने ॥ २ ॥
रिपुरन दलि मख राखि कुसल अति अलप दिनन घर ऐहैं।
तुलसिदास रघुबंसतिलक की कबिकुल कीरति गैहैं ॥ ३ ॥

विश्वामित्रजी कहते हैं, हे राजन्, जो राम लक्ष्मण को दीजिये, तो आपको तो यश और बालकों को विवाहादि लाभ है। मुनियों को सनाथ कीजिये राक्षस-वध होने पर वे निर्विघ्न भजन करेंगे ॥ १ ॥ पुत्रों का प्रभाव नहीं जानते कि कैसे वीर बलवान् हैं। दूसरे रघुनाथजी में तुम्हारा सच्चा स्नेह है कि इनके विना हमारा जीवन नहीं, इससे डरते हो। तो इसके लिये वामदेव और वशिष्ठजी से बूझिये, पूछ लीजिये। आप भी तो परम सयाने हो। प्रथम आप ही विचार करिये ॥ २ ॥ विश्वामित्रजी कहते हैं, रण में शत्रुओं को दलकर यज्ञ की रक्षा कर कुशल-सहित घर को थोड़े ही दिनों में आवेंगे। गोसाईंजी कहते हैं, रघुवंश के तिलक रघुनाथजी की उज्ज्वल पवित्र कीर्ति को कवियों के कुल अर्थात् ब्रह्मा, नारद, वाल्मीकि, भरद्वाज, अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, पराशर, व्यास, शुकदेव आदि गावेंगे ॥ ३ ॥

रहे ठगि से नृपति सुनि मुनिबर के बयन।
कहि न सकत कछु राम प्रेमबस पुलकि गात भरे नीर नयन॥१॥
गुरु बसिष्ठ समुझाय कह्यो तब हिय हरषाने जाने सेससयन।
सौंपे सुत गहि पानि पाँय परि भूसुर उर चले उमँगि चयन ॥२॥

तुलसी प्रभु जोहत पोहत चित सोहत मोहत कोटि मयन।
मधु माधव मूरति दोउ संग मानो दिनमनि गवनकीने उत्तरअयन ३

श्रेष्ठ मुनि के वचन सुन महाराज ठगे से रह गये। रघुनाथजी के प्रेमवश देह पुलकित हो आई, इससे कुछ कह नहीं सकते। नेत्र भरे हैं॥ १॥ वशिष्ठजी ने समझाया कि प्रभु का अवतार भूमि-भार उतारने के हेतु है। यह सुन हृदय में हर्षित हुए, जाना कि शेषशयन हैं। नर से ईश्वरत्व का बोध यह प्रसिद्ध हेतु है। दूसरा अर्थ यह कि वशिष्ठजी ने समझाया कि विश्वामित्र द्वारा विवाह होनेवाला है; यज्ञ की रक्षा ये ही करेंगे; इनको मनुष्य न जानिये। ये गो, द्विज, सुर, साधुओं के रक्षक हैं। इतनी बात प्रकट कही। साकेतविहारी परात्पर रूप को प्रसिद्ध नहीं कहा। यह शेष कहे बाक़ी रक्खा। इसे सैन से बुझाइ समझा दिया। तब यह जानकर कि ये रघुनाथजी तो पररूप हैं हृदय में हर्षाने। तब दशरथ ने पैरों पड़कर हाथ पकड़ ऋषि को पुत्र सौंप दिये। भूसुर विश्वामित्रजी के चैन आनन्द उर में उमँगि चला॥ २॥ गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु कैसे सोहते हैं, कोटियों काम को मोहते हैं। जोहत देखते ही चित्त को पोहत अपने में लगा लेते हैं। मधु चैत। माधव वैशाख। ये दोनों महीना मूर्तिमान् लिये विश्वामित्र मानों सूर्यरूप उत्तरायण हुए। चैत-वैशाख में सूर्य उत्तरायण होते हैं, तब उनका प्रताप बहुत होता है। उसी भाँति ऋषि प्रतापवान् हैं। उत्तरायण को गमन किया। यथा रघुवंशे—मातृवर्गचरणस्पृशौ मुनेस्तौ प्रपद्य पदवीं महौजसः। रेजतुर्गतिवशात्प्रवर्तिनौ भास्करस्य मधुमाधवाविव॥ ३॥

ऋषि सँग हरषि चले दोउ भाई।
पितुपद बंदि सीस लियो आयसु सुनि सिख आसिख पाई॥१॥

नील पीत पाथोजबरन बपु बय किसोर बनि आई।
शर धनु पानि पीतपट कटितट कसे निषंग बनाई॥ २॥
कलित कंठ मनिमाल कलेवर चन्दन खौर सोहाई।
सुन्दर बदन सरोरुहलोचन मुखछबि बरनि न जाई॥ ३॥
पल्लव पंख सुमन सिर सोहत क्यों कहौं बेष लोनाई।
मनु मूरति धरि उभय भाग भइ त्रिभुवनसुन्दरताई॥ ४॥
पैठति सरन सिलन चढ़ि चितवत खग मृग बनरुचिराई।
सादर समै सुप्रेम पुलकि मुनि पुनि पुनि लेत बोलाई॥ ५॥
एक तीर तकि हती ताड़का बिद्या बिप्र पढ़ाई।
राख्यो जज्ञ जीति रजनीचर भइ जग बिदित बड़ाई॥ ६॥
चरनकमलरज परसि अहल्या निजपतिलोक पठाई।
तुलसिदास प्रभु के बूझे मुनि सुरसरि कथा सुनाई॥ ७॥

पिता का सिखावन सुन, आज्ञा माथे पर धर, चरणों में प्रणाम कर, आशीर्वाद पाकर ऋषि के संग दोनों भाई लषनलालयुत रघुनन्दन हर्षित हो चले। यह यात्रा क्वाँरकृष्ण द्वादशी की है॥ १॥ श्यामपीत कमलवर्ण तनु में किशोर अवस्था शोभित है। करकमल में धनुष बाण लिये। कटि में तरकस सुधारे। पीतपट कसे॥ २॥ सुन्दर कण्ठ में शोभित मणियों की माला। तन में चन्दन की खौर। सुन्दर बदन में कमलसे लोचन सोहते हैं, मुखकमल की छवि बरनी नहीं जाती। बदन चिबुक से केशपर्यंत और मुख ओठ अन्तर, इससे पुनरुक्ति नहीं॥ ३॥ नवीन पल्लव-सहित फूल और मोर के पंख सिर में बालों के बीच में शोभित हैं वेश का लावण्य नहीं कहा जाता। उसकी उत्प्रेक्षा करते हैं,

मानों त्रिभुवन की सुन्दरता दो भाग हो मूर्त्तिमान् हुई ॥ ४ ॥ लघु अवस्था के प्रभाव से चंचल सुभाव होने के कारण तड़ागों में पैठते, ऊँचे शिलाओं पर चढ़ पक्षियों को, मृगों को और वन का विस्तार देखते। मुनि डरकर आदर से प्रेम से पुलकित हो बारबार बुला लेते हैं ॥ ५ ॥ ताड़का को देखते ही एक बाण से प्रभु ने मारा। तब विश्वामित्रजी ने प्रभु को बाण-विद्या पढ़ाई। निशाचरों को जीत कर यज्ञ की रक्षा की। उसकी बड़ाई जग में विदित हुई ॥ ६ ॥ वहाँ से मिथिलापुर को चले। मार्ग में चरणरज छुआकर अहल्या को पति के लोक भेजा। गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु ने गंगाजी की उत्पत्ति पूछी। तब ऋषि ने सब चरित कहे ॥ ७ ॥

दोउ राजकुँवर राजत मुनि के संग।
नखसिख लोनेलोने बदन लोने लोयन दामिनि वारिद बरन अंग १
सिरसि सिखा सुहाई उपबीत पीतपट धनु सर कर कसे कटिनिषंग।
मानो मखरुज निसिचर हरिबे को सुत पावक के साथ पठये पतंग २॥
करत छाँह घन बरषैं सुमन सुर छबि बरनत अतुलित अनंग।
तुलसी प्रभु बिलोकि मग लोग खग मृग प्रेममगन रँगे रूपरंग ३॥

दामिनिवर्ण लक्ष्मणजी। मेघवर्ण रघुनाथजी। जिनके लावण्य-युत नेत्र, लावण्ययुत मुख इत्यादि। नखशिख लावण्य के भरे अंग। ऐसे दोनों राजकुमार मुनि के संग में राजते हैं ॥ १ ॥ सिर में शिखा काकपक्ष शोभा देते हैं। उर पर यज्ञोपवीत, कर में धनुष बाण, कटि में पीतवस्त्र से तरकस कसे कैसे सोहते हैं, मानों मख यज्ञ का निशाचररूपी रोग हरने को पतंग सूर्य ने अपने पुत्र अश्विनीकुमार को अग्नि के साथ भेजा है। सूर्य

चक्रवर्ती महाराज। अश्विनीकुमार पुत्र। अग्नि विश्वामित्र। निशाचर रोग ॥ २ ॥ मेघ छाँह करते, देवता फूल बरसते हैं। प्रभु की उपमा अनेक काम की है। उसे कौन वर्णन करे। छवि अतुल है, काम तुच्छ है। गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु को देख मग के लोग और खग मृग रूप के अनुराग-रङ्ग में रँग गये। इससे प्रेम में मगन हैं ॥ ३ ॥

राग कल्याण

मुनि के संग बिराजत बीर।
काकपच्छधर कर कोदण्ड सर सुभग पीतपट कटि तूनीर ॥ १ ॥
बदनइन्दु अंभोरुहलोचन स्याम गौर सोभासदन सरीर।
पुलकत ऋषि अवलोकि अमित छबि उर न समात प्रेम की भीर २॥
खेलत चलत करत मग कौतुक बिलसत सरिस सरोवर तीर।
तोरत लता सुमन सरसीरुह पियत सुधासम सीतल नीर ॥३॥
बैठत बिमल सिलन बिटपन तर पुनि पुनि बरनत छाँहसमीर।
देखत नटत केलि कल गावत मधुप मराल कोकिला कीर ॥४॥
नैनन को फल लेत निरखि मृग खग सुरभी ब्रजबधू अहीर।
तुलसी प्रभुहि देत सब आसन निज निज मन सब कमल कुटीर॥५॥

मुनि के संग दोनों वीर विराजते हैं। काकपक्ष जुल्फ़ें शीश पर हैं। हाथों में धनुष बाण धारण किये। सुन्दर पीतपट वस्त्र और तरकस कटि में शोभित ॥ १ ॥ चन्द्रमा से बदन। कमल से नेत्र। श्याम गौर दोनों शरीर शोभा के मन्दिर। प्रभु की ऐसी अमित छवि देख मुनि बारबार पुलकांग हुए। प्रेमसमूह उर में नहीं समाता ॥ २ ॥ खेलते कौतुक करते मग में चले जाते, नदी-

तड़ागों के किनारे विलास करते। कहीं नवीन लता, कहीं रंग-रंग के फूल तोरते। कहीं तड़ागों में सुन्दर कमल तोड़ते, कहीं निर्मल अमृतसम शीतल जल पीते॥ ३॥ विटपन तर डालियों के तले विमल शिलाओं पर बैठते और बारबार छाँह तथा समीर पवन की शीतलता वर्णन करते हैं। यथा रघुवंशे—तौ सरांसि रसवद्‌भिरम्बुभिः कूजितैः श्रुतिसुखैः पतत्रिणः। वायवः सुरभिपुष्परेणुभिश्छायया च जलदाः सिषेविरे॥ तहाँ मोर नाचते, भँवर गाते, हंस कोकिल तोता बोलते। तिनको देखते॥४॥ मृग, पक्षी, गौवें, व्रजबधू वनके रहनेवाली अहीरों की स्त्रियाँ और अहीर सब नयनों का फल लेते हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि सब अहीरों की कन्याएँ प्रभु का रूप देख मोहित हो अपने मन की कुटी में प्रेमरूप कोमल कमल का आसन देकर प्रभु का रूप मन में बसाती हैं। यथा सत्योपाख्याने—पिबतो वारुणीं गोष्ठे गोपान् पश्यति राघवः। बलतो मुद्‌गरोत्थाय ग्राम्यान्पानेन मोहितान्॥१॥ गावश्च दुहतो वत्सान् निहन्ति च ददर्श च। तावन्मृगाश्च खादन्ति व्रीहींस्तत्र पुनर्द्रुताः॥ २॥ सहसा मुनिना भ्राता गोपिकाश्च विलोकयन्। इत्थं विलोकयन् रामो मुनेः पश्चाद्ययौ मुदा॥ ३॥ स्त्रियस्ता राघवं दृष्ट्वा कन्दर्पसदृशाकृतिम्। निधाय तर्ज्जनीमोष्ठे पृच्छन्तिस्म स्त्रियो मुदा॥ ४॥ सत्यम्ब्रूहि मुने मह्यं कस्य चेमौ कुमारकौ॥ ५॥

राग कान्हरा

सोहत मग मुनिसँग दोउ भाई।
तरुन तमाल चारु चम्पक छबि कबिसुभाव कहि जाई॥ १॥
भूषन बसन अनुहरत अंगन उमँगत सुन्दरताई।
बदन मनोज सरोज लोचनन रहिहैं लोभाइ लोनाई॥ २॥

अंसनि धनुसर करकमल कटि कसे हैं निषंग बनाई।
सकल भुवन सोभा सरबस लघु लागति निरखि निकाई॥ ३॥
महि मृदु पथ घनछाँह सुमन सुर बरषि पवन सुखदाई।
जलथलरुह फल फूल सलिल सब करत प्रेमपहुनाई॥ ४॥

मग में मुनि के संग दोनों भाई कैसे सोहते हैं। नवीन तमाल-सम रघुनाथजी, चम्पक-सम लक्ष्मणजी। यह छवि की उपमा कवि स्वभाव से कही जाती है। कवि-स्वभाव, जो न कहा जाय सो भी कहे॥ १॥ अंग-अंग के अनुरूप भूषन-वसन हैं। यथा श्याम अंग में पीत वसन, पीत मणि-भूषण, गौर अंग में श्याम वसन, श्याममणि-भूषण इत्यादि सोहते हैं। उससे सुन्दरता उमँगती है। मुख पर काम की शोभा, नेत्रों पर कमलों की शोभा लुभा रही है॥ २॥ अंस कंधों पर धनुष, करकमल में बाण लिये। कटि में तरकस सुधार के कसे हैं। ऐसे सुन्दर रूप की निकाई देख सब भुवन की शोभा लघु लगती है॥ ३॥ पृथ्वी कोमल मार्ग देती है। मेघ छाँह कर रहे हैं। देवता फूल बरस रहे हैं। शीतल, मन्द, सुगन्ध सुन्दर सुखदायक पवन बह रही है। जल के वृक्ष कमल आदि फूले हैं कि प्रभु हमको कदाचित् कर में या गले में धारण कर लें। पृथ्वी के वृक्ष सुन्दर फूल कमलों सों झुक रहे हैं कि प्रभु हमारे फूलफल ग्रहण करें। सलिल निर्मल सीतल भरा हुआ है। सब अपने कृतार्थ होने हेतु प्रेम से प्रभु की पहुनाई कर रहे हैं॥ ४॥

सकुच सभीत बिनीत साथ गुरु बोलनि चलनि सुहाई।
खग मृग बिचित्र बिलोकत बिचबिच लसत ललित लरकाई॥ ५॥
बिद्या दई जानि बिद्यानिधि बिद्यहु लही बड़ाई।
ख्याल दली ताड़का देखि ऋषि देत असीस अघाई॥ ६॥

बूझत प्रभु सुरसरि प्रसंग कहि जिन कुल कथा सुनाई।
गाधिसुवन सनेह सुख संपति उरआश्रम न समाई॥ ७॥
बनबासी बटु जानि जोगिजन साधु सिद्धसमुदाई।
पूजत पेखि प्रीति पुलकित तन नैनलाभ लुटि पाई॥ ८॥
मख राख्यो खलदल दलि भुजबल बाजत बिबुध बधाई।
नित पथ गरित सहित तुलसी चित बसत लखन रघुराई॥ ९॥

गुरु के साथ में सकोच डर सहित नम्रता का बोलना और चलना शोभित है। मार्ग में जहाँ विचित्र पक्षियों और मृगों को देखते हैं, तिनको पकड़ने को दौड़ते हैं। इत्यादि लड़कपन बीच-बीच में सुन्दर शोभा देता है॥ ५॥ यहाँ ताड़कावध और विद्या देने का क्रम विपरीत है। सो गान व विद्या में पूर्वापरक्रम का नियम नहीं है। अर्थ क्रम से लिखते हैं। ख्याल ही में ताड़का को दला मारा। सो देख प्रसन्न हो ऋषि ने अघाकर जी भरकर आशीर्वाद दिया। विद्यानिधि जान विद्या देते भये। अर्थात् विद्या का स्थान यही हैं। विद्या ने भी इनसे बड़ाई पाई कि प्रभु ने उनको गुण मान धारण किया॥ ६॥ प्रभु के पूछे पर गंगाजी की उत्पत्ति कही। अयोध्या के राजा सगर के अश्वमेध में यज्ञ-हेतु घोड़ा छोड़ा गया। कपिलदेव के कोप से सगर के साठ हज़ार पुत्र भस्म हो गये। तिनके तारने को चौथी पुश्त बाद भगीरथ तपस्या करके गंगाजी को लाये। यह प्रसंग तुलसीकृत क्षेपक में प्रसिद्ध है। गंगाजी की उत्पत्ति कहकर अपने कुल की कथा विश्वामित्रजी ने कही। ब्रह्मा से प्रथम कुश नाम के धर्मात्मा तेजस्वी पुत्र हुए। तिनके चार पुत्र। प्रथम कुशांब। उन्होंने कौशाम्बीपुरी रची। दूसरे कुशनाभ। इन्होंने महोदयपुरी रची।

तीसरे अमूर्त्त, चौथे रजस। इन्होंने धर्मारण्य पुरी रची। कुश-नाभ के पुत्र गाधि हुए। तिनके विश्वामित्रजी हुए। शोणभद्र नदी और मागध देश राजधानी है। वाल्मीकीय में विस्तार है। बीज मात्र यहाँ लिखा गया है। इत्यादि कुल की कथा सुनाई। विश्वामित्रजी के उररूपी आश्रम में स्नेह-सुखरूपी सम्पत्ति नहीं समाती ॥ ७ ॥ वनवासी वानप्रस्थ। वटु ब्रह्मचारी। यती संन्यासी। योगी अष्टांग योग करनेवाले। साधु शांत चित्तवाले। हरिजन भगवद्भक्त। सिद्ध, जो साधन कर सिद्धि अणिमादि सिद्धियों को प्राप्त हुए। इत्यादि समूह फल के देनेवाले प्रभु को देखकर मानों नेत्रों की लाभरूपी लूट अनायास पाई। ऐसा हर्ष मान प्रेम से तनु पुलकित है। प्रीति से सब प्रभु को पूजते हैं ॥ ८ ॥ भजन के बल से खलों के दल दलकर यज्ञ की रक्षा की। ताते देवतन के बधाई बाजत है गोसाईंजी कहत कि हमारे चित्त में पन्थ के चरितसहित लक्ष्मणजी रघुनाथजी बसत हैं ॥ ९ ॥

मंजुल मंगलमय नृपढोटा।
मुनि मुनितिय मुनिसिसु बिलोकि कहैं मधुर मनोहर जोटा॥ १ ॥
नाम रूप अनुरूप बेषबय राम लखन लाल लोने।
इनते लही मनो घन दामिनि दुति मनसिज मरकत सोने ॥ २ ॥
चरनसरोज पीतपट कटितट तून तीर धनु धारी।
केहरिकन्ध कामकरिकरबर बिपुल बाहुबल भारी ॥ ३ ॥
दूषनरहित समय सम भूषन पाइ सुअंगनि सोहैं।
नवराजीवनयन पूरन बिधुबदन मदन मन मोहैं ॥ ४ ॥
शिरनि सिखंड सुमनदल मंडन बाल सुभाय बनाये।

केलि अंक तनु रेनु पंक जनु प्रकटत चरित चोराये ॥ ५ ॥
मख राखबे लागि दसरथ सों माँगि आश्रमहिं आने ।
प्रेम पूजि पाहुने प्रानप्रिय गाधिसुवन सनमाने ॥ ६ ॥
साधन फल साधक सिद्धिन के लोचन फल सबही के ।
सकल सुकृतफल मातपिता के जीवनधन तुलसी के ॥ ७ ॥

मंजुल यज्ञादि सत्कर्म के मंगलमय नृप के पुत्र हैं । स्त्री-पुत्रयुत मुनि देखकर यह कहते हैं कि यह मधुर जोड़ी मन को हरनेवाली है ॥ १ ॥ रूप के अनुरूप नाम, अवस्था के अनुरूप वेष, ऐसे लावण्ययुत श्रीरघुनन्दन और लक्ष्मणलाल हैं । मानो घन, दामिनि, मरकतमणि, सोना, कामदेव आदि ने इन्हीं से द्युति पाई है । मरकत मेघवर्ण रघुनाथजी । दामिनि स्वर्णवर्ण लक्ष्मणजी । काम दोनों रूप में । अथवा मनसिज के मरकतमणि और सोना, सो इनसे द्युति पाई है ॥ २ ॥ कमल-सम चरण हैं । कटि में पीतपट और तरकस धारण किये । करकमल में सुन्दर धनुषबाण शोभित है । सिंह के से ऊँचे कंधे । काम के हाथी-शुण्ड-सम श्रेष्ठ भुजा, जिनमें समूह बल है ॥ ३ ॥ दूषण यथा—पौटा, किंकिणी, कठुला बालअवस्था में शोभा, युवा अवस्था में दूषण है । कंठा, मोहनमाल आदि युवा अवस्था में शोभा, वृद्ध अवस्था में दूषण है । इत्यादि । भूषण-रहित, समय के अनुहार, किशोर अवस्था में शोभा देने योग्य कड़ा, केयूर, पहुँची, मणिमाला, कंठा, कुण्डल, मुकुट आदि भूषण सुन्दर अंगों को पाकर सोहते हैं । नवीन कमल-सम नेत्र । पूर्ण चन्द्रमा-सम मुख । जिसको देख मदन मोहित होता है ॥ ४ ॥ शिखण्ड मोर के पंख और फूलों के नवीन दलों के भूषण मुकुट आदि सिरों पर बनाये हैं बालस्वभाव से । केलि कहे खेल, उसके अंक चिह्न तनु पर रेणु-पंक धूल कीच लगी

है। सो मानो चुराकर मुनि की आँख बराकर जो चरित किये हैं, सो चरित रेणु-पंक के चिह्न तन में देखकर मुनि को प्रकट होता है कि ये रेणु कीचड़ में खेले हैं॥ ५॥ यज्ञ की रक्षा के हेतु दशरथ महाराज से माँग कर अपने आश्रम को लाये। तिन श्रीराम लक्ष्मण को प्राणों से प्रिय पाहुने जान विश्वामित्र ने प्रेम से पूज कर सम्मान किया॥ ६॥ साधक सिद्धियों के जप-तप आदि जो साधन हैं, तिनके फल हैं। सब जगत् के नेत्रों का फल हैं। माता-पिता के सुकृत का फल हैं। ऐसे श्रीरघुनाथजी तुलसी के जीवन-धन हैं॥ ७॥

राम-पद-पदुम-पराग परी।
ऋषितिय त्यागि तुरत पाहनतन छबिमय देह धरी॥ १॥
प्रबल पाप पतिसाप दुसह दव दारुन जरनि जरी।
कृपासुधा सींची बिबुधबेलि ज्यों फिरि सुखफरनि फरी॥ २॥
निगम अगम मूरति महेस मति जुवति-बराय बरी।
सोइ मूरति भइ जानि नयनपथ इकटक ते न टरी॥ ३॥
बरनत हृदय स्वरूप सील गुन प्रेम प्रमोद भरी।
तुलसिदास ऐसे केहि आरत की आरति प्रभु न हरी॥ ४॥

श्रीरघुनाथजी के पदकमल की धूल जहाँ माथे पर पड़ी, तहीं गौतमऋषि की त्रिया अहल्या ने पाषाण-तनु त्याग कर छवि-मयी देह धारण की॥ १॥ प्रबल बड़ा पाप। उस पर पति के शाप की दावाग्नि। दुसह जो सह न जाय। दारुण कठिन। जलन से जली। उस अहल्या को कृपारूप अमृत से सींचा। सो जैसे कल्पलता सम फिर सुख फलों से फली॥ २॥ वेदों के वर्णन करने में अगम रघुनाथजी की मूरति। महेश की बुद्धि-रूप स्त्री ने अपर

हरि-रूपों को बराय छोड़ इसी रूप को बरबस बरी कहे बरण ग्रहण किया । सोई मूर्ति नयनपथ नेत्रों के आगे आई । यह जानकर अहल्या इकटक ते न टरी उसने पलक न चलाई ॥ ३ ॥ उसी रूप के शीलगुण का वर्णन करने में प्रेम के आनन्द से हृदय भर गया । गोसाईंजी कहते हैं, इसी प्रकार किस दुःखित के दुःख को प्रभु ने नहीं हरा ॥ ४ ॥

परत पदपंकज ऋषिरवनी ।
भई है प्रकट अति दिव्य देह धरि मानो त्रिभुवनछबिछवनी ॥ १ ॥
देखि बड़ो आचरज पुलकि तन कहत मुदित मुनिभवनी ।
जो चलिहैं रघुनाथ पयादे सिला न रही अवनी ॥ २ ॥
परसि जो पाँय पुनीत सुरसरी सोहै तीनि पथ गवनी ।
तुलसिदास तेहि चरनरेनु की महिमा कहै मति कवनी ॥ ३ ॥

चरणकमल सिर पर पड़ते ही ऋषिरवनी अहल्या अत्यन्त दिव्य देह धर प्रकट हुई । मानो त्रिभुवनछवि की पुत्री है ॥ १ ॥ पाषाण से स्त्री होना बड़ा आश्चर्य देख पुलकित गात अपर मुनियों की स्त्री कहती हैं, जो रघुनाथ पयादे पैदल ही चलेंगे, तो शिला पृथ्वी में न रहेंगी । जहाँ पग रक्खेंगे, सब स्त्री हो जायँगी ॥ २ ॥ जिन पैरों को छूकर पुनीत गंगाजी ने स्वर्ग, मर्त्य, पाताल तीन पथ हो गमन किया । गोसाईंजी कहते हैं तिन पगों की रज की महिमा किस तरह से कोई कवि कहे ? नहीं कह सकता ॥ ३ ॥

भूरि भागभाजन भई ।
रूपरासि अवलोकि बन्धु दोउ प्रेमसुरंग रई ॥ १ ॥
कहौं कहै केहि भाँति सराहै नहिं करतूति नई ।
बिनु कारन करुनाकर रघुबर केहि केहि गति न दई ॥ २ ॥

करि बहु बिनय राखि उर मूरति मंगलमोदमई।
तुलसी ह्वै बिसोक पतिलोकहि प्रभुगुन गनत गई॥ ३॥

शाप से उद्धार, प्रभु के दर्शन, भक्तिलाभ, पति-प्राप्ति इत्यादि से बड़े भाग्य का भाजन भई। रूप के राशि दोनो भाइयों को देख सुन्दर प्रेम के रंग में रँग गई॥ १॥ कवि क्या कहे, किस तरह प्रशंसा करे। यह करतूत कुछ नई नहीं है। सदा से प्रभु की यही रीति है। विना कारण करुणा के आकर श्रीरघुनाथजी ने किस किसको गति नहीं दी है॥ २॥ बहुत प्रकार विनती करके मंगल-मोदमयी प्रभु की मूर्ति उर में रखकर गोसाईंजी कहते हैं कि शोक-दुःख से रहित हो प्रभु के सौशील्य, वात्सल्य आदि गुणों का गान करती हुई पति गौतम ऋषि के लोक को गई॥ ३॥

कौसिक के मख के रखवारे।
नाम राम अरु लषन ललित अति दसरथराजदुलारे॥ १॥
मेचक पीत कमल कोमल कल काकपच्छधर बारे।
सोभा सकल सकेलि मदन बिधि सुकरसरोज सँवारे॥ २॥
सहस समूह सुबाहु सरिस खल समर सूर भट भारे।
केलि तून धनु बान पानि रन निदरि निसाचर मारे॥ ३॥
ऋषितिय तारि स्वयंबर पेखन जनकनगर पग धारे।
मग नरनारि निहारत सादर कहि बड़भाग हमारे॥ ४॥
तुलसी सुनत एक एकन सों चलत बिलोकनहारे।
मूकन बचन लाहु मानो अंधन लहे हैं बिलोचन तारे॥ ५॥

प्रभु को देख मार्ग के निवासी स्त्री-पुरुष कहते हैं कि विश्वामित्र के यज्ञ के रखवारे हैं। श्रीराम, लक्ष्मण नाम है।

सुन्दर दशरथ महाराज के दुलारे हैं ॥ १ ॥ श्याम-कमल-सम रघुनाथजी, पीत-कमल-सम लक्ष्मणजी । काकपक्ष ज़ुल्फ़ें शीश पर धारण किये । मानो सकल शोभा सकेलि समेटकर विधाता ने मदनरूप हो अपने करकमलों से सुधारा सँवारा है । यहाँ मानो वाचक नहीं, इससे लुप्त उत्प्रेक्षा है ॥ २ ॥ समर में भट योद्धा । भारे बड़े भारी । सुबाहु के सरिस तुल्य शूर । अनेक हज़ार योद्धा । खल जो राक्षस, तिनको केलि कहे खेलने के तरकस धनुष-बाणों से निरादर कर । रण में निशाचरों को मारा । प्रथम समर में राक्षस शूर कहे, तिनको रण में प्रभु ने मारा । इससे पुनरुक्ति नहीं है । अहल्या को तारकर स्वयंवर देखने को जनक-नगर को पग धारे हैं गये हैं ॥ ३ ॥ तिनको देख आदर से मार्ग के नर-नारी कहते हैं कि हमारे बड़े भाग्य हैं ॥ ४ ॥ गोसाईंजी कहते हैं, एक एक से सुनके देखनेवाले देखने चलते हैं । प्रभु को देख मानो मूक गूँगों ने वचनलाभ किया, अन्धों ने नेत्रों का पुतली पाई ॥ ५ ॥

आये सुनि कौसिक जनक हरषाने हैं ।
बोलि गुरु-भूसुर-समाज सो मिलन चले
जाने बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं ॥ १ ॥
नाइ सीस पगन असीस पाय प्रमुदित
पाँवड़े अरघ देत आदर सों आने हैं ।
आसन बसन बास कै सुपास सब बिधि
पूजि प्रिय पाहुने सुभाय सनमाने हैं ॥ २ ॥
बिनय बड़ाई ऋषिराजऊ परसपर
करत पुलकि प्रेम आनँद अघाने हैं ।

देखे राम लखन निमेषैं बिथकित भईं
प्रान हू ते प्यारे लागे बिन पहिचाने हैं ॥ ३ ॥
ब्रह्मानंद हृदय दरस सुख लोचनन
अनुभव भये ते सरस राम जाने हैं।
तुलसी बिदेह की सनेह की दसा सुमिरि
मेरे मन माने राव निपट सयाने हैं ॥ ४ ॥

श्रीविश्वामित्रजी का आगमन सुन श्रीजनक महाराज को अति हर्ष प्राप्त हुआ। अपने बड़े भाग्य जाने। इससे अनुराग में अकुलाने कहे मगन हो गुरु शतानन्द तथा ब्राह्मण समाज-सहित विश्वामित्र के मिलने को चले ॥ १ ॥ चरणकमलों में माथा नवा आशीर्वाद पा आनन्द से अर्घ्यजल का सगुन और पाँवड़े वस्त्र बिछाते चले। इस प्रकार आदर से लिवा लाकर आसन दिया। वसन बिछौना आदि। वास टिकाया। सब विधि सुपास कर, षोड़शोपचार पूजा के साथ प्रिय पाहुने विश्वामित्रजी का सुभाय सहज ही में सब सम्मान किया ॥ २ ॥ मुनि की विनय भूप करते हैं, भूप की बड़ाई मुनि करते हैं। परस्पर प्रेम से अंग पुलकित हैं। आनन्द से अघाने हैं। श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण को देख पलकें थक गईं। बिना पहचाने प्राण से प्यारे लगे ॥ ३ ॥ ब्रह्मानन्दसुख उर में, प्रभुदर्शन का सुख नेत्रों में। दोनों का अनुभव कर राम-दरश-सुख को अधिक जाना। गोसाईंजी कहते हैं कि विदेह के स्नेह की दशा सुमिरि स्मरण कर हमारे मन ने मान लिया कि विदेह महाराज परम चतुर हैं ॥ ४ ॥

कोसलराय के कुँवरौटा।
राजत रुचिर जनकपुर पैठत स्याम गौर नीके जोटा ॥ १ ॥

चौतनी सिरनि कनककली कानन कटि पटपीत सुहाये ।
उर मनिमाल बिसाल बिलोचन सीयस्वयंबर आये ॥ २ ॥
बरनि न जात मनहिंमन भावत सुभग अबहिं बय थोरी ।
भई हैं मगन बिधुबदन बिलोकत बनिता चतुर चकोरी ॥ ३ ॥
कहँ सिवचाप लरिकवन बूझत बिहँसि चितै तिरछोहैं ।
तुलसी गलिन भीर दरसन लगि लोग अटनि अवरोहैं ॥ ४ ॥

कोशलेश महाराज के कुँअर सुन्दर श्याम गौर जोड़ी जनकपुर में पैठते में शोभा देते हैं ॥ १ ॥ कैसी शोभा है । चौतनी चौगोशिया टोपी सिर पर है। कनक के कलिकाकार कुण्डल अथवा कनक के कलिकाकार झूमके कानों में शोभा देते हैं। कटि में पीतपट सोहता है। उर में मणियों की माला। सुन्दर बड़े-बड़े नेत्र। रघुनाथजी श्रीजानकीजी का स्वयंबर देखने को आये हैं ॥ २ ॥ मन में भाते और बरने नहीं जाते। अभी सुन्दर थोड़ी अवस्था है। तिनका मुखचन्द्र देख वनिता चतुर चकोर सी मगन हैं ॥३॥ श्रीरघुनाथजी विहँसकर तिरछी नज़र कर देख बालकों से पूछते हैं कि शिव का चाप कहाँ है ? गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु के दर्शनों को गलियों में भीड़ भई, इससे लोग स्त्री-पुरुष अटारियों पर चढ़े देखते हैं ॥ ४ ॥

ये अवधेस के सुत दोऊ ।
चढ़ि मन्दिरन बिलोकत सादर जनकनगर सब कोऊ ॥ १ ॥
स्याम गौर सुन्दर किसोर तन तून बान धनुधारी ।
कटि पटपीत कण्ठ मुक्तामनि भुज बिसाल बल भारी ॥ २ ॥
मुखमयंक सरसीरुहलोचन तिलक भाल टेढ़ी भौंहैं ।
कल कुण्डल चौतनी चारु अति चलत मत्त गज गौंहैं ॥ ३ ॥

बिस्वामित्र हेत पठये नृप इनहि ताड़का मारी।
मख राख्यो रिपु जीति जानि जग मग मुनिबधू उधारी ॥ ४ ॥
प्रिय पाहुने जानि नरनारिन नैनन-ऐन दये।
तुलसिदास प्रभु देखि लोग सब जनकसमान भये ॥ ५ ॥

जनकनगर के सब नर-नारी मन्दिरों पर चढ़कर विलोकते हैं आदर से और कहते हैं कि ये दोनों अवधेश के पुत्र हैं ॥ १ ॥ श्याम रघुनाथजी, गौर लक्ष्मणजी। सुन्दर किशोर अवस्था। तरकस धनुषबाण धारण किये । कटि में पीतपट । कण्ठ में गजमुक्ताओं की माला । भुजा सुन्दर लम्बायमान। भारी है बल जिनमें ॥ २ ॥ चन्द्रमा-से मुख । कमल-से नैत्र। भाल में सुन्दर तिलक। टेढ़ी भौहैं। कानों में सुन्दर कुण्डल। शीश पर चौगोशिया टोपी। मत्त गज गौहैं कहे मस्त हाथी की ऐसी चाल से मार्ग में चले जाते हैं ॥ ३ ॥ विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा को महाराज दशरथजी ने पठाये भेजे। इन्हीं ने ताड़का का वध किया है। मारीच, सुबाहु आदि रिपुओं को जीतकर यज्ञ की रक्षा की। मार्ग में मुनिबधू अहल्या का उद्धार किया। इसको सब जग जानता है ॥ ४ ॥ ऐसे श्रीरघुनाथजी को प्राण-प्यारे पाहुने जान पुर के नर-नारियों ने अपने नेत्र-मन्दिर में वास दिया। गोसाईंजी कहते हैं कि ब्रह्मानन्द देखकर एक विदेह रहे, अब रघुनन्दन को देख पुर भर सब विदेह के समान विदेह हो गया ॥ ५ ॥

बूझत जनक नाथ ढोटा दोउ काके हैं।
तरुन तमाल चारु चंपकबरन तन,
कौन बड़भागी के सुकृत परिपाके हैं ॥ १ ॥

सुख के निधान पाये हिय के पिधान लाये,

ठग के से लाडू खाये प्रेममधु छाके हैं।

स्वारथरहित परमारथी कहावत हैं,

भे सनेह - बिबस बिदेहताबिबाके हैं ॥ २ ॥

सील-सुधा के आगर सुखमा के पारावार

पावत न पर पार पैरि पैरि थाके हैं।

लोचन ललकि लागे मन अति अनुरागे,

एक रस रूप चित्त सकल सभा के हैं ॥ ३ ॥

जिय जिय जोरत सगाई राम लखन सों,

आपने आपने भाव जैसे भाय जाके हैं।

प्रीति को प्रतीति को सुमिरिबे को सेइबे को,

सरन को समरथ तुलसिहु ताके हैं ॥ ४ ॥

श्रीजनक महाराज पूछते हैं—हे नाथ, ये दोनो बालक किसके हैं ? इनके नवीन तमाल-वर्ण और सुन्दर चम्पक-वर्ण तनु से कौन बड़े भाग्यवाले के सुकृत परिपाके हैं, अर्थात् ये किसके सुकृत के फल हैं ॥ १ ॥ श्रीविदेहजी ने सुख के निधान प्रभु को पाकर हृदय में भरकर पिधान कहे ढक्कन से मूँद दिया। देह की सुध भूलना ढकना है। ठग के लड्डू विष के मिलाये खाकर बौराकर लोग परवश होते हैं, वैसी ही जनक की दशा हुई। प्रेमरूपी मदिरा में छके देह की सुध भूल गई। जनकजी स्वार्थरहित परमार्थी कहाते रहे। सो प्रभु में स्नेह की विशेषतावश भये। इससे विवाके विदेहता रहित भये। स्नेहवश भये, इससे स्वार्थी भये। विदेहता विवाके, इससे परमार्थ-रहित भये।

परमार्थ के फल प्रभु हैं। सुधा के आगार हैं। यहाँ शील सोई सुधा, उसके आगार प्रभु हैं। सुखमा कहे शोभा, उसके पारा-वार समुद्र हैं। जिसको समाज सहित जनकजी पैरकर पार नहीं जा सकते ॥ २ ॥ थक गये, इससे नेत्र ललककर लगे प्रभु के रूप में। मन अतिअनुराग के वश हुआ। सो थकित हो बूड़ जाना है। छवि-वर्णन नहीं कर सकते, सो पैरकर थकना है। इससे सभा भर प्रभु के रूप-अनुराग के भरे एकरसचित्त लगाये है ॥ ३ ॥ जिसके मन में जैसा भाव है, वह उसी भाव के अनुकूल अपने जी में सगाई सम्बन्ध श्रीराम-लक्ष्मण से जोड़ता है। "जानत प्रीतिरीति रघुराई।" और "जेहि जन पर ममता अरु छोहू। तेहि करुना करि कीन न कोहू।" इत्यादि प्रीतिनिर्वाहक, इससे प्रीति करने योग्य हैं प्रभु। भागवते हनुमद्वाक्ये—"न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः। तैर्यद्वि-सृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥ १ ॥" फिर "जो कछु कहौं सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृषा न होई ॥" और "सरन गये नहिं त्यागिहैं मोहिं रघुबीर भरोस।" तथा "रामो मिथ्या न भाषते" इत्यादि के अनुसार सत्यसन्ध प्रभु हैं, इससे प्रीति करने योग्य हैं। रामरक्षायाम्—"राजेन्द्रं सत्यसन्धं दशरथतनयं श्यामलं शान्तमूर्त्तिम्।" इति "जासु नाम सुमिरत सुभ होई।" तथा "जासु नाम सुमिरत इक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा ॥" मंगल का मूल जिनका नाम एक बार उच्चारण करने से लोग भवसागर के पार होते हैं। इससे स्मरण करने योग्य प्रभु हैं। वाराहपुराणे—"दैवाच्छूकरशावकेन निहतो म्लेच्छो जराजर्जरो हारामेति हतोस्मि भूमिपतितो जल्पंस्तनुं त्यक्तवान् ॥ तीर्णो गोष्पदवद्भवार्णवमहो नाम्नः प्रभावात्पुनः किं चित्रं यदि रामनामरसिकास्ते यांति रामास्पदम् ॥" इति। "कोसलपाल

कृपाल कल्पतरु द्रवत सुकृत सिर नाये।" ऐसे सुलभ प्रभु हैं, इससे सेवा करने के योग्य हैं। भगवद्गुणदर्पणे—"आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्। योऽहं पश्यत यच्चाहं तं मां ब्रूत महेश्वराः॥" इति। "कोटि बिप्रअघ लागै जेही। सरन आय त्यागउँ नहिं तेही॥" ऐसे शरणपाल प्रभु हैं॥ सनत्कुमारसंहितायाम्—"सत्यसन्धं जितक्रोधं शरणागतवत्सलम्। सर्वक्लेशापहरणं विभीषणवरप्रदम्॥" ऐसे प्रभु की शरण तुलसी ताके है॥ ४॥

ये कौन कहाँ ते आये।
नील-पीत-पाथोजबरन मनहरन सुभाय सुहाये॥ १॥
मुनिसुत किधौं भूपबालक किधौं ब्रह्म जीव जग जाये।
रूपजलधि के रतनसुछबि तिय लोचन ललित लजाये॥ २॥
किधौं रविसुवन मदन रतिपति किधौं हरिहर बेष बनाये।
किधौं आपने सुकृतिसुरतरु के सुफल रावरेहि पाये॥ ३॥
भये बिदेह बिदेह नेहबस देह दसा बिसराये।
पुलकगात न समात हरष हिय सलिल सुलोचन छाये॥ ४॥
जनकबचन मृदु मंजु मधुर भरे भक्ति कौसिकहि भाये।
तुलसी अति आनन्द उमँगि उर रामलखनगुन गाये॥ ५॥

श्रीविदेह महाराज पूछते हैं कि श्याम-पीत-कमल-वर्ण तनु, मन के हरनेवाले सहज में सुन्दर ये कौन हैं और कहाँ से आये हैं॥ १॥ मुनि के सुत हैं, किधौं भूप के बालक हैं। जिस ब्रह्म ने जगत् जीव जाये उत्पन्न किये हैं, वही ब्रह्म तो नहीं है? या ब्रह्म, जीव दोनो स्वरूपवान् मूर्तिमान् तो नहीं हैं? अथवा रूप जो शोभा का सारांश, सोई जलधि, उसके रतन तो नहीं हैं? या ये लला

छविरूप स्त्री के दोनो नेत्र तो नहीं हैं ? मुनि के संग से मुनि का संदेह, वेष से क्षत्रिय का सन्देह, शुद्ध मन तेजस्वी और अपने मन के सुखदायक देख ब्रह्म का सन्देह और दो रूपों से ब्रह्म-जीव का सन्देह ॥ २ ॥ किधौं रविसुवन अश्विनीकुमार हैं । किधौं मदन और वसन्त हैं । या हरिहर नरवेष धारण किये तो नहीं हैं । रूप की सुन्दरता अत्यन्त देखकर अनेक संदेह करते हैं । हे विश्वामित्रजी, आप परमसुकृती हैं । इससे आपने सुकृतरूप कल्पवृक्ष के फल तो नहीं पाये हैं ॥ ३ ॥ प्रभु के नेह के वश विदेह विशेष रूप से विदेह हुए । इससे देहदशा बिसरा दी । अब तक ब्रह्मानन्द से जग से विदेह रहे, अब प्रभुदर्शन से ब्रह्मानन्द से विदेह हुए । ज्ञानफल का भक्ति रस है, इससे स्वरूपानन्द की बड़ाई जानिये । तनु में पुलकावली है, इससे हर्ष हृदय में नहीं समाता । ताको उफान होकर जल नेत्रों में छाया है ॥ ४ ॥ श्रीजनकजी के मीठे कोमल भक्ति के भरे वचन सुन विश्वामित्रजी को भाये । गोसाईंजी कहते हैं, अत्यन्त उर में अनुराग से उमँग कर श्रीरामलक्ष्मण लाल के गुण विश्वामित्रजी ने गाये, श्रीविदेह महाराज से वर्णन किये ॥ ५ ॥

कौसिक कृपाल हू को पुलकित तनु भो ।
उमँगत अनुराग सभा के सराहे भाग,
देखि दसा जनक की कहिबे को मनु भो ॥ १ ॥
प्रीति के पातकी दिये हू साप पाप बड़ो,
मख मिस मेरो तब अवध गवनु भो ।
प्रान हू ते प्यारे सुत माँगे दिये दसरथ,
सत्यसंध सोच सहे सूनो सो भवनु भो ॥ २ ॥

काकसिखा सिर कर केलि तून धनुसर,

बालकबिनोद जातुधानन सों रनु भो।

बूझत बिदेह अनुराग आसचर्जबस,

ऋषिराज जाग भयो महाराज अनुभो ॥ ३ ॥

भूमिदेव नरदेव सचिव परसपर

कहत हमको सुरतरु सिवधनु भो।

सुनत राजा की रीति उपजी प्रतीति प्रीति,

भाग तुलसी के भले साहब को जनु भो ॥ ४ ॥

कौशिक कृपालु का भी पुलकित तनु कहे रोम खड़े हो गये, वचन गद्गद हुए। अनुराग से उमँगि कर सभा के भाग्य की प्रशंसा करने लगे। जनकजी की दशा को देख हाल कहने को मन हुआ॥ १॥ पाप के पात्र राक्षस प्रीति किये से अपने नहीं हैं, और शाप दिये से बड़ा पाप है। क्योंकि शापवश वे राक्षस हुए, इससे परवश हैं। अब इनको ज्ञान नहीं है, इससे शाप दिये पाप है। अपने यज्ञ की रक्षा हेतु मेरा श्रीअयोध्याजी को जाना हुआ। वहाँ सत्यसन्ध दशरथ महाराज ने प्राणों से भी प्यारे पुत्र श्रीरघुनाथजी को मुझे माँगे दिया। इससे भवन सूना हुआ। उसका सोच सहा, पर प्रतिज्ञा न छोड़ी॥ २॥ काकशिखा ज़ुल्फें सिर में। किशोर भूषण हैं। बख़्तर आदि वीरता के भूषण नहीं हैं। केलि कहे खेलने के तरकस, धनुष, बाण युद्ध के लायक़ नहीं हैं। बालक-विनोद बालक स्वभाव से रहे, युद्ध देखा भी नहीं। तिस पर निशाचरों से युद्ध हुआ। सुबाहु आदि वीरों में अग्रणी योद्धाओं से। यह सुन विदेह महाराज आश्चर्यवश अनुराग से पूछते हैं—हे ऋषिराज, यज्ञ पूर्ण हुआ ? तब ऋषि बोले—हे

महाराज, अनुभो कहे अनायास पूर्ण हुआ या आप अनुभव से विचारिये ॥ ३ ॥ ऐसे जब चरित सुने, तब राजा की रीति जो है सनातन प्रथा । प्रियव्रत, पृथु आदि अथवा देवोंयुत प्रभु की शक्ति राजा में रहती है । प्रमाण राजनीतौ— इन्द्रात्प्रभूतिं ज्वलनात्प्रतापं क्रोधं यमाद्वैश्रवणाच्च वित्तम् । शक्तिस्थिती रामजनार्द्दनाभ्यामादाय राज्ञः क्रियते शरीरम् ॥ ऐसी राजा की रीति, सो प्रभु में निश्चय हुई कि ये भी प्रतापी राजकुमार हैं, इससे धनुष तोड़ने की प्रतीति हुई । तव प्रभु में प्रीति उपजी । ब्राह्मणों और सचिवों सहित महाराज जनकजी परस्पर कहते हैं कि शिवधनुष हमको कल्पवृक्ष हुआ । जो धनुष न होता, तो इनके दर्शन काहे को होते ? अब गोसाईंजी की उक्ति है कि राजा जनकजी की रीति सुन हमारे मन में प्रीति और प्रतीति उपजी कि तुलसी बड़ा भाग्यशाली है, जो ऐसे साहब का जनु जन्म हुआ, इससे कि ब्रह्मज्ञानी विदेह, उन्होंने प्रभु के दर्शन पाकर अपने को धन्य माना ॥ ४ ॥

चारो भले बेटा देव दसरथ राय के ।
जैसे राम लखन भरत रिपुदमन तैसे सील-
शोभा - सागर प्रभाकर प्रभाय के ॥ १ ॥
ताड़का-संहारि मख राखि नीके पाले ब्रत
कोटि कोटि भट किये एक एक घाय के ।
एक बान बेग ही उड़ाने जातुधान जात
सूखि गये गात हैं पतौवा भये बाय के ॥ २ ॥
सिलाछोर छुवत अहल्या भई दिव्य देह
गुन लखे पारस के पंकरुहपाय के ।

राम के प्रसाद गुरु गौतम खसम भये
रावरे हू सतानन्द पूत भये माय के ॥ ३ ॥
प्रेमपरिहास पोष बचन परसपर
कहत सुनत सुख सबहि सुभाय के ।
तुलसी सराहैं भाग कौसिक जनकजी के
बिधि के सुठर होत सुठर सदाय के ॥ ४ ॥

हे देव, महाराज, विदेहजी, राजा दशरथ महाराज के ये चारो पुत्र भले हैं। जैसे ये राम-लक्ष्मण हैं, वैसे भरत-शत्रुघ्न हैं। शील-शोभा के समुद्र। प्रभाव के सूर्य ॥ १ ॥ ताड़का संहारी, नीकी भाँति यज्ञ की रक्षा की। अपनी प्रतिज्ञा पाली और कोटियों भट एक-एक घाव के किये। जो घाव एक के, सोई सबके देखिये। कोई राक्षस बाण के वेग से कैसे उड़े जाते हैं, जैसे बयार बौंड़र के उड़े पत्ते भूमि में नहीं आते, वैसे देह सूख गई, आकाश ही में रहे ॥ २ ॥ शिला के छोर कहे कोर छूते ही अहल्या दिव्य देह हुई। इससे चरणकमल के गुण पारस के देखे, जो लोहा छुए सोना हुआ। राम के प्रसाद से तुम्हारे गुरु गौतम खसम भये रँडुआपन छूटा। रावरे भी शतानन्द बिना माता के रहे, सो माता के पूत भये ॥ ३ ॥ प्रेमपरिहास से पोषे सुन्दर भाव के वचन कहते और सुनते परस्पर सभी को सुख हुआ। गोसाईंजी कहते हैं कि विश्वामित्रजी श्रीजनकजी के भाग्य की सराहना करते हैं कि विधि जिसको सुठर दाहने होते हैं, उसका दाँव सुन्दर सुठर पड़ता है। यहाँ दाँव का सुठर पड़ना रघुनाथजी का आगमन है। जानकीजी पुत्री हैं, इससे विधि सुठर है ॥ ४ ॥

ये दोऊ दसरथ के बारे ।
नाम राम घनस्याम लखन लघु नखसिख अँग उजियारे ॥ १ ॥
निजहित लागि माँगि आने मैं धरमसेतुरखवारे ।
धीर बीर बिरदैत बाँकुरे महाबाहु बल भारे ॥ २ ॥
एक तीर तकि हती ताड़का किये सुर साधु सुखारे ।
जज्ञ राखि जग साखि तोषि ऋषि निदरि निसाचर मारे ॥ ३ ॥
मुनितिय तारि स्वयंबर पेखन आये सुनि बचन तिहारे ।
येउ देखिहैं पिनाक नेक जेहि नृपतिलाजजुर जारे ॥ ४ ॥
सुनि सानन्द सराहि सपरिजन बारहिबार निहारे ।
पूजि सप्रेम प्रसंसि कौसिकहि भूपति सदन सिधारे ॥ ५ ॥
सोचत सत्य सनेह बिबस निसि नृपहि गनत गये तारे ।
पठये बोलि भोर गुरु के सँग रंगभूमि पग धारे ॥ ६ ॥

घनसम श्याम, तिनका राम नाम है । जो लघु छोटे हैं, तिनका लक्ष्मण नाम है । ये नखशिख लौं उजियारे सुन्दर अंग के दोनो दशरथ के बारे हैं ॥ १ ॥ वीरता में धैर्यवान्, विरदैत वीरता का बाना धारण किये बाँके वीर हैं। आजानुभुज, उनमें भारी बल है। तिनको धर्मसेतु के रखवाले जान मैं अपनी यज्ञरक्षा को माँग लाया हूँ ॥ २ ॥ ताड़का को ताककर एक ही बाण से मारा, और देवता-साधुओं को सुखी किया, यज्ञ की रक्षा की । इसका सब जगत् साखी है । निशाचरों को निरादर कर मारा, उससे ऋषियों को तोषा संतुष्ट किया ॥ ३ ॥ पगरज लगे अहल्या तरी । जो धनुष तोड़े, सो श्रीजानकीजी को ब्याहै, ये प्रतिज्ञा के तुम्हारे वचन सुन स्वयंवर देखने को आये हैं । जिस धनुष ने राजों को लाजरूपी ज्वर से

जलाया है, हे राजन्, उसी पिनाक धनुष को श्रीरघुनन्दन नेकु ज़रा देखेंगे॥ ४ ॥ मुनि के वचन सुन परिवार-सहित आनन्द से प्रभु को बारवार निहारते और प्रेमसमेत पूजकर मुनि की प्रशंसा करते विदेह महाराज घर को गये ॥ ५ ॥ सत्य धनुष तोड़ने की प्रतिज्ञा का रूप देख सनेह से न प्रतिज्ञा छोड़ते बनती है, न सनेह छूटता है। इसके शोचवश महाराज को तारे नक्षत्र गिनते रात्रि बीती, नींद न पड़ी। यह लोकोक्ति अलंकार है। भोर होते ही बुला भेजे। तब विश्वामित्रजी के साथ श्रीलक्ष्मणलाल सहित श्रीरघुनाथजी रंगभूमि, जहाँ धनुष, तहाँ को आये ॥ ६ ॥

नगरलोग सुधि पाइ मुदित सबही सब काज बिसारे।
मनहुँ मघाजल उमड़ि उदधि रुख चले नदी नद नारे॥ ७ ॥
ये किसोर धनु जोर बहुत बिलखात बिलोकनहारे।
टर्‌यो न चाप तिन ते जिन सुभटन कौतुक कुधर उखारे॥ ८ ॥
ये जाने बिन जनक जानियत करि प्रन भूप हँकारे।
नतरु सुधासागर परिहरि कत कूप खनावत खारे॥ ९ ॥
सुषमासील सनेहसानि मानों रूप बिरंचि सँवारे।
रोमरोम पर सोम काम सत कोटि वारि फिरि डारे॥ १० ॥
कोउ कहैं तेजप्रतापपुंज चित ये नहिं जात भियारे।
छुवत सरासन सलभ जरैगो ये दिनकरबंसदिया रे॥ ११ ॥
एक कहैं कछु होउ सुफल भये जीवन-जन्म हमारे।
अवलोके भरि नैन आजु तुलसी के प्रानपियारे॥ १२ ॥

प्रभु के रंगभूमि आने की सुध ख़बर पाकर नगर के लोग सब अपने काम भूलकर आनन्द से प्रभु-दर्शन हेतु रंगभूमि को

चले। मानों मघानक्षत्र में नदनालों का जल उमँगकर सिन्धु-सम्मुख चला। यहाँ शोभासिन्धु प्रभु का रूप है ॥ ७ ॥ पुरवासी कहते हैं कि ये किशोर अभी कोमल हैं। धनुष कठोर है। यह कह देखनेवाले बिलखते हैं। जिन भटों ने कौतुक ही दिल्लगी-दिल्लगी में कुधर पर्वत उखाड़े, रावणादि तिनसे धनुष टाला नहीं टला। उसको रघुनाथजी कैसे उठावेंगे? इससे बिलखते हैं ॥ ८ ॥ पुरवासी कहते हैं कि इनको विना जाने राजा ने प्रण करके भूपों को बुलाया है, यह जान पड़ता है। नहीं तो रघुनाथ सुधासागर को छोड़ खारे कूप क्यों खुदाते? सब राजा खारे कूप हैं ॥ ९ ॥ शोभा और शील सनेह से सानकर ब्रह्मा ने प्रभु का रूप सँवारा। तिनके रोम-रोम पर सैकड़ों कोटि काम और चंद्रमा को निछावर कर डाला ॥ १० ॥ कोई कहता है -भैया, ये तेज और प्रकाश के पुंज कहे समूह हैं। इससे देखे नहीं जाते। ये दिनकर सूर्यवंश के दीपक हैं। इनके छूते ही धनुष शलभ कहे पाँखी के समान भस्म होगा ॥ ११ ॥ उनमें से एक कोई ऐसा कहता है कि चाहे जो हो, हमारे जीवन जन्म सफल भये। क्योंकि तुलसी के प्राण से भी प्यारे श्रीरघुनन्दन को आज नेत्र भरकर देखा, इससे हम धन्य हैं ॥ १२ ॥

जनक बिलोकि बार बार रघुबर को।
मुनिपद सीस नाइ आयसु असीस पाइ
ये बातैं करत गवन कियो घर को ॥ १ ॥
नींद न परत राति प्रेमपन एक भाँति,
सोचत सँकोच बिरञ्चि हरि हर को।
तुमसे सुगम सब देव देखिबे को अब,
जस हंस कीने जोगवत जुग पर को ॥ २ ॥

लाये सँग कौसिक सुनाये कहि गुनगन,
आये देखि दिनकरकुल दिनकर को।
तुलसी तेऊ सनेह को सुभाउ बाउ मानो,
चलदल कैसो पात करै चित चर को ॥ ३ ॥

श्रीजनकजी बारबार रघुनाथजी को देख-सुनकर पदकमलों में शीश नवाकर आयसु आज्ञा असीस पाकर श्रीरघुनाथजी की शोभा की बातें करते घर को गये ॥ १ ॥ प्रभु में प्रेम, धनुष तोड़ने का प्रण, दोनो त्यागने योग्य नहीं। इससे एक भाँति सोचते हैं। और ब्रह्मा, विष्णु, महेश को संकोचते प्रार्थना करते हैं कि तुमसे सब सुगम है, सो हमको सुगम करो। हे देव, अब तुम्हारी करतूत देखा चाहिये। कवि कहता है कि जनकजी अपने यश को हंस किये प्रेम और प्रण दोनो पर समान जोगवत निर्वाह करते हैं ॥ २ ॥ द्वितीय ब्रह्मसम सृष्टि करनेवाले महामुनि विश्वामित्रजी प्रभु को संग में लाये, और ताड़का-सुबाहुवध, यज्ञरक्षा, अहल्या-उद्धार इत्यादि गुणगण कह सुनाकर। सूर्यकुलप्रकाशक सूर्य श्रीरघुनाथजी को आप भी विदेह महाराज देख आये रहे, जिनको देख ब्रह्मानन्द भूल प्रेमवश भये। गोसाईंजी कहते हैं कि इस पर भी विदेह महाराज का मन सनेह के स्वभावरूपी वायु के वश चलदल कहे पीपल का-सा पत्ता चलायमान होता है ॥ ३ ॥

रंगभूमि भोरही जाइ कै।
राम लखन लखि लोग लूटि हैं लोचन लाभ अघाइ कै ॥ १ ॥
भूपभवन घरघर पुर बाहर यहै चरचा रहि छाइ कै।
मगन मनोरथ मोद नारिनर प्रेमबिबस उठैं गाइ कै ॥ २ ॥

सोचत बिधिगति समुझि परसपर कहत बचन बिलखाइ कै।
कुँवर किसोर कठोर सरासन असमंजस भयो आइ कै ॥ ३ ॥
सुकृत सँभारि मनाइ पितर सुर सीस ईस पद नाइ कै।
रघुबर कर धनुभंग चहत सब अपनो सो हितु चितु लाइ कै ॥ ४ ॥
लेत फिरत कनसुई सगुन सुभ पूछत गनक बुलाइ कै।
सुनि अनुकूल मुदित मन मानहुँ धरत धीरजहि धाइ कै ॥ ५ ॥

भोर ही रंगभूमि में जाकर श्रीरघुनन्दन लक्ष्मणजी को देख पुर के लोग नेत्रों का फललाभ अघाकर लूटेंगे ॥ १ ॥ भूप के भवन में घरघर, पुर में बाहर, यही चर्चा छा रही है। आनन्द के मनोरथ में मगन नारी नर विशेष प्रेमवश गा उठे ॥ २ ॥ विधि की गति टेढ़ी जान शोचवश पुरवासी विलखकर वचन कहते हैं कि कुँअर की अभी किशोर अवस्था है और धनुष कठोर है। इसका असमंजस आ पड़ा ॥ ३ ॥ अपने-अपने सुकृत को सँभाल पितृ-देवतों को मनाकर ईश शिव के पद को मस्तक नवाकर अपने हित के समान चित्त लाकर सब चाहते हैं कि श्रीरघुबर के हाथ धनुष टूटे ॥ ४ ॥ कनसुई। गोबर की गौरी बनाकर चलनी में रखकर स्त्रियाँ पृथ्वी में डालती हैं। जो सीधी पड़े, तो शुभ मानती हैं, जो बेंड़ी पड़े तो अशुभ। सो कनसुई स्त्रीजन लेती फिरती हैं। और पुरुष शुभ सगुन पंडितों से पूछते हैं। सब अनुकूल सुनकर आनन्द मन से मानों धीरज को धाइकै दौड़कर धरत पकड़ती हैं ॥ ५ ॥

कौसिककथा एक एकन सों कहत प्रभाउ जनाइ कै।
सीयराम संजोग जानियत रच्यो बिरञ्चि बनाइ कै ॥ ६ ॥
एक सराहि सुबाहुमथन बर बाँह उछाह बढ़ाइ कै।
सानुज राजसमाज बिरजिहैं राम पिनाक चढ़ाइ कै ॥ ७ ॥

बड़ी सभा बड़ लाभ बड़ो जस बड़ी बड़ाई पाइ कै।
को मोहिं है और को लायक रघुनायकहि बिहाइ कै ॥ ८ ॥
गन्ननिहैं गँवहि गँवाइ गरब गृह नृप कुल बलहि लजाइ कै।
भली भाँति साहेब तुलसी के चलिहैं ब्याह बजाइ कै ॥ ९ ॥

विश्वामित्रजी की कथा। क्षत्रियतनु में इसी देह से तपोबल द्वारा ब्राह्मण हुए। यज्ञभाग से विप्रबालक बचाकर यज्ञ पूर्ण किया। त्रिशंकु को सदेह स्वर्ग भेजा, इस हेतु ब्रह्मा से विवाद हुआ, फिर दूसरी सृष्टि रची, इत्यादि कौशिक के प्रभाव की कथा जनाकर प्रभाव एक एक से कहते हैं कि वही विश्वामित्र संग में प्रभु को लाये हैं, इससे यह जान पड़ता है कि श्रीजनक-नन्दिनी रघुनन्दन का विवाह-संयोग ब्रह्मा ने बनाकर रच रक्खा है ॥ ६ ॥ एक कोई उत्साह बढ़ाकर सुबाहु को मथनेवाली रघुनाथ की श्रेष्ठ भुजाओं को सराहकर कहते हैं कि लक्ष्मण सहित श्रीरघुनाथजी राजसमाज में धनुष चढ़ाकर विराजमान होंगे ॥ ७ ॥ काहे से बड़े समाज में बड़ा लाभ जानकी मिलना और धनुष तोड़ना बड़ा यश इत्यादि बड़ी बड़ाई श्रीरघुनन्दन को छोड़ दूसरा कौन पाने लायक़ है, जिसे यह बड़ाई सोहेगी ॥ ८ ॥ नृपकुल के समूह राजा बल गर्व गँवा गँवहि कहे गाँ बहाने से लजाकर घरों को जायँगे। तुलसी के साहब रघुनाथजी भली भाँति से ब्याह कर डंका बजाकर अपने धाम को चलेंगे ॥ ९ ॥

भोरफूल बीनिबे को गये फुलवाई हैं।
सीसन टेपारे उपबीत पीतपट कटि,
दोना बाम करन सलोने सवाई हैं ॥ १ ॥

रूप के अगार भूप के कुमार सुकुमार,
गुरु के प्रानाधार संग सेवकाई हैं।
नीच ज्यों टहल करैं रुख राखे अनुसरैं,
कौसिक से कोही बस कीन्हे दुहुँ भाई हैं॥ २ ॥
सखिन सहित तेहि अवसर बिधि सँजोग,
गिरिजाजू पूजिबे को जानकीजू आई हैं।
निरखे लखन राम जाने ऋतुपति काम,
मोहि मानों मदन मोहनी मूड़ नाई हैं॥ ३ ॥
राखोजू श्रीजानकी लोचन मिलिबे को मोद,
कहिबे के जोग न मैं बातैं सी बनाई हैं।
स्वामी सिया सखिन लषन तुलसी को तैसो,
तैसो मन भयो जाकी जैसी ऐस गाई हैं॥ ४ ॥

भोरही सबेरे फूल बीनने फुलवारी को गये। वहाँ की छवि कहते हैं। शीशों पर टेपारे कहे टोपी धारण किये, उपवीत और पीत पट कटि में। यहाँ पीत दीपदेहलीन्याय है। वाम हाथ में फूलों का दोना लिए से सवाई छवि भई। रंग-रंग के फूलों से दीप्ति बढ़ी अथवा मदन की प्रबलता से श्रीजानकीजी सो छवि अवलोकती हैं। द्वंद्वयुद्ध होनेवाला है। मदन के फूलों का धनुष है, सो वाम हाथ में रहता है। सो प्रभु प्रथम ही धारण किये हैं। वीर की अस्त्रधारण से छवि अधिक बढ़ती है। प्रभु के वाम हाथ में फूलदोना से सवाई छवि बढ़ी॥ १ ॥ रूप के आगार कहे रूप इनहीं में रहता है। तिस पर भूप के कुमार हैं, किसी सामान्य के नहीं।

फिर सुकुमार हैं। थोड़ी उमर में गुण की शोभा अधिक होती है। फिर तपोधन विश्वामित्र के प्राणअधार हैं। तिस पर सङ्ग में सेवकाई में हैं, जैसे नीच टहल करता और रुख लेकर आप रहता है। ऐसे क्रोधी विश्वामित्र, तिनको भी दोनो भाई वश किये हैं। जैसे कोई युद्ध को चढ़ता है, तब किसी देवता का इष्ट कर सिद्ध कर लेता है, तब रण में जय पाता है, उसी भाँति विश्वामित्र को सिद्ध किये हैं॥ २॥ उसी समय विधि-संयोग से श्रीजानकीजी सखियों सहित श्रीपार्वतीजी को पूजने फुलवारी को आईं। तहाँ श्रीरघुनन्दन और लक्ष्मणलाल को कैसे देखती भईं, मानों कामदेव और वसन्त हैं, तिनको देख मोह गईं। मानों काम ने मोहनी सिर पर डाल दी, वैसे मोह गईं॥ ३॥ श्रीरघुनन्दन जनकनन्दिनी के नेत्रों की नज़र मिलने का आनन्द जैसा हुआ, सो कहने के योग्य नहीं है। हमने बनाकर ऐसी बातें कही हैं। यहाँ शृङ्गार रस का आलम्बन पूर्णरूप वर्णन है। फुलवारी की शोभा विभाव। मोहनी सिर डाली, अनुभाव। अवहित्थ संचारी है। लाभ से हर्ष, शोक, छिपे दृष्टिसंभोग। रति स्थायी। इससे पूर्ण आलंबन शृंगार रस है। ललित हाव है। विश्रब्ध नवोढ़ा नायिका है। यहाँ नायक में अनुकूल और दक्ष दोनों की संधि है। प्रभु तो अनुकूल ही नायक हैं; परन्तु किशोरीजी की प्रसन्नता से युक्त प्रभु कल्पवृक्ष हैं। जो जैसा भाव करे, उसे वैसा ही फल देते हैं, परन्तु किशोरीजी की प्रसन्नता से। प्रमाण अमररामायणे श्रीमुख वाक्यम्—एताः समस्ता नरराजपुत्र्यस्तवाभिभूता मयि रन्तुकामाः॥ न तासु दृश्यो व्यभिचारदोषो योगाय क्षेमाय च सोऽस्ति यासाम्॥ १॥ त्वयोपदिष्टासु निवेशितं मनो न चेतरासु स्वयमात्ममोहनैः॥ हावैः प्रियाणां ललितादिलक्षणैरनन्यभावेन त्वयि प्रतिष्ठितम्॥ २॥ यह बात प्रकट में कहने योग्य नहीं, इससे

गोसाईंजी ने गुप्त ही कही है। यहाँ जानकीजी स्वकीया विश्रब्ध-नवोढ़ा नायिका। रघुनन्दन अनुकूल नायक। सखियों में नायिका यथा—"प्रेमबिबस सीता पहँ आई॥" इति लज्जिता। "अवसि देखिये देखन जोगू॥" इति उत्कंठिता। "फिरि आउब यहि बेरिया काल्ही॥" इति वचनविश्रब्धा। लक्ष्मणजी का सख्य रस से सखियों के प्रति हास्य रस का अधिकार है। गोसाईंजी को दासभाव में वासना शृँगारभाव की है, इससे गुप्त कहते हैं कि जिसकी जैसी सगाई संबंध है, उसका वैसा स्वभाव भया। यहाँ सखियों प्रति प्रभु का दक्षनायकत्व है॥ ४॥

पूजि पारबती भले भाय पायँ परि कै।
सजल सुलोचन सिथिल तनु पुलकित,
आवै न बचन मन हरचो प्रेम भरिकै॥ १॥
अन्तरजामिनि भवभामिनि स्वामिनि सोहौ,
कहा कहौं बात मात अंत तौ हौं लरिकै।
मूरति कृपाल मंजु माल दै बोलत भई,
पूजै मनकामना भावतो बरु बरि कै॥ २॥
राम कामतरु पाइ बेलि ज्यों बोड़ी बनाइ,
माँग कोखि तोषि पोषि फैलि फूलि फरि कै।
रहौगी कहौगी तब साँची कही अंबा सिया,
गहे पाँइ है उठाइ माथे हाथ धरि कै॥ ३
मुदित असीस सुनि सीस नाय पुनि पुनि,
बिदा भई देबी सों जननि - डर डरि कै।

हरषि सहेली भयो भावतो गावत गीत
गवनी भवन तुलसीसहियो हरि कै ॥ ४ ॥

श्रीजनकनन्दिनी ने भली भाँति षोड़शोपचार आदि से पूजन कर पैरों में पड़कर प्रेम से मन हरा है। तनु पुलकित है, इससे शिथिल हो नेत्र जल से भरे। इससे वचन नहीं कह आते ॥ १ ॥ भव शिव की भामिनी वामांगी पार्वती स्वामिनी अंतर्यामिनी हैं। इससे अंतर्यामिनी से नहीं कहना चाहिये; क्योंकि वह तो सब जानती हैं। तिन मातु पार्वती अंतर्यामिनी से मैं अपने मनोरथ की बात कहा चाहती हूँ। इसका समाधान करते हैं कि अन्त में लड़का ही तो हूँ। बालक का कहना कोई अनुचित नहीं मानता। तब कृपामूर्ति पार्वतीजी सुन्दर माला प्रसाद देकर बोलीं—हे जनकनंदिनीजी, जो तुम्हारे मन में भावता वर है, उसको बरि कहे ब्याह कर मनकामना पूजो कहे पूर्ण हो ॥ २ ॥ श्रीरघुनन्दन कल्पवृक्ष पाकर बेलि सम बनाइ बौंड़ी नाम फैल कर माँग सों तोषि अर्थात् सुहाग से भरकर कोखि सों पोषि कहे बालक-जन्मादि से फैल, फूल, फलकर पुष्ट हो रहोगी। तब कहोगी अंबा पार्वती ने सत्य कहा था। यह सुन जानकीजी ने चरण पकड़े। तब पार्वतीजी ने कहा, यह क्या करती हो? यह कह माथे पर हाथ रख उठा लिया ॥ ३ ॥ अशीश सुनि आनन्द से बार-बार मस्तक नवा जननी के डर से डर के देवीजी से बिदा हुईं। मन का भावता हुआ जानकर सहेल हर्षीं इससे गीत गाती हैं। तुलसी के ईश रघुनाथजी का हृदय हर लेकर भवन को गईं ॥ ४ ॥

रंगभूमि आये दसरथ के किसोर हैं।
पेखन सों पेखन चले हैं पुरनरनारि,
बारे बूढ़े अंध पंगु करत निहोर हैं ॥ १ ॥

नील पीत नीरज कनक मरकत घन,
दामिनि बरन तन रूप के निचोर हैं।
सहज सलोने राम लखन ललित नाम,
जैसे सुने तैसे ही कुँवर सिरमौर हैं॥ २॥
चरनसरोज चारु जंघा जानु ऊरु कटि,
कन्धर बिसाल बाहु बड़े बरजोर हैं।
नीके जैनिषंग कसे करकमलन लसे,
बान बिसिखासन मनोहर कठोर हैं॥ ३॥
कानन कनकफूल उपवीत अनुकूल,
पियरे दुकूल बिलसत आछे छोर हैं।
राजिवनयन बिधुबदन टेपारे सिर,
नखसिख अंगन ठगौरी ठौर ठौर हैं॥ ४॥
सभा सरवर लोक कोकनद कोकगन,
प्रमुदित मन देखि दिन मानि भोर हैं।
अबुध असैले मन मैले महिपाल भये,
कछुक उलूक कछु कुमुद चकोर हैं॥ ५॥
भाई सों कहत बात कौसिकहि सकुचात,
बाल घनघोर से बोलत थोर थोर हैं।
सनमुख सबहिं बिलोकत सबहि नीके,
कृपा सों हेरत हँसि तुलसी की ओर हैं॥ ६॥
श्रीदशरथ के किशोर रंगभूमि को आये हैं, यह सुनकर पुर के

नारी नर पेखन कहे तमाशा देखने को चले। बारे (बच्चे), बूढ़े, पाँगुरे (पंगुल), अंधे निहोरा करते हैं कि हमको भी ले चलो। आँधरे वचन सुनने को ॥ १ ॥ नीलकमल-मरकतमणि-मेघवर्ण रघुनाथजी पीत-कमल-कनक-दामिनी-वर्ण लक्ष्मणजी रूप के निचोड़ सारांश हैं। सहज ही में लावण्ययुत, कुछ रचना से नहीं। और रामलक्ष्मण, ऐसा नाम भी ललित है। जैसा सुना है, वैसा ही कुँअरों में शिर-मौर हैं॥ २॥ चरण कमलसम। सुन्दर जंघा। पिंडुरी जानु, टिहुनी। ऊरू मोटी जाँघें। कन्धर कन्धा। विशाल लम्बायमान भुजा बड़े बरजोर हैं। कटि में तरकस नीके कसे। हाथ में धनुष-बाण लसे। देखने में मनोहर, करनी में कठोर ॥ ३ ॥ कानों में कनक के पुष्पा-कार कुण्डल या झुमके और जैसा क्षत्रियों को चाहिये, उसके अनुकूल यज्ञोपवीत और पीतपट, उसमें आछे छोर जरी के विराजते हैं। कमलसम नेत्र। चन्द्रमासम वदन। सिरों में टोपी। नख से शिखा पर्यन्त अंगों में ठौर ठौर ठगोरी हैं। जहाँ देखिये, वहीं मन ठग रहे॥ ४ ॥ सभा सोई वर कहे श्रेष्ठ तड़ाग है। लोक जन सोई कोकनद कहे कमल हैं। कोकगण चकई-चकवा हैं। सो सब भोर के से दिनमणि सूर्यरूपी रघुनाथजी को देख प्रमुदित हुए। श्रीरामरूप रवि देख सभा सब प्रफुल्लित हुई। अबुध जो मूढ़ राजा हैं, असैले कहे जो धनुष तोड़ने की आशा लगाये रहे हैं, ते मन मैले भये हैं। अबुध उलूक से लुक रहे। आशावाले कुमुद से सम्पुट भये। मनमैलों ने चकोरसम नेत्र मूँद लिये ॥ ५ ॥ पुर-जन कहते हैं कि रघुनाथजी का वचन तो घनसम गंभीर है, परन्तु विश्वामित्रजी के संकोचवश भाई से धीरे-धीरे बातें करते हैं। सम्मुख सबसे हैं, पर किसी की ओर देखते नहीं हैं। इससे प्रतापी हैं। और सबको अच्छी तरह देखते हैं, इसमें सरलता है। वे ही प्रभु कृपा से हँसकर तुलसी की ओर हेरते हैं ॥ ६ ॥

येई राम लखन जे मुनि सँग आये हैं।
चौतनी चोलना काछे सखा सोहैं आगे पाछे,
आछेहू ते आछे आछे आछे भाय भाये हैं॥ १॥
साँवरे गोरे सरीर महाबाहु महावीर,
कटि तून तीर धरे धनुष सोहाये हैं।
देखत कोमल कल अतुल बिपुल बल,
कौसिक कोदण्डकला कलित सिखाये हैं॥ २॥
इनहीं ताड़का मारी गौतम की तिय तारी,
भारी भारी भूरि भट रन बिचलाये हैं।
ऋषिमखरखवारे दसरथ के दुलारे,
रंगभूमि पग धारे जनक बुलाये हैं॥ ३॥
इनके बिमल गुन गनत पुलकि तन,
सतानन्द कौसिक नरेसहि सुनाये हैं।
प्रभुपद मन दिये सो समाज चित किये,
हुलसि हुलसि हिये तुलसिहु गाये हैं॥ ४॥

जो मुनि के संग आये हैं, वे श्रीराम लक्ष्मण ये ही हैं। चौगोशिया टोपी और चोलना को काछे पहने हैं। हे सखी, आगे रघुनाथजी, पीछे लक्ष्मणजी सोहते हैं। आछे हू ते आछे कहे देवता आदि जो अच्छे अच्छे, तिनसे भी अच्छे कामदेव आदि, तिनको भी अच्छे भाव से भाये हैं। भले भाव से मन लाकर देखते हैं॥ १॥ साँवले रघुनाथजी, गौरशरीर लक्ष्मणजी। आजानुभुज, बल के भरे और रण में महावीर हैं। कटि में तरकस, कर में सुन्दर

धनुष सोहता है। देखने में कोमल व सुन्दर। बल जिनमें अतुल है, अर्थात् बड़े बलवान् हैं। तिनको विश्वामित्र ने कोदंड-कला कहे धनुषविद्या सुन्दर सिखाई है॥ २॥ इन्हीं ने ताड़का को मारा और गौतम की तिया तारी। सुबाहु आदि भारी-भारी योद्धा रण में विचलाकर भगाये हैं। वे विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के करनेवाले श्रीदशरथ महाराज के कुमार श्रीरघुनाथजी मिथिलेशजी के बुलाने से रंगभूमि में आये हैं॥ ३॥ इनके विमल दिव्य गुण-गण शतानन्द और विश्वामित्र ने प्रेम से पुलकित-तनु हो विदेहजी को सुनाये हैं। प्रभु के चरणकमलों में मन दिये, सो जनकपुर का समाज चित्त में किये, हुलस-हुलसकर हृदय से तुलसीदास गाते हैं॥ ४॥

राग कान्हरो

सियास्वयंवर माई दोउ भाई आये देखन।
सुनत चलीं प्रमदा प्रमुदित मन,
प्रेमपुलकि तन मनहुँ मदन मंजुल पेखन॥ १॥
निरखि मनोहरताई सुख पाय कहैं एक एक सों,
भूरि भाग्य हम धन्य आली ये दिन ये खन।
तुलसी सहज सुरंग सो,
समाज चित्त चित्रसार लागीं देखन॥ २॥

हे माई, राम लक्ष्मण दोनों भाई श्रीजानकीजी का स्वयंवर देखने हेतु आये हैं, यह सुन प्रमदागण प्रेम से पुलकित तनु हो आनंद मन से मानों सुन्दर मदन देखने को चलीं॥ १॥ प्रभु की मनोहरता सुन्दरता देख सुख पाकर एक एक से कहती हैं, हे आली, आज इस क्षण हम बड़भागी हैं। यह क्षण और दिन धन्य है।

गोसाईंजी कहते हैं कि सहज सनेह जो प्रीति, उसका अंग प्रणय, प्रेम, आसक्ति, लगन, लाग, अनुराग, नेह आदि, सोई सुंदर रंग, द्युति, लावण्य, रूप, कांति, सुकुमारता, कोमलता, माधुरी आदि प्रभु की शोभा से समाज सहित बुद्धि लेखनी द्वारा स्त्रीजन अपने चित्तरूप चित्रसारी में लिखने लगीं ॥ २ ॥

राग गौरी

राम लखन जब दृष्टि परोरी ।
अवलोकत सब लोग जनकपुर मानों बिधि बिबिध बिदेह करोरी १
धनुपजज्ञ कमनीय अवनितल कौतुक ही भय आय खरोरी ।
छबिसुरसभा मनहुँ मनसिज के कलित कल्पतरु रूप फरोरी ॥ २ ॥
सकल काम बरखत मुख निरखत करखत चित हित हरष भरोरी ।
तुलसी सबहि सराहत भूपहि भले पैत पाँसे सुठर ठरोरी ॥ ३ ॥

हे सखी, श्रीराम लक्ष्मण जब से दृष्टि में पड़े, उनके देखने में प्रेमानन्द में मग्न हो नर-नारी एकटक रहे, देहाध्यास भूल गये। इससे जान पड़ा जनकपुर के लोगों को मानों विधाता ने अनेक विदेह बनाये ॥ १ ॥ धनुष-यज्ञ की कमनीय नाम सुन्दर अवनितल पृथ्वी में कौतुक ही आ खड़े हुए। यज्ञभूमि सोई छबिमयी सुर-सभा है। उसमें श्रीराम लक्ष्मण मानों मनसिज कामदेव के सुन्दर कल्पवृक्ष शोभित हैं। विना भूषण भूषित जो रूप, सोई कल्प-वृक्ष के फूल-फल हैं ॥ २ ॥ वहाँ कल्पवृक्ष की छाया में जाने से वह मनोरथ फल देता है, यहाँ श्रीराम लक्ष्मण का मुख निरखने में सकल मनकामना बरसता और चित्त को कर्षता आकृष्ट करता है। चित्त का हित जो हर्ष, उसको हिये में भर देता है।

गोसाईंजी कहते हैं कि भूप को सब सराहते हैं कि पैत कहे भले दाँव के पाँसे सुधरकर पड़े हैं। जो पण करैं, सो भले फल पाये हैं॥ ३॥

नेकु सुमुखि चितलाइ चितौ री।
राजकुँअर मूरति रचिबे को रुचि,
सुचि विरंचि स्रम कियो है कितौ री॥ १॥
नख-सिख सुन्दरता अवलोकत,
कहि न परत सुख होत जितौ री।
साँवर रूप सुधा भरिबे को,
नयन कमल कल कलस रितौरी॥ २॥
मेरे जान इनहिं बोलिबे कारन,
चतुर जनक ठयो ठाट इतौ री।
तुलसी प्रभु भंजि हैं संभु धनु,
भूरि भाग सिय मातु-पितौ री॥ ३॥

हे सुमुखि, नेक चित्त लगाकर देख तो राजकुँअर श्रीराम की मूर्त्ति रचने को ब्रह्मा ने शुचि कहे पवित्र मन से रुचिपूर्वक कितना परिश्रम किया है॥ १॥ नख से शिखापर्यंत सुन्दरता अवलोकत देखते में उतना सुख होता है, जितना कहते नहीं बनता। इससे साँवलेरूप रघुनाथजी की शोभारूप अमृत भरने को नेत्र-रूप कमल के कलश रितौरी कहे खाली किये, और कुछ नेत्रों में नहीं भरा॥ २॥ सखी कहती है कि हमारी जान इन श्रीरघुनन्दन के बुलाने को ही चतुर जनकजी ने इतना धनु तोरने का पण आदि ठाट ठाटा है। गोसाईंजी कहते हैं, सखी कहती

हैं कि प्रभु शम्भुधनुष तोड़ेंगे; क्योंकि श्रीजानकीजी के माता-पिता के बड़े भाग्य हैं ॥ ३ ॥

राग सारंग

जब ते राम लखन चितये री ।
रहे यकटक नर नारि जनकपुर लागत पलक कलप बितये री ॥१॥
प्रेम बिबस माँगत महेस सों देखत ही रहिये नित ये री ।
कै ये सदा बसैं इन नैनन की ये नैन जाहिं जित ये री ॥२॥
कोउ समुझाइ कहै किन भूपहि बड़े भाग्य आये इत ये री ।
कुलिसकठोर कहाँ संकरधनु मृदु मूरति किसोर कित ये री ॥३॥
बिरचत इनहिं बिरंचि भुवन सब सुन्दरता खोजत रितये री ।
तुलसिदास ते धन्य जन्म जन मन बच क्रम जिनके हित ये री ॥४॥

हे सखी, जब से श्रीराम लक्ष्मण को देखा, तबसे जनकपुर के नर-नारी एकटक रहे, पलक लगने का अंतर पड़ना मानों कल्प बीते ॥ १ ॥ प्रेम के विशेष वश हैं, इससे सब महेश से माँगते हैं कि इनको नित्य ही देखते रहें । या तो ये हमारे नेत्रों में बसें, या जहाँ ये जायँ, वहाँ हमारे नेत्र भी जायँ ॥ २ ॥ हे सखी, कोई विदेह महाराज को समझाकर क्यों नहीं कहता कि यहाँ जनकपुर को ये तुम्हारे बड़े भाग्य से आये हैं । इससे प्रण छोड़ि इनका ब्याहो; नहीं तो कहाँ शिव का धनुष वज्र से भी कठोर और कहाँ ये राजकिशोर परमकोमल मूर्ति हैं ॥ ३ ॥ इनको रचते में ब्रह्मा ने सुन्दरता ढूँढ़ने में सब भवन रितये खाली किये । गोसाईं जी कहते हैं कि जिनके मन, वचन, कर्म से रघुनाथजी ही हित हैं, तिन जनों के जन्म धन्य हैं ॥ ४ ॥

सुनु सखि भूपति भलोइ कियो री ।
जेहि प्रसाद अवधेस कुँअर दोउ नगर लोग अवलोकिजियोरी १
मानि प्रतीति कहे मेरे ते कत संदेह बस करत हियो री ।
तौलौं है यह सम्भु सरासन श्रीरघुबर जौ लौं न लियो री २
जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी अरु रामहिं ऐसो रूप दियो री ।
तुलसिदास ते चतुर बिधाता निज कर यह संजोग सियो री ३

सखी को सखी उत्तर देती है । हे सखी, सुन, भूपति ने भला किया, जो धनुष तोड़ने का प्रण सुन राजकुमार आये हैं, तिनको निरखकर नगर के लोग जीते हैं ॥ १ ॥ मेरे कहे पर प्रतीति कर, संदेहवश हिये को न कर । यह शंभु का शरासन तभी तक है, जब तक श्रीरघुबर कर में नहीं लेते ॥ २ ॥ जिस ब्रह्मा ने रचकर श्रीजानकीजी को सँवारा और श्रीरघुनन्दन को ऐसा रूप दिया, गोसाईंजी कहते हैं, उसी चतुर ब्रह्मा ने अपने हाथ से यह संयोग सियो कहे मिलाया है ॥ ३ ॥

अनुकूल नृपहि सूलपानि हैं ।
नीलकंठ लावन्यसिंधु हर दीनबन्धु दिनदानि हैं ॥ १ ॥
जो पहिले ही पिनाक जनक को गयो सौंपि जियजानि हैं ।
बहुरि त्रिलोचन लोचन को फल सबहि सुलभ कियो आनि हैं॥२॥
सुनियत भवभावते राम हैं सिय भावती भवानि हैं ।
परखत प्रीति प्रतीति पैज प्रन रहे काज ठट ठानि हैं ॥ ३ ॥
भये बिलोकि बिदेह नेहबस बालक बिन पहिचानि हैं ।
होत हरे होने बिरवन दल सुमति कहत अनुमानि हैं ॥ ४ ॥

देखियत भूप भोर के से उडुगन गरत गरीब गलानि हैं।
तेज प्रताप बढ़त कुँवरन को जदपि सकोची बानि हैं॥ ५॥
बय किसोर बरजोर बाहुबल मेरु मेलि गुन तानि हैं।
अवसि राम राजीवबिलोचन सम्भुसरासन भानि हैं॥ ६॥
देखिहैं ब्याह उछाह नारि नर सकल सुमंगलखानि हैं।
भूरिभाग तुलसी तेऊ जे सुनि गाइहैं बखानि हैं॥ ७॥

सकल शूलों का नाश करनेवाला त्रिशूल जिनके पाणि में है, सो शूलपाणि नृप विदेह पर अनुकूल हैं। नीलकण्ठ, करुणा के समुद्र, हर, दीनबन्धु, दीनों के दानी हैं। सुरासुर जलते देख हलाहल पान किया, इससे करुणासिन्धु हमको भी करुणा कर प्रणरूपी ताप से जलते देख धनुषकठोरता के विष का नाश करेंगे। हर हैं, सब दुःख हरते हैं। हमको भी दुःखित जान दुःख हरेंगे। दीनबंधु हैं, हम धनुष टंकोर जान दीन हैं, सो हमारी भी सहायता करेंगे। दीनों के दानी हमको भी सियारामसंयोग दान देंगे॥ १॥ जो शिवजी पहले ही जी में जानकर पिनाक जनकजी को सौंप गये, उन्हीं त्रिलोचन शिवजी ने नेत्रों का फल सबको सुलभ किया। प्रभु के दर्शन अनायास पाये॥ २॥ सुनते हैं, शिव को श्रीराम सोहाते हैं, भवानी को श्रीजानकीजी सोहाती हैं। वह शिवजी श्रीरामजानकी की प्रीति परखते हैं। पार्वतीजी अपने आशीर्वाद की प्रतीति श्रीजानकीजी से परखती हैं, और शिवजी राजों की धनुष तोड़ने की पैज परखते हैं, विदेह महाराज का प्रण परखते हैं। इसी से कार्य के ठाट ठाटने में शिवपार्वती विलम्ब ठान रहे हैं॥ ३॥ जिन बालकों को विलोक कर विना पहचान विदेहजी नेहवश भये। इससे संयोग होनहार है। काहे से

"होनहार बिरवान के होत हरे ही पात"। हम अपनी मति से अनुमान कर यह कहते हैं ॥ ४ ॥ अपर भूपों को देखिये तो भोर के ऐसे नक्षत्र प्रकाशहीन, ग़रीब ग्लानि में गले जाते हैं। और कुँअरों का तेज-प्रताप बढ़ता जाता है। बानि कहे रीतिरहस्य बोलचाल सब सङ्कोचपूर्वक करते हैं, इससे अभिमानरहित हैं ॥ ५ ॥ अवस्था किशोर है; परन्तु बाहुबल से बरजोर हैं। मेरु कहे सुमेरु गिरि में गुण रोदा को चढ़ाकर लगाकर तानिहैं खींचेंगे। यह सुमेरु गिरि में रोदा लगाकर खींच सकते हैं। अवश्य श्रीरघुनन्दन कमलनयन शिव का धनुष तोड़ेंगे ॥ ६ ॥ सकल सुमंगल की खान हैं, इससे नारी नर श्रीरामजानकी के ब्याह का उत्साह देखेंगे। गोसाईंजी कहते हैं कि वे भी भूरि कहे बड़भागी हैं, जो कीर्ति को गावेंगे, सुयश को बखानेंगे, और जो कीर्ति यश को सुनेंगे ॥ ७ ॥

राग केदार

रामहिं नीके निरखि सुनैनी।
मनसहु अगम समुझि यह अवसर कत सकुचत पिकबैनी ॥ १ ॥
बड़े भागि मखभूमि प्रकट भइ सीय सुमंगलमैनी।
जा कारन लोचनगोचर भइ मूरति सबसुखदैनी ॥ २ ॥
कुलगुरु तिय के बचन मधुर सुनि जनक जुवति मतिपैनी।
तुलसी सिथिल देह सुधिबुधि करि सहज सनेहबिषैनी ॥ ३ ॥

शतानन्दकी स्त्री श्रीजानकीजी की माता से कहती हैं। हे सुनयनी, श्रीराम को नीके निरखो। हे पिकबैनी, मन से भी अगम श्रीरघुनाथजी इस अवसर में नेत्रों के आगे हैं। काहे को सकुचती हौ ॥१॥ सिया सुमंगल का स्थान सुमंगल देनेवाली हैं। प्रमाण मार्कण्डेय-

संहितायां ब्रह्मवाक्य—सीतामातरमाश्रयामि भजतां मांगल्यसंपत्प्र-
दाम्॥ गोसाईंजी भी कहते हैं—सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं राम-
वल्लभाम्॥ वह मंगल का गृह श्रीजानकी बड़े भाग्य से तुम्हारी यज्ञ-
भूमि में प्रकट हुई हैं, जिनको कारण सब सुख देनेवाली रघुनन्दन
की मूर्ति नेत्रगोचर हुई है। यज्ञार्थ भूमि शोधते समय हल में
लगकर घट से पुत्री प्रकट हुई, इससे सीता नाम भया। प्रमाण
वाल्मीकिये विदेहवाक्य—अथ मे कृष्यता क्षेत्रं लांगलादुत्थिता
ततः। क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता॥ २॥
श्रीजनकजी की युवती श्रीसुनयनाजी मति की पैनी, सूक्ष्म है बुद्धि
जिनकी। वह कुल-गुरु शतानन्द की तिया के मधुर वचन सुनकर
गोसाईंजी कहते हैं कि प्रेम में विह्वल रही सो शीतलता छोड़ देह
की सुध कर बुद्धि से समझ सहज सनेह से विषैनी कहे नेत्रों
(पलकों) के विष मान प्रकट में रघुनाथजी को देखने लगीं॥ ३॥

मिलै बर सुन्दर सुन्दरी सीतहि लायक,
साँवरो सुभग सोभा हू को परम सिंगारु।
मनहू को मन मोहै उपमा को आन को,
है सुखमासागर अनुज सँग राजकुमारु॥ १॥
ललित सकल अंग तनु धरे की अनंग,
नैनन को फल किधौं सिय को सुकृतसारु।
सरदसुधासदनछबिही नींदत वदन,
अरुन आयत नवनलिनलोचन चारु॥ २॥
जनक मन की रीति जानि बिरहित प्रीति,
ऐसी औ मूरति देखे रह्यो पहिलो बिचारु।

तुलसी नृपहि ऐसी कहि न बुझावै कोऊ,
प्रन औ कुँवर दोऊ प्रेम की तुला धौं तारु ॥ ३ ॥

सखी कहती हैं कि शोभा जो है उसका भी परम शृंगार। शोभा को भी शोभित करनेवाला सुभग साँवला वर सीता ही के लायक़ है। यही सुन्दरी सीता को मिले। जो मन के भी मन को मोहे, उसकी उपमा देने को और कौन है। राजकुमार के संग में जो अनुज है, वह भी शोभासागर है ॥ १ ॥ सब अंग सुन्दर। कामदेव तनु को धारण किये। सशरीर हैं, या नेत्रों का फल है, या श्रीजानकीजी के सुकृत का सारांश है। शरद् ऋतु के सुधासदन चन्द्रमा की छवि को मुख नींदत निदरता है। अरुण रतनारे बड़े बड़े नवीन कमल सम नेत्र जिनके हैं ॥ २ ॥ जान जो चतुर तिनकी प्रीति से विशेष रहित जनकजी के मन की रीति है। काहे से जो ऐसे भी प्रभु की मूर्ति देखने पर उनका पहला विचार धनु तोड़ने का प्रण बना रहा। कोई महाराज को समझाकर नहीं कहता कि प्रण और राजकुमारों को प्रेम के तराज़ू पर धरकर तारु तौलो तो, इनमें कौन भारी है ॥ ३ ॥

देखु देखु री दोउ राजसुवन।
गौर स्याम सलोने लोने लोयन,
जिनकी सोभा ते सोहै सकल भुवन ॥ १ ॥
इनहीं ताड़का मारी मग मुनितिय तारी,
मुनिमख राख्यो रन दले हैं दुवन।
तुलसी प्रभु को अब जनकनगर नभ,
सुजस बिमल बिधु चहत उवन ॥ २ ॥

हे सखी, देख, देख तो दोनों राजकुमारों को। गौर लक्ष्मणजी, श्याम रघुनाथजी। लावण्य के भरे अंग। लावण्ययुत लोयन नेत्र। जिनकी शोभा से सकल भुवन शोभित होते हैं। अर्थात् नेत्रों से सूर्य प्रकट हैं तिनसे सब भुवन प्रकाशित है। प्रमाण पुरुषसूक्के—चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ॥ १ ॥ इन्होंने ताड़का को मारा। मार्ग में मुनितिया अहल्या तारी। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की। संग्राम में सुबाहु आदि दुष्टों को मारा। गोसाईंजी कहते हैं, जहाँ यह सब हुआ, वहाँ जनकपुर सोई नभ कहे आकाश है, उसमें धनुष तोड़ने का निर्मल प्रभु का यशरूपी चन्द्रमा उदय होने चाहता है ॥ २ ॥

राजा रंगभूमि आजु बैठे जाय जाय कै।
आपने आपने थल आपने आपने साज,
आपनी आपनी बर बानिक बनाइ कै ॥ १ ॥
कौसिकसहित राम लखन ललित नाम,
लरिका ललाम लोने पठये बुलाइ कै।
दरसलालसाबस लोग चले भाय भले,
बिकसत मुख निकसत धाइ धाइ कै ॥ २ ॥
सानुज सानन्द हिये आगे है जनक लिये
रचना रुचिर सब सादर दिखाइ कै।
दिये दिब्य आसन सुपास सावकास अति,
आछे आछे बीछे बीछे बिछौना बिछाइ कै ॥ ३ ॥
भूपति किसोर दुहुँ ओर बीच मुनिराव,
देखिबे को दाँव देखौ देखिबो बिहाइ कै।

उदय सैल सोहै सुन्दर कुँवर जोहै,
मानों भानु भोर भूरि किरन छिपाइ कै ॥ ४ ॥
कौतुक कोलाहल निसान गान पुर नभ,
बरसत सुमन विमान रह्यो छाइ कै ।
हित अनहित रत बिरत बिलोकि बाल,
प्रेम मोद मगन जनम फल पाइ कै ॥ ५ ॥

आज रंगभूमि में सब राजा जा-जाकर अपने साज कहे चँवर, छत्र, भूषण, पोशाक आदि बानिक वेष बनाकर थल कहे अपने स्थान पर बैठे ॥ १ ॥ इसी अवसर में कौशलेश महाराज के बालक, ललाम कहे जग के भूषन, लोने लावण्य के भरे, श्रीराम लक्ष्मण ऐसा ललित नाम जिनका, तिनको विश्वामित्र सहित विदेहजी ने बुला भेजा । तिनके दर्शन की लालसावश लोग पुरवासी भले भाव से चले । विकसत कहे प्रसन्नमुख घर से दौड़-दौड़ निकसते हैं ॥ २ ॥ सानुज कहे कुशध्वजसहित श्रीजनकजी ने आनन्द से विश्वामित्रजी को आगे किया । प्रथम यज्ञभूमि की सुन्दर रचना दिखाई । आदर से पश्चात् दिव्य आसन दिये, जिन पर चुने-चुने सुन्दर बिछौना बिछे हैं, जहाँ सब तरह का सुपास और सावकाश है ॥ ३ ॥ भूपतिकिशोर श्रीरघुनन्दन व लक्ष्मणजी दाहने बायें, बीच में विश्वामित्रजी । इससे देखने का दाँव है । सो सबको देखना बिहाय छोड़कर इनको देखो, ऐसा पुरवासी कहते हैं । मंच मानो उदयगिरि है । उस पर राजकुमार मानो प्रभातकालके सूर्य हैं । वे अपनी किरण, भूरि कहे समूह, तिनको छिपाकर बैठे हैं ॥ ४ ॥ निशान बाजा । स्त्रियों का गान । ब्राह्मणों की वेदध्वनि इत्यादि कोलाहल शब्द आदि कौतुक पुर

में हो रहा है। आकाश में देवतों के विमान सुन्दर छा रहे हैं। उनसे फल बरस रहे हैं। हितू अनहितू, रत अनुरागी, विरत वैराग्यवान्। सब बाल जो रघुनन्दन तिनको नेत्र भरकर देख जन्म धरे का फल पाकर प्रेमानन्द में मग्न हैं॥ ५॥

राजा की रजाइ पाइ सचिव सहेली धाइ,
सतानन्द लाये सिय सिबिका चढ़ाइ कै।
रूपदीपिका निहारि मृग मृगी नर नारि,
बिथके बिलोचन निमेष बिसराइ कै॥ ६॥
हानि लाहु अनख उछाहु बाहुबल कहि,
बन्दी बोले बिरद अकस उपजाइ कै।
द्वीप द्वीप के महीप आये सुनि पैंज पनु,
कीजै पुरुषारथ को औसर भो आइ कै॥ ७॥
आनाकानी कंठहँसी मुहाचाही होन लागी,
देखि दसा कहते बिदेह बिलखाइ कै।
घरनि सिधारिये सँवारिये आगिलो काज,
पूजि धनु कीजै जाय बिजय बजाइ कै॥ ८॥
जनकबचन सुनि बीर बालजारुकैसे,
बीर रहे सकल सकुचि सिर नाइ कै।
तुलसी लखन माखे रोष राखे राम रुख,
भाखे मृदुपरुष सुभायन रिसाइ कै॥ ९॥

विदेह महाराज की आज्ञा पाकर सचिव दौड़े। सखियों सहित श्रीजानकीजी को शिबिका पालकी पर चढ़ाकर शता-

नन्दजी लाये। तहाँ दीपकसम श्रीजानकीजी का रूप देख नर-नारी मृग-मृगी-सम देख पलकरहित नेत्रों से थकित भये ॥ ६ ॥ धनुष न टूटने से केवल प्रताप, वीरता, बड़ाई की हानि। और टूटने से त्रिभुवन-जयसहित विदेही लाभ। जिस पिनाक ने बिना नाक का राजों को किया। यह अनख कि जो धनु तोड़े, सो वैदेही बिवाहे, यह उत्साह राजों के समाज में जो ज़ोर दिखाकर तोड़े, यह बाहुबल। जिस धनुष को देखकर रावण, बाणासुर बहाने से चले गये। यह अकस लागडाँट उपजाकर वन्दीजन विरदावली उच्चारण कर कहने लगे कि द्वीप-द्वीप के महीप जो पैज पनु कहे अत्यन्त पुष्ट प्रतिज्ञा सुनकर सब आये हैं, उसका अब अवसर आया है। इससे पुरुषार्थ कीजिये ॥ ७ ॥ आनाकानी, धनुष की ओर सनकारना हिचक। कंठहँसी, धीरे से मुसक्याकर हँसना। मुँहाचाही, मुँह ताकना। तुम उठो, तुम उठो, यह एक एक से कहने लगे। उन भूपों की दशा देख विदेहजी बिलखकर कहने लगे—हे राजो, अपने घरों को सिधारिये। यह काम कर चुके। अब घर का अगला काम सुधारिये। उसकी विजय धनुष को पूज पूज कर बजा कर कीजे। यह चानक है ॥ ८ ॥ जैसे लजारु लाजवन्ती के वृक्ष छुये से कुँभलाकर गिर पड़ते हैं, वैसे विदेहजी के वचन सुनकर वीर सकुचाकर सिर नाइ झुकाकर रह गये। गोसाईंजी कहते हैं कि लक्ष्मणजी रोषे; परन्तु श्रीरघुनाथ को रुख राखे रुख देखकर सहज ही में कोमल और कठोर वचन भाखे, कुछ रिस करके नहीं ॥ ९ ॥

भूपति बिदेह कही नीकी पैजु भई है।
बड़े ही समाज आज राजन की लाज पति
हाँकि आँक एक ही पिनाक छीनि लई है ॥ १ ॥

मेरो अनुचित न कहत लरिकाईं बस,
बहु परिमिति आन भाँति सुनि गई है।
नतरु प्रभुप्रताप उतरु चढ़ाइ चाप
देतौ पै दिखाइ बल फल पापमई है ॥ २ ॥
भूमि के हरैया उखरैया भूमिधरन के,
बिधि बिरचो प्रभाव जाको जग जई है।
बिहँसि हिये हरषि हटके लखन राम,
सोहत सकोच सील नेह नारि नई है ॥ ३ ॥
सहमी सभा सकल जनक भये बिकल,
राम लखि कौसिक अशीष आज्ञा दई है।
तुलसी सुभाय गुरु पाँय लागि रघुराज,
ऋषिराज की रजाय माथे मानि लई है ॥ ४ ॥

लक्ष्मणजी कहते हैं कि भूपति विदेह ने जो कही, सो भई है, इससे नीकी कहे सच्ची है। काहे से बड़े समाज में राजों की लाज और पति इज़्ज़त पिनाक ने हाँकि कहे ललकारकर आँक एक ही कहे निश्चय करके छीन लिया है ॥ १ ॥ प्रभु के सामने मेरा कहना अनुचित है; परन्तु लरिकाईंवश कहता हूँ। इससे अनुचित नहीं। अरु पन की परमिति अन्तफल और भाँति सुनी गई है। जो धनुष तोड़े, सो श्रीजानकी जी को ब्याहै। इसका अभिप्राय यह कि जानकीजी माता की जगह हैं, इससे अनुचित है। जो यह पन न होता, तो प्रभु के प्रताप से धनुष चढ़ाकर मैं जनकजी को उत्तर देता। परन्तु बल को दिखाने से उसका फल पापमयी है। जगज्जननी जानकी-विवाह हमको पापमयी है ॥ २ ॥ भूमि के

हरैया दैत्य बाणासुर आदि, भूधरों के उखाड़नेवाले राक्षस रावणादि, तिन सहित जगजई कहे जीतनेवाला प्रभाव (राम का) विधाता ने बिरचा है। इस समय में पुराने बापुरे धनुष की क्या हक़ीक़त है यह शेष है। सो वचन सुन हृदय में हर्षि हँसकर श्रीरघुनाथजी ने लक्ष्मणजी को हटका। तब शील-सकोच-नेह-वश लक्ष्मणजी की नारि कहे ग्रीवा नई। उन्होंने शिर झुका लिया॥ ३॥ सभा जो लज्जित थी सो सहसी कहे बलिष्ठ हुई कि सभा के बीच में अभी वीर हैं। जनकजी विकल हुए कि हमसे वचन कहते नहीं बना। रघुनाथजी को देख विश्वामित्रजी ने आज्ञा और अशीष दी। गोसाईंजी कहते हैं कि रघुनाथजी ने विश्वामित्र के चरणों में माथा नवा सहज ही में ऋषिराज की आज्ञा माथे पर धर ली॥ ४॥

सोचत जनक पोच पेंच परि गई है।
जोरि कर कमल निहोरि कहैं कौसिक सों,
आयसु भो राम को सो मेरे दुचितई है॥ १॥
बान जातुधानपति भूप द्वीप सात हूँ के,
लोकप बिलोकत पिनाक भूमि लई है।
ज्योतिर्लिंगकथा सुनि ताको अन्त पाये बिन,
आये बिधि हरि हारि सोई हाल भई है॥ २॥
आपुही बिचारिये निहारिये सभा की गति,
बेद मरजाद मानों हेतुवादि हई है।
इनके जेतो है मन सोभा अधिकानी तन,
मुखन की सुखमा सुखद सरसई है॥ ३॥

रावरो भरोसो बल कै है कोऊ किये छल,
　　कैधौं कुल को प्रभाव कैधौं लरिकई है।
कन्या कलकीरति बिजय बिस्व की बटोर,
　　किधौं करतार इनहीं को निरमई है ॥ ४ ॥
पन को न मोह न बिसेष चिन्ता सीता हू की
　　लुनिहै पै सोई सोई जोई जोई बई है।
रहै रघुनाथ की निकाई नीकी नीकी नाथ
　　हाथ सो तिहारे करतूति जाकी नई है ॥ ५ ॥
कहि साधु साधु गाधिसुवन सराहे राव
　　महाराज जानि जिये ठीक भली दई है
हरखे लखन हरषाने बिलखाने लोग
　　तुलसी मुदित जाको राजा राम जई है ॥ ६ ॥

श्रीविदेहजी शोच करते हैं कि कठिन पेंच पड़ गया है। जो हमने प्रण किया, सो अच्छा नहीं किया। जनक महाराज कमल-सम हाथ जोड़ निहोरा कर विश्वामित्रजी से कहते हैं कि जो आपने रघुनाथजी को आज्ञा दी, उसमें मेरे दुचितई संदेह है। उसका हेतु कहता हूँ ॥ १ ॥ बाणासुर, यातुधानपति रावण और सातो द्वीपों के राजा और लोकपाल तिनको देख पिनाक ने भूमि लई भूमि को पकड़ा है। जैसे ज्योतिर्लिंग की कथा सुन उसका अंत लेने को ब्रह्माजी ऊपर को गये, विष्णुजी पाताल को गये, पर अंत नहीं पाया, हारके लौट आये, वैसे वही हाल यहाँ धनुष का हुआ है। किसी को अंत नहीं मिला, कितना भारी है ॥ २ ॥ आप निहारकर सभा की गति विचारिये, कैसो हो

रही है। मानों वेद की मर्यादा का हेतुवादी कहे नास्तिक ने नाश किया है। वैसे सभा की श्री का धनुष ने नाश किया है। अब रघुनाथजी का वर्णन करते हैं कि इनका जितना प्रसन्न मन है और तन में शोभा जितनी अधिकानी अधिक हुई है। दोनों भाइयों के मुखों की सुखमा जो कांति सो सुखद सुख देनेवाली सरसई कहे बढ़ती जाती है ॥ ३ ॥ इनका मन प्रसन्न है, सो किधौं आपके भरोसे का बल है, किधौं छल किये कोई देवता हैं, कि सूर्यवंशी हैं, सो कुल के प्रभाव से तेजवान् हैं, कि लरिकाईवश हर्ष-शोक-रहित हैं कि कन्या और सुन्दर कीर्ति तथा विश्व भर की विजय बटोरने को कर्तार ब्रह्मा ने इन्हीं का निर्माण किया है ॥ ४ ॥ हमको प्रण का मोह नहीं है, और विशेष सीता की भी चिन्ता नहीं है। काहे से सोई-सोई लुनिहैं काटेंगे जोई-जोई जिन्होंने बोया है। इसमें कर्म प्रधान होने से जो जैसा करै सो वैसा पावे परन्तु जो रघुनाथ की नीकी निकाई है, सो नीकी नीकी बनी रहे। अभिप्राय यह कि कन्या भी अच्छी है, इससे संयोग अच्छा है। इसकी चिन्ता हमको है। सो हे नाथ, आपके हाथ है, जिनकी करतूति नई है, नई सृष्टि के करनेवाले हो ॥ ५ ॥ साधु, साधु यह कहकर विश्वामित्रजी महाराज जनकजी की प्रशंसा करते भये। विश्वामित्रजी ने कहा कि हे जनकजी महाराज, आपने जी से जानकर भली बात ठीक कर ठहरा रक्खी है। उसका अभिप्राय यह कि श्रीरघुनन्दन जनकनन्दिनी दोनों की निकाई देख सबको इसी बात की जी से चाह है कि श्रीरघुनन्दन के योग्य जनकनन्दिनी हैं व श्रीजनकनन्दिनी के योग्य रघुनन्दन हैं। इससे यह संयोग हो। सो जो सबको मनोरथ, सोई विदेहजी के वचनों में अभिप्राय है। ऐसा संवाद सुन लक्ष्मणलाल हरषे कि निश्चय प्रभु का विवाह होनेवाला है। वही निश्चय समझ जो लोग पुरवासी

बिलखाने थे, वे हरषाने। गोसाईंजी कहते हैं कि जिसके जय-दायक राजा श्रीराम हैं, सो सदा मुदित हैं ॥ ६ ॥

सुजन सराही जो जनक बात कही है।
रामहि सुहानी जानि मुनिमनमानी सुनि
नीच महिपावली दहन बिन दही है ॥ १ ॥
कहैं गाधिनन्दन मुदित रघुनन्दन सों
नृपगति अगह गिरा न जात गही है।
देखे सुने भूपति अनेक झूठे झूठे नाम
साँचे तिरहुतिनाथ साखि देति मही है ॥ २ ॥
रागऊ बिराग भोग जोग जोगवत मन
जोगी जागबलिक प्रसाद सिद्धि लही है।
ताते न तरनि ते न सीरे सुधाकरहू ते
सहज समाधि निरुपाधि निरबही है ॥ ३ ॥
ऐसेऊ अगाधबोध रावरे सनेहबस
बिकल बिलोकि अति दुचिताई सही है।
कामधेनु कृपा हुलसानी तुलसीसउर
पन सिसु हेरि मरजाद बाँधि रही है ॥ ४ ॥

जो बात श्रीविदेहजी ने कही, उसकी प्रशंसा सुजनों ने की, और मुनि के मनमानी जान श्रीरघुनन्दन को भी वह सोहाई। यह सुन नीच राजों की अवली, जो पंक्तियाँ बैठी हैं, वे बिना अग्नि के जल गईं॥ १ ॥ रघुनन्दनजी से आनन्द से विश्वामित्रजी कहते हैं कि विदेह की गति अगह है। इससे जो बानी उन्होंने कही है, वह

नहीं गही जाती है। अनेक भूपों को देखा-सुना। नाममात्र ही के वे झूठे भूपति हैं। साँचे भूपति तिरहुति-नाथ ही हैं, जिनकी साखी पृथ्वी देती है। इन्होंने पृथ्वी से कन्या उत्पन्न की है॥ २॥ राग स्नेह, विराग-वैराग्य, भोग अकंटक राज्य, इच्छा, पूर्वधन, सदा सुखदायक मन्दिर, पतिव्रता स्त्री, बुद्धिमान् पुत्र, सेवक आज्ञाकारी और योग यथा-यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि इत्यादि, सब विदेहजी के मन को जोगवते हैं। काहे से योगी याज्ञवल्क्य के प्रसाद से यह सिद्ध दशा को प्राप्त हैं। इससे सूर्य से तप्त नहीं, चन्द्रमा से शीतल नहीं होते। सहज ही में समाधि उपाधिरहित निबहते हैं। लय, कषाय, विक्षेप, रसा-स्वाद ये उपाधि हैं॥ ३॥ हे रघुनन्दनजी ऐसे अगाध-बोध, ज्ञान-सिंधु विदेहजी आपके सनेह-वश विकल से देख पड़ते हैं। इससे ऐसा जान पड़ता है कि इनके मन में निश्चय दुचिताई है। गोसाईंजी कहते हैं कि यह बात सुन पनरूप वछड़े को देख रघुनाथजी के उर में कृपाकामधेनु हुलसी। परन्तु ऋषि की आज्ञारूप मर्यादा में बँधी है, इससे रह गई। विना आज्ञा धनष न तोड़ सके॥ ४॥

ऋषिराज राजा आजु जनकसमान को।
आपु यहि भाँति प्रीतिसहित सराहियत,
रागी औ बिरागी बड़भागी ऐसो आन को॥ १॥
भूमिभोग करत अनुभवत जोगसुख,
मुनिमन अगम अलख गति जान को।
गुरु हर पद नेह गेह बसि भो बिदेह,
अगुन सगुन प्रभुभजन सयान को॥ २॥

कहनि रहनि एक बिरति बिबेक नीति,
बेद बुध सम्मत पथीन निरबान को।
त्रिन गुन की कठिन गाँठ जड़-चेतन की,
छोरो अनायास साधु सोधक अपान को ॥ ३ ॥
सुनि रघुबीर के बचनरचना की रीति,
भये मिथिलेस मानो दीपक बिहान को।
मिटो महामोह जी को छूटो पोच सोच सी को,
जानो अवतार भयो पुरुषपुरान को ॥ ४ ॥
सभा नृप गुरु नर नारि पुर नभ सुर,
सब चितवत मुख करुनानिधान को।
एकै एक कहत प्रकट एक प्रेमबस,
तुलसीस तूरिये सरासन इसान को ॥ ५ ॥

श्रीरघुनाथजी कहते हैं कि हे ऋषिराज, आज जनकजी के समान राजा कौन है जिनको आप इस भाँति से प्रीति-सहित सराहते हैं। रागियों और विरागियों में ऐसा बड़ा भाग्यशाली और कौन है ॥ १ ॥ भूमिभोग, राज्यसुख, उसको करते और उसी में योगसुख का अनुभव करते हैं। मुनि मननशील। तिनको भी इनकी गति जानने में अगम्य है। तिनको और को जान सके। इनकी अलख गति है। गुरु के और हरि शिव के पदों में जिनका नेह कहे प्रीति है। घर में रहते और विदेह-दशा को प्राप्त हैं। निर्गुण रूप प्रभु का ज्ञानमार्ग, सगुणरूप प्रभु का भक्तिमार्ग। इन दोनों मार्गों के भजन करने में विदेहसम सयाना दूसरा कौन है? ज्ञान, भक्ति दोनों के अधिकारी हैं ॥ २ ॥ जो कहते

सोई करते हैं, इससे सत्यप्रतिज्ञ हैं। कहना और रहना एक भाँति का है। विरति कहे वैराग्य। सो चार भाँति के विषय विष जाने, सो वैराग्य यथा—१ कर्मफल का वासना-त्याग उसका फल वैराग्य। २ कर्म का स्वरूप त्याग, उसका स्वरूप वैराग्य ३ स्वर्गादि सुख-फल-त्याग, उसकी अवधि वैराग्य ४ विवेक यथा क्षीर में घृत तथा देह में आत्मा सारासार का विचार-ज्ञान। यह दो तरह का है अनुभव और शास्त्र-जन्य। नीति साम, दाम, दण्ड, भेद इत्यादि। सबके अधिकारी। वेद और बुद्धिमानों के सम्मत अनुकूल है निर्वाण मोक्ष, उसके पथी। इनके समान कौन है। विना कुछ गुण कठिन गांठ चैतन्य जीव की जड़ माया सो विना श्रम खोल डाली। अपान अपना स्वरूप उसको शोधने खोज करने में प्रवीण साधु कहे साधक हैं ॥ ३ ॥ श्रीरघुनाथजी के ऐसे वचन सुन, उन वचनों की रचना का युक्ति का अभिप्राय विचारकर विदेहजी प्रभात के से दीपकसम भये। काहे से मोहरात्रि में ज्ञानदीपका प्रकाश, तहाँ भानुसम प्रभु का प्रभाव जान प्रकट में अपनी प्रशंसा सुन सकोचवश भये। महामोह जो प्रभु के रूप में संदेह सो जी से मिट गया, और मन में जो जानकीजी के विवाह का शोच था, सो छूट गया। यह निश्चय जाना कि प्रभु पूर्ण परब्रह्म का अवतार हैं ॥ ४ ॥ सभा समेत महाराज जनकजी, गुरु विश्वामित्र, पुर के नरनारी, आकाश में देवता, ये सब करुणानिधान श्रीरघुनाथजी का मुख देख रहे हैं। एक से एक प्रकट में कहते हैं। एक एक से प्रेम-वश कहते हैं कि कहिये, हे प्रभु, ईशान शिव का धनुष तोड़िये ॥ ५ ॥

सुनो भैया भूप सकल दै कान।
बज्ररेख गजदसन जनकप्रन बेदबिदित जग जान ॥ १ ॥

घोर कठोर पुरारिसरासन नाम प्रसिद्ध पिनाकु।
जो दसकंठ दियो बावों जेहि हरगिरि कियो मनाकु ॥ २ ॥
भूमिभाल भ्राजत न चलत सो ज्यों बिरंचि को आँकु।
धनु तूरै सोइ बरै जानकी राव होइ की राँकु ॥ ३ ॥
सुनि आमर्षि उठे अवनीपति लगे वचन जनु तीर।
टरो न चाप करो अपनो सो महामहा बलबीर ॥ ४ ॥
नमित सीस सोचहिं सलज्जबस श्रीहत भये शरीर।
बोले जनक बिलोकि सिया तन दुखित सरोष अधीर ॥ ५ ॥
सप्त द्वीप नव खण्ड भूमि के भूपति वृन्द जुरे।
बड़ी लाभ कन्या कीरति की जहँ तहँ महिप मुरे ॥ ६ ॥

बंदीजन कहते हैं कि हे भैया, भूपो, सब कान देकर सुनो। जैसे वज्र पर रेखा हो, सो नहीं मिटती। जैसे हाथी का दाँत फिर मुँह में नहीं जाता, वैसे जनकजी का पन है। वेद में विदित प्रथम ही वेद द्वारा मुनिवरों ने कह रक्खा है, इससे सब जगत् जानता है ॥ १ ॥ पुरारि शिव का धनुष अत्यन्त कठोर है। जिसका प्रसिद्ध नाम पिनाक है। जिस पिनाक को देख रावण बायाँ दे गया टाल गया। जिस रावण ने हरगिरि कैलास को मनाक कहे हलकाकर जाना, गेंदसम उठा लिया। जैसे विरंचि का आँकु लेख जीवों के भाल पर अचल राजता है, वैसे भूमि के भाल पर धनुष भ्राजता है। यह भी अचल है, किसी का उठाया नहीं उठता। उस पिनाक को जो तोड़े सो श्रीजानकी को बरै। चाहे राव राजा हो, चाहे राँक ग़रीब हो ॥ २-३ ॥ वन्दीजन के ऐसे वचन सुन राजों के तीर से लगे। उससे सब राजा आमर्षि

क्रोधित हो उठे । महा-महाबली जो वीर हैं, उन्होंने अनेक प्रकार से बल किया, परन्तु धनुष टाले नहीं टला । सब वीरों को अपने सम जड़सरीखा धनुष ने कर लिया ॥ ४ ॥ सीस नवाकर लज्जित हो सब राजा सोचते हैं । उससे श्री जो शोभा है उससे रहित हुए राजों को देख, श्रीजनकजी जानकीजी को निरख, दुःखित हो सरोष सहित क्रोध, अधीर शैथिल्य युक्त, बोले । राजों को वीरतारहित जान सरोष हुए । धनुष नहीं टूटा जान अधीर हुए ॥ ५ ॥ श्रीजनकजी कहते हैं कि सातों द्वीपों के, और जंबू द्वीप के नवखण्ड हैं, इस सब भूमि के राजा यहाँ आकर जुरे एकत्र हुए । लोकविजयी पद की कीर्ति, त्रिभुवन में अनूप कन्या, यह बड़ा लाभ । सो किसी को न प्राप्त हुआ । जहाँ तहाँ राजा मुड़े । धनुष के सामने किसी का मुख न हुआ ॥ ६ ॥

डग्यो न धनु जनु बीरबिगत महि किधौं कहुँ सुभट दुरे ।
रोषे लखन बिकट भृकुटी करि भुज अरु अधर फुरे ॥ ७ ॥
सुनहु भानुकुलकमलभानु जो अब अनुसासन पावों ।
को बापुरो पिनाक मेलि गुन मन्दर मेरु नवावों ॥ ८ ॥
देखौ निज किंकर को कौतुक हौं कोदण्ड चढ़ावों ।
लै धावों भंजौं मृनाल ज्यों तौ प्रभु अनुग कहावों ॥ ९ ॥
हरषे पुर नर नारि सचिव नृप कुँवर कहे कल बैन ।
मृदु मुसक्याइ राम बरज्यो प्रिय बंधु नैन की सैन ॥१०॥
कौसिक कह्यो उठहु रघुनन्दन जगबन्दन बलऐन ।
तुलसिदास प्रभु चले मृगपति ज्यों निजभक्तन सुखदैन ॥ ११ ॥

डगा न, डोल न सका धनुष, इससे मानों भूमि वीर-रहित

है। या योद्धा कहीं चुरा रहे। ये वचन सुन लक्ष्मणजी रोषे। इससे भृकुटी टेढ़ी हो गई, भुजा व ओठ फड़क उठे। हे भानुकुल-कमल के प्रकाशक भानु सरीखे रघुनाथजी, जो आपकी आज्ञा पाऊँ, तो बापुरे धनुष की क्या हक़ीक़त, मंदर मेरु सुमेरुगिरि में गुन मेलि रोदा लगाकर उन्हें झुका दूँ ॥ ८ ॥ अपने सेवक का कौतुक तमाशा देखो तो कैसे धनुष को चढ़ाऊँ, लेकर धाऊँ और तोड़ डालूँ जैसे कमल की नाल। तो प्रभु का अनुग कहे सेवक कहाऊँ, नहीं अपना नाम न रक्खूँ इति शेषः ॥ ९ ॥ कुँअर लक्ष्मणजी ने श्रेष्ठ वचन कहे। उनको सुन पुर के नारीनर तथा सचिव-सहित राजा जनक प्रसन्न भये। धीरे से मुसक्याकर श्रीरघुनाथ ने नयनों की सैन से प्रिय बन्धु लक्ष्मण को बरजा॥ १० ॥ विश्वा-मित्रजी ने कहा—हे रघुनन्दन! बल के मन्दिर! जगत् के पूज्य! उठो। गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु कैसे चले, यथा गज देख सिंह चले, वैसे धनुष देख प्रभु चले। अपने भक्तों को सुख देनेवाले ॥ ११ ॥

जबहिं सब नृपति निरास भये।

गुरुपदपदुम बन्दि रघुपति तब चापसमीप गये ॥ १ ॥

स्यामतामरस-दामबरन बपु उर भुज नैन बिसाल।

पीतबसन कटि कलित कंठ सुन्दर सिन्धुरमनिमाल ॥ २ ॥

कल कुण्डल पल्लव प्रसून सिर चारु चौतनी लाल।

कोटि मदन छबिसदन बदनबिधु तिलक मनोहर भाल ॥ ३ ॥

रूप अनूप बिलोकत सादर पुरजन राजसमाज।

लखन कहेउ थिर होहु धरनिधरु धरनि धरनिधर आज ॥ ४ ॥

कमठ कोल दिगदन्ति सकल अँग सजग करहु प्रभुकाज।

चहत चपरि सिवचाप चढ़ावन दसरथ को जुवराज ॥ ५ ॥
गहि करतल मुनि पुलक सहित कौतुकहि उठाय लियो ।
नृपगन मुखन समेत नमित करि सजि सुख सबहिं दियो ॥ ६ ॥

जब सब राजा निराश हुए, तब विश्वामित्रजी के चरणकमलों में वन्दना कर रघुनाथजी धनुष के समीप गये ॥ १ ॥ श्यामकमल की माला सम देह का वर्ण । उर, भुजा, नेत्र बड़े । पीताम्बर कटि में कलित कहे शोभित । सुन्दर कंठ में गजमुक्ताओं की माला पहने ॥ २ ॥ कल सुन्दर कानों में कुण्डल । पल्लवसहित फूल बालों के बीच किये । सुन्दर चौगोशिया लाल रंग की टोपी शीश पर धारण किये । कोटियों काम की छवि का सदन कहे स्थान हैं । पूर्ण चन्द्रमा सम वदन है । सुन्दर विशाल भाल पर मन को हरनेवाला तिलक है शोभायुत शोभित ॥ ३ ॥ राजसमाज सहित जनकपुर के नरनारी आदर से श्रीरघुनाथजी का अनूप रूप सब विलोक रहे हैं । उसी समय लक्ष्मणजी कहते भये, हे धरणीधर शेष ! स्थिर होकर धरणि पृथ्वी, धरणीधर पर्वत, तिनको धारण करो ॥ ४ ॥ हे कच्छप बाराह ! हे दिग्गजो ! सकल अंग से सजग होकर प्रभु का कार्य करो, धरणी को पोढ़े थामो । काहे से श्रीदशरथ के युवराज चपरि कहे सहसा समाज से निकर तुरत शिव का चाप चढ़ाया चाहते हैं । जो कोई अंग ढीला रहेगा, तो पृथ्वी सँभाल न सकोगे ॥ ५ ॥ करतल हाथों से धनुष पकड़ मुनि के अंग के पुलक सहित कौतुक ही में उठाकर, खल नृपगण के मुखों सहित धनुष को नवाकर, सजकर रोदा को चढ़ाकर सबको सुख देते भये ॥ ६ ॥

आकरष्यो सियमन समेत हरि हरष्यो जनकहियो ।
भंज्यो भृगुपतिगर्व सहित तिहुँलोक बिमोह कियो ॥ ७ ॥

भयो कठिन कोदण्डकोलाहल प्रलयपयोधिसमान ।
चौंके सिव बिरंचि दिसिनायक रहे मूँदि करि कान ॥ ८ ॥
सावधान ह्वै चढ़े बिमानन चले निसान बजाय ।
उमँगि चलो आनंद नगर नभ जै धुनि मंगल गाय ॥ ९ ॥
बिप्र बचन सुनि सखी सुवासिनि चलीं जानकी ल्याय ।
कुँवर निरखि जैमाल मेलि उर कुँवरि रही सकुचाय ॥१०॥
बरषहिं सुमन असीसहिं सुर मुनि प्रेम न हृदय समाय ।
राम सिया की सुन्दरता पर तुलसिदास बलि जाय ॥ ११॥

श्रीजानकीजी के मनसहित आकर्ष्यो, धनुष की डोरी को खींच लिया । हरि श्रीरघुनाथजी । और जनकजी का हृदय हरषा । परशुराम के गर्वसहित भंज्यो तोड़ डाला । यहाँ अनेक रस हैं । प्रथम विश्वामित्रजी का वात्सल्यरस यथा कमलकर से झुककर धनुष उठाना आलम्बन-विभाव है । अनुराग से देखना अनुभाव है । हर्ष संचारी है । पुलकस्वाति कहे वत्सलता स्थायी है । इति वात्सल्य, खल राजों को भयानक रस है । प्रतापवान् प्रभु का वीररूप विभाव है । शिर झुका लेना अनुभाव है । दीनता संचारी है । भय स्थायी है । इति भयानक । जनकजी को करुण रस है । धनुष न टूटना विभाव, अधीरता अनुभाव, ग्लानि संचारी, शोक स्थायी । इति करुण रस । प्रभु के वीररस से करुण का नाश हुआ, इससे जनकजी का हृदय हरषा । श्रीजानकीजी को शृंगार रस । धनुष चढ़ाना विभाव, मन लगाकर देखना अनुभाव, निर्वेद संचारी, दृष्टि-भोग स्थायी । इति शृंगार । परशुरामजी पै प्रभु का वीररस है । यह उक्ति हनुमन्नाटक में है—उत्क्षिप्तं सह कौशिकस्य पुलकैः सार्द्धं मुखैर्नामितं भूपानां

जनकस्य संशयधिया साकं समास्फालितम् । वैदेहीमनसा समं च सहसाकृष्टं ततो भार्गवप्रौढाहंकृतिदुर्मदेन सहितं तद्भग्नमैशं धनुः ॥ ७ ॥ यथा प्रलय के मेघ गरजे, तथा कोदण्ड धनुष टूटने का कोलाहल कठिन शब्द हुआ। शिव, ब्रह्मा, दिक्पाल सब चौंक उठे, कान हाथों से मूँद लिये ॥ ८ ॥ सावधान हो विमानों पर चढ़-चढ़ निशान नगाड़े बजा देखने को चले । नगर से आकाश तक आनन्द उमँग चला । जय-जयकार शब्द, मंगलीक गान हो रहा है ॥ ९ ॥ विप्र शतानन्द के वचन सुन सखी सौभाग्यवती श्रीजनकनन्दिनीजी को लिवा ले चलीं। कुँअर श्रीरघुनन्दन को निरख जयमाला पहनाकर कुँअरि लोक के सकोच से सकुचाकर रह गईं। आँख भरकर अवलोक नहीं सकतीं ॥ १० ॥ फूल बरसाकर देवता और मुनि असीस देते हैं। प्रेम हृदय में नहीं समाता। उस अवसर श्रीराम-जानकी की सुन्दरता पर तुलसीदास बलिहारी है ॥ ११ ॥

जब दोऊ दसरथकुँवर बिलोके ।
जनकनगर नरनारि मुदितमन निरखि नयनजल रोके ॥ १ ॥
बय किसोर घनतड़ितबरन नख सिख अंग लोभारे ।
दै चितु कै हितु लै सब छबिबितु बिधि निजहाथ सँवारे ॥ २ ॥
संकट नृपहि सोच अति सीतहि भूप सकुचि सिर नाये ।
उठे राम रघुकुलकलकेहरि गुरुअनुसासन पाये ॥ ३ ॥
कौतुक ही कोदण्ड खण्डि प्रभु जै अरु जानकि पाई ।
तुलसिदास कीरति रघुपति की मुनिन तिहूँ पुर गाई ॥ ४ ॥

जब से श्रीदशरथ महाराज के कुमारों को देखा, तब से जनक-

पुर के नरनारी आनन्द से निरखते में नेत्रों की पलकें रोक एकटक रहे ॥ १ ॥ कैसे कुमार, जिनकी किशोर अवस्था है। मेघवर्ण रघुनाथजी तड़ित-वर्ण लक्ष्मणजी नखशिख तक अङ्ग सबको लुभानेवाले हैं। हितकर प्रीति लगाकर सब जग की छबि-रूप वित्त द्रव्य लेकर ब्रह्मा ने चित्त लगाकर निज हाथ से सँवारे हैं ॥ २ ॥ कठोर धनुष, कोमल रघुनाथजी में प्रेम, इससे विदेहजी को असमंजस यह कि प्रण नाहक किया। कोमल प्रभु का कठोर धनुष तोड़ने का शोच। जानकीजी को प्रतापी देख बिचारा कि जो प्रभु धनुष तोड़ डालेंगे, तो हमारे मुँह में स्याही लगी। इससे लजाकर सब राजों ने शीश नवा लिये। उस समय गुरु की आज्ञा पाकर रघुकुल में सुंदर सिंहरूप रघुनाथजी उठे ॥ ३ ॥ कौतुकमात्र ही में धनुष तोड़कर प्रभु ने जय-जयकार सहित जानकीजी को पाया। सो कीर्ति रघुपति की मुनि वर्णते हैं, तीनों लोकों में गाई है ॥ ४ ॥

मुनिपदरेनु रघुनाथ माथे धरी है।
रामरुख निरखि लखन की रजाय पाय,
धराधर धरनि सुसाधन करी है ॥ १ ॥
सुमिरि गनेस गुरु गौरि हर भूमिसुर,
सोचत सकोचत सकोची बानि खरी है।
दीनबन्धु कृपासिन्धु साहसीक सीलसिन्धु,
सभा को सकोच कुल हूँ की लाज परी है ॥ २ ॥
पेखि पुरुषारथ परखि प्रनप्रेम नेम,
सिया हिया की बिसेषि बडी खरभरी है।

दाहिनो दियो पिनाकु सहमि भयो मनाकु,
महाब्याल बिकल बिलोकि जनु जरी है ॥ ३ ॥
सुर हरषत बरषत फूल बार बार,
सिद्धि मुनि कहत सगुन सुभ घरी है।
रामबाहुबिटपबिसाल बौंड़ी देखियत,
जनक मनोरथकलपबेलि फरी है ॥ ४ ॥
लख्यो न चढ़ावत न तानत न तोरत हूँ,
घोर धुनि सुनि सिव की समाधि टरी है।
प्रभु के चरित चारु तुलसी सुनत सुख,
एक ही सु लाभ सबही की हानि हरी है ॥ ५ ॥

विश्वामित्रजी के चरण की रज रघुनाथजी ने माथे पर धारण की। श्रीरघुनाथजी का रूप देख लक्ष्मणजी ने आज्ञा दी। सो आज्ञा पाकर धराधर शेष-कच्छपादि ने धरणी को स्थिर हो धारण किया। कदाचित् उलट न जाय ॥ १ ॥ गणेश, गुरु शतानन्द, गौरी-महादेव और ब्राह्मण, तिनको सुमिरकर जानकीजी शोच करके सकोच देती हैं। हे देवतो, तुम्हारी खरी कहे शुद्ध, सकोची बानि कहे स्वभाव है जो तुमको आराधै, उसको अनहोनी होनी कर देते हो। दीनबन्धु हो कृपा और शील के समुद्र हो, इससे साहसीक कहे जल्दी कार्य सिद्ध कर देते हो। हे देवतो! हम को सभा को सकोच और कुल की लाज पड़ी है। हमारे कुल में किसी कन्या ने कुल के प्रतिकूल नहीं किया। इससे हम सभा में सकोच करके श्रीरघुनन्दन को जयमाल नहीं पहनावतीं। सो तुम कृपा करके सब सुलभ कर दो ॥ २ ॥ उस समय राजों के पुरुषार्थ

देख जनकजी का पक्का प्रण परख श्रीजनकनन्दिनी के हृदय में बड़ी खलभली हुई। यह समझ और प्रेम से नियम किये हैं कि हमारा विवाह प्रभु के संग हो, यह विचार रघुनाथजी ने पिनाक को दाहने दिया, उसके तोड़ने का इरादा किया। तब धनुष सहमकर मनाकु कहे हलका हो गया। जैसे जड़ी औषध को देख सर्प महाव्याकुल हो सिकुड़ जाय वैसे प्रभु को देख धनुष व्याकुल हो हलका हुआ ॥ ३॥ देवतों को महाहर्ष इससे बार-बार फूल बरसाते हैं और सिद्धजन कहते हैं कि इस समय शुभ शकुन है। सिद्धि प्रारम्भ को मुनिजन कहते हैं कि शुभ घड़ी है। श्रीरामबाहुरूपी सुन्दर वृक्ष पर जनकजी का मनोरथरूपी कल्प-लता जो फैली थी, उसमें फल देख पड़ते हैं ॥ ४॥ धनुष को उठाते, चढ़ाते, तानते, तोड़ डालते किसी ने देखा नहीं, केवल शब्द सुना। ऐसी घोर ध्वनि हुई कि शिवजी की अखण्ड समाधि टल गई। गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु के सुन्दर चरित सुनते में ऐसा सुख हुआ, जिसमें सबकी हानि हर गई है। सबके मनोरथ पूर्ण भये। धनुभंग सुनते ही देवतों को रावण से सुखहानि, ऋषियों की यज्ञादि की हानि, पुरवासियों को विवाहसुख-हानि, सो सब मिट गई ॥ ५ ॥

राम कामरिपु-चाप चढ़ायो।

मुनिहि पुलक आनन्द नगर नभ निरखि निसान बजायो ॥ १ ॥
जेहि पिनाक बिनु नाक कियो नृप सबहिं बिषाद बढ़ायो।
सोइ प्रभुकर परसत टूटो जनु हुतो पुरारिपढ़ायो ॥ २ ॥
पहिराई जयमाल जानकी जुवतिन मंगल गायो।
तुलसी सुमन बरषि हरषे सुर सुजस तिहूँपुर छायो ॥ ३ ॥

कामरिपु शिवजी का धनुष श्रीरघुनाथजी ने चढ़ाया । उसको देख विश्वामित्रजी प्रेम से पुलकित भये । जनकपुरवासी आनन्द भये । आकाश में देवतों ने नगाड़े बजाये ॥ १ ॥ जिस पिनाक ने सब राजों को बिना नाक लज्जित कर दुःख को बढ़ाया, सोई पिनाक प्रभु के करकमल छूते ही ऐसे टूटा, मानो शिवजी ने पढ़ा रक्खा था कि प्रभु के छूते ही टूट जाना ॥ २ ॥ श्रीजानकीजी ने रघुनन्दन को जयमाला पहनाई । सो छवि देख युवतीजन मंगल का गान करती हैं । गोसाईंजी कहते हैं कि देवता हर्षित हो फूल बरसाते हैं । प्रभु का सुयश तीनो लोक में छाया है ॥ ३ ॥

जनक मुदितमन टूटत पिनाक के ।
बाजे हैं बधावने सुहावने मंगलगान भयो,
सुखरस एकरस रानी राजा राय के ॥ १ ॥
दुंदुभी बजाइ गाइ हरषि बर्षि फूल,
सुरगन नाचे सब नायक हू नाक के ।
तुलसी महीस देखि दिनरजनीस जैसे
सूने परे सून्य से मनो मिटाये आँक के ॥ २ ॥

पिनाक के टूटते ही महाराज विदेहजी आनन्दमन भये । उससे सोहावने बधावने बाजे बजे और मंगलगान हुआ । उसका सुख राजा, रानी, ग़रीब, सबको एक सा भया ॥ १ ॥ देवतों के गण दुन्दुभी बजा गा-गाकर हर्षित हो फूल बरसाकर नाक इंद्रपुरी के नायक इन्द्रसहित नाचते हैं । गोसाईंजी कहते हैं कि अपर राजा कैसे हैं, मानों दिन में चन्द्रमा प्रकाशरहित, और जैसे अंक बिना शून्य बिना गिनती है ॥ २ ॥

लाजहीन साजि साज राजाराउ रोषे हैं।
कहा भो चढ़ाये चाप ब्याह ह्वैहै बड़े खाये,
बोलैं खोले सेल असि चमकत चोखे हैं॥ १॥

जानि पुरजन त्रसे धीर दै लखन हँसे,
बल इनको पिनाक नीके नापे जोखे हैं।
कुलही लजावैं बाल बालिस बजावैं गाल,
कैधौं क्रूर कालबस तमकि त्रिदोखे हैं॥ २॥

कुँवर चढ़ाई भौंहैं अब को बिलोकै सौहैं,
जहँ तहँ भे अचेत खेत कैसे धोखे हैं।
देखे नर नारि कहैं साग खाइ जाये माइ,
बाहु पीन पावा रन पीना खाइ पोखे हैं॥ ३॥

प्रमुदित मन लोक कोकनद कोकगन,
राम के प्रताप रबि सोचसर सोखे हैं।
तब के देखैया तोषे तब के लोगनि भले,
अब के सुनैया साधु तुलसीहु तोखे हैं॥ ४॥

यथा राँड़ युवती लाज छोड़ शृंगार करे, वैसे सब राजा वीरता-रहित राँड़ समान शृंगार युद्ध का साज सजकर झिलम, बख़्तर, कूँड़ी, दस्ताना पहनकर धनुष-बाण लेकर रोषे। लाज तो नहीं है, परन्तु रोषसहित कहते हैं कि चाप चढ़ाने से क्या हुआ, विवाह बड़े खाये बड़ी मुश्किल से होगा। ऐसा कहकर असि तलवार खोल मियान से निकाल साँग आदि लेकर चोखे कहे

तेज़ हो चमकाते हैं ॥ १ ॥ पुरवासियों को डरा जान धीरज दे लक्ष्मणजी हँसे कि इनका बल तो पिनाक ने अच्छी तरह नाप-जोख लिया है। इनका भय कोई न करो। बाल की सी बुद्धि कर कुल को लजाते। बालिश कहे अज्ञान। झूठा गाल बजाते हैं। चुप हो रहेंगे। त्रिदोष कहे कफ, पित्त, वात के दोष का सन्निपात यह जब होता है, तब रोगी आप ही उछल-उछल मर जाता है। वैसे इन्हें भी त्रिदोष है। कन्या देख कामवश, सो वात है। उसके पाने का लोभ सो कफ है। प्रभु से क्रोध सो पित्त है। ये त्रिदोष सन्निपातवश हैं, इससे तमकते हैं। कालवश हैं ॥ २ ॥ इतना कह कुँअर लक्ष्मणजी ने क्रोध कर भौंहैं चढ़ाईं। अब उनके सामने कोई राजा देख नहीं सकता। जहाँ-तहाँ सब अचेत हो खड़े रहे। जैसे पशुओं से खेत बचाने को लकड़ियों पर हाँडी औंधाकर धोखे के आदमी खड़े कर दिये जाते हैं, वैसे ही उनकी यह दशा देखकर पुर के नरनारी कहते हैं कि राजों को इनकी माताओं ने साग खाकर जाया है, उत्पन्न किया है। पीना कहे तिल की खली खा-खाकर इन पामरों की बाहुएँ पुष्ट हुई हैं। इति व्यंग है ॥ ३ ॥ लोक में जो सज्जन थे, शोचरूपी जल में बूड़े रहे। सामान्य जीव शोचरात्रि में चकवा-चक से दुखित रहे। जब श्रीरघुनाथजी का प्रतापरूप रवि उदय हुआ। तब शोचसर का जल सूख गया। सज्जनकमल प्रफुल्लित भये, शोचरात्रि नष्ट हुई। चक्रवाक से सब प्रसन्न हुए। तब के भले लोग देखैया तोषे अब के सुनैया साधुन अरु तुलसी भी तोषे ॥ ४ ॥

जैमाल जानकी जलजकर लई है।
सुमन सुमंगल सगुन की बनाई मंजु,
मानहुँ मदन माली आपु निरमई है ॥ १ ॥

राजरुख लखि गुरु भूसुर सुवासिनिन्ह,
समय समाज की ठवनि भली ठई है।
चलीं गान करत निसान बाजे गहगहे,
लहलहे लोयन सनेह सरसई है ॥ २ ॥
हनी देव दुंदुभी हरषि बरषत फूल,
सुफल मनोरथ भो सुख सुचितई है।
पुरजन परिजन रानी राव प्रमुदित,
मनसा अनूप रामरूप रंगरई है ॥ ३ ॥
सतानन्द सिख सुनि पाइँ परि पहिराय
माल सिया पिया हिया सोहत सुभई है।
मानस ते निकसि बिसाल सु तमाल पर,
मानहुँ मरालपाँति बैठी बनि गई है ॥ ४ ॥
हितन को लाहु की उछाहु की बिनोद मोद,
सोभा की अवधि नहिं अब अधिकई है।
याते बिपरीत अनु हितन को जानि लीनी,
गति कहै प्रकट खुनस खाँसी खई है ॥ ५ ॥
निज निज बेद की सप्रेम जोग छेम मुई,
मुदित असीस बिप्र बिदुष निरदई है।
छबि तेहि काल की कृपाल सीता दूलह की,
हुलसत हिया तुलसी के नित नई है ॥ ६ ॥

सुमन महुए के फूल। सुमंगल लाल पाट के डोरे। सगुन दूब।

इनकी सुन्दर माला मानो मदन ने माली हो आप ही निर्माण की है। ऐसी सुन्दर जयमाला श्रीजानकीजी करकमलों में लिये हैं। महुआ के फल दूब की माला का प्रमाण रघुवंश से—"एवं तयोक्ते तमवेक्ष्य किंचिद्विस्रंसि दूर्वांकमधूकमाला। ऋजुप्रणामक्रिययैव तन्वी प्रत्यादिदेशैनमभाषमाणा॥" इतींदुमती स्वयंवर॥ १॥ गुरु शतानन्द सहित अपर ब्राह्मण। सुवासिनी सौभागिनी स्त्री। वे सब राजा विदेहजी का रुख जान उस समय का जो समाज, उसको भली भाँति से ठई कहे बनाकर, आगे श्रीजानकीजी जयमाल लिये पीछे सखी गान करती, चलीं। उस समय निशान बाजे गहगहे उत्साह के भरे बजे। श्रीजानकी श्रीरघुनन्दन के परस्पर नेह की सरसई कहे अधिकाई। उन लोयन नेत्रों की अवलोकन लहलहे कही ललित दृष्टि देखने की प्यास है॥ २॥ सो समाज देख देवता आनन्द हो दुन्दुभी बजा फूल बरसाने लगे। सबका मनोरथ सफल हुआ। सुख सुचितई कहे स्थिरता हृदय में हुई। उससे पुरवासी प्रजा और परिवारसहित रानी, राजा, श्रीजानकीजी आनन्द मन से अनूप जो श्रीरघुनाथजी का रूप उसी के रंग में रँग गये॥ ३॥ शतानन्दजी की आज्ञा सुन श्रीमिथिलेशनन्दिनीजी ने प्रथम पैर छूकर आनन्द से जयमाल पहना दी। सो पिया, जो श्रीरघुनन्दन, तिनके ऊपर कैसी शोभित होती है, मानो मानसर से निकल हंसों की पाँत सुन्दर तमाल-वृक्ष पर बैठी सी बन गई॥ ४॥ हितू जो हैं, तिनके लाभ उत्साह व विनोद के विलास का आनन्द और शोभा की अवधि कहे मर्यादा अब अधिक नहीं हो सकती; क्योंकि अवध मिथिला सा धाम, श्रीदशरथ महाराज जनक से समधी, कौशल्या सुनैना सी समधिन, श्रीरघुनन्दन से दूलह, श्रीजनकनन्दिनी सी दुलहिन, उसमें भी प्रणस्वयंवर, जगविजयी कीर्ति ऐसा सुख का समाज

न हुआ है, न है, न होगा। और जो इस आनन्द से विपरीत हैं, वे अनहित हैं। तिनकी गति जो कहने की सो जान लीजिए। खुनस खाँसी कहे क्रोधरूपी क्षयीवाली खाँसी है, जिसमें शीघ्र मृत्यु होती है ॥ ५ ॥ ब्राह्मण पण्डित अपने-अपने वेद के प्रेम सहित क्षेमयोगमयी आशीर्वाद सब देते भये। कृपालु सीता-दूलह की छवि उस समय की तो नित नई तुलसी के हृदय में हुलसती है ॥ ६ ॥

लेहु री लोचन को लाहु।
कुँवर सुन्दर साँवरो सखि सुमुखि सादर चाहु ॥ १ ॥
खैंचि हरकोदण्ड ठाढ़े जानुलम्बितबाहु।
रुचिर उर जयमाल राजत देत सुख सब काहु ॥ २ ॥
चितै चित हित सहित नखसिख अंग अंग निबाहु।
सुकृत निज सियरामरूप बिरंचि मतिन्ह सराहु ॥ ३ ॥
मुदित मन पर बदनसोभा उदित अधिक उछाहु।
मनहुँ दूरि कलंक करि ससि समर सूधो राहु ॥ ४ ॥
नैन सुषमाऐन हरत सरोजसुन्दरताहु।
बसत तुलसीदासउरपुर जानकी को नाहु ॥ ५ ॥

हे सुमुखी सखी, साँवले कुँअर सुन्दर को आदर से चाहु कहे देख। हे सखियो, सब मिल नेत्रों का लाभ लो, नेत्र भरकर देखो ॥ १ ॥ हरकोदंड जो पिनाक, उसे खंडित कर खड़े हैं। जानु टिहुनियों तक लम्बी भुजा हैं। सुन्दर उर में जयमाल विराजती है। सबको सुख देनेवाले हैं। भाव इसकी प्यास प्रथम ही से रही, इससे ॥ २ ॥ चित्त से हित सहित देख तो अंग-अंग में निबाह कहे जहाँ जैसा

चाहिए वहाँ वैसा नख से शिखा तक शोभित हैं। श्रीजनकनंदिनी रघुनन्दन की शोभा और अपना सुकृत, जिससे यह शोभा देखने को मिली तथा जिनने यह शोभा रची उन ब्रह्मा की बुद्धि, इन तीनों की प्रशंसा कर ॥ ३ ॥ प्रसन्न मन, इससे श्रेष्ठ वदन की शोभा अधिक उत्साह उत्सवसहित प्रकाशमान है। सो मानो मलिनतारूप कलंक दूर कर पिनाकरूप राहु के सम्मुख ज्योतिरूप प्रसन्न मन से चन्द्रमा विराजमान है ॥ ४ ॥ शोभा के मन्दिर नेत्र कमल की शोभा हरे लेते हैं। सोई जानकी के नाथ तुलसी के उररूपी पुर में वास करते हैं ॥ ५ ॥

भूप के भाग की अधिकाई।
टूटो धनुष मनोरथ पूजो बिधि सब बात बनाई ॥ १ ॥
तब ते दिन दिन उदय जनक को जब ते जानकि जाई।
अब यह भाग सुफल भयो जीवन त्रिभुवन बिदित बड़ाई ॥ २ ॥
बारबार ऐहैं पहुनाई राम लखन दोउ भाई।
यहि आनन्दमगन पुरबासिन देहदसा बिसराई ॥ ३ ॥
सादर सकल बिलोकत रामहि कामकोटि छबि छाई।
यह सुखसमय समाज एकमुख क्यों तुलसी कहै गाई ॥ ४ ॥

हे सखी, विदेह महाराज का भाग्य अत्यन्त अधिक है, इससे धनुष टूटा, मनोरथ पूर्ण हुआ। विधाता ने बात बना दी ॥ १ ॥ काहे से भूप का भाग्य अधिक है? जिस दिन से श्रीजानकीजी ने जन्म लिया, उस दिन से विदेहजी का उदय कहे बढ़ती प्रतिदिन होती गई। अब यह श्रीराम जानकी का ब्याह होने से सबका जीवन जन्म सफल हुआ। उसकी बड़ाई तीनो लोक में विदित है ॥ २ ॥ श्रीरघुनन्दन लक्ष्मण लाल दोनो भैया पहुनाई में बार-

बार यहाँ आवेंगे, तब उन्हें नेत्र भर देखेंगे, इस आनन्द में मगन पुरवासी सब देह की सुध बिसराये हैं॥ ३ ॥ जहाँ कोटियों काम की छवि छाई है, ऐसा रूप रघुनन्दन का सब प्रेमसहित आदर से देखते हैं। उस समय के समाज का सुख तुलसी एक मुख से कैसे गाकर कहे ॥ ४ ॥

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहैंगे।
भूख पियास सीत स्रम सकुचनि क्यों कौसिकहि कहैंगे ॥ १ ॥
को भोर ही उबटि अन्हवैहै काढ़ि कलेऊ देहै।
को भूषन पहिराइ निछावरि करि लोचनसुख लेहै ॥ २ ॥
नयन निमेषन ज्यों जोगवत नित पितु परिजन महतारी।
ते पठये ऋषिसाथ निसाचर मारन मखरखवारी ॥ ३ ॥
सुन्दर सुठि सुकुमार सुकोमल काकपच्छधर दोऊ।
तुलसी निरखि हरषि उर लैहौं बिधि ह्वैहै दिन सोऊ ॥ ४ ॥

श्रीकौशल्याजी कहती हैं कि मेरे बालक कैसे मार्ग में निबहेंगे। भूख, पियास, शीत कहे जाड़े का श्रम, सो संकोचवश विश्वामित्रजी से कैसे कहेंगे ॥१॥ प्रभातकाल उबटन लगाकर कौन स्नान कराकर, रुचिपूर्वक कलेवा खवाकर और भूषण पहनाकर निछावर कर नेत्रों का लाभ कौन लेगा ? ॥ २ ॥ जिनको माता, पिता, परिजन कहे परिवार, सब कैसे जोगवत रक्षा करते हैं, जैसे पलकें नेत्रों की रक्षा करती हैं। उन बालकों को ऋषि के साथ निशाचरों के मारने और यज्ञ की रक्षा करने को भेजा है॥ ३ ॥ सुठि सुन्दर कहे अत्यन्त सुन्दर, सुकुमार कोमल, थोड़ी अवस्था, शीश पर काकपक्ष कहे ज़ुल्फ़ें धारण किये दोनो भाइयों को निरख कहे

नेत्रों से देख आनन्द हो हृदय में लगा लूँगी । श्रीकौशल्याजी कहती हैं, हे विधाता, ऐसा दिन कब होगा ॥ ४ ॥

ऋषिनृप सीस ठगौरी डारी ।
कुलगुरु सचिव निपुन नेवन औरेब न समुझि सुधारी ॥ १ ॥
सिरससुमनसुकुमार कुँवर दोउ सूर सरोष सुरारी ।
पठये बिनहिं सहाय पयादेहि केलिबानधनुधारी ॥ २ ॥
अतिसनेहकातर माता कह सुनि सखि बचन दुखारी ।
बादि बीरजननीजीवन जग छत्रिजाति गति भारी ॥ ३ ॥
जो कहिहै फिरे रामलखन घर करि मुनिमखरखवारी ।
सो तुलसी प्रिय मोहिं लागिहै ज्यों सुभाय सुत चारी ॥ ४ ॥

ऋषि विश्वामित्र ने श्रीदशरथ महाराज के शिर पर धर्मरूपी ठगौरी डाली, श्रीरामरत्न ठग ले गये । कुलगुरु वशिष्ठ और सुमंतादि मंत्री सब विचार में व्युत्पन्न कहे चतुर हैं; परंतु ऐसी औरेब को क्यों न सुधारा ? समझकर कि राक्षसों से युद्ध बालक कैसे करेंगे किसी तरह मुनि को समझा देते ॥ १ ॥ सिरस मौलसिरी के फूल सम कोमल बालक और सुरारि राक्षस महारोषी, जो जन्म भर क्रोध नहीं छोड़ते, महाशूर मरे पर भी मारो मारो कहते हैं, तिनसे युद्ध करने को बिना सहाय, बिना सेना, बिना रथ पियादे खेलने के धनुष-बाण लिये बालकों को भेज दिया ॥ २ ॥ अत्यन्त सनेह से कातर कहे विकल हो माता यों कहती हैं । तिनके वचन सुन सखी सब दुःखित हो कहती हैं कि हे सखी, बड़ी औरेब असमंजस है । तब माता कहतीं कि हे सखी, वीर की माता का जीवन जग में बादि वृथा है । काहे से क्षत्रियजाति की गति बड़ी भारी कठिन है । संग्राम में सम्मुख

जूझना धर्म है, इसमें ॥ ३ ॥ मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा कर श्रीरघुनन्दन लक्ष्मणलाल घर को फिरे कुशलपूर्वक आते हैं, ऐसे वचन जो आकर कहेगा, कौशल्याजी कहती हैं, वह मुझको सहज में कैसा प्रिय लगेगा, जैसे मेरे बालक चारो भाई मुझको प्रिय लगते हैं। यहाँ कौशल्याजी के वचनों में यह अभिप्राय है कि संग्राम जीतकर वीरतासहित सकुशल आवें, यह क्षत्रिय का धर्म है ॥ ४ ॥

जब ते लै मुनि संग सिधाये ।
राम-लखन को समाचार सखि तब ते कछू न पाये ॥ १ ॥
बिन पानहीं गमन फल भोजन भूमि सयन तरुछाहीं ।
सर-सरिताजल पान सिसुन के संग सुसेवक नाहीं ॥ २ ॥
कौसिक परमकृपालु परमहित समरथ सुखद सुचाली ।
बालक सुठि सुकुमार सकोची समुझि सोच मोहिं आली ॥ ३ ॥
बचन सप्रेम सुमित्रा के सुनि सब सनेहबस रानी ।
तुलसी आइ भरत तेहि अवसर कही सुमंगलबानी ॥ ४ ॥

सुमित्राजी की उक्ति है कि हे सखो, जब से मुनि साथ लेकर गये तब से श्रीराम-लक्ष्मण के समाचार कुछ नहीं पाये ॥ १ ॥ विना पनहीं गमन, फल भोजन, भूमि में शयन, वृक्ष की छाहीं में रहना, तड़ागादि का जल पीना । बालकों के साथ कोई अच्छा सेवक भी नहीं है ॥ २ ॥ विश्वामित्रजी तो परमकृपालु, परमहितकारी, समर्थ परमसुचाली हैं, सुख के देनेवाले हैं। परन्तु बालक अत्यन्त सुकुमार और सकोची हैं। इससे हे आली, मुझको सोच यह है

कि सकोच से वे कुछ कहेंगे नहीं ॥ ३ ॥ ऐसे प्रेमसहित सुमित्राजी के वचन सुन सब रानी सनेहवश हो गईं। गोसाईंजी कहते हैं कि उसी समय सुमंगल श्रीरघुनाथजी के ब्याह के समाचार की वाणी भरतजी ने आकर कही ॥ ४ ॥

सानुज भरत भवन उठि धाये।
पितु समीप सब समाचार सुनि मुदित मातु पहँ आये ॥ १ ॥
सजल नयन तन पुलक अधर फरकत लखि प्रीति सुहाई।
कौसल्या लिये लाय हृदय बलि कहौ कछु है सुधि पाई ॥ २ ॥
सतानन्द उपरोहित अपने तिरहुतिनाथ पठाये।
छेमकुसल रघुबीर-लखन की ललित पत्रिका लाये ॥ ३ ॥
दलि ताड़का मारि निसिचर मख राखि बिप्रतियतारी।
दै बिद्या लै गये जनकपुर हैं गुरु संग सुखारी ॥ ४ ॥
करि पिनाकपन सुतास्वयंबर सजि नृप कटक बटोरयो।
राजसभा रघुबर मृनाल ज्यों सम्भुसरासन तोरयो ॥ ५ ॥
यों कहि सिथिल सनेह बंधु दोउ अम्ब अंक भरि लीन्हें।
बारबार मुख चूमि चारु मनि बसन निछावरि कीन्हें ॥ ६ ॥
सुनति सुहावनि चारु अवध घर घर आनन्द बधाई।
तुलसिदास रनिवास रहसबस सखी सुमंगल गाई ॥ ७ ॥

शत्रुघ्नसहित भरतजी भवन को शीघ्र दौड़े। पिता के पास सब समाचार की वाणी सुनकर आनन्द होकर माता के पास आये ॥ १ ॥ नेत्रों में जल भरा। देह प्रेम से पुलकित। खुशी से

ओठ फड़कते देख प्रीति से मन में भावते भये। इससे श्रीकौशल्याजी ने हृदय में लगाकर पूछा कि बलि जाऊँ, कहो कुछ सुध खबर रघुनन्दन की पाई है ॥ २ ॥ भरतजी बोले कि तिरहुतिनाथ जनकजी ने अपने पुरोहित शतानन्द को भेजा है। वह श्रीराम-लक्ष्मण की क्षेमकुशल की सुन्दर पत्रिका लाये हैं ॥ ३ ॥ उसका हाल कहते हैं, मार्ग में ताड़का को दला, निशाचरों को मारा, यज्ञ की रक्षा की, ऋषितिया अहल्या तारी श्रीविश्वामित्रजी धनुर्विद्या पढ़ाकर जनकपुर ले गये। वहाँ गुरु विश्वामित्र के साथ सुखी हैं ॥ ४ ॥ वहाँ जनकजी ने पिनाक का पण किया था कि जो धनुष तोड़े, सो जानकी ब्याहै। इसी हेतु उन्होंने सुता का स्वयंवर रचकर बहुत से राजों को बटोरा एकत्र किया था। उस राजसभा में श्रीरघुनन्दनजी ने कमलनालसम शिव का धनुष तोड़ा है ॥ ५ ॥ ऐसा कह दोनों भाई सनेह में शिथिल और प्रेम से भर गये। तब अम्बा माता कौशल्या ने उन्हें हृदय में लगा लिया। वार-बार मुख चूम-चूमकर सुन्दर मणि अरु वसन निछावर करती भई। ऐसे हाल सुन चाह जो सुनने की खुशी थी, सो सुहावनी सुनकर अवध में घर-घर आनन्दबधावने बजने लगे। गोसाईंजी कहते हैं कि रनिवास रहस कहे आनन्द के वश मगन जानकर सखी सुमंगल गान करने लगीं ॥ ६–७ ॥

रामलखन सुधि आई बाजै अवध बधाई।
ललित लगन लिखि पत्रिका उपरोहित कर जनक नरेस पठाई १
कन्या भूप बिदेह की रूप की अधिकाई।
तासु स्वयम्बर सुनि सबै आये देसदेस के नृप चतुरंग बनाई २

पन पिनाक पवि मेरु ते गरुता कठिनाई ।
लोकपाल महिपाल बानइत दसमुख सके न चाप चढ़ाई ३
तेहि समाज रघुराज के मृगराज जगाई ।
भंजि सरासन संभुकोजगजयकलकीरतितियतियमनिसियपाई ४
पुर घर घर आनन्द महा सुनि चाह सुहाई ।
मातु मुदित मंगल सजैं कहैं मुनिप्रसाद भये सकल सुमंगल माई ५
गुरु-आयसु मंडप रचे सब साज सजाई ।
तुलसिदास दसरथ बरात सजि पूजि गनेसहि चले निसानबजाई ६

अवधपुरवासी परस्पर बातें करते हैं। आज श्रीरघुनन्दन लक्ष्मण की सुन्दर खबर आई है, इससे अयोध्याजी में बधाई बजती है। कौन खबर ? शुभलगन की पत्रिका लिखकर राजा जनक ने अपने पुरोहित के हाथ पठाई भेजी है॥ १ ॥ राजा जनक की कन्या परमरूपवती है। उसके हेतु स्वयम्बर रचा गया। सो सुन देश-देश के राजा चतुरंगिणी सेना (हाथी, घोड़ा, पैदल, रथ) सजकर सब आये ॥ २ ॥ धनुष तोड़ने का पन किया। सो सुमेरु से भारी और वज्र से कठोर धनुष के तोड़ने में लोकपाल, सब देश के राजा और बानइत बाणासुर, रावण आदि सब हार गये हैं। कोई न धनुष को उठा सका, इससे लजा रहे। उसी समाज में अनुचित वचन कहकर जनकजी ने रघुराज दशरथ के मृगराज सिंहरूप श्रीरघुनाथजी को जगाया। उसी समय रघुनाथ ने शम्भु का धनुष तोड़ जगत् में जयजयकार और सुन्दर कीर्ति और स्त्रियों में शिरोमणि श्रीजानकीजी को पाया ॥ ४ ॥ चाह कहे जो मनोकामना थी सो पूर्ण भई, इससे घर-घर में बधाई

बजती है। माता आनन्द से मंगल के कार्य सजती और कहती है कि जो सुमंगल हुआ, सो मुनि के प्रसाद से सब हुआ ॥ ५ ॥ वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर सुन्दर दिव्य मंडप की रचना रचते भये। गोसाईंजी कहते हैं कि श्रीदशरथ महाराज हाथी, घोड़े, रथ, पालकी, बाजा, नाच-रंग आदि सब साज सज, गौरी-गणेश को पूज, निशान डंका बजाकर बरात सज आनन्द से जनकपुर को चले। बीच वास कर जनकपुर में पहुँचे ॥ ६ ॥

मनिमय मंजु मनोरथ होरी।
सोहर गौरि प्रसाद एक तो कौसिक कृपा चौगुनो भोरी ॥१॥
पनपरिताप चापचिन्ता निसि सोच सँकोच हितन नहिं थोरी।
रविकुलरवि अवलोकि सभाहित चितवारिजवन विकसोरी ॥२॥
कुँवरिकुँवर सब मंगलमूरति नृप दोउ धरमधुरंधर धोरी।
राजसमाज भूरिभागी जिन लोचनलाभ लह्यो यक ठोरी ॥३॥
ब्याहउछाह रामसीता को सुकृत सकेलि बिरंचि रचो री।
तुलसीदास जानै सोइ यह सुख जेहि उर बसै मनोहर जोरी ॥४॥

जब जनकपुर में बरात आई, तब उसको देख सखी परस्पर बातें करती हैं। हे सखी, जो मन में मनोरथ रहे, एक श्रीरघुनन्दन जानकी के विवाह का, सो शिवपार्वती के प्रसाद [बृहद्विष्णुपुराणे—महादेवप्रभावाच्च स्वशक्त्या गौरवेन च। कौशिकेन सहायातो रामो दशरथात्मजः॥] और श्रीविश्वामित्रजी की कृपा से चौगुना हुआ अर्थात् चारो कन्याओं के योग्य चार सुंदर राजकुमार प्राप्त हुए। इससे चारो ब्याह सुखपूर्वक अब होंगे। जब से बरात आई, तब से और विवाह हुए तक की बातों का

बीज यह पद है ॥ १ ॥ प्रण करने का परिताप और चाप की गरुवाई कठोरता की चिन्ता, सोई रात्रि है। उसमें धनुष न टूटने का सोच। प्रण छोड़ने को कहने का संकोच। उसी अंधकार में हितुओं के चित्त संपुटित रहे। रविकुल-कमल-प्रकाशक रवि-रूप श्रीरघुनन्दन को देख सभारूपी तड़ाग में हितुओं के चित्त कमलवनसम प्रफुल्लित भये ॥ २ ॥ कुँअरि सब श्रीजानकी आदि वे मंगलमूर्ति मंगलदात्री हैं। प्रमाण मार्कंडेयसंहितायां ब्रह्मा-वाक्यम्—"सीतामातरमाश्रयामि भजतां मांगल्यसंपत्प्रदाम्।" कुँअर कहे रघुनन्दन आदि, जिनका नाम, रूप, लीला, धाम, चारो मंगल के मूल हैं। लीला भागवते—रामस्य कोशलेंद्रस्य चरितं किल्बिषापहम्। रूप कौशलखण्डे—कायं सुभद्रगुणमंगलरम्य-मूर्त्तिः। नाम हनुमन्नाटके—कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानाम्। धाम सत्योपाख्याने—स्वर्गद्वारसमं तीर्थं नास्ति ब्रह्मांडगोलके। श्रुतिकीर्त्ति, उर्मिला, मांडवी, श्रीजानकी आदि कुमारी मंगल की मूर्ति हैं। शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत, श्रीराम आदि सब कुँअर मंगल की मूर्त्ति हैं। नृप कहे दोनो राजा धर्म की धुरीधारण करने में धुरीण कहे बली हैं। प्रथम श्रीदशरथ धर्मधुरीण। प्रमाण रघुवंशे—पितुरनन्तरमुत्तरकोसलान् समधि-गम्य समाधिजितेन्द्रियः। दशरथः प्रशशास महारथो यमवताम-वतां च धुरिस्थितः ॥ १ ॥ विदेह धर्मात्मा प्रमाण वाल्मीकीये—सोभिवाद्य शतानन्दं जनकं चातिधार्मिकम्। राजसमाज अवध-पुरवासी और जनकपुरवासी, वे भूरिभागी कहे कृतार्थरूप प्रभु के नित्य पार्षद हैं। प्रमाण बृहद्विष्णुपुराणे—अयोध्या का यथा नित्याः सर्वमंगलरूपिणः। तथैव मिथिलाश्चैव सर्वमंगल-विग्रहाः ॥ १ ॥ नित्यानन्दरसास्वादरूपिणो रामपार्षदाः। श्रीरामाराधकानां च निवासार्थं विशेषतः। इससे राजसमाज

बड़भागी हैं, जो नेत्रों का लाभ इकट्ठा श्रीराम-जानकी के दरश पाये ॥ ३ ॥ श्रीराम-जानकी के ब्याह का उत्साह सबका सुकृत बटोर ब्रह्मा ने रचा है । प्रथम सुकृत श्रीदशरथ कौशल्या का । प्रमाण वशिष्ठसंहितायाम्—रामादीनां कुमाराणां वात्सल्यानन्द उत्तमः । यादृशो भुज्यते राज्ञा श्रीमद्दशरथेन च ॥ कौशल्याप्रमुखाभिश्च तथायोध्यानिवासिभिः । कुत्रचित्तादृशो नास्ति न भूतो न भविष्यति ॥ मिथिलेशजी की सुकृति—प्रमाण बृहद्विष्णुपुराणे—विशेषतो राजरत्नं जनको नामनामतः । जानकी यत्र चोत्पन्ना निमिवंशप्रकाशिनी ॥ यस्य भक्तिप्रभावेण रामो दाशरथिः प्रभुः । जामातृत्वं समापन्नो लोकोत्तरफलप्रदः ॥ इत्यादि सबकी सुकृति । गोसाईंजी कहते हैं कि श्रीरामजानकी की मन को हरनेवाली जोड़ी जिसके उर में सदा बसती है, सो इस सुख का हाल जानता है ॥ ४ ॥

राजत राम जानकी जोरी ।
स्यामसरोज जलद सुन्दर बर दुलहिनि तड़ित बरन तन गोरी १

लग्न शोध पाणिग्रहण दिन का अवसर जान श्रीविदेहजी ने श्रीदशरथ महाराज को पुत्रों सहित बुलाया । उस अवसर में रघुनाथजी के पाँव में महावर लगा जरी का जामा पहनाकर कर में कंकण कण्ठ में विविध प्रकार की माला पहनाकर कानों में कुण्डल, नेत्रों में अञ्जन, नासिका में बुलाका, भाल पर तिलक, शीश पर जरकसी पाग, उस पर कञ्चन मणिजटित और काँधे में दिव्य रूमाल, कटि में पटका, भुजाओं में अंगद इत्यादि दूलहरूप सजाकर अपर राजकुमारों सहित सुन्दर वेगवान् भूषित घोड़ों पर सवार हो बरात सहित सजकर बाजा-गान-रंगसहित ।

अथवा देखकर पुरवासी आगे मिलकर द्वार पर सब आये। श्रीसुनैनाजी ने आरती साजी। सखी संग में गान करती द्वार पर प्रेम से दूलहरूप देख परछन कर मंगलअर्घ देती भीतर को लाईं। सुन्दर सिंहासन पर बैठाकर वेदविधानसहित विवाह का प्रारम्भ शतानन्द, वशिष्ठजी करने लगे। समय जानकर सखियाँ श्रीजानकीजी को अंग अंग में भूषण पहनाकर सेंदुर, जावक, वस्त्रादि से सुशोभित कर अर्घ देती लाईं। उस समय श्यामकमल जलद मेघवर्ण दूलहरूप श्रीरघुनाथजी, तड़ित्वर्ण गौररूप दुलहिन श्रीजानकीजी। ऐसी श्रीराम-जानकी की जोड़ी राजती है॥ १॥

ब्याहसमय सोहत बितानतर उपमा कहुँ न लहत मति मोरी।
मनहुँ मदन मंजुल मण्डप महँ छबि सिंगार सोभा सोइ थोरी ॥२॥
मंगलमय दोउ अंग मनोहर ग्रथित चूनरि पीत पिछोरी।
कनककलस कहँ देत भाँवरी निरखि रूप सारद भइ भोरी॥ ३॥
मुदित जनक रनिवास रहसबस चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी।
गान निसान बेदधुनि सुनि सुर बरषत सुमन हरष कहै को री॥ ४॥
नैनन को फल पाइ प्रेमबस सकल असीसत ईस निहोरी।
तुलसी जेहि आनन्द मगन मन क्यों रसना बरनै सुख सो री॥ ५॥

विवाह के समय स्वस्त्ययन, भूमिपूजा, गणेश गौरि पुजाकर विष्टर दे मधुपर्क आदि सब वेदविधान शतानन्द और वशिष्ठजी ने करवाये। समय जान श्रीसुनैनाजी को बुलाया। श्रीविदेहजी ने गाँठ जोड़ कञ्चनथार में जल ले श्रीरघुनाथजी के चरणकमल प्रेम सहित पखारे। उस समय वशिष्ठजी और शतानन्द ने दोनो

पक्ष की वंशावली* उच्चारण की, जिसको शाखोच्चार कहते हैं। विधिपूर्वक महाराज श्रीविदेहजी ने कन्यादान किया। अनेक प्रकार के मणि व भूषण दिये। उस समय विधिपूर्वक पाणिग्रहण हुआ। वेद-विधान-सहित चौरासी आहुतियों से होम से अग्नि आदि देवता पूजन पाकर अपने को कृतार्थ मान आशीर्वाद देते प्रेम में मगन हैं। महाराज विदेहजी का उस समय का सुख कहने योग्य नहीं है। अपर सब प्रेम के वश विदेह-सम हो गये। उस

---

* श्रीमहाराज दशरथ और जनकजी की वंशावली

१ ब्रह्मा २ मरीचि ३ कश्यप ४ विवस्वान ५ वैवस्वत ६ इक्ष्वाकु

७ निमि ८ मिथिल ९ जनक १० उदावसु ११ नन्दिवर्द्धन १२ सुकेत १३ देवरात १४ बृहद्रथ १५ महावीर १६ सुधृत १७ धृष्टकेतु १८ हर्यश्व १९ मरु २० प्रतिन्धक २१ कीर्तिरथ २२ देवमीढ़ २३ महीध्रक् २४ कीर्त्तिरात २५ महारोमा २६ स्वर्णरोमा २७ ह्रस्वरोमा २८ सीरध्वज २९ कुशध्वज।

७ कुक्षि ८ विकुक्षि ९ बान १० अनरण्य ११ पृथु १२ त्रिशंकु १३ धुन्धुमार १४ युवनाश्व १५ मान्धाता १६ सुसन्धय १७ ध्रुवसंधि १८ भरत १९ असित २० सगर २१ असमंजस २२ अंशुमान् २३ दिलीप २४ भगीरथ २५ ककुत्स्थ २६ रघु २७ कल्माषपाद २८ सुषेण २९ सुदर्शन ३० अग्निवर्ण ३१ शीघ्रगम ३२ प्रसुक् ३३ अम्बरीष ३४ नहुष ३५ ययाति ३६ नाभाग ३७ अज ३८ दशरथ ३९ श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न।

ब्याहसमय में श्रीरघुनन्दन और श्रीजनकनन्दिनी दिव्य मंडप तले सोहते हैं। तिनकी समता के लायक़ उपमा कवि की मति कहीं नहीं पाती। सब ढूँढ़ हारकर कवि के स्वभाव से कुछ कहते हैं। मानो कामरूप सुन्दर मण्डप के तले। छवि यथा सांग-द्युति, लावण्य, रूप, सुन्दरता, रमणीयता, कांति, माधुरी, मृदुता, सुकुमारता। शरदचन्द्र की सी झलक, उसे द्युति कहिये। मोती का सा पानी, उसे लावण्य कहिये। जो विना भूषण ही भूषित, सो रूप। सब अंग सुडौल, उसको सुन्दरता कहिये। देखे पर देखने की चाह, उसको रमणीयता कहिये। स्वर्ण की सी ज्योति, उसको कांति कहिये। जिसको देखे नेत्र तृप्त हों, उसको माधुरी कहिये। अत्यन्त कोमलता को मृदुता कहिये। कमल के भी फूल जिसके गड़ें, उसको सुकुमारता कहिये इत्यादि। सर्वाङ्ग सो छवि यथा दोहा—सांगद्युति लावण्य पुनि सुन्दरता रमनीय। कांति मधुर मृदुता बहुरि सुकुमारता गनीय॥ शृंगार यथा दोहा—भूलि जाय दुख दृढ़ जहाँ पढ़त सु मन सुख होइ। विभावादि पोषे जु तेहि रस कहियत है सोइ॥ १॥ रस उपजत है भाव ते, भाव पाँच विधि धारि। भनि विभाव अनुभाव पुनि थिर सात्विक संचारि॥ २॥ शुद्ध चित्त में विरति जो प्रथम उठै सो भाव। सोई रस अनुकूल है लच्छन किय कविराव॥ ३॥ रस को जो कारन कहत सो विभाव द्वै भाइ। आलम्बन इक कहत हैं उद्दीपन इक गाइ॥ ४॥ लखे जु नायक नायिका मन में रस सरसाइ। आलंबन कवि कहत हैं ग्रंथन के मत पाइ॥ ५॥ षट् ऋतु राग सोहाग अरु चित्त आनि रस भासु। वासवास जलवास पुनि उद्दीपन कहि तासु॥ ६॥ विना कहे आकार लखि हिये हेतु दरसाइ। ताही सों अनुभाव कहि बरनत हैं कविराइ॥ ७॥ स्तंभ स्वेद रोमांच अरु स्वरभँग कम्प गनाव। बिवरन आसूया

प्रलय आठो सात्विक भाव ॥ ८ ॥ बीजरूप सब रसन में थिर अस्थाई सोइ। जाको लै रस संचरै सो संचारी होइ ॥ ६ ॥ बुधि विलासजुत रहै रति को पूरनता अंग। ताहि कहत सिंगाररस केवल मदन प्रसंग ॥ १० ॥ उस शृंगार रस के षोडशसंस्कार—उबटन १, मंजन २, वसन ३, जावक ४, केश सँवारना ५, सिंदूर ६, चन्दन ७, मेंहदी ८, अरगजा ६, वेसर आदि भूषण १०, फूल-हार ११, सुगन्ध १२, मिस्सी १३, ताम्बूल १४, अंजन १५, चातुर्य १६। वह शृंगाररस दो भाँति का है—एक वियोग, एक संयोग। वियोग यथा—"सियमुख-सरिस देखि सुख पावा।" संयोग यथा—"सियराम अवलोकनि परसपर" इत्यादि। शृंगार रस दूलह और पूर्व कह आये हैं। छविरूप दुलहिन मदनरूप मंडप के तले शोभित। उनकी भी थोड़ी शोभा है। श्रीराम जानकी की समता के योग्य नहीं हैं ॥ २ ॥ मंगलमय कहे पग जावक से, कर कंकण से, नेत्र अंजन से, भाल तिलक-सिंदूर से, शिरमौर मौरी से, सर्वांग जामा, पटका, चुनरी से इत्यादि। सब अंग मन को हरनेवाले हैं। चुनरी और पीताम्बर से सुन्दर गाँठ दी। कनक-कलश की भाँवरी देते हैं। उस समय का रूप देख शारदा सी बुद्धिमती भी भोरी भ्रांत भई॥ ३ ॥ सम्पूर्ण शृंगार देख देह की सुध न रहे, उसको रस कहिये। सोई देख जनकजी के रनिवास की आनन्दवश जो चतुर नारी हैं, वे तृण तोड़कर देखती हैं, जिसमें नज़र न लग जाय। स्त्रियों के मंगलगान की ध्वनि, द्वार पर बाजों की ध्वनि, मुनियों की वेदध्वनि सुनकर देवता कल्प-वृक्ष के फूल बरसाते हैं। उस समय के हर्ष को कोई कह नहीं सकता। सब आनन्दवश हैं ॥ ४ ॥ नेत्रों का फल श्रीराम-जानकी के दर्शन अघाकर पाकर, प्रेमवश सब ईश को निहोरती हैं कि हे महादेव, यह जोड़ी चिरंजीव रहे। ऐसे आशीर्वाद सब देते

हैं। गोसाईंजी कहते हैं री सखी, जिस आनन्द में मन, मगन कहे डूब गया उस सुख को रसना कैसे वर्णन करे। इससे शृंगार का सुख जानने योग्य है, कहने योग्य नहीं है ॥ ५ ॥

दूलह राम सिया दुलही री।
घन दामिनि बर बरन हरन तन,
सुन्दरता नखसिख निबही री ॥ १ ॥
ब्याहबिभूषन बसन बिभूषित,
सखि अवली लखि ठगि सी रही री।
जीवनजनम लाहु लोचनफल,
है इतनोइ लही आजु सही री ॥ २ ॥
सुखमा सुरभि सिंगार छीर दुहि,
मैन अमीमय कियो दही री।
मथि माखन सिय राम सँवारे,
सकल भुवन छवि मनहुँ मही री ॥ ३ ॥
तुलसिदास जोरी देखत सुख,
सोभा अतुल न जात कही री।
रूपरासि बिरची बिरंचि मनु,
सिलालवनि रति काम लही री ॥ ४ ॥

दूलहरूप श्रीरघुनाथजी, दुलहिनरूप श्रीजानकीजी, तिनकी उपमा कहते हैं। घन कहे मेघ के श्रेष्ठ वर्ण का मन हरनेवाला रूप श्रीरघुनाथजी का है। दामिनि के वर वर्ण से मन हरनेवाली छवि श्रीजानकीजी की है। तिनकी सुन्दरता जैसी चाहिये,

वैसी नख से शिखा तक निबाहि कहे यथार्थ पूरी है ॥ १ ॥ नख-शिख-छवि का एक पद हम अपनी उक्ति से लिखते हैं। नखशिख-छवि अवलोकि अली री। दूलहराम जानकी दुलहिन घन दामिनि निज एक थली री ॥ १ ॥ जावक पग नूपुर मँजीरजुत सज्जनमन किधौं मधुपवली री। जामा रुचिर पीत जरकस कटि पट परिधान जोति अमली री ॥ २ ॥ जरकसि कलित अरुन चूनरि सों पीत वसन कृत गाँठि भली री। चन्द्रहार मनि-माल जवाकृत पंचदाम गर चंपकली री ॥ ३ ॥ बैजंतीबनमाल पदिक मनि कंठा गर छबि कंबु छली री। बलयचूरि संघटित विभूषन अंगुलीय कर कंज कली री ॥ ४ ॥ कंकन कड़ा मुद्रिका भुजबल बर अंगद भुजदंड बली री। स्रवनफूल ताटंक पादिका जुग प्रकास मिलि केस हली री ॥ ५ ॥ कुण्डल मकर कपोल केस बिच लीक रेख जस कामगली री। नासा नथ लटकन बेंदा जुत अर्द्धचंद्र धृत कीट लली री ॥ ६ ॥ कंचनरचित समूह मनिन मय मुकुट प्रभा सब जग उजली री। पूरन चंद्र प्रकासबदन लखि बैजनाथ मन कुमुद कली री ॥ ७ ॥ ब्याह के विभूषण कहे कंकण, कड़ा, झुमका, मणिमाल, पहुँची, महावर, काजल, मौर। वसन कहे जरकस का जामा, पटका, उपन्ना, पाग। स्त्रियों के भूषण बिछिया, नूपुर, जेहर, महावर, रसना, चन्द्रहार, पदिक-हार, नागफनी, हारमणि, मोतियों के हार, पचलड़ी, चंपमणी, चंपकली, कंठी, बाजू, बाँक, अंगद, भुजबलय, चूड़ी, कंकण, पहुँची, पछेलवा, बलय, मधिबलय, आरसी, अंगुश्ताना, पोटिया, बाँक, मुद्रिका, करनफूल, ताटंक, पटिका, बेंदा, बन्दी, माँग, फलचूड़ामणि, माँग, मोती, सेंदुर, अर्द्धचन्द्र, वसन, साड़ी आदि इत्यादि। विभूषित रूप देख सखियों की अवली कहे समूह उस समय की छबिरूप ठगोरी के वश ठगी सी रह गईं। और

कहती हैं, जीवन जन्म का लाभ और नेत्रों का फल इतना ही है, सो निश्चय आज हमने पाया ॥ २ ॥ यहाँ शोभा कौन है, सुनिये—
जे तिरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लाग भुवनदस चारी॥
देखि जनकपुर सुर अनुरागे। निज २ लोक सबहिं लघु लागे॥
कोसलपति कर देखि समाजू। अतिलघु लाग तिनहिं सुरराजू॥
जेहि मण्डप दुलहिनि वैदेही। सो बरनै असि मति कवि केही॥
दूलह राम रूप-गुनसागर। सो वितान तिहुँलोकउजागर॥
सुखमा कहे शोभा सोई सुरभी कहे गऊ है। श्रृंगाररस-ग्राहक अनुरागी वात्सल्य है। तिनके हेतु सुखमाधेनु पन्हानी। चार कुमार चार कुमारियों का विवाह होना सुनना चार स्थान हैं। चार बरातों से चारों तरफ़ अगवानियों का मिलना चार श्रृंगाररस दूध की धारा हैं। मिथिलापुर दोहनी है। उसमें दुहकर द्वार का आचार आदि औटना है। मदन अहीर है। उस श्रृंगारमय आनन्दमय आनन्द-दूध को भूपभुवन महेड़ा में नाकर भरा। थिर श्रृंगार जो है संयोग, ब्याह में आनन्द, सो अमृतमय माधुर्य, रसमय उत्सव दही है। मण्डप के मणिमय खम्भ मथानी हैं। तहाँ गाँठ जोड़ भाँवरी देते समय जो खम्भों में परछाहीं पड़ती है, सो मानो प्रभु का भाँवरी घूमना नहीं है, खम्भ मथानी से घूम रहे हैं। तहाँ थिर श्रृंगार संयोग माधुर्यरसमय दही मथकर चारो जोड़ियों में श्रेष्ठ छवि सिय-राम-दूलह-दुलहिन रूप एक आसन पर बैठे हैं। उस समय की शोभा श्रृंगार का भी सारांश मक्खनसम श्रीजनकनन्दिनी रघुनन्दन को सँवारा है। सब भुवन की छवि मही कहे मट्ठे के समान नीरस और सीठी हो गई। श्रीराम जानकी सब भुवन के सारांश बीज उत्पत्ति-स्थिति-लय के कारण सबके पूजनीय हैं। यथा प्रमाणं श्रुतिः—"सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ जातान्याभ्यां भुवनानि द्विसप्त। स्थितानि

चाप्रहतान्येव तेषु ततो रामो मानवोमाययाधात् ॥" कविता-वली—"कह्यो रमारमन सुजान हनुमान कही सियासम तिय न पुरुष राम सारिखे' ॥ ३ ॥ गोसाईंजी कहते हैं कि जो श्रीराम जानकी की जोड़ी देखने का सुख सो देखते ही बनता है, कहते नहीं बनता। मानो विधाता किसान ने जगत्‌रूपी खेत में शोभा-रूपी नाज बोकर काम रति लौं निहारकर इकट्ठा करवाई। मिथिला में मंडपरूपी आफर में रूपराशि श्रीराम-जानकी को रचा। उसकी मजूरी सो लौनी, खेत की गिरी बाली सो सीला, सोई सीला लौनी सम शोभा रति काम ने पाई ॥ ४ ॥

पद। सखि सियराम कोहवर कहँ लाई। करि लहकौरि सिखाव गौरि प्रभु सिय सादर बहुभाँति सिखाई ॥ १ ॥ कोउ कह लाल जीति यहि अवसर कोउ कह सिया जयति यहि दाई। बढ़त अधिक आनन्द परस्पर हास बिलास बरनि नहिं जाई ॥ २ ॥ कोउ पदत्रान मूँदि पट-अंतर कहत लाल लागहु पग आई। कपट बिचारि लाल बिहँसत मन सखि सब हास करन मनभाई ॥ ३ ॥ दीपबाति बिलमाइ मिलावत बिबिध बचन दुहुँ दिसि चतुराई। बैजनाथ रस बिवस सकल अति सखिसमाज सुख लहत अघाई ॥ ४ ॥

मनभावत सखि प्रभुछबि लूटी। निरखि निहाल पलक नहिं अन्तर कुल की कानि लाज सब छूटी ॥ १ ॥ कोउ करकमल लगाइ लाल उर ताप मिटावत चतुर बधूटी। कोउ पग परसि निहारि हृदय महँ स्वकर छोड़ाय माल उर जूटी ॥ २ ॥ कोउ कुण्डल कर परसि केसबिच भानु प्रभास स्यामघन फूटी। कोउ जामा कोउ पीतबसन महि ग्रन्थित सुमनमाल कोउ टूटी ॥ ३ ॥ बिरहब्याधि इक कहर मिटन हित चाखत परमरूप छबिबूटी। बैजनाथ मुख-चन्द्रप्यास इक नयनन बाल अमीरस घूटी ॥ ४ ॥

अद्भुत गति रघुनन्दन केरी री। सखिसमाज तजि लाज अवस है अवलोकत नहिं पलक परी री ॥ १ ॥ मृदु मुसकानि कृपान म्यान मुख द्विज-प्रकास खरसान धरी री। घायल गात दिखात घाव नहिं काटि हियो दुइ टूक कियो री ॥ २ ॥ नेह नवाइ कुटिल भृकुटी धनु सजि कटाच्छ विष प्रेम-भरी री। नयनबान उर लाग सखी जेहिं तरफरात बिन होस परी री ॥ ३ ॥ सील रसील प्रकास निसित अति तारि सहित गहि चाह करी री। लागत बचन कटार सखी उर बिरह पीर बधि ज्ञान हरी री ॥ ४ ॥ बिन अपराध ब्याध कौसलसुत सखि-समाज कुलि कतल करो री। बैजनाथ परि क्यों उबरै तिय प्रेमगाँठि गर फाँसि परी री ॥ ५ ॥

जैसे ललित लखन लाल लोने।
तैसे ललित उर मिला परस्पर लखत सुलोचनकोने ॥ १ ॥
सुषमासारु सिंगारु सारु करि कनकरच्यो है तेहि सोने।
रूपप्रेमपरिमिति न परत कहि बिथकि रही है मति मौने ॥ २ ॥
सोभा सील सनेह सुहावन समौ केलिगृह गौने।
देखि तियन के नयन सफल भये तुलसिदास के होने ॥ ३ ॥

इति ऊपर के पद सत्योपाख्यान के अनुसार निज मत के अनुकूल हमने कहे हैं। जैसे लावण्य के भरे श्रीलक्ष्मणलाल, वैसे उर्मिलाजी सुन्दरी। सो दोनो जने प्रेम से भरे नेत्रों की कोर से देखते हैं ॥ १ ॥ सुषमा शोभा और शृंगार का सारांश निकालकर उसका कनक कर उस सोने से दोनों मूर्तियाँ रची हैं। शृंगार श्याम है, इससे उर्मिलाजी भी श्याम हैं। शोभा का सारांश लक्ष्मणजी, तिनका रूप प्रेम की अवधि है। इससे कहा नहीं जाता विशेष मति थककर चुप हो रही ॥ २ ॥ केलिगृह कोहवर को गये।

उस समय की शोभा, शील और सनेह देख स्त्रियों के नेत्र तो सफल भये। अब तुलसीदास के भी होनेवाले हैं। इसमें शृंगाररस की वाञ्छा जनाई। उर्मिला आदि के रंग का प्रमाण नारदपञ्चरात्रे—हिरण्यवर्णां सीताञ्च मांडवीं पाटलप्रभाम्। उर्मिलां श्यामवर्णाभां श्रुतिकीर्तिं सितप्रभाम्॥ ३॥

जानकीवर सुन्दर माई।
इन्द्रनीलमनिस्याम सुभग तनु,
अंग मनोजन बहु छबि छाई॥ १॥
अरुन चरन अंगुली मनोहर,
नख दुतिवन्त कछुक अरुनाई।
कंजदलन पर मनहुँ भौम दस,
बैठे अचल सु सदसि बनाई॥ २॥
पीन जान उर चारु तड़ित मनि,
नूपुर पद कल मुखर सुहाई।
पीतपराग भरे अलिगन जनु,
जुगल जलज लखि रहे लोभाई॥ ३॥
किंकिनि कंज कनक अवली मृदु,
मरकत सिखर मध्य जनु जाई।
गई न उपर सभीत नमित मुख,
बिकसि चहूँदिसि रही लोनाई॥ ४॥
नाभि गँभीर उदररेखा बर,
उर भृगुचरनचिह्न सुठि आई।

भुज प्रलम्ब भूषन अनेक जुत,
बसन पीत सोभा अधिकाई ॥ ५ ॥

सखियों से सखी कहती है—अरी माई, जानकी का वर परम-सुन्दर है। इन्द्रनीलमणिसम श्यामरंग तन में सब अंग सुन्दर हैं। अंग-अंग प्रति अनेक काम की छवि छा रही है ॥ १ ॥ लाल चरणों में मन को हरनेवाली अँगुली हैं। उनमें नख अरुणाई लिये प्रकाशमान हैं। इसकी उत्प्रेक्षा, मानो कमलदलों पर अचल सभा बनाकर सुन्दर दस मंगल के ग्रह बैठे हैं ॥ २ ॥ पीन पुष्ट जानु हैं, सुन्दर उर है। चरणों में सुवर्ण-मणियों से जड़ित नूपुर कल सुन्दर शब्द कर रहे हैं, सो मानो कमल की पीत धूल से भरे अलिगण कहे भँवरों की पाँति हैं। वे भी पदकमलों को देख लुभाकर रह गये हैं ॥ ३ ॥ कटि में सोने की किंकिणी, सो मानो कञ्ज कमल की पाँति है। श्याम शरीर मरकतमणि का शिखर है। उसमें कटि सोई मध्यदेश है। उसमें कंजकली उत्पन्न भईं। सो मुखचन्द्र के भय से डरकर ऊपर न जा सकीं, इससे नमित कहे नीचे मुख कर विकसीं। तिनकी सुन्दरता चारो ओर फैल रही है ॥ ४ ॥ गम्भीर नाभि, उदर की रेखाओं से शोभित श्रेष्ठ हृदय में भृगु-लता का चिह्न सुख देनेवाला है। अनेक भूषण सहित आजानु-भुजा सुन्दर शोभित कटि में पीताम्बर वसन। श्याम गात्र में उसकी शोभा अत्यन्त अधिक है ॥ ५ ॥

जज्ञोपबीत बिचित्र हेममय,
मुक्तामाल उरसि मोहिं भाई।
कंद तड़ित बिच जनु सुरपतिधनु,
रुचिर बलाकपाँति चलि आई ॥ ६ ॥

कंबुकण्ठ चिबुकाधर सुन्दर,
क्यों कहौं दसनन की रुचिराई।
पदुमकोस महँ बसे बज्र मानो,
निज सँग तड़ित अरुन रुचि लाई ॥ ७ ॥
नासा चारु ललित लोचन भ्रू,
कुटिल कचन अनुपम छबि छाई।
रहे घेरि राजीव उभय मानो,
चंचरीक कछु हृदय डेराई ॥ ८ ॥
भाल तिलक कंचन किरीट सिर,
कुण्डल लोल कपोलन झाँई।
निरखहिं नारि निकरि बिदेहपुर,
निमिकुल की मरजाद मिटाई ॥ ९ ॥
सारद सेस सम्भु निसिबासर,
चिंतित रूप न हृदय समाई।
तुलसिदास सठ क्यों करि बरनै,
यह छबि निगम नेति करि गाई ॥१० ॥

हेममय पीत जनेऊ और मोतियों के माला उर पर शोभित है, सो विशेष हमको भाती है। श्याम तनु कन्द कहे मेघ है। पीतपट बिजली है। उसके बीच जनेऊ मानो इंद्रधनुष है। तहाँ मोती-माला मानो बगलों की पाँति चली आती है॥ ६ ॥ शंखसम कण्ठ, ठोढ़ी और ओठ, सुन्दर दाँतों की रुचिराई कैसे कहूँ। कहने योग्य नहीं है। कैसे हैं ओठ, कमल का कोश हैं। उनमें

दाँत हीरागण हैं। पान की ललाई सोई तड़िता है। वह अरुण रुचि कहे भानु की किरणों सहित कमल कोश में बसी है। या बिजली का लाल रूप है ॥ ७ ॥ सुन्दर नासिका। सुन्दर नेत्र-कमल दो। बाल, सोई भँवरों की अवली हैं। तहाँ पलकें चलती, सो पंखा हैं। उनको डरकर भ्रमर बैठते नहीं, घेरकर मँडलाते हैं ॥ ८ ॥ माथे पर शोभायमान तिलक। शीश पर अनेक रंग की मणियों से जड़ित कंचन-किरीट। कानों में कुण्डल लोल कहे चञ्चल हैं। उनकी परछाहीं कपोलों पर पड़ती है। ऐसी सर्वांग की शोभा। जनकपुर की स्त्रियाँ निमिकुल की मर्यादा कहे पलक चलाना छोड़ एकटक हो प्रभु की माधुरी मूर्त्ति अवलोकती हैं ॥ ९ ॥ शारदा, शेष, महादेवजी निशिदिन प्रभु के रूप की चिंतवन करते हैं, परन्तु हृदय में रूप नहीं समाता, हृदय में नहीं आता है। गोसाईंजी कहते हैं, उस रूप का मैं लघुमति कैसे वर्णन कर सकूँ। यह जो प्रभु की छवि है, उसको वेद नेति-नेति कहकर वर्णन करते हैं, पर अन्त नहीं पाते ॥ १० ॥

भुजन पर जननी वारि फेरि डारी।

क्यों तोर्‌यो कोमल करकमलन सम्भुसरासन भारी ॥ १ ॥
क्यों मारीच सुबाहु महाखल प्रबल ताड़का मारी।
मुनिप्रसाद मेरे रामलखन की बिधि बड़ि करवर टारी ॥ २ ॥
चरनरेनु लै नैनन लावत क्यों मुनिबधू उधारी।
कहौ धौं तात किमि जीति सकल नृप बरी बिदेहकुमारी ॥ ३ ॥
दुसहरोष मूरति भृगुपति अति नृप तिनि करखै कारी।
क्यों सौंप्यो सारंग हारि हिय करिहै बहुत मनुहारी ॥ ४ ॥

उमँगि उमँगि आनन्द बिलोकत बधुन सहित सुत चारी।
तुलसिदास आरती उतारत प्रेममगन महतारी ॥ ५ ॥

जननी कौशल्याजी रघुनाथजी की भुजाओं पर वारन निछावर चारो ओर फेरकर करती हैं और पूछती हैं, हे तात, शंभु का धनुष महाकठोर भारी, उसको कोमल करकमलों से कैसे तोड़ा ॥ १ ॥ महाप्रबल बलवान् ताड़का, महाबली सुबाहु, मारीच उन खलों को कैसे मारा। जब संकोचवश रघुनाथजी न बोले, तब आप ही समाधान करती हैं कि विश्वामित्र के प्रसाद से मेरे राम-लक्ष्मण की विधाता ने अनेक करवरैं कही अल्पायु टालीं ॥ २ ॥ पुत्र-वियोग से सन्तप्त नेत्र जुड़ाने के अर्थ प्रभु के चरणों की रज नेत्रों में लगाकर पूछती हैं कि मुनिवधू अहल्या को कैसे तारा है। हे तात, कहो कैसे सब राजों को जीतकर विदेहकुमारी को विवाहा ॥ ३ ॥ दुःसह जो सही न जाय, ऐसी क्रोधमयी मूर्ति के भृगुपति जो परशुराम राजा के समूह क्षयकारी कहे नाश करने-वाले, उन्होंने हृदय में हारकर सारंग धनुष सौंपकर बहुत भाँति से मनुहारी तुम्हारी विनती कर अपराध क्षमा कराये ॥ ४ ॥ बहुओं सहित चारो पुत्रों के कोमल बदन मुख प्रेमानन्द से उमँग कर विलोकती हैं। गोसाईंजी कहते हैं, प्रेम में मग्न माता कौशल्या आरती उतारती हैं ॥ ५ ॥

मुदित मन आरति करै माता।
कनकबसन मनि वारि वारि करि पुलकि प्रफुल्लित गाता ॥ १ ॥
पालागन दुलहियन सिखावत सरिस सासु सत साता।
देहिं असीस ते बरष कोटि लगि अचल होउ अहिवाता ॥ २ ॥
रामसियाछबि देखि जुवतिजन करहिं परस्पर बाता।
अब जान्यो साँचेहु सुना सखि कोबिद बड़ो बिधाता ॥ ३ ॥

मंगलगान निसान नगर नभ आनँद कह्यो न जाता।
चिरजीवहु अवधेससुवन सब तुलसिदास सुखदाता॥ ४॥

सोना, वसन और मणि-श्रेष्ठ, तिनको वार कर प्रेम से पुलकित गात प्रफुल्लित, मन में महाआनन्दभरी माता आरती करती हैं॥ १॥ श्रीकौशल्याजी अपने समान सातसौ जो रानी हैं, तिनके पग लगने को दुलहिनों को सिखाती हैं। उनके पैर छूने पर सब आशीष देती हैं कि करोड़ वर्ष तक तुम्हारा अहिवात अचल रहे॥ २॥ श्रीजानकी और रघुनन्दन की छवि देख युवतीजन आपस में वार्तालाप करती हैं—हे सखी, हमने सत्य जाना कि विधाता बड़ा परिडत है। काहे से उसने कैसी जोड़ी मिला दी है॥ ३॥ नगर और आकाश में मंगलगान तथा बाजों का शब्द है। आनन्द कहा नहीं जाता। सब आशीष देते हैं कि अवधेश महाराज के सब पुत्र और बहुएँ चिरंजीव रहें, जो तुलसीदास को सुख के देनेवाले हैं॥ ४॥

सवैया

बन जावक सोम प्रभास्य श्रुती मकराकृत भामकुटांगदसोरी।
शृगमुक्कसि रोधउरत्रिवली तनुस्यामसि ताड़ित अभ्र लजोरी॥
उतराकृत ग्रंथि पटाङ्कृत भ्राम्य घटावत ही रतिनाथ सकोरी।
करि बैजसुनाथ उरस्थल वास नृपात्मज श्रीमिथिलेन्द्रकिशोरी॥
बनरी लखि दीप दुहूँकुल की समितारति गौरिरमानसरेख्यो।
सतसर्वप्रभूति भरी गृह में मन चाहत सिद्धि खड़ी ढिग पेख्यो॥
मुख देखन नेग सियासमिता मन ढूँढ़ि सकी सब लोक असेख्यो।
दै श्रीरघुनन्दनरत्न सिया कर सासु सँकोचि तहूँ मुख देख्यो॥

इति रसिकलताश्रितकल्पद्रुमसियावल्लभशरणबैजनाथकृतगीतावली-मणिदीपिकाटीकासहितबालकाण्ड समाप्त।

श्रीगणेशाय नमः

गीतावली

(मणिदीपिका टीकासहित)

अयोध्याकाण्ड
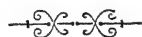
मरकतकनकाभौ श्यामगौरौ किशोरौ
घनतडिद्‌तिकासौ पीतनीलाभवासौ ।
अमलकमलनेत्रौ साधनक्षेमदौ तौ
नमितविधिहरीशौ जानकीजानकीशौ ॥ १ ॥
भवाब्जयोनिवन्दितौ स्वभक्तसर्वकामदौ ।
पदाम्बुजौ भजाम्यहं सदा विदेहजापतेः ॥ २ ॥

राग सोरठ

नृप कर जोरि कह्यो गुरु पाहीं ।
तुम्हरी कृपा असीसनाथ मेरी सबै महेस निबाहीं ॥ १ ॥
राम होहिं जुवराज जियत मेरे यह तृष्णा मन माहीं ।
बहुरि मोहिं जियबे मरिबे की चितचिन्ता कछु नाहीं ॥ २ ॥

महाराज भलो काज बिचारेउ बेगि बिलम्ब न कीजै।
बिधि दाहिनो होइ तौ सब मिलि जन्मलाहु लुटि लीजै ॥ ३ ॥
सुनत नगर आनन्दबधावन कैकेयी बिलखानी।
तुलसीदास देवमायाबस कठिन कुटिलता ठानी ॥ ४ ॥

श्रीमहाराज दशरथ हाथ जोड़ वशिष्ठजी से बोले--हे नाथ, आपकी कृपारूपी आशीर्वाद से मेरे मन का मनोरथ सब श्रीशिवजी ने निबाहा ॥ १ ॥ अब रघुनन्दन का युवराज अभिषेक हमारे जीते हो जाय। यह लालसा हमारे मन में है, सो हो जाय। पीछे फिर हमको चित्त में जीने-मरने की चिन्ता कुछ नहीं है ॥ २ ॥ वशिष्ठजी बोले--हे महाराज, आपने भला काज विचारा है। इससे अब विलम्ब न करो। जो विधाता दाहने हो, कार्य निर्विघ्न निबहे, तो सब समाज भर इस आनन्द को देख जन्म भर का लाभ लूट ले। विधाता दाहने होने की बात कहकर मनोरथ में सन्देह जनाया ॥ ३ ॥ प्रभु के युवराजपद प्राप्त होने का आनन्द नगर में हो रहा है, यह बात मन्थरा के मुख से सुनके कैकेयी बिलखानी कहे दुःखित भई। गोसाईंजी कहते हैं कि देवतों की माया के वश होकर कठिन कुटिल प्रण, भरत को राज्य व रघुनाथजी को चौदह वर्ष वन यह प्रण ठाना ॥ ४ ॥

कैकेयी के वरदान द्वारा पिता के वचन प्रमाण कर प्रभु वन-गमन में तत्पर हैं, यह सुन श्रीकौशल्याजी कहती हैं, हे मेरे प्राणों के प्यारे श्रीरघुनन्दन, सुनो। यहाँ श्रीकौशल्याजी के वचन में रघुनाथजी की प्राप्ति धर्म को परात्पर करके सत्यादि कर्मकांड को निषिद्ध कर वर्णन किया है। यथा सिद्धान्ततत्त्वदीपिकायाम्—

चौपाई

हैं प्रभु को सब मातु समान। वह सब जननी-जीवन-प्रान ॥
अरु केकयि पति-धर्महि धरै। पति की क्यों सु अवज्ञा करै ॥
हरिहित क्यों सु असुरबुधि होइ। सहजहिं प्रकृति है व जो सोइ ॥
तौ व भरत परमेश्वर तास। जन्मे क्योंकरि उदरनिवास ॥
नृप अस धर्म पास क्यों पर्यो। जिहिंहरि सोंअसअन्तरकर्यो॥
अरु असि प्रीति होइ क्यों ऐसे। बिछुरत प्रान तजे तिहिं जैसे ॥
हरि नेकु जु नृपवचन सुमान्यो। सुनिवनगवनउमँगिउरआन्यो ॥
बिछुरत विपति सबन में परी। क्यों नहिं नैक दया हिय धरी॥
हरि नृप सों अनुकूलहि भाख्यो। लखन धर्मतजिक्योंमन माख्यो॥
लखन न फिरे हरिहु के कहे। भरत क्यों आइ अवध ढिग रहे॥
हरिसेवन रिपुदमन न कीन्हों। क्यों भरतहि सेवन मनदीन्हों ॥
जाको नाम भरत जेहि आवै। वह नर परम मोच्छ पद पावै ॥
नृप सुवचन मन करि हरि गहे। क्यों सो इन्द्रपदहि में रहे॥
अरु सुत उपरि होय यह रीति। जनक अधिक जननी कीप्रीति॥
नहिंन नृपति सुत बिछुरन सह्यो। जननी प्रान कहो क्यों रह्यो ॥

कृपावत्युवाच

नृपति वेद अवतार सुभनिये। ताकी सक्ति तीनि ये गनिये ॥
कर्म उपासन ज्ञान सुनाम। कर्म सुद्विधा सकाम अकाम ॥
काम सु अन्य देवफल साधन। अपर सुहरि सुरफल आराधन॥
कर्म अकाम केकयी जानौ। सरसुति मिले सकाम बखानौ ॥
उपासना विधिवत हरिसेवहिं। अक्ति भक्तनि चित दै जे सेवहिं ॥
सो वह सक्ति सुमित्रा कहिये। लखन सत्रुहन सुत जहँ लहिये ॥
ज्ञान सु हरितनुरूप प्रकासै। सतत स्वभाव कर्मगुन भासै ॥
ज्ञान अपर पर जाइ सुभक्ती। केवल हरि-पद सों अनुरक्ती ॥

बैठत उठत न तिहिं बिसरावै। नहिं तेहि हिय कछु और सुहावै॥
वहै सक्ति कौसल्या अहै। जिहिं समीप रघुवर सुत रहै॥
केकयि सोइ आइ हितु कस्यो। जो वधि कर्मपास नृप पस्यो॥
पुरा संग उनका होमज्यो। रहीप्रीति बिछुरत तनु तज्यो॥
राम लखन भारत रिपुनासन। निज चरितनकि योधर्मप्रकासन॥
गुरुसेवन हरि नरन सिखायो। हरिसेवन लछिमन मनभायो॥
भरत कह्यो हरि वैभव रच्छन। भक्त सेव रिपुदमन विचच्छन॥
अब जो विमुख सत्य नृपभज्यो। हरिविरोध जानिहु न तज्यो॥
अन्य श्रेय साधन है गह्यो। याते इन्द्रलोक महि रह्यो॥
अकिहरि जानि अवधपुर माहीं। हितवसमुक्ति चही नृप नाहीं॥
सुतहिं स्वर्ग बसि तब तक रह्यो। मोच्छते कोटिगुनितसुखलह्यो॥
पुनिप्रभु जब निजलोक सिधारे। संग लागि गये रहे न न्यारे॥
जननी विपिनगवन जब जान्यो। नृपते द्विगुनदुःख हिय आन्यो॥
तेहि दुख प्रान न धीरज गहै। तनु तजि चलिबे को जब चहै॥
तब सिय राम प्रकट ह्वै आवैं। लखन सहित गृह में दरसावैं॥
बोलत फिरत तिनहिं जब देखे। तब वनगवन स्वप्न करि लेखे॥
पुनि जब कबहुँ तहाँ नहिं लहे। भयो सुँदर ऐ स्वप्न में कहे॥
योंहीं सिय ससि जननी पाहीं। रहे सुदेखहिं मन्दिर माहीं॥
जो बहुबार प्रान उठि धायो। निकटनिरखिनिजगैरहिआयो॥
सुमुखिकह्योनृपहिनक्योंदरस्यौ। कौनचूकहियआनिजुअरस्यौ॥

कृपावत्युवाच

जन जु अनन्य आश्रय बल गहै। तिनपर दया न करि हरि चहै॥
सत्याश्रय सु युधिष्ठिर कस्यो। हरिहूँ कह्यो तहूँ नहिं टस्यो॥
कोउमिसलैतिहिंनरकदिखायो। भाइन को वह दोष न लायो॥
देन सुवन वसुदेव सु भाख्यो। हरिविरोधसत्य सूनहिंराख्यो॥

कन्या दै कंसहि तिहिं ठग्यो । ताहि तहाँ कछु दोष न लग्यो ॥
वय आश्रित सनकादिक भयो । क्रोध अभय पुर में है भयो ॥
हरि आश्रय सुक यौवन माहीं । कामक्रोध नहिंतिहिढिग जाहीं ॥
हरि-विरोध वर धर्म जो होई । अधरम समगनि तजिये सोई ॥

शिवसंहितायाम्

श्लोक । आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वं चार्थदर्शनम् । इतीमानि दशांगानि रथनामानि यस्य सः ॥ १ ॥ ज्ञेयो दशरथो वेदः साध्यसाधनदर्शनः । यज्ञेशो यज्वनां वंश इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ॥ २ ॥ मर्यादापालनायैव लोकानां धर्मवृद्धये । राजात्मना वरीवर्त्ति शक्तित्रयसमन्वितः ॥३॥ त्रिकांडःखण्डरूपार्थं ब्रह्माण्डेश उपासकः । शब्दरूपेण विप्राणामास्येषु निवसत्यसौ ॥ ४ ॥ क्रियाज्ञानन्तथा जाप्यमिति शक्तित्रयीशितुः । एकैकबाहुविस्तारात्फलस्फालात्प्रमात्मिका ॥ ५ ॥ तासां क्रिया तु कैकेयी सुमित्रोपासनात्मिका । ज्ञानशक्तिश्च कौशल्या वेदो दशरथो नृपः ॥ ६ ॥ क्रियायां कलहो दृष्टो दृष्टा प्रीतिरुपासने । ज्ञानेनात्मसुखं नित्यं दृष्टं निर्हेतुनिर्मलम् ॥ ७ ॥ सर्वोधर्मः क्रियाजन्मा स्वर्गादिस्मृतिकारणम् । कैकेय्याख्यक्रियायां तु जातोऽयं भरतात्मना ॥ ८ ॥ सर्वेषां जगतां नित्यं धारणाधरणाच्च सः । भव्यवस्तुरतत्वाच्च ख्यातोसौ भरताख्यया ॥ ६ ॥ क्रियाकाण्डस्य शास्तासावैश्वर्यस्यापि शक्तिभृत् । पक्षपाती च धर्माणामधिष्ठाता प्रतिष्ठितः ॥ १० ॥ सुमित्रारूपशक्त्या तु जनितो लक्ष्मणोर्भकः । भक्तः परिजनो दासः सखा सेवादिदैशिकः ॥ ११ ॥ भगवद्रामदेवस्य कल्याणगुणशालिनः । अर्चनीयांघ्रिपद्मस्य दातुश्चानन्दसम्पदाम् ॥ १२ ॥ सर्वेषां लोककामानां व्यवस्थाय कृताश्रितः । सर्वेषां रामकामानां नित्यानामपि साधकः ॥ १३ ॥ कामाख्यपुरुषार्थस्य नेता लक्ष्मण उच्यते । भक्तानां पक्षपाती च रामादेशे धृतव्रतः ॥ १४ ॥ शत्रुघ्नो

नित्यशत्रुघ्नो रामरामजपावलेः । तथैव जनितो देव्या मम प्राणसमोनुजः ॥ १५ ॥ अर्थाख्यः पुरुषार्थस्याध्यक्षः शिक्षः सुदक्षिणः । श्रीरामभक्तभक्तानां पक्षपाती विचक्षणः ॥ १६ ॥

राग गौरी

सुनहु राम मेरे प्रानपियारे ।
बारौं सत्य बचन स्रुतिसम्मत जाते हौं बिछुरत चरन तिहारे ॥ १ ॥
बिन प्रयास सब साधन को फल प्रभु पाये सो तो नाहिं सँभारे ।
हरि तजि धर्मसील भयो चाहत नृपति नारिबस सब संहारे ॥ २ ॥
रुचिर काँच मनि देखि मूढ़ ज्यों करतल ते चिंतामनि डारे ।
मुनिलोचन चकोर ससि राघव सिवजीवन धन सो न बिचारे ॥ ३ ॥
जद्यपि नाथ तात मायाबस सुखनिधान सुत तुमहि बिसारे ।
तदपि हमहिं त्यागहु जनि रघुपति दीनबन्धु दयालु मेरे बारे ॥ ४ ॥
अतिसय प्रीति बिनीत बचन सुनि प्रभु कोमल चित चलन न पारे ।
तुलसिदास जो रहौ मातुहित को सुरभूमिबिप्रभय टारे ॥ ५ ॥

श्रुति-सम्मत कहे वेद-अनुकूल सत्य वचन, उसको वारौं कहे त्याग दूँ। जिस वचन से मैं तुम्हारे चरण-कमलों सों बिछुड़ती हूँ। यह बात पुराणों में प्रसिद्ध है कि जिस धर्म से रघुनाथजी से विमुखता आवे, सो धर्म नहीं है। उसको अधर्म मानिये । प्रमाण रुद्रयामले—ये नरा धर्मलोकेषु रामभक्तिपराङ्मुखाः । जपस्तपो दया शौचः शास्त्राणामवगाहनम् ॥ सर्वं वृथा विना येन शृणु त्वं पार्वति प्रिये ॥ पुनर्गीतायाम्–सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ १ ॥

पुनः पद्मपुराणे—न तत्पुराणं नहि यत्र रामो यस्यां न रामो न च संहिता सा। स नेतिहासो नहि यत्र रामः काव्यं न तत्स्यान्नहि यत्र रामः॥ शास्त्रं न तत्स्यान्नहि यत्र रामस्तीर्थन्न तद्यत्र न रामचन्द्रः। यागः सयागो नहि यत्र रामो योगः सयोगो नहि यत्र रामः॥ स्थानं भयस्थानमरामकीर्ति रामेति नामामृतशून्यमास्यम्। सर्पालयं प्रेतगृहं गृहं तद्यत्रार्च्यते नैव महेन्द्रपूज्यः॥ सर्वेषां वेदसाराणां रहस्यं ते प्रकाशितम्। एकोदेवो रामचन्द्रो व्रतमन्यन्नसत्तमम्॥ सब साधन जप, तप, यज्ञादि, भजन, ध्यान, योग, वैराग्य, ज्ञान, भक्ति, उसका फल तुमको पाकर बिना प्रयास पाया, सो नहीं सँभाल पाये। हरि जो हो तुम, तिनको तजकर धर्मशील हुआ चाहते हैं। नृपति नारी के वश हो सर्वस हार गये॥ २॥ सो जैसे कोई मूढ़ काँच की सुन्दर मणि देख उठा ले, हाथ से चिन्तामणि डाल दे, वैसे राजा ने किया चकोररूप मुनियों के पूर्ण चन्द्र राघव हो, और शिवजी के जीवनधन हो। इसका भूपति विचार न करे। शिव का सर्वसाधन श्रीराम नाम। प्रमाण कूर्मपुराणे शिववाक्यम्—गोप्याद्गोप्यतमं भद्रे सर्वस्वं जीवनं मम। रामनाम परब्रह्म कारणस्यापि कारणम्॥ ३॥ हे नाथ, यद्यपि तात जो तुम्हारे पिता मायावश, उन्होंने सुखनिधान पुत्र जो तुम, तिनको बिसार दिया। तदपि हमको न त्यागो हे दीनबन्धु, दयालु, मेरे पुत्र, रघुपति॥ ४॥ अत्यन्त प्रीति हुई। नम्र वचन सुन कोमलचित्त रघुनन्दन ने वन चलने का इरादा न किया। गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु ने अपने मन में विचार किया कि जो मैं माता कौशल्या के हित को रह जाऊँ, तो देवतों को, साधुओं को, भूमि को, ब्राह्मणों को भयदायक जो खल रावण है, उसको कौन मारेगा। दीनबन्धु दयालु गुण सुन रहने को मन न हुआ॥ ५॥

रहि चलिये सुन्दर रघुनायक ।
जो सुत तातबचन पालनरत जननिउ तात मानिबे लायक ॥ १ ॥
बेदबिदित यह बानि तुम्हारी रघुपति सदा सन्तसुखदायक।
राखहु निज मरजाद निगम की हौं बलि जाउँ धरहु धनुसायक॥२॥
सोककूप पुर परिहि मरिहि नृप सुनि सन्देस रघुनाथ सिधायक।
यह दूषन बिधि तोहिं होत अब रामचरनबियोगउपजायक॥ ३ ॥
मातु बचन सुनिस्त्रवत नैनजल कछु सुभाव जनु नरतनपायक ।
तुलसिदास सुरकाज न साध्यो तौ तो दोष होइ महि आयक॥ ४॥

कौशल्याजी कहती हैं, हे सुन्दर रघुनायक, रह जाइये । हे सुत, जो पिता के वचन पालने में रत हो तो माता भी मानने के लायक है ॥ १ ॥ यह तुम्हारी बानि वेदमें विदित है कि रघुपति सदा संतों को सुख देनेवाले हैं। प्रमाण वेदपादाभिस्तोत्रे। स्वच्छन्दचारिणं दीनं रामरामेतिवादिनम्। तावन्मामनुनित्येन यथा वारिव धावति ॥ ऐसी वेद की मर्यादा तुम्हारी है । उसको रक्खो। अयोध्यावासी सब सन्त हैं। तिनको वियोग-दुःख जान मैं बलि जाऊँ। धनुष-बाण धरो, अर्थात् वन जाने का साज उतार धरो ॥ २ ॥ शोक कहे दुःखकूप में पुरवासी पड़ेंगे। सिधायक कहे वन को रघुनाथजी गये, यह संदेश सुनते ही नृप शरीर त्याग देंगे। श्रीकौशल्याजी आर्तिवश कहती हैं, हे विधाता, यह दूषण तुमको होता है, जो श्रीरामचरणों का वियोग उपजाते हो। ईश्वर से विमुख करानेवाला अधर्मी है। प्रमाण भागवते— गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्। दैवं न तत्स्यान्नृपतिर्न स स्यान्नमोचयेद्यः समुपेत-मृत्युम् ॥ ३ ॥ माता के वचन सुन नेत्रों से जल गिरता है। नरतनु

पाये का मोहित स्वभाव दिखाया। मानो गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु ने विचारा कि देवतों का कार्य न करूँ तो भूमि पर आने का दोष मुझको होगा॥ ४॥

राम हौं कौन जतन घर रहिहौं।
बारबार भरि अंक गोद लै ललन कौन सों कहिहौं॥ १॥
यहि आँगन बिहरत मेरे बारे तुम जो सँग सिसु लीन्हे।
कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत बहु बिनोद तुम कीन्हे॥ २॥
जिन स्रवनन कल बचन तिहारे सनि सुनि हौं अनुरागी।
तिन स्रवनन बनगवन सुनत हौं मोते कौन अभागी॥ ३॥
जुगसम निरखि जाहिं रघुनन्दन बदन कमल बिनु देखे।
जो तन रहै बरष बीते बलि कहा प्रीति यहि लेखे॥ ४॥
तुलसीदास प्रेमबस श्रीहरि देखि बिकल महतारी।
गद्गद कंठ नैनजल फिरि फिरि आवन कहेउ मुरारी॥ ५॥

श्रीकौशल्याजी कहती हैं कि हे रघुनन्दन, मैं कौन यत्न से घर में रहूँगी। भरि अंग गोद में बैठाकर बारबार ललन किसको कहूँगी॥ १॥ हे मेरे बारे, तुम जो बालकों को संग लिये इस आँगन में विहरते रहे और अनेक विनोद करते रहे, सो तुम्हारी सुरति किये हे पुत्र, आँगन खाली देख कैसे प्राण रहेंगे॥ २॥ जिन कानों से सुन्दर तुम्हारे वचन सुनने से वे अनुरागवश होते थे, उन कानों से अब वनगमन सुनती हूँ! मेरे समान और कौन अभागी है॥ ३॥ हे रघुनन्दन, विना तुम्हारे देखे हमको एक निमेष पल भर कल्प सम बीतता था। जो अब चौदह वर्ष तक विना तुम्हारे देखे हमारे प्राण रहें, तो बलि जाऊँ, हमारी

प्रीति झूठी है ॥ ४ ॥ गोसाईंजी कहते हैं कि माता को विकल देख प्रभु प्रेम के वश हो नेत्रों में जल भरे गद्गद कंठ बार बार कहते हैं कि हम शीघ्र ही आवेंगे ॥ ५ ॥

राग विलावल

रहहु भवन हमरे कहे कामिनि ।
सादर सासुचरन सेवहु नित जो तुम्हरे अतिहित गृहस्वामिनि १
राजकुमारि कठिनकंटक मग क्यों चलिहौ मृदु पग गजगामिनि ।
दुसहगात बरषाहिम आतप कैसे सहिहौ अगनित दिन जामिनि २
हौं पुनिपितु आज्ञा प्रमान करि ऐहौं बेगि सुनहु दुतिदामिनि ।
तुलसिदास प्रभु बिरह बचन सुनि सहि न सकी मुरछित भइभामिनि

प्रभु को चलते जान जानकीजी तैयार हुईं। तिनसे रघुनाथजी कहते हैं, हे कामिनि, हमारे कहे से भवन में रहो । तुम्हारी स्वामिनी घर ही में हैं । तुम्हारी अत्यन्त हितकारी हैं। तुमको अन्यत्र जाना उचित नहीं । इससे आदर से सास के चरण की सेवा करो ॥ १ ॥ हे राजकुमारी, काँटे-कंकड़ से मार्ग कठिन है। उसमें तुम गजगामिनी कोमल चरणों से कैसे चल पाओगी? वर्षा, जाड़ा, घाम, उसमें हवा ऐसी चलती है, जो सही नहीं जाती । उसको कैसे सहोगी ? अनेक दिनरात वन में बसना पड़ेगा ॥ २ ॥ हे दामिनिद्युति, मैं पिता की आज्ञा प्रमाण करके जल्दी आऊँगा। गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु के बिछोहरूप विरह के वचन सुनकर सह न सकीं। भामिनी श्रीजानकीजी मूर्च्छित हो गईं ॥ ३ ॥

कृपानिधान सुजान प्रानपतिसंग बिपिन हैं आवौंगी ।
गृह ते कोटिगुनित सुख मारग चलत साथ सचुपावौंगी ॥ १ ॥

थाके चरनकमल चापोंगी स्रम भये बायु डुलावोंगी।
नयनचकोरन मुखमयंकछबि सादर पान करावोंगी ॥२॥
जो हठि नाथ राखिहौ मो कहँ तो सँग प्रान पठावोंगी।
तुलसिदास प्रभु बिन जीवत रहि फिर क्यों बदन दिखावोंगी॥३॥

श्रीजानकीजी कहती हैं, हे कृपा के निधान, सुजान, प्राणपति, मैं आपके साथ वन में सहज ही हो आऊँगी। और घर से कोटि गुण सुख मार्ग में पाऊँगी ॥ १ ॥ जो आप थक जायँगे, तो चरण दबाऊँगी। गरमी का श्रम होने पर हवा करूँगी। अपने नेत्रचकोरों को आपके मुखचन्द्र की छविरूप किरणें आदर से पान कराऊँगी ॥ २ ॥ जो मुझको हठ कर घर में रख जाओगे, तो आपके साथ ही प्राणों को भेज दूँगी। गोसाईंजी कहते हैं कि जानकीजी कहती हैं, विना आपके मैं गृह का सुख करूँ, आप वन के क्लेश सहें! आपकी वामांगी होकर मैं घर में राज्यसुख करूँ, यह विपरीत धर्म कर जाते मुख कैसे दिखाऊँगी ? ॥ ३ ॥

कहौ तुम बिन गृह मेरो कौन काजु।
बिपिन कोटि सुरपुर समान मोको जोपै पिय परिहस्यो राजु॥१॥
बल्कल बिमल दुकूल मनोहर कन्दमूल फल अमी नाजु।
प्रभुपदकमल बिलोकिहौं छिन छिन यहिते अधिक कहँ सुरसमाजु२
हौं रहौं भवन भोगलोलुप ह्वै पति कानन कियो मुनि को साजु।
तुलसिदास ऐसे बिरहबचन सुनि कठिन हियो बिहरेउ न आजु३

हे प्राणनाथ! तुम विना मेरा घर में कहो कौन काम है। अगर आपने राज्य परिहरे छोड़ दिया तो हमको देवलोक का समाज कोटि वन के समान है ॥ १ ॥ आपके साथ वल्कल वसन हमको

दिव्य वसन के तुल्य हैं। मनोहर कंद, मूल, फल अमृतमय अन्न के सम हैं। क्षण-क्षण में आपके पदकमल देखने पर अधिक सुख का समाज हमको और कौन है, आपके संग सम ॥ २ ॥ आप मुनि का साज कर वन को जाओ और मैं भोग की लोलुपता कर घर में रहूँ? गोसाईंजी कहते हैं कि जो प्रभु ने कहा कि तुम वन के योग्य नहीं हो, उसे सुनकर जानकीजी कहती हैं कि ऐसे भी विरह के वचन सुन हमारा हृदय विहरा फटा नहीं? बड़ा कठिन है ॥ ३ ॥

पिय निठुर बचन कहे कारन कवन।
जानत हौ सबके मन की गति मृदु चित परमकृपालु रवन ॥ १ ॥
प्राननाथ सुन्दर सुजानमनि दीनबन्धु जन आरतिदवन।
तुलसिदास प्रभुपदसरोज तजि रहिहौं कहा करौंगी भवन ॥ २ ॥

हे प्राणनाथ! आपने ये निठुर वचन क्यों कहे? सबके मन की गति को आप जानते हैं। तुम्हारा चित्त कोमल है। रवन कहे हे स्वामी! आप कृपा की खान हो ॥ १ ॥ हे प्राणनाथ, सुन्दर, सुजानों में श्रेष्ठ, आप दीनबन्धु हो। अपने जन की आर्ति दुःख के दलनेवाले हो। श्रीजानकीजी कहती हैं कि प्रभु के चरणकमल छोड़ घर में रहकर मैं क्या करूँगी? ॥ २ ॥

मैं तुम सों सति भाय कही है।
बूझत आन भाँति कत कामिनि कानन कठिन कलेस सही है ॥ १ ॥
जो हौं चलति चलौं चलिये बन सुनि सिय मन अवलम्ब लही है।
बूड़त बिरहबारिनिधि मानहुँ बचन नाह मिस बाँह गही है ॥ २ ॥
प्राननाथ के साथ चली उठि अवध सोकसरि उमँगि बही है।
तुलसी सुनी न कबहुँ काहु कहुँ तरु परिहरि परछाँहि रही है ॥ ३ ॥

श्रीरघुनाथजी कहते हैं कि हमने तुमसे यह बात सतिभाय सहज सत्य भाव से कही है। हे भामिनि! तुम उसे और भांति काहे को समझती हो? वन में सही कहे निश्चय ही कठिन क्लेश हैं॥ १॥ जो तुम्हारी चलने की इच्छा है, तो चलो यह सुन जानकीजी का मन अवलम्ब कहे सहारा पाया। मानों विरह-समुद्र में डूब रही थीं, सो नाथ ने इन वचनों के बहाने हाथ पकड़कर निकाल लिया॥ २॥ प्राणनाथ के साथ जानकीजी उठकर चलीं नहीं, मानों अयोध्याजी में शोकरूपी नदी उमँगकर बही। उसमें पुरवासी डूब गये। गोसाईंजी कहते हैं कि वृक्ष को छोड़ परछाहीं रह गई, यह किसी ने कभी कहीं सुना है? फिर जानकीजी प्रभु के विना कैसे रहें॥ ३॥

जबहिं रघुपति सँग सीय चली।
बिकल बिलोकि लोग पुरतिय कहैं अति अन्याय अली॥ १॥
कोउ कह मनिगन तजत काँच लगि करत न भूप भली।
कोऊ कहै कुबेलि केकयी दुखबिषफलनि फली॥ २॥
तुलसी कुलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि दली॥ ३॥

जब श्रीरघुनाथजी के साथ जानकीजी चलीं, तब वियोग के दुःख से विकल पुरवासी स्त्री कहती हैं—हे आली, यह अत्यन्त अनीति है॥ १॥ कोई कहती कि मणि सम श्रीराम जानकी को छोड़े देते और काँच सम सत्य वचन को ग्रहण करते हैं, यह भूपति भली बात नहीं करते। कोई कहती कि इस कुल में कुबेलिरूप कैकेयी दुःखरूप विषफलों से फली है॥ २॥ एक कहती कि देखिए जानकी वन के योग्य नहीं हैं। विधाता बड़ा बली है। गोसाईंजी कहते हैं कि इस समय वज्र की भी कठोरता दलित होकर दली फट गई॥ ३॥

ठाढ़े हैं लखन कमलकर जोरे।
उर धकधकी कहत कछु सकुचत प्रभु परिहरत सबन तृन तोरे ॥ १ ॥
कृपासिंधु अवलोकि बंधुतन प्रान कृपान बीरसम सोरे।
तात बिदा माँगिये मातु सों बनिहै बात उपाइ न और ॥ २ ॥
जायचरन गहि आयसु जाँच्यो जननि कहत बहुभाँति निहोरे।
सियरघुबरसेवा सुचि ह्वैहौ तौ जानिहौं सही सुत मोरे ॥ ३ ॥
कीजो यहै बिचार निरंतर राम समीप सुकृत नहिं थोरे।
तुलसी सुनि सिख चले चकितचित मानौ बिहँग बधिकभयभोरे॥४॥

श्रीलक्ष्मणजी करकमल जोड़े खड़े हैं। संकोच से कुछ कहते सकुचते हैं। हृदय में धकधकी उठी कि इस समय प्रभु ने सब को तृण के समान तोरे कहे छोड़ दिया है। हमको साथ लेंगे कि नहीं ॥ १ ॥ कृपासिन्धु रघुनाथजी ने बन्धु लक्ष्मण की ओर देखा कि प्राण वारन किये खड़े हैं। जैसे कोई वीर सम्मुख समर में कृपाण खड्ग खोल प्राणों का मोह छोड़कर खड़ा हो वैसे उन्हें खड़ा देख प्रभु बोले, हे तात, माता से बिदा माँग आओ। और उपाय से बात त बनेगी। बिना माता की आज्ञा हम साथ न ले जा सकेंगे ॥ २ ॥ चरण पकड़ लक्ष्मण ने श्रीसुमित्राजी से आज्ञा माँगी। तब माता बहुत भाँति निहोरा करके कहती हैं कि हे पुत्र! जो श्रीराम जानकी की सेवा निश्छल हो करोगे, तो जानूँगा कि मेरे सच्चे पुत्र हो ॥ ३ ॥ हे पुत्र, बार बार यही विचार हृदय में करना कि रघुनाथ के समीप रहना थोड़े सुकृत से नहीं होता। रामभक्ति बड़े सुकृत से होती है। प्रमाण महारामायणे—ये कल्पकोटिषु शतैर्जपहोमयागैर्ध्यानैस्समाधिभिरहो पर-

बोधनिष्ठाः । ते देवि धन्यमनुजा हृदिबाह्यशुद्धा भक्तिस्तदा भवति तेषु च रामपादे ॥ १ ॥ ऐसी शिक्षा देकर सुमित्राजी ने आज्ञा और असीस दी । सो सुन लक्ष्मणजी कैसे चकितचित्त चले, जैसे वधिक के ग़ाफ़िल पड़ने से उसके भय से पक्षी उड़कर तेज़ी से भागे ॥ ४ ॥

राग सोरठा

मोको बिधुबदन बिलोकन दीजै ।
राम लखन मेरी यही भेंट बलि जाउँ मोहिं मिलि लीजै ॥ १ ॥
सुनि पितुबचन चरन गहि रघुपति भूप अंक भरि लीन्हे ।
अजहुँ अवनि बिहरत दरार मिस सो अवसर सुधि कीन्हे ॥ २ ॥
पुनि सिर नाय गवन कीन्हो प्रभु मुरछित भयो भूप नहिं जाग्यौ ।
कर्मचोर नृप पथिक मारि मनु रामरतन लै भाग्यौ ॥ ३ ॥
तुलसी रबिकुलरबि रथ चढ़ि चले तकि दिसि दखिन सुहाई ।
लोग नलिन भयमलिन अवधसर बिरह बिषम हिम आई ॥ ४ ॥

श्रीचक्रवर्तीजी महाराज रघुनाथजी से कहते हैं कि हमको चन्द्रवदन देखने दीजे । हे रघुनन्दन, लक्ष्मणलाल, मेरी यही अन्तिम भेंट है । इससे मैं बलि जाऊँ, मुझको मिल लीजे ॥ १ ॥ पिता के वचन सुन रघुनंदन ने चरण गहे । तब चक्रवर्ती दशरथ ने प्रभु को गोद में भर लिया । उस अवसर की सुध किये आज भी भूमि दरार के बहाने फटती है । इसमें प्राणप्रिय के विछोह-दुःख की प्रबलता दिखाई है ॥ २ ॥ पैरों में माथा नवाकर रघुवर चले । महाराज मूर्च्छित हो गये, फिर न जागे । मानो कर्म सोई चोर है । वह भूप साहूकार को मारकर रघुनन्दनरूप रत्न को

ले भागा ॥ ३ ॥ गोसाईंजी कहते हैं कि सूर्यवंश-कमल के प्रकाशक सूर्य रघुनाथजी ने रथ पर चढ़ दक्षिण दिशा को गमन किया। जैसे दक्षिणायन सूर्य होने पर हिमऋतु आती है, वैसे यहाँ कठिन विरहरूप हिमऋतु आई। इससे अयोध्यारूप सरोवर में लोग कमलसम मलिन भये ॥ ४ ॥

राग बिलावल

कहौ सो बिपिन है धौं केतिक दूरि।
जहाँ गवन कियो कुँवर कोसलपति बूझत सियपियपाहिं बिसूरि॥१॥
प्राननाथ परदेस पयादेहिं चले सुख सकल तजे तृन तूरि।
करौं बयारि बिलँबिये बिटपतर झरिहौं चरनसरोरुहधूरि॥ २ ॥
तुलसिदास प्रभु प्रियाबचन सुनि नीरजनयन नीर आये पूरि।
कानन कहाँ अबहिं सुनु सुन्दरि रघुबर फिरि चितये हित भूरि॥३॥

प्रिय पति जो रघुनाथजी, तिनकी कोमलता का ख़याल कर-करके श्रीजानकीजी उनसे पूछती हैं, हे कोशलपतिकुमार! जहाँ को आपने गमन किया है, वह विपिन वन कितनी दूर है, सो हमसे कहो ॥ १ ॥ हे प्राणनाथ! जहाँ को पयादे पैदल चले हो। सब सुख तृणसम तूरि त्यागकर परदेश को आये। अब आप श्रमित हुए होंगे, इससे विटपतर वृक्ष के तले ठहर जाइए। मैं हवा कर दूँ, चरणकमलों की धूल झाड़ दूँ, जिसमें श्रम उतर जाय ॥ २ ॥ गोसाईंजी कहते हैं, प्रिया जानकीजी के वचन सुन प्रभु के नेत्रकमलों में जल भर आया। वह कहते हैं—हे सुन्दरि! अभी कानन कहाँ! ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजी ने बहुत हित-पूर्वक जानकीजी की ओर देखा ॥ ३ ॥
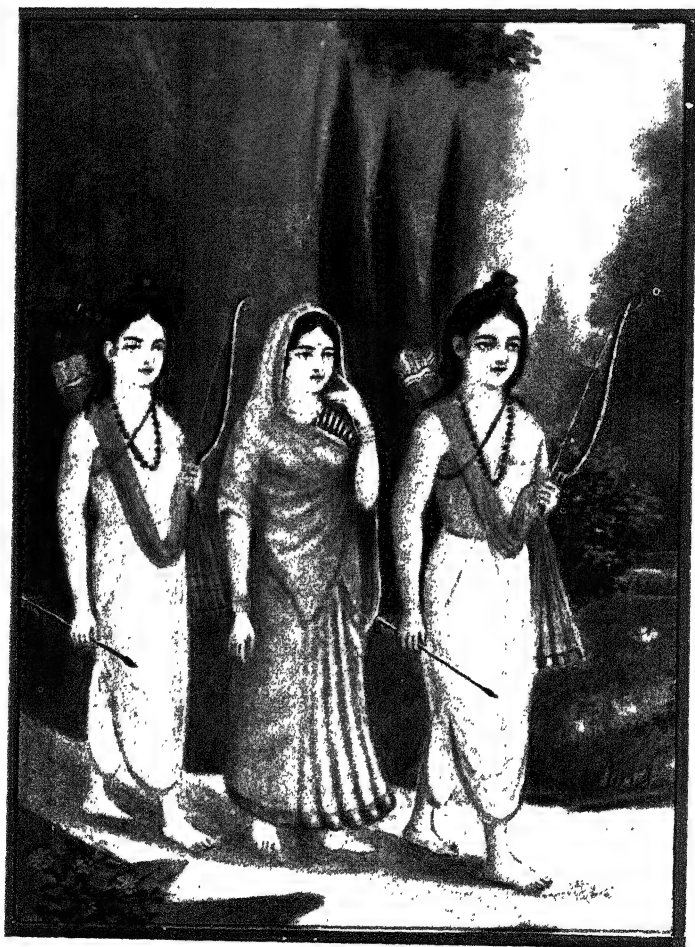
वन-गमन

फिरि फिरि राम सियातन हेरत।
तृषित जानि जल लेन लखन गये,
भुज उठाय ऊँचे चढ़ि टेरत ॥ १ ॥
अवनि कुरंग बिहँग द्रुमडारन,
रूप निहारि पलक नहिं पेरत।
मगन न डरत निरखत करकमलन,
सुभग सरासन सायक फेरत ॥ २ ॥
अवलोकत मग लोग चहूँदिसि,
मनहुँ चकोर चन्द्रमहिं घेरत।
ते जन भूरि भाग भूतल पर,
तुलसी राम पथिक पद जेरत ॥ ३ ॥

श्रीरघुनाथजी फिर-फिर बार-बार श्रीजानकीजी की ओर देखते हैं। तृषित कहे प्यासे जानकर लक्ष्मणजी जल लेने को गये। तिनको रघुनाथजी ऊँचे पर चढ़ भुजा उठाकर पुकारते हैं और जानकीजी की ओर घूम-घूमकर देखते हैं ॥ १ ॥ भूमि पर मृग, वृक्षों की डालों पर पक्षी रघुनाथजी का रूप एकटक निहारते हैं, पलक नहीं चलाते। ऐसे प्रेम में मग्न हैं कि यद्यपि करकमलों में श्रीरघुनाथजी सुन्दर धनुष-बाण फेरते हैं, तथापि उनको डरते नहीं ॥ २ ॥ जैसे चन्द्रमा को चकोर निहारते हैं, उसी भाँति मार्ग के लोग चारो ओर से प्रभु की माधुरी छवि को अवलोक रहे हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि वे जन भूमितल पर बड़भागी हैं, जो पथिकरूप श्रीरघुनाथजी के चरणों में रत कहे प्रीति किये हैं ॥३॥

नृपतिकुँवर राजत मग जात।
सुन्दर बदन सरोरुह लोचन,
मरकत कनकबरन मृदुगात ॥ १ ॥
अंसनि चाप तून कटि मुनिपट,
जटा मुकुट बिच नूतन पात।
फेरत पानिसरोजनि सायक,
चोरत चितहि सहज मुसकात ॥ २ ॥
संगनारि सुकुमारि सुभट सुठि,
राजत बिनु भूषन नवसात।
सुखमा निरखि ग्रामबनितन के,
नलिननयन बिगसत मानों प्रात ॥ ३ ॥
अंग अंग अगनित अनंगछबि,
उपमा कहत सुकबि सकुचात।
सिय समेत निज तुलसिदास चित,
बसत किसोर पथिक दोऊ भ्रात ॥ ४ ॥

मगवासी कहते हैं। राजकुमार मार्ग में जाते विराजमान हैं। सुन्दर वदन, कमलसम नेत्र, मरकत-वर्ण श्याम रघुनाथजी, कनक-वर्ण गौर लक्ष्मणजी। उनका कोमल गात शरीर है ॥ १ ॥ अंस कंधे पर धनुष धरे, कटि में तरकस और मुनियों के वस्त्र धारण किये हैं। शीशों पर जटा के मुकुट बनाये हैं। तिनमें नवीन पल्लवफूल धारण किये हैं। करकमलों से धनुष फेरते और सहज ही में मंद मुसकाते हैं, तो देखनेवाले का चित्त चुराए लेते हैं ॥ २ ॥

नव सात सोलह श्रृंगार, बारह आभूषण विना संग में अत्यन्त सुन्दरी सुकुमारी नारी विराजमान है। तिनकी शोभा देख ग्राम की स्त्रियों के नेत्र प्रभात के नीलकमलसम विगसत प्रफुल्लित होते हैं। यहाँ शोभा-सूर्य का दरश होना प्रात और नेत्र नीलकमल जानो ॥ ३ ॥ एक-एक अंग पर अनेकों काम की छवि को उपमा देते में सुकवि संकोच को प्राप्त होते हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि श्रीजानकी सहित किशोर श्रीरघुनाथजी और लक्ष्मणजी दोनो भ्राता पथिकरूप से हमारे चित्त में नित्य बसते हैं ॥ ४ ॥

तू देखु देखु री पथिक परम सुन्दर दोऊ।
मरकत कलधौतबरन काम कोटि कांतिहरन,
चरनकमल कोमल अति राजकुँवर कोऊ ॥ १ ॥
कर धनु सर कटि निषंग मुनिपट सोहै सुभग अंग,
संग चन्द्रबदनि बधू सुन्दरि सुठि सोऊ।
तापस बर बेष किये सोभा सब लूटि लिये,
चित के चोर बय किसोर लोचन भरि जोऊ ॥ २ ॥
दिनकरकुलमनि निहारि प्रेममगन ग्रामनारि,
परस्पर कहैं सखि अनुराग ताग पोऊ।
तुलसी यह ध्यान सुधन जानि मानि लाभ सघन,
कृपन ज्यों सनेह सों हिय सुगेह गोऊ ॥ ३ ॥

ग्रामवधू कहती हैं कि हे सखी! तू देख देख री, दोनो पथिक परम सुन्दर हैं। एक मरकत-वर्ण श्याम, एक कलधौत अर्थात् सुवर्णवर्ण गौर है। दोनो कोटियों कामदेव की कांति हरनेवाले हैं। अत्यन्त कोमल कमल-सम इनके चरण हैं। ये कोई राज-

कुमार हैं ॥ १ ॥ काहे से राजकुमार हैं ? कर में धनुषबाण लिये, कटि में तरकस बाँधे, सुन्दर मुनियों के वसन अंग में धारण किये, साथ चन्द्रवदनी वधू लिये हैं। वह भी परम सुन्दरी है। तापस का वेष किये सब जग की शोभा लूटकर इन्होंने आप ले ली है। किशोर अवस्था है, चित्त के चोर हैं। इनको नेत्र भर देख लो ॥ २ ॥ दिनकर सूर्य के कुल के शिरोमणि रघुनाथजी को देख ग्राम की वधू प्रेम में मग्न हो आपस में कहती हैं कि अनुरागरूपी ताग में इन मणियों को पोह लो। गोसाईंजी कहते हैं कि यह वन के साजसहित श्रीरघुनाथजी का ध्यान जो है, उसको सुन्दर धन जानकर घन कहे समूह लाभ मानकर हृदयरूप गृह में गोऊ कहे छिपा रख। जैसे कृपण धन को स्नेह से रखता है, वैसे तुम इनको रक्खो ॥ ३ ॥

कुँवर साँवरो री सजनी सुन्दर सब अंग।
रोम रोम छबि निहारि आलि वारि फेरि डारि,
कोटि भानु सुवन सरद सोम कोटिन अनंग ॥ १ ॥
बामअंग लसत चाप मौलि मंजु जटकलाप,
सुचि सर कर मुनिपट कटितट कसे निषंग।
आयत उर बाहु नैन मुखसुषमा को लहै न,
उपमा अवलोकि लोक गिरामति गति भंग ॥ २ ॥
यों कहि भइ मगन बाल बिथकी सुनि जुवतिजाल,
चितवत चले जात संग मधुप मृग बिहंग।
बरनौं किमि तिन कि दसहि निगम अगम प्रेमरसहि,
तुलसी मन बसन रँगे रुचिर रूप रंग ॥ ३ ॥

हे सजनी! साँवला कुँवर सब अंग से सुन्दर है। इसके अंग में रोम-रोम की छवि निहारकर करोड़ों भानुसुवन कहे अश्विनी-कुमार, शरद का पूर्ण चन्द्रमा, कामदेव इत्यादि को फिर-फिर वारन कहे निछावर कर डालिये ॥ १ ॥ वाम कंधे पर धनुष है! मौलि शीश पर मंजु सुन्दर पवित्र कलाप जटा हैं। हाथों में बाण लिये, मुनियों के पट धारण किये। कटि में तरकस है। छाती चौड़ी, भुजा लम्बी व पुष्ट, बड़े-बड़े नेत्र। मुख की शोभा का अन्त कोई नहीं पाता। लोक में उपमा ढूँढते-ढूँढते शारदा की मति की गति भंग कहे नष्ट-सी हो गई ॥ २ ॥ यों कहकर वह बाल कहे स्त्री मग्न हो गई। सुननेवाली जाल कहे समूह युवती जन प्रभु की छवि निहार थकित हो एकटक रहीं। मनुष्य की कौन कहे, प्रेम के वश पशु जीव मृग और पक्षी भृंग आदि देखते साथ में चले जाते हैं। उनकी दशा कैसे वर्णन की जाय। प्रेम का रस वेद को भी अगम है। गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु के सुन्दर रूप के रंग में उनके मन वसन-सम रँगे हैं ॥ ३ ॥

राग कल्याण

देखु कोऊ परम सुन्दर सखि बटोही।
चलत महि मृदु चरन अरुन वारिजनयन,
भूपसुत रूपनिधि निरखिहौं मोही ॥ १ ॥
अमल मरकत स्याम सील सुषमाधाम,
गौरतन सुभग सोभा सुमुखि जोही।
जुगल बिच नारि सुकुमारि सुठि सुन्दरी,
इन्दिरा इन्दु हरि मध्य जनु सोही ॥ २ ॥

करन बर धनु तीर रुचिर कटि तूनीर,
धीर सुर सुखद मर्दन अवनिद्रोही ।
अंबुजायत नैन बदन छबि बहु मयन,
चारु चितवन चतुर लेत चितय पोही ॥ ३ ॥
बचन प्रिया मुनि स्रवन राम करुनाभवन,
चितै सब अधिक हित सहित कछु ओही ।
दास तुलसी नेह बिबस बिसरी देह जान,
नहिं आपु तेहि काल धौं कोही ॥ ४ ॥

हे सखी देख, कोई परम सुन्दर बटोही जाते हैं। कमल-सम कोमल ललित चरणों से मही पर पैदल चलते हैं। कमल-सम नेत्र हैं। रूप के निधि भूप के कुमारों को देख मैं मोह गई ॥ १ ॥ एक निर्मल मरकतवर्ण श्याम, शील-शोभा के सदन हैं; दूसरे गौरतनु सुन्दर शोभामय हैं। दोनों कुमारों को हे सुमुखि, देख। दोनों कुमारों के बीच एक सुन्दर सुकुमार अत्यन्त मनोहर स्त्री कैसी राजती है, मानों भगवान् और चन्द्रमा के बीच लक्ष्मी शोभित हैं ॥ २ ॥ हाथों में सुन्दर धनुषबाण लिये, कटि में तरकस धारण किये हैं। रण में धीर देवतों के सुख देनेवाले, पृथ्वी के द्रोही राक्षसों के नाशकर्ता हैं। तिनके कमल-सम बड़े-बड़े नेत्र हैं। मुख की शोभा पर अनेकों काम वार दीजिए। ऐसे चतुर हैं कि सुन्दर चितवन से अपने चित्त में सबके चित्त को पोहे लेते हैं ॥ ३ ॥ उन स्त्रियों के प्रिय वचन कानों से सुन करुणा के धाम रघुनाथ ने सबकी ओर देखा। परन्तु वह जो कहनेवाली थी, उसकी ओर अधिक हितसहित हेरा। गोसाईंजी कहते हैं,

स्त्री नेह के वश देह की सुध भूल गईं। उस समय वे आप अपने को नहीं जानतीं कि मैं कौन हूँ ॥ ४ ॥

राग केदार

सखि नीके कै निरखि कोऊ सुठि सुन्दर बटोही।
मधुर मूरति मनमोहन जोहन जोग,
बदन सोभासदन देखि हौं मोही ॥ १ ॥
साँवरे गोरे किसोर सुर मुनि चितचोर,
उभय अन्तर एक ललना सोही।
मनहुँ बारिद बिधु बीच ललित अति,
राजत तड़ित निज सहज बिछोही ॥ २ ॥
उर धीरज धरि जन्म सफल करि,
सुनहिं सुमुखि जनि बिकल होही।
को जानै कवने सुकृति लह्यो है लोयन लाहु,
ताहि ते बारहि बार कहति हौं तोही ॥ ३ ॥
सखिहि सुसिख दई प्रेममगन भई,
सुरति बिसरि गई आपनी ओही।
तुलसी रही ठाढ़ि पाहन ऐसी गढ़ि,
कोटि न जाने कहाँ ते आई कौन की कोही ॥ ४ ॥

हे सखी, अच्छी तरह से देख तो, कोई परम सुन्दर बटोही हैं, जो मधुर मूर्ति मन को मोहनेवाले, ज़ोहन कहे देखने के योग्य हैं। जिनकी शोभा और सुन्दर वदन देख मैं मोह गई ॥ १ ॥ देवता मुनियों के चित्तचोर, श्याम-गौर, किशोर। दोनो के

बीच एक परम सुन्दरी नारि शोभित है। मानो मेघ और चन्द्रमा के बीच सहज चंचलता त्यागकर सुन्दर दामिनी शोभित है ॥ २ ॥ हृदय में धीरज धरके इनको देखकर जन्म सफल कर। मैं जो कहती हूँ सो सुन विकल न हो। हे सुमुखि, कौन जाने कौन सुकृत से नेत्रों का लाभ पाया है। इसी से मैं बार-बार कहती हूँ ॥ ३ ॥ सखियों को सिखावन देकर प्रेम में मग्न हो अपनी देह की सुध बिसर गई। गोसाईंजी कहते हैं कि वह खड़ी रह गई, मानों पत्थल की सी पुतली गढ़ी खड़ी है। अपने को नहीं जानती कि कहाँ से आई और कौन की है ॥ ४ ॥

माई मन के मोहन जोहन जोग जोही।
थोरिही बयस गोरे साँवरे सलोने लोने,
लोयन ललित बिधुबदन बटोही ॥ १ ॥
सिरन जटा मुकुट मंजुल सुमनजुत,
तैसिये लसत नव पल्लव खोही।
किये मुनिबेष बीर धरे धनु तून तीर,
सोहैं मन कोहैं लखि परै न मोही ॥ २ ॥
सोभा को साँचो सँवारि रूप जातरूप ढारि,
नारि बिरची बिरंचि संग सो सोही।
राजत रुचिर तन सुन्दर स्रम के कन,
चाहे चकचौंधी लागै का कहौं तोही ॥ ३ ॥
सनेह सिथिल सुनि बचन सकल सिया,
चितई अधिक हित सहित ओही।

तुलसी मानहुँ प्रभु कृपा की मूरति फिरि
हेरिकै हरषि हिय लियो है पोही ॥ ४ ॥

हे माई, मन के मोहन देखने योग्य हैं। तिनको मैंने देखा है। थोड़ी अवस्था, एक का गोरा गात, एक का श्याम गात। लावण्य के भरे सुन्दर नेत्र, सुन्दर मुख ॥ १ ॥ शिर पर जटा के मुकुट सुन्दर फूलों सहित शोभित हैं। वैसी सुन्दर नवीन पत्तों की छत्राकार खोही घाम रोकने को शिर पर लगाये हैं। हैं तो कोई वीर, परन्तु मुनियों का सा वेष बनाये हैं। धनुष, बाण, तरकस शोभित हैं। मुझे पहिचान नहीं पड़ते कि कौन हैं। मन को सोहाते हैं ॥ २ ॥ ब्रह्मा ने मानों शोभा का साँचा बनाकर रूप को सोना उसमें ढालकर नारी बनाई है। वह इनके साथ में शोभित है। सुन्दर तनु में श्रम के पसीने के कण शोभित हैं। तिनको चाहे कहे देखे से नेत्रों में चकाचौंध लगती है। तिनकी गति अद्भुत है। उसे मैं तुझसे कैसे वर्णन कर कहूँ! नहीं कहते बनता॥ ३ ॥ ये सनेह से शिथिल बातें सब सुनकर जानकीजी ने उसकी ओर अधिक हित सहित देखा। गोसाईंजी कहते हैं कि कृपा की मूर्ति प्रभु ने हर्षित हो घूमकर देखकर उसके हृदय को अपनी चितवन (के डोरे) में पोह लिया ॥ ४ ॥

सखि सरद बिमल बिधुबदन बधूटी।
ऐसी ललना सलोनी भई न है न होनी,
रतिहि रची बिधि जो छोलत छबि छूटी ॥ १ ॥
साँवरे गोरे पथिक बीच मोहति अधिक,
तिहुँन त्रिभुवन शोभा मनहुँ लूटी।

तुलसी निरखि सिय प्रेमबस कहैं तिय,
लोचन-सिसुन देहु अमिय घूटी ॥ २ ॥

हे सखी, निर्मल शरद् के चन्द्रमासम इस वधू का मुख है। ऐसी सलोनी ललना न हुई है, न कहीं है, न होने की है। ब्रह्मा ने जब इसको सुधारा, उस समय जो छबि छूट पड़ी, उससे रति को रचा ॥ १ ॥ साँवले गोरे पथिकों के बीच ललना अधिक शोभित होती है। तीनों ने मानों त्रैलोक्य की शोभा लूट लेकर आप धारण की है। गोसाईंजी कहते हैं कि जानकीजी को देख ग्राम की वधू आपस में कहती हैं कि हे सखी, अपने नेत्र-बालकों को पथिकों की शोभारूप औषध अमृतमयी की घूटी देओ, छवि नैत्रों से पान करो ॥ २ ॥

मोहैं साँवरे पथिक पीछे ललना लोनी।
दामिनिबरन गोरी लखि सखि तृन तोरी,
बीती है बय किसोरी जोबन होनी ॥ १ ॥
नीके कै निकाई देखि जनम सफल लेखि,
हमसी भूरि भागिनी नभ न छोनी।
तुलसी स्वामी स्वामिनि जोहे मोही है भामिनि,
सोभासुधा पिये करि अँखियाँ दोनी ॥ २ ॥

साँवले पथिक के पीछे ललना अत्यन्त सुन्दरी है। दामिनि-वर्ण गौर तनु को देख मग की सखी तृण तोरती हैं कि नज़र न लगे और कहती हैं कि किशोरी अवस्था बीत गई, अब यौवन वय होनहार है ॥ १ ॥ अच्छी तरह से निकाई देखकर अपना जन्म सफल माना कि हमसे बड़ी भाग्यवाली स्त्री न स्वर्ग में है, न भूमि पर है। गोसाईंजी कहते हैं, स्वामी श्रीरघुनन्दन, स्वामिनी

श्रीजनकनन्दिनी, तिनको जोहे कहे देखे से मोह गईं। शोभारूप अमृत को नेत्रों का दोना बना उसमें भर भरकर पान करती हैं॥२॥

पथिक गोरे साँवरे सुठि लोने ॥
संग सु तिय जाके तन ते लही है दुतिस्वर्णसरोरुह सोने॥ १ ॥
वय किशोर सरिपार मनोहर बैस सिरोमनि होने।
सोभा सुधा आलि अँचवहु करि नैन मंजु मृदु दोने॥ २ ॥
हेरत हृदय हरत नहिं फेरत चारु बिलोचन कोने।
तुलसी प्रभु किधौं प्रभु को प्रेम पढ़ै प्रगट कपटबिनु टोने॥ ३ ॥

साँवले गोरे पथिक अत्यन्त सुन्दर हैं। तिनके साथ जो युवती है सो परमसुन्दरी है, जिसके तन से सुवर्ण और कनककमल ने द्युति पाई है ॥ १ ॥ किशोर अवस्था-रूप नदी से पार हो अब बैसशिरोमणि कहे यौवनअवस्था होनेवाली है। आली, नेत्रों का सुन्दर कोमल दोना बनाकर इनकी छविरूप अमृत को पान करो॥ २॥ सुन्दर नेत्रों की कोर से हेर कर मन को हर लेते हैं; फिर फेरते नहीं। जिसे अपनाते हैं, उसको त्यागते नहीं। गोसाईंजी कहते कि प्रभु या प्रभु का प्रेम, सोई बिना कपट का प्रकट टोना पड़ता है। टोना छिपाकर छल से होता है। प्रभु सम्मुख मन हरते हैं, इससे प्रकट टोना कहा ॥ ३ ॥

मनोहरता के मानो ऐन।
स्यामल गौर किसोर पथिक दोउ सुमुखि निरखु भरि नैन॥१॥
बीच बधू बिधुबदनि बिराजत उपमा कहँ कोउ है न।
मानहुँ रति ऋतुनाथ सहित मुनिवेष बनायो है मैन॥२॥
किधौं सिंगार सुषमा सुप्रेम मिलि चले जग चित वित लैन।

अद्भुत त्रयी किधौं पठई बिधि मग लोगन सुख दैन ॥३॥
सुनि सुचि सरल सनेह सुहावन ग्रामबधुन के बैन ।
तुलसी प्रभु तरु तर बिलंब किये प्रेमकनौड़े कैन ॥४॥

श्याम गौर किशोर पथिक मानों मनोरहता के मंदिर हैं। हे सखी, तिनको नैन भर देखौ ॥ १ ॥ तिनके बीच में चन्द्रवदनी वधू विराजमान है। उसकी उपमा के योग्य कोई कहीं नहीं है। मानों रति और वसंत सहित मदन ने मुनि का वेष बनाया है। रति जानकीजी, वसंत लक्ष्मणजी, मदन रघुनाथजी ॥ २ ॥ अथवा जगत् के चित्तरूपी वित्त द्रव्य के लेने को शृंगार, शोभा और प्रेम मिलकर चले हैं। शृंगार रघुनाथ, शोभा जानकी, प्रेम लक्ष्मण। अथवा जगत् में मग के लोगों को सुख देने के लिये अद्भुत त्रयी कहे वशीकरण, आकर्षण, मोहनी मूर्तिमान् एकत्र कर विधाता ने भेजी है, अथवा वेदत्रयी मूर्तिमान् हैं। ग्रामवधुओं के पवित्र सरल सुन्दर सनेहमय वचन सुन प्रभु वृक्ष के तले विलम रहे। गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु प्रेम के किसके कनौड़े वश नहीं हैं? ग्रामवधुओं का प्रेम देख थम गये ॥ ३ । ४ ॥

बय किसोर गोरे साँवरे धनुबान धरे हैं ।
सब अंग सहज सुहावने राजिव जीते
नैनन बदनन बिधु निदरे हैं ॥ १ ॥
तून सुमुनिपट कटि कसे जटा मुकुट करे हैं ।
मंजु मधुर मृदु मूरति पनहिंउ नहिं
पाँयन कै कैसे धौं मग बिचरे हैं ॥ २ ॥
उभय बीच बनिता बनी लखि मोहिं परे हैं ।

मदन सप्रिय सप्रिया सखा मुनि बेष
बनाय लिये मन जात हरे हैं ॥ ३ ॥
सुनि जहँ तहँ देखन चले अनुराग भरे हैं।
राम पथिक छबि निरखि कै तुलसी
मग लोगन धाम काम बिसरे हैं ॥ ४ ॥

साँवले, गोरे कुमार, किशोर अवस्था, धनुष-बाण धारण किये हैं। सबसे सुहावने हैं नेत्र छवि से कमलों को जीते हैं, और मुख की छवि से चन्द्रमा का निरादर करते हैं ॥ १ ॥ मुनियों के वसन धारण करके कटि में तरकस कसे, शिर पर जटा के मुकुट बनाये, सुन्दर मनोहर कोमल मूर्त्ति हैं। पर पाँवों में पनहीं नहीं। पाँवों से कठोर मग में कैसे विचरते हैं ॥ २ ॥ दोनों कुमारों के बीच वनिता अत्यन्त सुन्दरी है। सो मुझे ऐसा लख पड़ता है कि प्रिया जो रति, और प्रिया सखा वसन्त, तिन समेत मदन मुनि का वेष बनाये जग के चित्त हरे लेता है ॥ ३ ॥ यह बात सुन अनुराग से भरे मगवासी जहाँ-तहाँ से प्रभु के देखने को चले । गोसाईंजी कहते हैं कि पथिकरूप रघुनन्दन की छवि देख मगवासी धाम का काम भूल गये ॥ ४ ॥

कैसे पितु मातु कैसे ते प्रिया परिजन हैं।
जगजलधि ललाम लोने लोने गोरे श्याम
जिन पठये हैं ऐसे बालकन बन हैं ॥ १ ॥
रूप के न पारावार भूप के कुमार मुनि-
बेष देखत लोनाई लघु लागनि मदन हैं।

सुषमा की मूरति सी साथ निसिनाथमुखी,
नखसिख सब अंग सोभा के सदन हैं ॥ २ ॥
पंकजकरनि चाप तीर तरकस कटि,
सरदसरोरुह ते सुन्दर चरन हैं ।
सीता राम लखन निहारि ग्रामनारि कहैं,
हेरि हेरि हेरि हेलि हिय के हरन हैं ॥ ३ ॥
प्रान हूँ के प्रान से सो जीवन के जीवन से,
प्रेमहू के प्रेम रंक कृपन के धन हैं ।
तुलसी के लोचनचकोरन के चन्द्रमा से,
आछे मनमोर चित्तचातक के घन हैं ॥ ४ ॥

हे सखी, इनके माता, पिता, परिवार, प्रियलोग कैसे हैं ? जिन्होंने जगत्‌रूपी समुद्र के सुन्दर रत्न श्याम गौर ऐसे कुमारों को वन में भेजा ॥ १ ॥ भूपकुमारों के रूप का पारावार कहे सीमा नहीं है कि केतनी शोभा है । मुनियों का वेष किये से ऐसी शोभा देख पड़ती है कि इनके आगे मदन लघु लगता है । शोभा सी मूर्तिमान् साथ में चन्द्रमुखी युवती है । उसके सब अंग नखते शिखा तक मानों शोभा के मन्दिर हैं ॥ २ ॥ करकमलों में धनुष-बाण लिये हैं । कटि में तरकस बाँधे हैं । शरदऋतु के नवीन कमल सम सुन्दर चरण हैं । श्रीजानकीलक्ष्मणसहित रघुनाथजी को देख ग्रामवधू कहती हैं—हे सहेली, हृदयके हरनेवाले इनको देखदेख तीन रूप हैं, इससे तीन बार कहा या प्रेमवश समझो ॥ ३ ॥ कैसे हैं, प्राणों के प्राण से सुन्दर, जीवों के जीवन से, प्रेम के भी प्रेम से कैसे प्यारे हैं, जैसे दरिद्र और कृपण को धन । गोसाईंजी कहते

हैं, मेरे नेत्र चकोरों को चन्द्रमा से, मनरूप मोर और चित्तरूप चातक को अाछे कहे सजल नवीन सुन्दर मेघ से हैं ॥ ४ ॥

राग भैरव ॥

सखि द्वै पथिक गोरे साँवरे सुभग हैं ।
सुतिय सलोनी संग सोहत सुमग हैं ॥ १ ॥
सोभासिन्धु संभव से नीके नीके नग हैं ।
मातुपितु भागबस गये परि फंग हैं ॥ २ ॥
पाँयन पनहेउ न मृदु पंकज से पग हैं ।
रूपकी मोहनी मेलि मोहे अग जग हैं ॥ ३ ॥
मुनिवेष धरे धनु सायक सुलग हैं ।
तुलसी हिये लसत लोने लोने डग हैं ॥ ४ ॥

गोरे साँवले दोनों पथिक सुन्दर हैं। हे सखी, तिनको देख सुन्दरी-शिरोमणि युवती साथ लिये मार्ग में शोभित हैं ॥ १ ॥ शोभारूप समुद्र से उत्पन्न नग कहे रत्न हैं। माता-पिता के भाग्यवश फंद में पड़ गये, राज्य छोड़ वनवास पाया ॥ २ ॥ कोमल कमलसम पैरों से विना पनहीं चलते हैं। अपने रूप की मोहनी डालकर स्थावर जंगम चराचर को मोहते हैं, ऐसे रूपवान् हैं ॥ ३ ॥ मुनि का वेष किये सुलग कहे सुन्दर लगते हैं। लोने कहे सुन्दर डग मंद चाल से भूमि में पैर धरते हैं। सो गोसाईंजी कहते हैं कि हमारे हृदय में शोभित हैं ॥ ४ ॥

पथिक पयादे जात पंकज से पाँय हैं ।
मारग कठिन कुशकंटकनिकाय हैं ॥ १ ॥

सखी भूखे प्यासे है चलत चित चाय हैं ।
इनके सुकृत सुर शंकर सहाय हैं ॥ २ ॥
रूप शोभा प्रेम कैसे कमनीय काय हैं ।
मुनिवेष किये कीधौं ब्रह्म जीव माय हैं ॥ ३ ॥
वीर बरियार धीर धनुधरराय हैं ।
दशचारि पुर पाल आली उरुगाय हैं ॥ ४ ॥
मग लोग देखत करत हाय हाय हैं ।
वन इनको तो बाम बिधि के बनाय हैं ॥ ५ ॥
धन्य ते जे मीन से अवधि अम्बु आय हैं ।
तुलसी प्रभु सो जिनहू के भले भाय हैं ॥ ६ ॥

ढेरों कुश की डाभ (जड़ें) और काँटे पड़े रहने से मार्ग कठिन है। उसमें कोमल कमलसम चरणों से पथिक पैदल ही जाते हैं ॥ १ ॥ हे सखी, भूखे प्यासे रहने पर भी चित्त के चाव आनन्द से चले जाते हैं। काहे से इनके सुकृत से देवतों सहित महादेव-जी इनके सदा सहाय हैं ॥ २ ॥ रूप-देहधारी रघुनाथजी, शोभा-देहधारी जानकीजी, प्रेम-देहधारी लक्ष्मणजी कमनीय कहे सुन्दर हैं। या मुनिवेष धारण किये परब्रह्म, नित्य मुक्तजीव और आह्लादिनी माया है ॥ ३ ॥ बरियार बलिष्ठ, धनुष धारण किये, धीर वीर कोई राजा हैं। हे आली, चौदहों भुवन की रक्षा करने वाले उरुगाय ईश्वर हैं ॥ ४ ॥ मारग के लोग इनको देख हाय हायकर कहते हैं कि जो इनको वनवास हुआ, तो विधाता इनके बिलकुल वाम कहे प्रतिकूल हैं ॥ ५ ॥ इनका रूप, सोई अम्बु कहे जल है। उसमें जो अवधि कहे निश्चय कर मीन से आये हैं, जिन्होंने मन को मीनसम प्रभु के रूप-जल में मग्न किया है,

वे धन्य हैं। गोसाईंजी कहते हैं, जिनके प्रभु में भले भाव हैं, वे भी धन्य हैं ॥ ६ ॥

राग आसावरी

सजनी हैं कोउ राजकुमार।

पंथ चलत मृदु पद कमलन दोउ सीलरूपआगार ॥ १ ॥

आगे राजिवनयन स्याम तन सोभा अमित अपार।

डारौं वारि अंग अंगन पर कोटि कोटि सतमार ॥ २ ॥

पाछे गौर किसोर मनोहर लोचन बदन उदार।

कटि तूनीर कसे कर सर धनु चले हरन छितिभार ॥ ३ ॥

जुगल बीच सुकुमारि नारि इक राजत बिनहिं सिंगार।

इन्द्रनील हाटक मुक्तामनि जनु पहिरे महिहार ॥ ४ ॥

अवलोकहु भरिनयन बिकल जनि होहु करहु सुबिचार।

पुनि कहँ यह सोभा कहँ लोचन देह गेह संसार ॥ ५ ॥

सुनि प्रिय बचन चितै हित कै रघुनाथ कृपासुखसार।

तुलसिदास प्रभु हरे सबके मनतन की रहि न सँभार ॥ ६ ॥

हे सजनी, ये कोई सुन्दर राजकुमार हैं। कमल-सम कोमल चरणों से रूप, शील आदि गुणों के धाम दोनों पंथ में चले जाते हैं ॥ १ ॥ कमलसम नेत्र। श्यामगात में अपार शोभा। आगे चलते हैं। तिनके एक एक अंगपर सौ सौ करोड़ कामदेव वार डालिये ॥ २ ॥ जो गौर किशोर मन को हरनेवाले पीछे हैं, तिनके नेत्र सुन्दर हैं, उदार कहे प्रसन्न मुख है। कटि में तरकस कसे, हाथों में धनुष बाण लिये हैं। ये दोनों भूमि का भार उतारने को चले हैं ॥ ३ ॥ दोनों राजकुमारों के बीच एक सुकुमारी नारी

श्रृंगार रहित विराजमान है। तीनों स्वरूप कैसे शोभित होते हैं ? श्याम-रूप इंद्रनील मणि हैं, गौररूप मुक्तामणि हैं, बीच में नारी हाटक कहे सोने के सम है। सो मानो पृथ्वी मगरूप तागे में गुहा हार पहने है। मोहनमाला के समान यह जगत्-मोहनहार है ॥ ४ ॥ हे सखी, नेत्र भर भर कर इन राजकुमारों की अपूर्व शोभा देखो, और विकल न हो। मन में ऐसा विचार करो कि हम लघुभागी तुच्छ जीवों के नेत्रों की यह शोभा अवलोकना ! फिर कहाँ ऐसा भाग्य है, जो ऐसा अवसर फिर मिले। देह, घर तो सब संसार ही में है ॥ ५ ॥ उस सखी के प्रिय वचन सुन कृपा और सुख का सारांश रघुनाथजी ने हितसहित उसकी ओर ताका। गोसाईंजी कहते हैं कि उस समय रघुनाथजी ने सबके मन हर लिये। इससे ग्राम वधुओं को अपने तन का सँभाल न रहा ॥६॥

देखुरी सखि पथिक नखसिख नीके हैं।
नीले पीले कमल से कोमल कलेवरन,
तापसहू बेष किये काम कोटि फीके हैं ॥ १ ॥
सुकृत सनेह सील सुखमा सुख सकेलि,
बिरचे बिरंचि कीधौं अमियअमीके हैं।
रूपकी सी दामिनी सी भामिनी सोहत संग,
उमहु रमा ते आछे अंग अंग तीके हैं ॥ २ ॥
बनपट कसे कटि तून तीर धनु धरे,
धीर बीर पालक कृपाल सब ही के हैं।
पानहिउँ न चरन सरोजन चलत मग,
कानन पठाये पितु मातु कैसे हीके हैं ॥ ३ ॥

आली अवलोकि लेहु नैनन को फल येहु,
लाभ के सुलाभ सुख जीवन से जी के हैं ।
धन्य नर नारि जे निहारि बिन गाहक हू,
आपने आपने मन मोल बिनु बीके हैं ॥ ४ ॥
त्रिबुध बरषि फूल हरषि हिये कहत,
ग्रामलोग मगन सनेह सियपी के हैं ।
जोगीजन अगम दरश पायो पाँवरन,
मुदित बचन सुनि सुरप शची के हैं ॥ ५ ॥
प्रीति के सु बालक से लालत सुजन मुनि,
मग चारु चरित लखन राम सी के हैं ।
जोग न बिराग जाग तप न तीरथ त्याग,
येही अनुराग भाग खुले तुलसी के हैं ॥ ६ ॥

हे सखी री, देख तो, पथिक नख से शिखा तक नीके हैं । नील कमलसम श्याम तनु । पीतकमलसम गौरतनु । कोमल । तापस का वेष किये पर भी इनके आगे कोटियों काम फीके लगते हैं ॥ १ ॥ सुकृत, सनेह, शोभा और सुख इन सबको समेटकर विधाता ने इन राजकुमारों को रचा है । अथवा अमृत के भी अमृत हैं । दामिनी या शोभारूप भामिनी साथ में शोभित है । उस तिया के अंग अंग में ऐसी शोभा है कि उमा व रमा से अच्छे उसके अंग हैं ॥२॥ बनपट बल्कलादि पहने, कटि में तरकस कसे, करमें धनुष बाण लिये, धीर वीर पालक कहे धीरधर, वीर पालक, सभी के ऊपर कृपालु स्वभाव हैं । पाँवों में बिना पनहीं कमलसम कोमल पैरों से कठोर मग में चलते हैं । इनके माता-पिता कैसे कठोर

हृदय के हैं, जो इनको वन को भेजा है॥ ३ ॥ हे आली, इनको देख नेत्र-लाभरूपी फल लेओ । कैसे ये हैं, लाभ के भी लाभ हैं, सुंदर और जीवोंके सुंदर सुखरूप जीवन हैं। वे नर नारी धन्य हैं, जिन्होंने इनको नेत्र भर देखा। बिना गाहक भी अर्थात् राज-कुमार कुछ छल कर किसीका मन लेने की इच्छा नहीं किये हैं, पर अपने अपने मन से बिना मोल ही अनिच्छित सब इनके हाथ बिक गये, अपना मन इनमें लगा दिया ॥ ४ ॥ सिया-पिया के सनेह में ग्राम के लोग मग्न हैं, प्रेम में डूबे हैं। तिनको देख हर्षित हो, फूल बरसाकर आकाश से देवता कहते हैं कि जिन रघुनाथजी के दर्शन योगीजन को अगम हैं। उन रघुनन्दन ने भक्त वश हो पाँवरन कहे नीचों को दर्शन दिये। यह वचन सुन सुरप इंद्र शची इंद्राणी मुदित भये कि प्रभु हमारे कार्य हेतु जाते हैं ॥ ५ ॥ श्रीरघुनन्दन, लक्ष्मण, जानकीजी के मार्ग के सुन्दर चरित प्रीतिरूप माता के बालक से हैं। तिन को सुजन मुनिजन पिता के समान लालत कहे दुलराकर गाते, सुनते, देखते हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि योग, वैराग, तप, त्याग, यज्ञ, तीरथादि सुकृत बिना केवल प्रभु के चरितों में अनुराग से ही हमारे भी भाग्य खुले ॥ ६ ॥

रीति चलिबे की चाहि प्रीति पहिचानि कै ।
आपनी आपनी कहैं प्रेमपरबश अहैं,
मंजु मृदु बचन सनेहसुधा सानि कै ॥ १ ॥
साँवरे कुँवर के बराय के चरन चिह्न,
बधू पग धरत कहा धौं जिय जानि कै ।
जुगल कमलपद अंक जोगवत जात,
गोरे गात कुँवर महिमा महा मानिकै ॥ २ ॥

उनकी कहनि नीकी रहनि लखन सी की,
तिनकी गहनि से पथिक उर आनि कै।
लोचन सजल तन पुलक मगन मन,
होत भूरिभागी जस तुलसी बखानि कै ॥ ३ ॥

श्रीराम, ज्ञानकी, लक्ष्मणजी की चलने की रीति को चाहि देख कर और प्रीति से पहचानकर जो ग्राम के नर नारी प्रभु के प्रेम से विवश हैं, वे स्नेहरूपी अमृत में सानकर सुन्दर कोमल वचन अपनी-अपनी उक्ति से कहते हैं॥ १ ॥ न जाने क्या जानकर साँवरे कुँवर के पग का चिह्न बचाकर बधू भूमि में पग धरती है। साँवले कुँवर और राजकुमारों के दोनों पदकमलों की रेखाओं की महा महिमा मानकर गोरे गात के जो कुँवर हैं, सो जोगवत कहे बचाकर पाँव रखते जाते हैं ॥ २ ॥ मग के लोगों की प्रेमभरी कहन उससे अच्छी नम्रता अनुकूलता। रुख लिये प्रभु के साथ श्रीजानकी लक्ष्मणजी का रहना। जिन्होंने पथिकरूप श्रीराम, जानकी, लक्ष्मणजी को हृदय में धारण कर लिया, तिनकी गहनि नीकी। नेत्रों में जल, तनु पुलकित, प्रेम में मन मगन है। प्रभु का यश वर्णन कर तुलसी भी भूरिभागी कहे भाग्यशाली हुए ॥ ३ ॥

रागकेदार

जेहि जेहि मग सिय राम लखन गये,
तहँ तहँ नर नारि बिना छरनि छरिगे।
निरखि निकाई अधिकाई थिथकित भई,
बच बपु नैन सर सोभा सुधा भरिगे ॥ १ ॥
ज़ोते बिन बये बिन निफल निराये, बिन

सुकृत सुखेत सुख सालि फूल फरिगे।
मुनिहुँ मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ,
सुगम सो राम सब लोगन को करिगे॥ २॥
लालची कौड़ी के कूर पारस परे हैं पाले,
जानत न को है कहा कीबो सो बिसरिगे।
बुद्धि न बिचार न बिगार न सुधार सुधि,
देह गेह नेह नाते मन ते निसरिगे॥ ३॥
बरषि सुमन सुर हरषि हरषि कहैं,
अनायास भवनिधि नीच नीके तरिगे।
सो सनेह समय सुमिरि तुलसी हू के,
भली भाँति भले पैत भले पाँसे परिगे॥ ४॥

लक्ष्मण, जानकीजी सहित श्रीरघुनाथजी जिस राह में गये, वहाँ वहाँ के नर नारी सब बिना छरनि छलके छले गये। अथवा छरनि पुराने चाँवलों को मैदा में मिलाकर काँड़ते हैं जब सफ़ेद निकल आते हैं, तब कनकी-कन निकाल, बीनिकर सफ़ा करते हैं। उनको छरे चावल इस्तामाल कहते हैं। यहाँ मग के लोग विना कर्म-ज्ञानादि परिश्रम किये केवल, प्रभु-दर्शनमात्र से सर्व-विकार-रहित हो श्रीराम के अनुरागी जीवन्मुक्त हुए। सोई इस्तामाल चावल के समान लोग विना छरनि गये, जीव शुद्ध हो प्रभु में लग गये। अब जिससे चावल होते हैं, सो धानों की उत्पत्ति का रूपक कहते हैं। घन सरीखे रघुनाथजी की छवि ही जल है। उस निकाई की अधिकाई कहे छविसमूह को अवलोकनाही छविरूप जलका बरसना है। उससे मग के लोगों के तनुरूप

भूमि में वचनरूप पथिक थकित भये और नेत्ररूप तड़ाग छवि अमृतमयी जल से भर गये ॥ १ ॥ जोते बिना, अर्थात् जप तप आदि बिना किये, बोये बिना कहे भजन-ध्यान बिना किये, निराये बिना यानी विषय की वासना बिना त्यागे। निफल भयो कहे प्रेम का आनन्द बढ़ आया। उन्हीं सुकृतरूप सुन्दर खेतोंमें सुख-रूपी शालि जो धान सो फूलकर फल गया। प्रभु के देखने की चाह फूल है। प्रभु की माधुरी मूर्त्ति अवलोक कर सुख होना सोई फल है। यह दृष्टांत है। अब दार्ष्टान्त कहते हैं। जो प्रभु का रूप प्रसिद्ध दर्शन, उसका मुनियों का मनोरथ करना अगम है। अलभ्य लाभ कहे यह लाभ किसी को नहीं हो सकता। सोई लाभ, निज रूप के दर्शन, श्रीरघुनाथजी ने लघु लोगों को सुगम किये, राहराह सबको दर्शन दिये। इससे सब रामानुरागी हो गये ॥ २ ॥ कौड़ी के कहे कोई तुच्छ देवता के लालची थे, उसे चाहते रहे। पर उन्हें उनके भी दर्शन अगम थे। उन कूरों के पारससम रघुनाथजी पाले पड़े हैं। वे इनको जानते नहीं कि यह कौन हैं, और इनको क्या करना चाहिये। सब बिसरि गये। न बुद्धि है; जिससे जान लें। न विचार है, जिससे विचारकर कार्य करें कि ये कौन हैं और हम कौन हैं। न बिगाड़ कहे विरोधभाव है। यथा—"प्रभुसर प्रान तजौं।" भव तऊ न सुधार। शरणागत जानते हैं। यथा शरणसुखद, रघुवीर इत्यादि। सुध एक की भी नहीं है। बिना कर्म, ज्ञान, भक्ति आदि में परिश्रम किये प्रभु के दर्शनमात्र से देह, गेह को स्नेह और नाता, सब मन से निकल गया, प्रेम प्रभु में लगाया इत्यादि बिना छुरनि छुरि कनमल-रहित सफ़ा हो वैसे ही लोगों के जीव हृदय शुद्ध हो गये ॥ ३ ॥ हर्षित होकर फूल बरसाकर देवता कहते हैं कि नीच प्राणी भी भवसागर को अनायास ही अच्छी तरह तर गये। उस समय का स्नेह स्मरण

कर तुलसी के भी भली प्रकार भले दाँव पर जीत के भले पाँसे पड़ गये ॥ ४ ॥

बोले राज देन को रजायसु भो कानन को,
आनन प्रसन्न मन मोद बड़ो काजु भो।
मातु पितु बंधु हितु आपनो परम हितु,
मोको बीस हू कै ईस अनुकूल आजु भो ॥ १ ॥
असन अजीरन को समुझि तिलक तज्यो,
बिपिन गवन भले भूखे कैसो नाजु भो।
धरम धुरीन धीर बीर रघुबीरजू को,
कोटि राज सरिस भरत जू को राजु भो ॥ २ ॥
ऐसी बातें कहत सुनत मग लोगन की,
चले जात बन्धु दोऊ मुनि कैसो साजु भो।
ध्याइबे को गाइबो को सेइबे सुमिरिबे को,
तुलसी को सब भाँति सुखद समाजु भो ॥ ३ ॥

मगवासी कहते हैं कि रघुनाथजी को राजा ने राज्य देने हेतु बुलाया और वन जाने की आज्ञा दी। इस पर रघुनाथजी का मुख प्रसन्न ही बना रहा। मन में यह आनन्द हुआ कि वन जाने से बड़ा काम हुआ; काहेसे माता कैकेयी, पिता और भाई भरत का हित इसी में है। और अपना तो परमहित है। बीसो बिश्वे कैकेई द्वारा मुझपर ईश्वर अनुकूल है। एकतो माता-पिता की आज्ञा का पालन, दूसरे मुनि-तीर्थ दर्शन, तीसरे भूमिभार उतारने का काम सिद्ध होगा ॥ १ ॥अजीर्ण पर भोजन जैसा अपकारी राज-

तिलक जान उसे त्याग दिया। और अत्यन्त भूखे को नाज सुन्दर भोजन मिलने पर जैसे आनन्द हो, वैसा आनन्द प्रभु को वन जाने में भया। धर्म के बोझे को धारण करनेवाले धीर वीर जो रघुवीर, तिनको कोटियों राज्य मिलने की खुशी भरतजी के राज्य पाने पर हुई ॥ २ ॥ मुनियों का ऐसा साज प्रभु का हुआ। दोनों बन्धु मार्ग में जो लोग ऐसी बातें करते थे, उनको सुनते चले जाते हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि वन जाने के समाज का जो साज है, सो ध्यायबे को ध्यान आदि करने को, मार्ग में प्रसिद्ध रूप गाने को लीला प्रसिद्ध मार्ग के चरित्र। सेइबे को कहे समीप रहने को धाम जैसे पत्रशाला आदि निवास। सुमिरने को नाम इत्यादि। हमको सब सुलभ हो गया। अयोध्याजी के महलों में सबको अधिकार नहीं था, यहाँ सबको अधिकार है। जैसे शृंगार रस की बात अयोध्याजी में नहीं गोसाईंजी ने वर्णन की, और वन में कही है ॥ यथा—निजकर राजीवनयन पल्लवदल रचत सयन प्यास है परस्पर पियूष प्रेम पान की। माधुरी विलास हास गावत जस तुलसिदास बसत हृदय जोड़ी प्रिया प्रेम प्रान की ॥ ३ ॥

सिरस सुमन सुकुमारि सुषमा की सींव,
सिया राम बड़े ही सकोच संग लई है।
भाई के प्रान समान प्रिया के प्रान के प्रान,
जानि बानि प्रीति रीति कृपासील मई है ॥ १ ॥
आलबाल अवध सुकामतरु कामबेलि,
दूरि करि केकयी बिपत्ति बेलि बई है।
आपु पति पूत गुरुजन प्रिया परिजन,
प्रजा हू को कुटिल दुसह दसा दई है ॥ २ ॥

पंकज से पगन पनहिउ न परुष पन्थ,
कैसे निबहे हैं निबहैंगे गति नई है ।
यहै सोच संकट मगन नर नारि सबै,
सबकी सुमति राम राग रंग रई है ॥ ३ ॥
एक कहै बाम बिधि दाहिनो हम को भयो,
उत कीन्हीं पीठि इत को सुदीठि भई है ।
तुलसीसहित बनवासी मुनि हमरियो,
अनायास अधिक अघाइ बनि गई है ॥ ४ ॥

भाई श्रीलक्ष्मणजी के प्राण के समान, प्रिया श्रीजानकीजी के प्राण के भी प्राण कृपाशीलमय जो रघुनाथजी हैं, उन्होंने सिरस के फूलसम सुकुमारी और शोभा की मर्यादा जो श्रीजानकीजी हैं, तिनकी बानि कहे स्वभाव हमसे पलक अन्तर नहीं रखतीं। बिछोहा होते ही प्राणत्याग देंगी, ऐसी प्रीति की रीति जानकर बड़े ही संकोच से श्रीजानकीजी को साथ में लिया है ॥ १ ॥ अयोध्याजी आलबाल कहे थाल्हा हैं। कल्पवृक्ष व कल्पलता के समान श्रीराम जानकी हैं । तिनको दूरि करि कहे उखाड़कर उसी थाल्हे में कैकेयी ने विपत्तिरूप बेलि बोई। सो ऐसी फैली झुमड़ी कि सबको दबा डाला । उससे दुसह (जो सही न जाय) दशा उस कुटिल ने कर दी। प्रथम अपने को कुछ लाभ नहीं पहुँचाया। कलंक पाया। पीछे पति-को रामवियोग से प्राणत्याग करना पड़ा। फिर पूत को बिना अपराध रामवियोग का कष्ट सहना पड़ा। उससे गुरुजन जो बड़े, प्रिय जो मित्र और प्रजा, तिनको दुसह दुःख भया ॥ २ ॥ कमलसम कोमल चरण, उनमें भी पनहीं नहीं। कठोर राहमें कैसे

निबहे होंगे, आगे कैसे निबहेंगे। यह नई रीति है, ऐसा कभी नहीं भया है। इसी सोच और संकट में मार्ग के लोग बूड़े हैं। उन नरनारियों की मति श्रीराम के अनुराग-रंग में रँगी है ॥ ३ ॥ कोई कहता कि अयोध्याजी पर विधाता वाम हैं और हमको दाहने हैं। उत को पीठ किये हैं और यहाँ उनकी सुदृष्टि है। मगवासी कहते हैं कि वनवासी मुनियों सहित हमारी भी अनायास अधिक अघाकर अच्छी तरह बनगई है ॥ ४ ॥

रागगौरी

नीके कै मैं न बिलोकनपाये।
सखि यहि मग जुग पथिक मनोहर,
बिधु बिधु बदनि समेत सिधाये ॥ १ ॥
नयनसरोज किसोर बयस बर,
सीस जटा रचि मुकुट बनाये।
कटि मुनि बसन तून धनु सर कर,
स्यामल गौर सुभाव सुहाये ॥ २ ॥
सुन्दर बदन बिसाल बाहु उर,
तनु छबि कोटि मनोज लजाये।
चितवत मोहिं लगी चौंधी सी,
जानों न कौन कहाँ ते धौं आये ॥ ३ ॥
मन गयो संग सोच बस लोचन,
मोचत बारि कितो समुझाये।

तुलसिदास लालसा दरस की,
सोइ पुरव जेहि आनि दिखाये ॥ ४ ॥

मार्ग में कोई वधू कहती है कि हे सखी, दो पथिक एक चन्द्रवदनी वधू साथ लिये इस मार्ग में गये हैं। तिनको मैंने अच्छी तरह देखने नहीं पाया ॥ १ ॥ कमलसम नयन, किशोर अवस्था, शीश पर रचकर जटा के मुकुट बनाये, कटि में मुनियोंके से वसन और तरकस धारण किये, हाथ में धनुष बाण लिये, श्याम गौर दोनोंजने सहज ही सुन्दर लगते हैं ॥ २ ॥ सुन्दर मुखारविंद। विशाल कहे लम्बी पुष्ट भुजा। चौड़ी छाती। तनु की छवि देख कोटियों काम लजाते हैं। जब मैंने देखे, तब मेरे नेत्रों में चकाचौंधसी लग गई। मैंने नहीं जाना कि कौन हैं, कहाँ से आये, कहाँ जायँगे ॥ ३ ॥ हमारा मन तो उनके साथ गया। नेत्र दर्शन के प्यासे, इससे शोचवश हैं। कितनाही समझाकर थक गई, पर आँसू की धार बन्द नहीं होती, क्योंकि दर्शन की लालसा है, सो तो वही पूरी करे, जिस विधाता ने उनका दरश कराया ॥ ४ ॥

पुनि न फिरे दोउ बीर बटाऊ।
स्यामल गौर सहज सुन्दर सखि,
बारक बहुरि बिलोकिब काऊ ॥ १ ॥
करकमलन सर सुभग सरासन,
कटि मुनि बसन निषंग सोहाये।
भुज प्रलम्ब सब अंग मनोहर,
धन्य सो जनक जननि जेहि जाये ॥ २ ॥

सरद बिमल बिधु बदन जटा सिर,
मंजुल अरुन सरोरुह लोचन।
तुलसिदास मारग में राजत,
कोटि मदन मदमोचन ॥ ३ ॥

दोऊ वीर बटोही फिर इस मार्ग में नहीं लौटे। हे सखी, उन श्याम गौर सहज सुन्दर को फिरि भी एकबार देख पाऊँगी? ॥१॥ करकमल में सुन्दर धनुष बाण लिये, कटि में मुनियों के पट और तरकस धारण किये, आजानुभुज, सब अंग से सुन्दर हैं। धन्य इनके माता पिता हैं, जिन्होंने इनको उत्पन्न किया है ॥ २ ॥ शरद के निर्मल चन्द्रमासम मुख है। शीश पर सुन्दर जटा, अरुण कमलसम सुन्दर नेत्र हैं। गोसाईंजी कहते हैं, ऐसे रूपसे प्रभु मार्ग में विराजमान हैं, जो कोटियों मदन की शोभा का मद नाश करते हैं ॥ ३ ॥

रागकेदार

आली काहू तौ बूझो न पथिक कहाँ धौं सिधै हैं ॥
कहाँ ते आये हैं को हैं कहा नाम श्यामगोरे,
काज कै कुसल फिरि यहि मग ऐहैं ॥ १ ॥
उठत बयस मस भीजत सलोने सुठि,
सोभा दिखवैया बिन बितहि बिकैहैं।
हिये हेरि हरि लेत लोनी ललना समेत,
लोयनन लाहु लेत जहाँ जहाँ जैहैं ॥ २ ॥
राम लखन सिय पथिक की कथा पृथुल,
प्रेम बिथकी कहत सुमुखि सबै हैं।

तुलसी तिन सरिस तेऊ भूरि भाग जेऊ,
सुनिकै सुचित तेहि समय समै हैं ॥ ३ ॥

हे आली, किसी ने तो बूझा नहीं कि वे पथिक कहाँ जायँगे, कहाँ से आये और कौन हैं। क्या नाम है। गोरे साँवले कुँवर जहाँ को जाते हैं, सो कार्य कर कुशलसमेत इसी मार्ग से फिर आवेंगे ॥ १ ॥ उठत कहे उमँगती किशोर अवस्था में अत्यन्त-सुन्दर मस भीजती है। उनकी शोभा के देखनेवाले विना मोल उनके हाथ बिक जायँगे। लोनी लावण्य की भरी ललना सुन्दरी वधू सहित मार्ग में लोगों की ओर हेरि कहे देखकर हृदय को हर लेते हैं, वे जहाँ जहाँ जायँगे, वहाँ वहाँ लोगों के नेत्रों का लाभ देते जायँगे ॥ २ ॥ श्रीजानकी लक्ष्मण सहित रघुनाथजी की पंथ की कथा पृथुल कहे घनी, उसको प्रेम में थकित सब सुमुखी कहती हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि तिनके समान वे भी बड़-भागी हैं, जो प्रभु के चरित को सुचित्त से सुनकर उस समय के चरितों में समैहैं, मन लगावेंगे ॥ ३ ॥

बहुत दिन बीते सुधि कछु न लही।
गये जे पथिक गोरे साँवरे सलोने सखी,
संग नारि सुकुमारि रही ॥ १ ॥
बहुरि बिलोकिबे कबहुँ कहत तनु,
पुलकि नैन जल धार बही।
तुलसी प्रभु सुमिरि ग्रामजुवती,
सिथिल बिनु प्रयास परी प्रेमसही ॥ २ ॥

जिनके साथ सुन्दरी सुकुमारी नारी थी, वे साँवले गोरे

सलोने पथिक इस मार्ग से गये हैं। बहुत दिन बीत गये, तिनकी सुध कुछ नहीं पाई कि कहाँ हैं कैसे हैं ॥ १ ॥ आपु ते कहे अपनी देह से, आपने हू ते अपने प्यारे से भी, अपने प्राणों से भी प्यारे प्रीतम। उपही कहे परदेशी विना जान-पहचान के सबको प्रिय लगते हैं। कैसे हैं, सुधा का सारांश और सनेह का सारांश लेकर विधाता ने इनको सँवारा है। ये जैसे मन में भाते हैं, वैसे कहे नहीं जाते। उन पथिकों को बहुरि फिर कभी देखेंगे। यह कहते-कहते तन प्रेम से पुलकित हुआ, नेत्र से जलधार बही। गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु को सुमिर कर ग्राम की युवती प्रेम में सही सत्य ही पड़ गईं ॥ २ ॥

राग गौरी

आली री पथिक जे यहि पथ परौं सिधाये।
ते तौ राम लखन अवध ते आये ॥ १ ॥
सँग सिय सब अँग सहज सोहाये।
रति काम ऋतुपति कोटिक लजाये ॥ २ ॥
राजा दसरथ रानी कौसल्या जाये।
कैकेयी कुमति करि कानन पठाये ॥ ३ ॥
बचन कुभायिनि के भूपहि क्यों भाये।
हाय हाय राय बाम विधि भरमाये ॥ ४ ॥
कुलगुरु सचिव काहू न समुझाये।
काँचमनि लै अमोल मानिक गवाँये ॥ ५ ॥
भाग मगलोगन के देखन जिन पाये।
तुलसी सहित जिन गुनगन गाये ॥ ६ ॥

हे आली, जो पथिक परसों इस मार्ग गये, तिनका श्रीराम लक्ष्मण नाम है। अयोध्याजी से आये हैं॥ १॥ साथ में जानकीजी हैं। सब अंग सहज ही में सुन्दर हैं। उनको देख कोटियों रति, काम, वसन्त लजा जाते हैं ॥ २ ॥ राजा दशरथ की रानी कौशल्याजी के जाये कहे पुत्र हैं। रघुनाथजी को कैकेयी ने कुचाल कर वन को भेजा ॥ ३ ॥ कुभामिनि कैकेयी के वचन राजा को कैसे भाये ? कोई सखी कहती है – हाय ! हाय ! राजा के विधाता वाम है। उसी ने भरमाया है ॥ ४ ॥ कुलगुरु वशिष्ठ, मंत्री सुमन्त्र आदि, किसी ने समझाया नहीं, जो राजा ने काँच की मणिसम सत्यवचन ग्रहण कर अमोल माणिक लालमणिसम रघुनाथजी को गँवा दिया ॥ ५ ॥ कोई कहते हैं कि यह भाग्य मग लोगों के हैं, जिन्होंने इनको देखने को पाया तुलसी सहित तिन के भी बड़े भाग्य हैं, जो इनके गुणानुवाद गाते हैं ॥ ६ ॥

सखी जब ते सीता समेत देखे दोउ भाई।
तब ते परै न कल कछु न सुहाई ॥ १ ॥
नखसिख नीके नीके निरखि निकाई।
तन सुधि गई मन अनत न जाई ॥ २ ॥
हेरनि बिहँसनि हिय लियो है चोराई।
पावन प्रेमबिबस भई पराई ॥ ३ ॥
कैसे पितु मातु प्रिय परिजन भाई।
जीवत जीव के जीवन बनहिं पठाई ॥ ४ ॥
समय सुचित करि हित अधिकाई।
प्रीति ग्राम बधुन की तुलसी हू गाई ॥ ५ ॥

हे सखी, सीतासमेत दोनों भाइयों को जबसे देखा, तबसे कल नहीं पड़ती और कुछ सोहाता नहीं ॥ १ ॥ नख से शिखा तक सब अंग नीके हैं। तिनकी निकाई नीकी भाँति निरख मन इनके रूप से अन्यत्र नहीं जाता। तबसे तनु की सुध जाती रही ॥ २ ॥ मुसक्याकर उनकी चितवन ने हमारे हृदय को चुरा लिया। इससे पावन कहे पवित्र प्रेम के वश मैं पराई हुई हूँ ॥ ३ ॥ इनके माता, पिता, प्रिय, परिवार भाई कैसे हैं, जो आप जीते रहे, और जीव के जीवन रघुनाथ को वन को भेजा ॥ ४ ॥ चित्त को सुचित्त कर अधिक प्रीतिपूर्वक उस समय की ग्रामवधुओं की प्रीति तुलसीदास ने गाई है ॥ ५ ॥

जब ते सिधाये यहि मारग लखन राम,
जानकी सहित तब ते न सुधि लही है।
अवध गये धौं फिरि कैधौं चढ़े बिन्ध्यगिरि,
कैधौं कहुँ रहे सो कछुक काहू न कही है ॥ १ ॥
एक कहै चित्रकूट निकट नदी के तीर,
परनकुटीर करि बसे बात सही है।
सुनियत भरत मनाइबे को आवत हैं,
होइगो पै सोई जो विधाता चित चही है ॥ २ ॥
सत्यसन्ध धरमधुरीन रघुनाथजी को,
आपनी निबाहिबे नृप की निरबही है।
दसचारि बरस बिहार बन पद चार,
करिबे पुनीत सैल सुरसरि मही है ॥ ३ ॥

मुनि सुर सुजन समाज के सुधारि काज,
बिगरि बिगरि जहाँ जहाँ जाकी रही है।
पुर पाउँ धारिहैं उधारिहैं तुलसी हू से जन,
जिन जानिकै गरीबी गाढ़े गही है ॥ ४ ॥

श्रीजानकी लक्ष्मणसहित रघुनाथजी जबसे इस मार्ग में गये, तबसे कुछ सुध नहीं पाई कि फिर अयोध्याजी को गये, या विन्ध्याचल पर्वत पर चढ़े, या कहीं टिके हैं, सो हाल किसी ने कुछ नहीं कहा ॥ १ ॥ कोई कहती है कि चित्रकूट के निकट नदी के तीर पत्तों की कुटी बनाकर बसे हैं, यह बात सच्ची है। सुना है, भरतजी मनाने को आते हैं। परन्तु जो विधाता के मन में होगी, वही बात होगी ॥ २ ॥ महाराज दशरथजी की तो निबह गई, अब सत्यसन्ध धर्मधुरीण रघुनाथ को अपनी निबाहने को है। दसचार चौदह वर्ष वन का विहार पैदल करके भूमि, नदी, पर्वत, तड़ाग पवित्र करेंगे ॥ ३ ॥ मुनि, देवता, सज्जनों के समाज का काज जहाँ जिसका बिगड़ा है, उसको सुधारेंगे। उसके पीछे पुर अयोध्याजी को आवेंगे और जो जन जानकर दृढ़ कर गरीबी गहे हैं तुलसी ऐसे, तिनका उद्धार करेंगे ॥ ४ ॥

राग सारङ्ग

ये उपही कोउ कुँवर अहेरी।
श्याम गौर धनु बान तून धरि चित्रकूट अब आय रहेरी ॥१॥
इनहिं बहुत आदरत महामुनि समाचार मेरे नाह कहेरी।
बनिता बंधु समेत बसत बन पितुहित कठिन कलेस सहेरी ॥२॥

बचन परसपर कहत किरातिनि प्रेम बिबस जल नयन बहेरी ।
तुलसी प्रभुहि बिलोकत यकटक लोचन जनु बिनु पलकरहेरी॥ ३॥

किरातिनियों के वचन हैं कि ये उपही परदेसी कोई कुंवर राजकुमार अहेरी कहे शिकार खेलने को चित्रकूट को आये हैं। श्यामशरीर श्रीरघुनाथजी गौर लक्ष्मणजी, वे धनुष बाण तरकस धारण किये चित्रकूट में अब आकर रहे हैं॥ १॥ महामुनि अत्रि, वाल्मीकि आदि इनका बहुत आदर करते हैं। यह सब हाल हमारे स्वामी ने कहा है। स्त्री और भाई सहित वन में बसते हैं। पिता के हेत पानी, जाड़ा, घाम आदि कठिन कलेश सहते हैं॥ २॥ ऐसे वचन परस्पर किरातिनियाँ कहती हैं। प्रेमवश नेत्रों से जल धारा बहती है। गोसाईंजी कहते हैं कि एकटक प्रभु को विलोकते नेत्र मानो विना पलक के हैं॥ ३॥

राग चंचरी

चित्रकूट अति विचित्र सुन्दर बन महि पवित्र,
पावन मय सरित सकल मल निकन्दिनी।
सानुज जहँ बसत राम लोकलोचनाभिराम,
बाम अंग बामा बर विश्वबन्दिनी॥ १॥
ऋषिबर तहँ छंदबास गावत कलकोकिलहास,
कीर्त्तन उनमाय काय क्रोधकन्दिनी।
बर बिधान करत गान वारत धन मान प्रान,
झरना झरत झिम झिम जल तरंगिनी॥ २॥
बर बिहार चरन चारु पाउर चंप कचनार,
करनहार वारपार पुर पुरंगिनी।

जोबन नव ढरत ढार दुत्तमत्त मृगमराल,
मन्द मन्द गुञ्जत हैं अलि अलंगिनी ॥ ३ ॥
चितवत मुनि गन चकोर बैठे निज ठौर ठौर,
आछे अकलंक सरद सरद बन्दिनी ।
उदित सदा बन अकास मुदित बढ़त तुलसिदास,
जय जय रघुनन्दन जय जनकनन्दिनी ॥ ४ ॥

अब चित्रकूट का नित्यविहार, गुप्त रासविलास दो पदों में वर्णन करते हैं। बृहद्रामायण के चित्रकूटमाहात्म्य के अनुकूल इसका अभिप्राय है। उसी का प्रमाण लिखते हैं । प्रथम शोभा कहते हैं। कैसा है चित्रकूट, हेममणियों से खचित भूमि और पर्वत, उसके तले दिव्यमन्दिर सप्तावरण से विचित्र है। प्रमाण बृहद्रामायणे श्लोक—सुकूटः पर्वतश्रेष्ठो मणिकांचनचित्रितः ॥ विराजते महाराज ब्रह्मरुद्रादिपूजितः ॥ सप्तावरणसंयुक्ते मन्दिरे रत्नभूषिते ॥ पर्वतस्यांतरालाये विहारं कुरुते सदा ॥ और वहां सुंदर वन हैं । प्रमाण यथा—मध्ये पर्वतराजस्य बहुयोजन-विस्तृते ॥ वनानि नंदनादीनि भावयेद्भक्तितत्परः ॥ मही वहाँ की भूमि पवित्र है। प्रमाण यथा—गिरिः श्रीचित्रकूटाख्यो यत्र मन्दा-किनी नदी ॥ तयोर्मध्यं सुविस्तीर्णं त्रिशद्धनुषमायता ॥ धनुषाकार-संयुक्ता धनुषोपरि संस्थिता ॥ एतत्क्षेत्रं प्रियतमं न कस्मैचित्प्रका-शितम् ॥ पावनि कहे पवित्र पयस्विनी नदी मल जो पाप उसको निकन्दिनी कहे नाश करनेवाली मुक्तिदाता है। प्रमाण यथा श्रीमुख-वाक्ये—पयस्विनी ब्रह्मकुण्डाद्भविष्यति नदी पुरा ॥ ममरूपा महाभागा परंनिर्वाणदायिनी ॥ सानुज कहे लक्ष्मणजी सहित श्रीरघुनन्दन जहाँ चित्रकूट में वास करते हैं। लोगों के नेत्रों के

आनन्ददाता । प्रमाण यथा—सेव्यमानो लक्ष्मणेन छत्रचामर-शोभितः ॥ सिंहासने समासीनो ध्यायेन्निर्मलचेतसा ॥ यावन्ती सुषमा लोके विद्यते सचराचरे ॥ तहाँ वाम अंग में वामा कहे विमलादि सखियों के समूह, तिनमें वर कहे श्रेष्ठ विश्व के वन्दना करनेयोग्य श्रीजानकीजी हैं । प्रमाण यथा—विमला सुप्रभा चैव कांता कांतिमतीतथा॥ एवमादिसखीवृन्दः प्रथमावरणे स्थितः ॥ तत्र श्रीरामचन्द्रोऽसौ सीतया सहितः सुधीः ॥ विमला-दिसखीयुक्तो ह्यणिमादिविभूतिभिः ॥ ऋषिवर वशिष्ठादि वहाँ उस चित्रकूट में स्वच्छन्दवास कहे स्वेच्छित प्रभु के प्रेम में परिपूर्ण हो पंचमावरण में वास करते और प्रेम से प्रभु के हास-कीर्त्तन को सुन्दर कोकिलवत् स्वर से गाते हैं । काया जो देह उसको उन्माय कहे उत्पन्न किये हैं । किशोर अवस्था, प्रसन्न मुख है इससे क्रोध का नाश करनेवाली अनुरागभरी देह है । इससे क्रोधकन्दिनी कहा । क्रोधादि शेषरहित शुद्ध हैं । प्रमाणबृहद्रा-मायणे—पुलस्त्यः पुलहो वेदो विश्वामित्रोऽथ वामनः ॥ शक्तिः पराशरो व्यासो बौधायनस्तथैव च ॥ पंचमावरणे सर्वे वसिष्ठा-दिऋषीश्वराः ॥ दिव्यदेहधरा नित्यं ध्यायंति रघुनन्दनम् ॥ ब्रह्मच-र्य्यरतास्सर्वे विरजांबरधारिणः ॥ दिव्यगन्धानुलिप्तांगाः कृतांज-लिकरा भृशम् ॥ संहिताभिस्स्वकीयाभिः सम्मुखे दत्तदृष्टयः ॥ स्तुवंतो नीलकंजाभं कैशोरं रघुनन्दनम् ॥ वे ऋषीश्वर वर कहे श्रेष्ठ निधान ताल स्वर से गान करते और धनमान कहे मनप्राणादि तीनों प्रभु पर वारते हैं । जलतरंगिणी जो गंगादि नदी, वे षष्ठआवरण में वास करती हैं । तिनके झरने झिमझिम झर रहे हैं । तत्र प्रमाण बृहद्रामायणे—षष्ठावरणके सर्वा गंगाद्यास्सरितः स्थिताः । दिव्यरूपधराः सर्वा दिव्याभरणभूषिताः ॥ जाह्नवी यमुना चैव नर्मदा श्रीसरस्वती ।

कावेरी सरिता पुण्या भीमा भीमरथी तथा ॥ इस पद में खण्डान्वय करके यह अर्थ है—पाउर, चंपा, कचनार आदि वृक्षों की कुंज के बीच वर कहे श्रेष्ठ विहार के करनेवाले श्रीरघुनन्दन जनकनन्दिनी हैं। पुर जो है चित्रकूट, उसकी पुरंगिनी कहे पुर की अंगना सखी, वे वारपार कहे चारो दिशाओं में नृत्य गान आदि करती हैं। यौवन नव नवीन युवावस्था। उसको सखीजन ढारती अर्थात् प्रभुपर वार डालती हैं, अपनी देह प्रभु पर निछावर करती हैं। उनके सुन्दर चरणों में नूपुर आदि के साथ गान के शब्द को सुनकर द्वन्द्व कहे जोड़ा मराल-मरालिनी मृग-मृगी परस्पर प्रेमानन्द में मत्त कहे मस्त हैं। वृक्षों के पुष्पों पर अलि-अलिनी भौंरा-भौंरी मन्द मन्द गूंजते हैं इत्यादि। प्रमाण बृहद्रामायणे पाउर आदि का यथा—कदंबकिंशुकाकोललवंगमधुपाटलैः। पाटलाशोकबकुलैः कुंदैः कुरबकैरपि॥ उसके मध्य यथा—मध्याह्ने जानकीजानिः सखीसंगेन शोभितः। विहारं कुरुते सम्यग् ज्ञानिनां ज्ञानदायकः॥ सायाह्ने जानकीनाथस्तस्मिन् क्रीडावने शुभे। रमते रमया युक्तो योगिनां योगसिद्धिदः॥ सखीवृन्द का नृत्य गान यथा—एवमादि सखीवृन्दः प्रथमावरणे स्थितः। काचिद्वादयते वीणां मृदंगं च तथापरा॥ काचित्तालं पूरयति काचिद्‌गानं करोति च। काचिन्नृत्यति नृत्यंती हासयन्ति तथापराः॥ मृग मराल भृंग यथा—मन्दारपादपपरागविषक्तमत्तैर्भृङ्गावलीविरुतजातनुतप्रमोदैः। संसेवितं प्रबलदं सुमरालमालं मंजीरनिःस्वनचयैः परिवृद्धगीतम्॥ नृत्यन्ति दिव्यवनिताः परितोविबद्धरत्नावलीललितभास्वरवेदिकासु। संमुग्धहासपरिपेशलवक्त्रचंद्रपीयूषपानपरिहृतकुरंगशावाः॥ पुरांगना यथा—आबद्धमौक्तिकमनोहरलोलमाला संशोभिजालवदनेषु पुरांगनानाम्॥ तथा—वराणि गातुश्च कलानिभानि कल्लोलराजिषु मुखानि सकुंकुमानि॥ अच्छे सदा

एकरस कलंकरहित शरच्चंद्र श्रीरघुनन्दन और चाँदनी श्रीजानकीजी, वे वनरूपी आकाश में सदा उदय हैं। वशिष्ठादि ऋषीश्वर किशोर अवस्था धारण किये अपने आसनों से प्रभु की रासलीला में कोटिचन्द्र से प्रकाशमान श्रीराम-जानकी को चकोरसम निमेषरहित नेत्रों से देख रहे हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि वे मुनि और सब सखी प्रभु की रासलीला को देख प्रेमावेश से "जयजय रघुनन्दन, जय जनकनन्दिनी" ऐसे शब्द उच्चारण करती हैं इत्यादि। प्रमाण बृहद्रामायणे। मुनियोंका प्रमाण यथा—सद्धामरम्यफललाभगतेंगितानां बद्धा मनांसि बिलसन्ति मुनीश्वराणाम्। प्रत्युत्प्रसादसमवाप्तसमानभावा भास्वत्किशोरवयसो मदनं क्षिपंतः॥ वंदी यथा—नृत्यत्कपोलतटकुण्डलकांतिभाजो भक्ता भजन्ति भगवच्चरणारविन्दम्। कोटीन्दुसुन्दरमधुस्मितवीक्षणेषुविक्षेपकक्षणरसाक्षयचित्तवृत्त्याम्॥ जय शब्द का प्रमाण बृहद्रामायणे—श्रीकांतिकीर्तिगुणकीर्तनजातमोदा उच्चस्वरेण जयशब्दमुदीरयन्ति। वाचामगोचरमनंतविभूतिपूर्णमानन्दधामभगवत्पदमद्वितीयम्॥ इत्यादिबृहद्रामायण से बीजमात्र लिख दिया है। विस्तार बहुत है॥ ४॥

राग चंचरी

फटिकसिला मृदु बिसाल संकुल सुरतरु तमाल,
ललित लता जाल हरत छबि बितान की।
मन्दाकिनि तटनि तीर मंजुल मृग बिहँगभीर,
धीर मुनि गिरा गँभीर सामगान की॥ १॥
मधुकर पिकबरहि मुखर सुन्दर गिरि निरझरझर,
जलकन घनछाँह छन प्रभा न भान की।

सबऋतु ऋतुपतिप्रभाव संतत बहै त्रिबिध बाव,
जनु बिहार वाटिका नृपति पंचबान की ॥ २ ॥
बिरचित तहँ पर्नसाल अतिबिचित्र लखन लाल,
निवसत जहँ नित कृपाल राम जानकी।
निजकर राजीव नयन पल्लवदल रचित सयन,
प्यास परस्पर पियूष प्रेम पान की ॥ ३ ॥
सिय अँग लिख धातुराग सुमनन भूषन बिभाग,
तिलक कर्निका कहौं कला निधानकी।
माधुरी बिलास हास गावत जस तुलसिदास,
बसत हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की ॥ ४

अब फटिकशिला के ऊपर का विहार वर्णन करते हैं। प्रभु के सुख देने हेतु फटिकशिला मृदु कहे कोमल हो रही है। विशाल कहे ऊँची और सुन्दर है। वहाँ बहुत से कल्पवृक्ष और तमालादि के वृक्ष चारों ओर शोभित हैं। उन पर ललित शोभायमान लता फैल रही हैं। जाल कहे सघन वह शोभा वितान कहे चँदोवा की शोभा हरती है। वहाँ मन्दाकिनी नदी है। उसके तट मंजुल कहे सुन्दर हैं। रामानुरागी शुद्ध मन मृगों और पक्षियों की भाड़ है। धीर कहे जिनके मन काम-क्रोधादि जीते शुद्ध हैं, ऐसे जो मुनि वहाँ वास किये हैं, तिनकी गम्भीर वाणी से सामवेद का गान ताल स्वर सहित हो रहा है॥ १ ॥ मधुकर भ्रमर, पिक कोयल, बरही मयूर मुखर कहे शब्द कर रहे हैं। पर्वतों से सुन्दर झरने झर रहे हैं। उस जल के कण उड़ते शोभा देते हैं। घन कहे सघन वृक्षों की छाँह में क्षणमात्र

भी भानु सूर्य की प्रभा घाम कभी नहीं आता। अथवा वर्षाऋतु से शोभा कहते हैं—वृक्षों की छाँह सोई घन कहे मेघ है। झरना झरते सो बूँदें हैं। जल के कणों पर भानु की प्रभा पड़ने से चमकते हैं, सोई क्षण प्रभा कहे बिजली है। जहाँ सब ऋतुओं में ऋतुपति वसंत का प्रभाव छा रहा है। त्रिविध शीतल, मंद, सुगन्ध बयार संतत कहे हमेशा चल रही है। कैसा वन शोभित होता है, मानों पंच बाण कहे कामदेव राजा की विहार-वाटिका है। पाँच बाण काम के ये हैं—करवीर मारण, केवड़ा उच्चाटन, केतकी आकर्षण, गुलाब मोहन, आम बौर वशीकरण इति ॥ २ ॥ उस वन के मध्य में अत्यन्त चित्रविचित्र पत्तों की साल कहे निवासस्थान है। उसको लक्ष्मणलालजी ने निज अपने करकमलों से विरचित कहे विशेष रचकर बनाया है। जिसमें कृपालु श्रीरघुनन्दन व जनकनन्दिनी नित ही निबसत कहे वास करते हैं। राजीव कहे कमल ऐसे नयन जिनके, ऐसे जो श्रीरघुनन्दन, वह निज कहे अपने करकमलों से सुन्दर फूलों और वृक्षों के नवीन कोमल पल्लवदलोंसे शय्या रचते हैं। कारण, आनंदकन्द श्रीजनकनंदिनी-रघुनंदन को परस्पर प्रेम-अमृतरस पान करने की पियास है ॥ ३ ॥ धातुराग सिंगरफ, हरताल, मैनसिल, सफेदा, मुरदाशंख आदि से सिया के अंग लिखे, अर्थात् श्रीजानजीकी के ललाट कपोलादि में विचित्र पत्र, पत्रभृंग कपोलपत्र, मयूराकृति, हंसाश्रित, गुल्मलताकृति, वृक्षाकृति नवग्रहाकृति, मकराकृति आदि चित्रित किये और सुमनों के भूषण बनाकर उन पर अभ्रक जटित कर दीप्तिमान् किये। विभाग कहे अंग प्रति, यथा शीश पर अर्द्धचन्द्र, किरीट, फूलमालतीकलीसे माँग गुह, भाल में बेंदी, बेंदा, करनफूल, कंठ में नागफनी, पदिक, चन्द्रहार, भुजाओं में बाजू, करमूल में कंगन, पहुँची, मुद्रिका, आरसी, पग में जेहरि, नूपुर, बिछिया

इत्यादि अंग अंग प्रति पहनाकर शोभित किये। केसरि मृगमद आदि से भाल में लिखा। तिलक करने की प्रवीणता कैसे वर्णन करूँ? कला जो चौंसठ हैं, तिनके निधान कहे प्रवीण रघुनाथजी हैं, इससे अनूप है माधुरी (जिसको देख तृप्ति न हो ऐसी शोभा यथा नवयौवन अवस्था में भूषणसहित प्रसन्नवदन परस्पर प्रेम वश। इति माधुरी मूर्ति), उसका विलास मदनानंद का सुख कहने योग्य नहीं है। काहे से कि हास की बात है। उसका कहना अनुचित है। परन्तु तुलसीदासजी कहते हैं कि हमारे प्राणों की प्यारी जोड़ी श्रीजनकनन्दिनी रघुनंदन हमारे हृदय में बसत हैं, इससे हम हासरूपी प्रभु के यश का गान करते हैं। गान में सब अधिकार है। यहाँ वृक्षों की, जल की और पक्षियों की शोभा विभाव है। निजकर से शय्या रचना, पुष्प-भूषण पहनाना, कपोलपत्र आदि तिलक करना अनुभाव है। उद्दीपन हर्ष संचारी है। प्यास परस्पर पियूष यह स्थायी है। इससे आलम्बन-पूर्ण श्रृंगाररस वर्णन किया है। गोसाईंजी ने जनकपुर की फुलवारी में कुछ श्रृंगार कहा है, पर महलों में नहीं कहा। यहाँ वन में फिर कहा। इसका कारण यह है कि देखना, सुनना, कहना सब सुलभ है। सो तेंतिस नंबर के पद में कह आये हैं—"ध्याइबे को गाइबे को सुमिरिबे को सेइबे को तुलसी को सब भाँति सुलभ समाज भो।" और विवाह के एकसौ सात नंबर के पद में श्रृंगार की वासना कह आये हैं—"देख तियन के नयन सफल भये तुलसीदासहू के होने" सो यहाँ पूर्ण किया॥ ४॥

राग केदार

लोने लाल लखन सलोने राम लोनी सिय,
चारु चित्रकूट बैठे सुरतरु तर हैं।

गोरे साँवरे सरीर पीत नील नीरज से,
प्रेमरूप सुषमा कै मनसिज सर हैं ॥ १ ॥
लोने नखसिख अनूप रूप निरखिबे जोग,
बड़े उर कन्धर बिसाल भुजबर हैं।
लोने लोने लोचन जटन के मुकुट लोने,
लोने बदनन जीते कोटि सुधाकर हैं ॥ २ ॥
लोने लोने धनुष बिसिख करकमलन,
लोने मुनिपट कटि लोने शरधर हैं।
प्रिया प्रियबन्धु को देखावत बिटपबेलि,
मंजु कुंज सिलातल दल फूल फर हैं ॥ ३ ॥
ऋषिन के आश्रम सराहैं मृग नाम कहैं,
लागी मधु सरिता झरत निरझर हैं।
नाचत बरहि नीके गावत मधुप पिक,
बोलत बिहंग नभ जल थलचर हैं ॥ ४ ॥
प्रभुहि बिलोकि मुनिगन पुलके कहत,
भूरिभाग भये सब नीच नारि नर हैं।
तुलसी सो सुखलाहु लूटत किरात कोल,
जाको सिसकत सुर विधि हरिहर हैं ॥ ५ ॥

लावण्यके भरे श्रीलक्ष्मणजी, जानकीजी और रघुनन्दन चित्र-कूट में कल्पवृक्ष के तले बैठे हैं। गोरेगात लक्ष्मण, जानकीजी और

श्याम श्रीरघुनन्दन गौर-श्याम शरीर हैं। उनकी उपमा कहते हैं, मानों प्रेम, रूप और सुषमा के कमल हैं, जो कामदेव के तड़ाग में प्रफुल्लित हैं। चित्रकूट शोभायमान कामदेव का तड़ाग है। उस में प्रेमरूपी पीत कमल लक्ष्मण की शोभा, पीत कमल जानकी का रूप और नीलकमल रघुनन्दन हैं ॥ १ ॥ नख से शिखा तक जो लोनाई है, सो अनूप है। इससे निरखने के योग्य हैं। कैसी शोभा है, चौड़ी छाती है, कन्धे ऊँचे हैं, लम्बी भुजा हैं, श्रेष्ठ सुन्दर नेत्र हैं। जटाओं के मुकुट बाँधे सुन्दर मुखों की शोभा से कोटियों सुधाकर जो चन्द्रमा हैं, तिनकी द्युति जीते हैं। इस चरण में दोही रूपों का वर्णन है ॥ २ ॥ अब केवल प्रभु की छवि कहते हैं। सुन्दर धनुष और करकमलों में सुन्दर बाण लिये हैं। कटि में सुन्दर मुनियों के वसन धारण किये हैं। शरधर सुन्दर तरकस धारण किये हैं। प्रिय जानकीजी, प्रियबंधु लक्ष्मणजी, तिनको वृक्ष, बेल, सुन्दर कुञ्ज, शिला-तल, वृक्षों के नवीन दल, सुन्दर फल आदि प्रभु दिखाते हैं ॥३॥ ऋषियों के आश्रम की प्रशंसा करते और मृगों के नाम बताते हैं। यथा हब्बा, पाड़ा, झाषा, चीमला, श्याम, श्वेत आदि। वहाँ मधुमक्खी लगी हैं, सो दिखाते हैं। सरिता की शोभा, झरनों की शोभा कहते हैं। पुनः कहते हैं—हे भैया, हे प्रिया, देखो, मयूर नाचते हैं, भ्रमर गान करते हैं, कोयल बोलती हैं, और नभचर तोते आदि पक्षी, थलचर गजआदि जलचर पशु, जलकुक्कुटआदि बोलते शोभित हैं ॥४॥ तहाँ प्रभु को विलोककर मुनि मन में प्रेम से भरे कहते हैं कि चित्रकूट के और मग के सब नीच नारी नर प्रभु के दरशन किये से अहो भाग्यवाले भये। गोसाईंजी कहते हैं, क्योंकि जिस सुख को ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता ललचाते हैं, उस सुख को किरात, कोल विना जप, तप आदि, साधन कर सिद्धदशा को प्राप्त हुए लूटते हैं ॥ ५ ॥

राग सारंग

आइ रहे जब ते दोउ भाई।
तब ते चित्रकूट कानन छबि,
दिन दिन, अधिक अधिक अधिकाई ॥ १ ॥
सीता राम लखन पद अंकित,
अवनि सोहावनि बरनि न जाई।
मंदाकिनि मज्जन अवलोकत,
त्रिविध पाप त्रय ताप नसाई ॥ २ ॥
उकठेउ हरित भये जल थल रुह,
नित नूतन राजीव सोहाई।
फूलत फलत पल्लवत पलुहत,
बिटप बेलि अभिमत सुखदाई ॥ ३ ॥
सरित सरनि सरसीरुह संकुल,
सदन सँवारि रमा जनु छाई।
कूजत बिहँग मंजु गुंजत अलि,
जात पथिक जनु लेत बोलाई ॥ ४ ॥
त्रिविध समीर नीरझरि झरनन,
जहँ तहँ रहे ऋषि कुटी बनाई।
सीतल सुभग सिलन पर तापस,
करत जोग जप तप मन लाई ॥ ५ ॥

भये सब साधु किरात किरातिनि,
रामदरस मिटि गइ कलुषाई ।
खग मृग मुदित एकसँग बिहरत,
सहज बिषम बड़ बयर बिहाई ॥ ६ ॥

काम केलि बाटिका बिबुध बन,
लघु उपमा कबि कहत लजाई ।
सकल भुवन सोभा सकेलि मनु,
राम बिपिन बिधि आनि बसाई ॥ ७ ॥

बन भिसु मुनि मुनितिय मुनिबालक,
बरनत रघुबर बिमल बड़ाई ।
पुलकि सिथिल तनु सजल बिलोचन,
प्रमुदित मन जीवन फल पाई ॥ ८ ॥

क्यों कहौं चित्रकूट गिरि सम्पति,
महिमा मोद मनोहरताई ।
तुलसी जहँ बसि लखन राम सिय,
आनँद अवधि अवध बिसराई ॥ ९ ॥

कवि की उक्ति है । जब से चित्रकूट में दोनो भाइयों ने (लक्ष्मण-लालसहित श्रीरघुनन्दनजी) वास किया, तबसे वन की छवि दिनप्रति अधिक अधिक अधिकाती है ॥ १ ॥ लक्ष्मण, जानकी, श्रीरघुनाथजी के चरणों से अंकित भूमि ऐसी सुहावनी भई है, जो बखान करने में कवि को अगम है । मन्दाकिनी के मज्जन

किये से और वन, पर्वत, भूमि के दर्शन से त्रिविध ताप मन वचन कर्म के, त्रय ताप दैहिक, दैविक, भौतिक सो नष्ट होते हैं। प्रमाण बृहद्रामायणे—चित्रकूटगिरिः श्रेष्ठःश्रीरामपदभूषितः। मन्दाकिनी नदी यत्र सर्वपापप्रणाशिनी॥ जल के वृक्ष, थल भूमि के जे उकठे सूखे थे, वे भी वृक्ष हरे हो गये। राजीव कमल नित्यप्रति नवीन शोभित होते हैं। फूलते, फलते और पल्लवित होते हैं। उकठे वृक्ष पलुहन कहे हरे होते हैं। ये वृक्ष बेलें कल्पवृक्ष-सम अभिमत मनोरथ का सुख देनेवाले भये॥ ३॥ नदियों में, तड़ागों में जो कमल प्रफुल्लित हैं, सो मानों श्रीलक्ष्मीजी मन्दिर सँवार कर वास करती हैं। सुन्दर पक्षी बोलते हैं, भँवर गुंजारते हैं, सो मानों चले जाते हुए पथिकों को बुला लेते हैं। इसमें अतिप्रियत्व सूचित किया है॥ ४॥ शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन चलती है। झरनों से जल गिरता है। जहाँ तहाँ ऋषि लोग कुटी बनाकर वास करते हैं। वहाँ सुन्दर शीतल शिलाओं पर तापसजन, जप, तप, योग मन लगा कर करते हैं॥ ५॥ श्रीरघुनन्दन के दर्शन से हिंसक बुद्धि की मलिनता मिट गई। इससे किरात किरातिनी सब शांत मन से साधु होगये। जिन पक्षियों तथा मृगों का वैर है (यथा मृग व्याघ्र आदि) वे सब एक साथ प्रीति सहित विचरते हैं। आनन्द से परस्पर का वैर भुलाये हैं॥ ६॥ काम की केलि की जो वाटिका है उसकी और देववन नन्दन-चैत्ररथादि की उपमा देते कवि की बुद्धि लज्जा को प्राप्त होती है। काहे से कि वे लघु हैं। और प्रभु का वन कैसा है, मानों समग्र भुवन की शोभा खींच लाकर विधाता ने श्रीरघुनन्दन का वन बसाया है। यहाँ सब शोभा की खान प्रभु वास करते हैं, इससे वन में सर्वत्र शोभामयी है॥ ७॥ स्त्रीपुत्र सहित मुनि जन वन की शोभा के बहाने प्रभु की शोभा का वर्णन करते हैं। कैसे हैं? प्रेम-पुलकित प्रेम से भरे हैं। इससे तनु शिथिल, नेत्रों में जल भरे।

इसलिये मन में आनन्द है कि जीवन जन्म का फल श्रीजानकी, लक्ष्मण, श्रीरघुनाथजी हमको प्राप्त हुए, इससे हमारे अहो भाग्य हैं। यहाँ प्रभु के वास करने से वन आनन्ददायक हुआ, इससे वन की बड़ाई करने में प्रभु की बड़ाई सूचित होती है ॥ ८ ॥ गोसाईंजी कहते हैं, उस चित्रकूट की सम्पत्ति और महिमा, वहाँ का आनंद और शोभा हम कैसे वर्णन करें ? जहाँ आनन्द की अवधि कहे मर्यादा श्रीजानकी-लक्ष्मण सहित श्रीरघुनाथजी श्रीअयोध्याजी को बिसराकर वास करें, उस चित्रकूट की महिमा अपार है ॥ ९ ॥

राग गौरी

देखत चित्रकूट वन मन अति होत हुलास।
सीता राम लखन प्रिय तापस वृन्द निवास ॥ १ ॥
सरित सोहावनि पावनि पाप हरनि पय नाम।
सिद्ध साधु सुरसेवित देति सकल मन काम ॥ २ ॥
बिटप बेलि नवकिसलय कुसुमित सघन सुजाति।
कंद मूल जल थलरुह अगनित अनवन भाँति ॥ ३ ॥
बंजुल मंजु बकुल कुल सुरतरु ताल तमाल।
कदलि कदम्ब सुचम्पक पाटल पनस रसाल ॥ ४ ॥
भूरुह भूरि भरे जनु छबि अनुराग सुभाग।
बन बिलोकि लघु लागहिं बिपुल बिबुध बन बाग ॥ ५ ॥
जाइ न बरनि रामबन चितवत चित हरि लेत।
ललित लता द्रुम संकुल मनहुँ मनोज निकेत ॥ ६ ॥

सरित सरन सरसीरुह फूले नाना रंग।
गुंजत मंजु मधुपगन बिबिध बिहंग ॥ ७ ॥
लखन कहेउ रघुनन्दन देखिय बिपिन समाज।
मानहुँ चैन मैन पुर आयो प्रिय ऋतुराज ॥ ८ ॥
चित्रकूट पर राउर जानि अधिक अनुराग।
सखासहित जनु रतिपति आयो खेलन फाग ॥ ९ ॥
झिल्लि झाँझ झरना डफ पनव मृदंग निसान।
भेरि उपंग भृङ्ग रव ताल कीर कल गान ॥ १० ॥
हंस कपोत कबूतरी बोलत चक्र चकोर।
गावत मनहुँ नारि नर मुदित नगर चहुँ ओर ॥ ११ ॥

श्रीचित्रकूट वन की शोभा देखने से मन में अत्यन्त हुलास होता है। कारण, वहाँ श्रीजानकी, लक्ष्मण और जो प्रभु के प्यारे तापस हैं, तिनसहित रघुनाथजी निवास करते हैं ॥ १ ॥ पयस्विनी नाम की नदी जहाँ सुहावनी कहे सुन्दर है, जिसके दर्शन, मज्जन करने से पाप का नाश होता है। साधन कर जो सिद्ध भये और शांतमनवाले साधु तथा देवता जो उसकी सेवा करते हैं, वे मन की कामना पाते हैं ॥ २ ॥ सुन्दर जाति के सघन वृक्ष, बेली, वे नवीन पल्लव लिये प्रफुल्लित हैं। कन्द जो गोलाकार, मूल लम्बायमान, जल-थलरुह कहे जल के कसेरू, कमलगट्टा, कोकाबेली, थल के खाझाकन्द, शकरकंद, अमीकंद आदि जो भूमि होती हैं, वे वन में अन कहे अनेक भाँति अगणित कहे बहुत हैं ॥३॥ बंजुल कहे बेत, मंजु शोभायमान, बकुल, मौलसिरी, कुल कहे समूह, सुरतरु कल्पवृक्ष, ताड़, तमाल, केला, कदम्ब, चम्पा, पाडुर,

कटहल आदि ॥ ४ ॥ भूरुह जो भोजपत्र-वृक्ष, वे शोभा और अनुराग तथा सुंदर भाग्य से भरे हैं उस वन की शोभा देखने से देवतों के अनेक वन बाग लघु लगते हैं ॥ ५ ॥ श्रीरघुनाथजी के वन की शोभा वरनी नहीं जाती है, जो चितवते में चित्त हर लेते हैं। नवीन सुन्दर तन और संकुल कहे समूह वृक्षों से ऐसी शोभा है, मानों मदन का निवासमन्दिर है ॥ ६ ॥ नदी और तड़ागों में अनेक रंग के कमल फूले हैं। उन पर सुन्दर भँवर गुञ्जारते व अनेक प्रकार के पक्षी बोल रहे हैं ॥ ७ ॥ श्रीलक्ष्मण-लाल कहते हैं, हे श्रीरघुनन्दनजी, वन की शोभा देखिये, मानों कामदेव के पुर में आनन्दपूर्वक ऋतुराज आया है ॥ ८ ॥ चित्रकूट पर आपका अनुराग अधिक जानकर सखा वसंत सहित कामदेव यहाँ फाग खेलने हेतु आया है ॥ ९ ॥ झिल्ली पतंग जैसा कीड़ा वसंत में वृक्षों पर बोलता है। झींगुर का शब्द सोई झाँझ है। पर्वतों के झरना सोई डफ, ढोल, मृदंग, नगाड़े दुन्दुभी हैं। भृंगों की गुञ्जार सो उपंग है। इसे गले में लगाकर बजाते हैं। इसको नसतरंग भी कहते हैं। तोता आदि बोलते हैं, सो तालसहित गान है ॥ १० ॥ हंस, हंसिनी, कपोत, कबूतरी, चक्रवाक, चक्रवाकी, चकोर, चकोरी इत्यादि अनेक पक्षी बोलते हैं, सो मानों नर नारी आनन्द-सहित नगर के चारो ओर गान करते हैं ॥ ११ ॥

चित्र बिचित्र बिबिध मृग डोलत डोगर डाग।
जनु पुर बीथिन बिहरत छैल सँवारे स्वाँग ॥ १२ ॥
नचहिं मोर पिक गावहिं सुरवर राग बँधान।
निलज तरुन तरुनी जनु खेलहिं समय समान॥ १३ ॥
भरि भरि सुंड करिनि करि जहँ तहँ डारहिं बारि।

भरत परस्पर पिचकन मनहुँ मुदित नर नारि ॥ १४ ॥

पीठि चढ़ाइ सिसुन कपि कूदत डारहिंडार ।

जनु मुँह लाइ गेरु मसि भये खरन असवार ॥ १५ ॥

लिए पराग सुमन रस डोलत मलयसमीर ।

मनहुँ अरगजा छिरकत भरत गुलाल अबीर ॥ १६ ॥

काम कौतुकी यहि विधि प्रभुहित कौतुक कीन ।

रीझि राम रतिनाथहि जगबिजयी बर दीन ॥ १७ ॥

दुख बहुदास मोर जनि मानहु मोरि रजाय ।

भलेहि नाथ माथे धरि आयसु चलेउ बजाय ॥ १८ ॥

मुदित किरात किरातिनि रघुबर रूप निहारि ।

प्रभु गुन गावत नाचत चले जोहारि जोहारि ॥ १९ ॥

देहिं असीस प्रसंसहिं मुनि सुर बरषहिं फूल ।

गवने भवन राखि उर मूरति मंगलमूल ॥ २० ॥

चित्रकूट कानन छबि को कबि बरनै पार ।

जहँ सिय रामलखन सह रघुपति करत बिहार ॥ २१ ॥

तुलसिदास चाँचरि मिसि कहे रामगुनग्राम ।

गावहिं सुनहिं नारि नर पावहिं सब अभिराम ॥ २२ ॥

डोगर डाग कहे- पहाड़ वन की गलियों में रंग रंग के मृगों के झुण्ड घूमते हैं, सो मानों पुर के छैला स्वाँग सँवारे पुर की गलियों में घूमते हैं ॥ १२ ॥ वहाँ मोर नाचते हैं, पिक कहे कोयल बोलती हैं, सो मानों लयसहित सुन्दर स्वर भरे गान करते

हैं। यह सब समाज कैसी सोभा देता है मानों तरुण पुरुष तरुण स्त्री निर्लज्ज हो, समय जो फागुन उसमें फाग खेलते हैं ॥ १३ ॥ हथनी, हाथी सूँडों में जल भर भर जहाँ तहाँ डालते हैं, सो मानों नर नारी आनन्द से परस्पर पिचकारी भर भर मारते हैं ॥ १४ ॥ बच्चों को पीठ पर चढ़ाकर वानर वानरी डाल डाल कूदते हैं, सो मानों गेरू और मसि स्याही मुखों में लगाकर खर गधों पर चढ़ाकर स्वाँग रचे हैं। लाल मुखवाले गेरू से और स्याह मुखवाले मसि से लिप्त कहे ॥ १५ ॥ पुष्पों का पराग और सुगन्ध लिये मलय कहे सुगन्धित पवन चलती है, सो मानों केसर चन्दन कपूर घोल कर अरगजा छिड़कते हैं उसपर पुष्पों का पराग सो मानों अबीर गुलाल मुख में लगाते हैं ॥ १६ ॥ प्रभु के प्रसन्न होने हेतु काम कौतुकी ने इस प्रकार का कौतुक किया उसको देख प्रसन्न हो प्रभु ने रतिनाथ को वरदान दिया कि जग विजयी होओ ॥ १७ ॥ प्रभु ने कहा कि हमारे दासों को मत दुःख देना। इतनी हमारी रजाय आज्ञा मानना। कारण, दास अजित हैं। तब कामदेव ने कहा कि हे नाथ, यह आपकी आज्ञा हमारे माथे पर है। हम भक्तों के दास सेवक हैं। यह रजाय मान चला गया ॥ १८ ॥ किरात, किरातिनी वसन्त ऋतु में प्रभु की शोभा देख आनन्द से प्रभु को जोहार जोहार गुणानुवाद गाते, नाचते मगन मन प्रेम में बूड़े अपने घर को चले जाते भये ॥ १९ ॥ कोल, किरात आशीर्वाद देते और प्रभु की प्रशंसा करते हैं। सो सुन देवता फूल बरसाते हैं। मंगलमूल प्रभु की मूर्ति उर में रख कर अपने मन्दिर को गये ॥ २० ॥ जहाँ श्रीजानकी लक्ष्मणजी सहित रघुनाथजी नित्य विहार करते हैं, उस चित्रकूट गिरि और वन की शोभा को कौन कवि वर्णन कर पार पावे। नित्य विहार का प्रमाण बृहद्रामायणे—चित्रकूटो गिरिश्रेष्ठः श्रीरामपदभूषितः ॥

यस्मिन् श्रीजानकीनाथो रमते सर्वदैवहि ॥ इससे अपार महिमा है ॥ २१ ॥ गोसाईंजी कहते कि चाँचर के बहाने हमने कुछ श्रीरघुनाथजी के गुणगान किये। उनको जो नर नारी सुनते वा गातेहैं, वे आनन्द जो प्रभुपद में प्रीति, भक्ति सो पाते हैं॥ २२ ॥

राग वसन्त

आज बनो है विपिन देखो राम धीर।
मानों खेलत फाग मुद मदन बीर ॥ १ ॥
बट बकुल कदम्ब पनस रसाल।
कुसुमित तरुनिकर कुरबक तमाल ॥ २ ॥
मानों बिबिध बेष धरे छैल जूथ।
बिचबीच लता ललनाबरूथ ॥ ३ ॥
पनवानक निरझरि अलिउपंग।
बोलत पारावत डफ मृदंग ॥ ४ ॥
गायक सुक कोकिल झिल्लिताल।
नाचत बहु भाँतिन बरही मराल ॥ ५ ॥
मलयानिल शीतल सुरभि मन्द।
बह सहित सुमनरसरेनु बृन्द ॥ ६ ॥
मानों छिरकत फिरत सबन सुरंग।
भ्राजत उदार लीला अनंग ॥ ७ ॥
क्रीड़त जीते सुर नर असुर नाग।
हठि सिद्ध मुनिन के पंथ लाग ॥ ८ ॥

कह तुलसिदास तेहि छांड़ि मयन।
जेहि राखि राम राजीवनयन॥ ६॥

श्रीलक्ष्मणजी कहते हैं, धीर श्रीरघुनाथजी, आज वन ऐसा बना है, मानों मदन वार आनन्द से फाग खेलता है॥ १॥ बरगद, बकुल मौलसिरी, कदम्ब, पनस कटहल, रसालआम, कुरबक कुरैया, तमाल आदि कुसुमित कहे फूल रहे हैं॥ २॥ किसी में श्वेत, किसी में पीत, अरुण फूल हैं। मानों अनेक वेष धारण किये छैलों के यूथ समूह हैं। उनके बीच में लता फैली हैं सो मानों बरूथ समूह स्त्री हैं॥ ३॥ झरना झरते हैं, उनका शब्द पणव कहे ढोल है, आनक कहे नगाड़ा है। भँवर-गुंजार उपंग कहे मुरचंग, बीन, सतरंग (जो गले में डालकर बजाते हैं) पारावत कबूतर बोलते हैं, सो मानों डफ और सुन्दर मृदंग बजते हैं॥ ४॥ तोता, कोकिलादि गायक हैं, वे स्वर-सहित गाते हैं। उसमें झिल्ली का झनकार मिली, सो मानों ताल है। पतंग से कीड़े वृक्षों पर झींगुर का शब्द बोलते हैं, सोई झिल्ली है। बहीं मोर, हंस नाचते हैं, वे अनेक प्रकार के नृत्यकार हैं॥५॥ मलयगिरि को छूकर अनिल जो पवन सो शीतल सुरभि कहे सुगन्धित, मन्द कहे धीरा बह कहे चलता है। फूलों का रस व पराग-वृन्द लिये पवन कैसी शोभित होती है। ६॥ मानों सबपर सुरंग कहे सुन्दर रंग छिड़कते फिरते हैं। इत्यादि कामदेव की उदार लीला भ्राजत कहे विराजमान है॥ ७॥ क्रीड़त कहे खेलते में देवता, नर, नाग, असुर आदि को जीत लिया और सिद्ध, मुनियों का पंथ जो सन्मार्ग, उसमें हठ करके लगे, सुमार्ग से छुड़ाकर कुमार्ग में लगा दिया॥ ८॥ गोसाईंजी कहते हैं कि जिसका श्रीराम राजीवनयन प्रण रक्खें, उसको काम ने छोड़ा, अपर सब कामवेग में पड़े॥ ९॥

ऋतुपति आयो भलो बन्यो बनसमाजु ।
मानों भये हैं मदन महराज आजु ॥ १ ॥
मनों प्रथम फाग मिस करि अनीति ।
होरी मिस अरिपुर जारि जीति ॥ २ ॥
मारुत मिस पत्र प्रजा उजारि ।
नयनगर बसाये बिपिन झारि ॥ ३ ॥
सिंहासन शैलशिला सुरंग ।
काननछबि रतिपरिजन कुरंग ॥ ४ ॥
सिर छत्र सुमन बल्लीबितान ।
चामर समीर निर्झर निसान ॥ ५ ॥
मानों मधु माधव दोउ अनिप धीर ।
बर बिपुल बिटप बानैत बीर ॥ ६ ॥
मधुकर शुक कोकिल बन्दिबृन्द ।
गावहिं बिसुद्ध जस बिबिध छन्द ॥ ७ ॥
महि परत सुमनरस फल पराग ।
जनु देत इतर नृपकर बिभाग ॥ ८ ॥
कलि सचिवसहित नयनिपुन मार ।
कियो बिस्व बिबस चारिहु प्रकार ॥ ९ ॥
बिरहिनि पर नित नइ परत मार ।
डांटि आहि सिद्ध साधक प्रचार ॥ १० ॥

तिन कीन काम सकै चापि छांह।
तुलसी जे बसहिं रघुबीरबांह॥ ११॥

वसंतऋतु आया, उससे वन का समाज अति भला बना। मनों मदन महाराज आज राजसिंहासन पर विराजे॥ १॥ तिनके प्रताप का वर्णन करते हैं। मानों फाग के बहाने से अनीति कर प्रजा का मान तोड़ा। होली के बहाने से अरिपुर को जलाया जीत लिया॥ २॥ पवन के बहाने पत्ररूपी प्रजा को उजाड़ दिया। पीछे नवीन पत्र हरित भये, सो मानों समग्र वन में नवीन नगर बसाये॥ ३॥ राजधानी चाहिये, सो सुन्दर पर्वतों की शिला, सोई सुन्दर सिंहासन है। वन की छवि, सोई रति काम की पत्नी है। मृग आदि समीपी प्रजा हैं॥ ४॥ श्वेत फूल, सोई छत्र है। लता, सोई चँदोवा है, पवन चलती है, सोई चँवर है। झरना नगाड़ा है॥ ५॥ मधु चैत, माधव वैशाख, ये दोनो अनिप कहे सेनापति हैं। धैर्यवान् अनेकों वृक्ष श्रेष्ठ बानैत कहे बानेबाज़ वीर हैं॥ ६॥ भ्रमर, तोता, कोकिला आदि वन्दीजन के वृन्द हैं। वे अनेकों छंदों में विशेष शुद्ध यश का वर्णन करते हैं॥७॥ पुष्पों का रस पराग फूल फल पृथ्वी पर गिरते हैं, सो मानों अपर राजा कर कहे दण्ड, विभाग कहे अलग-अलग देते हैं, कामदेव महाराज को॥ ८॥ कलि जो कलियुग, सोई है सचिव मंत्री। उस सहित नय जो राजनीति, उसमें निपुण कामदेव, उसने साम, दाम, दण्ड, भेद चारो प्रकार से विश्व जो संसार, उसको वश किया है॥ ६॥ विरही जन विरह में दुःखित हैं, सोई मानों नित नई मारपड़ती है। और सिद्ध साधकों को प्रचारि हाँक देकर डाँटते भये, तपोधन छीन लिया॥ १०॥ गोसाईंजी कहते हैं कि जो जन रघुपति के बाँहबल से बसते हैं,

तिनकी कामदेव छाहँ नहीं छूसकता। अपर सबको जीत-लिया ॥ ११ ॥

सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
बर्षाऋतु प्रवेस बिसेस गिरि देखत मन अनुरागत ॥ १ ॥
चहुँदिसि बन सम्पन्न बिहँग मृग बोलत सोभा पावत।
जनु सुनरेस देस पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ॥ २ ॥
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगन।
मनहुँ आदि अम्भोज बिराजत सेवित सुरमुनिभृंगन ॥ ३ ॥
सिखर परसि घन घटहि मिलत बगपाँति सो छबि कबि बरनी।
आदि बराह बिहरि बारिधि मानों उड़ेउ दसन धरि धरनी ॥ ४ ॥
जलजुत बिमल सलिल झलकत नभ बन प्रतिबिम्ब तरंग।
मानहुँ जग रचना बिचित्र बिलसत बिराट अँग अंग ॥ ५ ॥
मन्दाकिनिहि मिलत झरना झरि भरि भरि जल आछे।
तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मनु रामभक्ति के पाछे ॥ ६ ॥

चित्रकूट सब दिनों में अच्छा लगता है, परन्तु वर्षाऋतु का प्रवेश होने से गिरि को देख मन अत्यन्त अनुराग को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ चारो दिशाओं में वन फल फूल से सम्पन्न हैं। उनमें पक्षी मृगआदि बोलते हैं, सो कैसी शोभा दिखाते हैं, मानों सुनरेश कहे नीतिमान् राजा के राज्य में देश में प्रजा आनन्द से सब सुख छावत सुख से बसती है ॥ २ ॥ धातु गेरू, हिरमिजी, मैनशिल आदि बरसने से बहे हैं, सो शृंगों पर बहेसे रँगमगे। शृंगोंपर श्याम मेघ धीरे धीरे गरजते सोहाते हैं सो मानों पर्वत आदि कमल है, जिससे ब्रह्माजी प्रकट भये हैं। मेघ सोई भ्रमर

है। सुर मुनि सेवते हैं ॥ ३ ॥ पर्वत के शिखर का परस किये बगलों की पाँति मेघ की घटा में मिली कैसी सोहती है, मानों पर्वत आदि वाराह है, वर्षा का जल भूमि में भरा है, सो समुद्र में विहरि हिरण्याक्ष से धरणी छीन समुद्र से निकाल बकपाँति रूप दाँत पर मेघ-रूप मही को रख आकाश में उड़े जाते हैं ॥ ४ ॥ निर्मल शिलाओं पर जल भरा है, उसकी तरंग में आकाश व वन का प्रतिबिम्ब झलकता है, सो मानों जगत् की भाँति भाँति की विचित्र रचना, सो विराट के अंग अंग में विलसती विशेष शोभित होती है ॥ ५ ॥ पर्वत से झरना झर झर भूमि में भर भर बह कर मंदाकिनी में मिलता है। सो आछे कहे सुन्दर राम-भक्ति के पीछे मानों सकल सुख और सुकृत लगे हैं। नदी भक्ति, झरना सुख-सुकृत हैं ॥ ६ ॥

राग सोरठ

आज को भोर और सो माई।
सुन्यो न द्वार वेद बन्दी धुनि गुनिगनगिरा सुहाई ॥ १ ॥
निजनिज पति सुन्दर सदनन ते रूप सील छबि छाई।
लेन असीस सीस आगे करि मोपै सुतबधू न आई ॥ २ ॥
बूझी हौं न बिहसि मेरे रघुबर कहो सुमित्रा माता।
तुलसी मनहु महा सुख मेरे देखि न सक्यो बिधाता ॥ ३ ॥

यहाँ बयालीस से पचास तक आठ पदों में नित्य विहार वर्णन करते हैं। काहेसे चैत्रशुक्ल-चतुर्दशी को प्रभु चित्रकूट में पहुँचे फिर वैशाखशुक्ल-त्रयोदशी को भरतजी चित्रकूट में पहुँचे। वहाँ एक मास का अन्तर था। यहाँ गोसाईंजी ने प्रथम शरद ऋतु का वर्णन किया है, फिर वसंत का, पीछे वर्षा का। सो तीन ऋतुएँ एक वर्ष

भुगतती हैं। सो एकमास में कैसे बनी? इससे आठ पदों में नित्यविहार कह कर अब फिर नैमित्त लीला वर्णन करते हैं। तहाँ चैत्र शुक्लनवमी से चले। बैशाखकृष्ण पंचमी को सुमंत्र अयोध्याजीको आये। वहाँ ग्यारह दिनका अंतर रहा। कौशल्या-जी का सुत-वियोग के विरहका विलाप छः पदोंमें वर्णन करते हैं। भोरके पहर कौशल्याजी कहती हैं कि आज का भोर और भाँति का दिखता है। काहेते ऋषीश्वरों की वेदध्वनि, बंदीजन का प्रताप, विरदावली की ध्वनि और गुणीजन की सुन्दर कीर्ति-गान की गिरा की ध्वनि इत्यादि आज द्वारपर नहीं सुन परती॥१॥ आप अपने सुन्दर पतियोंके मंदिरों से रूपभरी शीलवान् छवि से छाइ कहे छविमयी पुत्रबधू शीश आगे कर शीश नवा अशीश लेनेको हमारे पास नहीं आई॥ २॥ हे मेरे रघुवर, तुम्हारी सुमित्रा माता कहाँ हैं? ऐसे वचन हमने हँसकर बूझे। अभिप्राय यह कि ऐसे वचन किससे बूझें। इससे हमारा महासुख विधाता न देख सका॥ ३॥

जननी निरखत बान धनुहियाँ॥
बार बार उरनैनन लावति प्रभुजू की ललित पनहियाँ॥ १॥
कबहुँ प्रथम ज्यों जाय जगावति कहि प्रिय बचन सकारे।
उठहु तात बलि मातुबदन पर अनुज सखा सब द्वारे॥ २॥
कबहुँ कहत बड़ि बार भई ज्यों जाहु भूप पहँ भैया।
बंधु बोलि जेंइये जो भावै गई निछावरि मैया॥ ३॥
कबहुँ समुझि बनगवन राम को रहि चकि चित्र लिखीसी।
तुलसिदास यह समय कहे ते लागत प्रीतिसिखी सी॥ ४॥

बालअवस्था के छोटे बाण धनुष प्रभुके खेलने के थे। तिनको

कौशल्याजी निरखती हैं। प्रेमवश बालसमय की जो सुन्दरी प्रभुकी पनहीं हैं, तिनको बारबार हृदय और नेत्रों में लगाती हैं ॥ १ ॥ कभी प्रभातकाल प्रथम की नाईं प्रभु के शयन मन्दिर में जाकर जगाती हैं। प्रिय वचन कह हे तात, तुम्हारे चन्द्रवदन पर मैं बलिहारी हूँ। तुम्हारे अनुज और सखा द्वार पर खड़े हैं। इससे उठो उठो सभी कहती हैं, हे भैया, बड़ी अबेर भई। भूप के पास जाओ। ज्यों कही यथा आगे कहती रही हैं तथा अब कहरही माता जो मैं हूँ, सो बलिजाऊँ। बंधुओं को बुलाकर जो रुचे, सो भोजन करिये ॥ ३ ॥ कभी श्रीरघुनाथ-जीका वनगमन समझ कर चित्रकी सी लिखी चकित हो रहीं। गोसाईंजी कहते हैं कि उस समय का वर्णन करने में प्रीति सीखी ऐसी जान पड़ती है। काहेसे जो साँची प्रीति होती तो तुरन्त प्राण देह त्यागते ॥ ४ ॥

माई री मोहिं न कोउ समुझावै।
रामगवन साँचो किधों सपनो मन परतीत न आवै ॥ १ ॥
लगे रहत मेरे नयनन आगे राम लखन अरु सीता।
तदपि न मिटत दाह या उर की बिधि जो भयो बिपरीता ॥२॥
दुख न रहत रघुपतिहिं बिलोकत तन न रहत बिन देखे।
करत न प्रान पयान सुनहु सखि अरुझि परी यहि लेखे ॥ ३ ॥
कौसल्या के बिरह बचन सुनि रोइ उठीं सब रानी।
तुलसिदास रघुबीर बिरह की पीर न जाति बखानी ॥ ४ ॥

माइरी, हमको कोई न समझावे। श्रीरघुनन्दन का वन जाना सत्य है या सपना, यह हमारे मनमें निश्चय नहीं आता ॥ १ ॥ काहेसे हमारे नेत्रोंके आगे राम, लक्ष्मण और सीता सदा लगे रहते

हैं, तो भी हमारे हृदय का दाह नहीं मिटता। कारण, विधाता जो वाम हुआ है, इससे ॥ २ ॥ रघुपतिके देखे दुःख नहीं रहता, और विना देखे तनु नहीं रहता, इस लेखेमें उलझपड़े हैं सखी इससे प्राण पयान नहीं करते ॥ ३ ॥ श्रीकौशल्याजी के विरहके वचन सुन सब रनिवास रो उठा। गोसाईंजी कहते हैं कि रघुवीर के विरह की पीड़ा बखानी नहीं जाती ॥ ४ ॥

जब जब भवन बिलोकत सूनो ।
तब तब बिकल होत कौसल्या दिन दिन प्रति दुख दूनो ॥ १ ॥
सुमिरत बालबिनोद राम के सुन्दर मुनिमनहारी ।
होत हृदय अतिसूल समुझि पदपंकज अजिरबिहारी ॥ २ ॥
को अब प्रात कलेऊ माँगत रूठि चलैगो माई ।
श्यामतामरसनैन स्रवत जल काहि लेउँ उर लाई ॥ ३ ॥
जियौं तौ बिपति सहौं निसिबासर मरौं तौ मन पछितायो ।
चलत बिपिन भरि नयन राम को बदन न देखन पायो ॥ ४ ॥
तुलसिदास यह बिरहदसा अतिदारुन बिपति घनेरो ।
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु सोकजनित रुज मेरो ॥ ५ ॥

प्रभु का निवास-मंदिर जब सूना देखती हैं, तब श्रीकौशल्याजी विकल हो जाती हैं। इससे दिन-प्रति दूना दुःख होता है ॥ १ ॥ मुनियों के मन हरनेवाला जो श्रीरघुनाथजी का बालविनोद उसको जब सुमिरती हैं, तब हृदय में अत्यन्त शूल होता है । काहेसे कि कमलसम कोमल चरणों से अजिर कहे आँगन के विहारी बाहर नहीं निकले, वे वन में पैदल कैसे चलेंगे ॥ २ ॥ कौन बाल-विनोद, सो कहती हैं कि कौन अब प्रातःकाल कलेवा माँगते में

रूठ चलेगा। हे माई, श्यामकमलसम नेत्रों में जल स्रवते देख उर को उर में लगा लूँ ॥ ३ ॥ जियूँ तो निशिदिन दुःख सहूँ, मरूँ तो मन में पछतावा रह जाय । काहे से वनगमन-समय श्रीरघुनन्दन का बदन नेत्रभर नहीं देखने पाया ॥ ४ ॥ गोसाईंजी कहते हैं कि श्रीकौशल्याजी को जो विरह-दशा की अत्यन्त दारुण विपत्ति है, उसी शोक से जनित कहे उत्पन्न रुज रोग, उसको भूरिकृपा जो रघुनाथजी, उनके विना और कौन दूर कर सकता है ? ॥ ५ ॥

मेरो यह अभिलाष विधाता ।
कब पुरवै सखि सानुकूल ह्वै हरि सेवकसुखदाता ॥ १ ॥
सीतासहित कुसल कोसलपुर आवत हैं सुत दोऊ ।
स्रवन सुधासम बचन सखी कब आइ कहैगो कोऊ ॥ २ ॥
सुनि संदेस प्रेमपरिपूरन संभ्रम उठि धावोंगी ।
बदन बिलोकि रोंकि नैनन जल हरषि हिये लावोंगी ॥ ३ ॥
जनकसुता कब सासु कहै मोहिं राम लखन कहैं मैया ॥
बाँह जोरि कब अजिर चलैंगे श्याम गौर दोऊ भैया ॥ ४ ॥
तुलसिदास यहि भाँति मनोरथ करत प्रीति उर बाढ़ी ।
थकित भई उर आनि रामछबि मनहुँ चित्र लिखि काढ़ी ॥ ५ ॥

हमारी यह अभिलाषा विधाता कब पूरी करेंगे ? हे सखी, सेवकों के सुखदाता हरि सानुकूल प्रसन्न होकर कब ऐसी बात सुनावेंगे। सो आगे कहते हैं ॥ १ ॥ श्रीजानकीसहित तुम्हारे दोनों पुत्र कुशलपूर्वक कोशलपुर अयोध्याजी को आते हैं। हे सखी, हमारे श्रवणों को अमृतसमान ऐसे वचन कब आकर कोई

कहेगा ॥ २ ॥ ऐसा सन्देश सुन प्रेम सें तन परिपूर्ण सम्भ्रम सहित कब उठ धाऊँगी । नेत्रभर बदन निहार नयनों का जल रोक हर्षित हो कब हृदय में लगाऊँगी ॥ ३ ॥ जनकसुता कब मुझको सास कहेंगी, और राम-लक्ष्मण कब माता कहेंगे। श्याम गौर दोनों भैया कब बाँह जोड़कर आँगन में चलेंगे ॥ ४ ॥ गोसाईंजी कहते हैं कि श्रीकौशल्याजी इसी भाँति मनोरथ कर रही थीं, इतने में अत्यन्त प्रीति उर में बढ़ी। श्रीरघुनाथजी की छबि उर में लाकर प्रेम में थकित भई। सो कैसी देख पड़ती हैं, मानों चित्रशाला की लिखी चित्र की प्रतिमा-सी भई ॥ ५ ॥

सुन्यो जब फिरि सुमन्त पुर आयो ॥
कहिहैं कहा प्रानपति की गति नृपति बिकल उठि धायो ॥ १ ॥
पाँय परत मंत्री अतिब्याकुल नृप उठाय उर लायो ।
दसरथदसा देखि न कह्यो कछु हरि जो संदेश पठायो ॥ २ ॥
बूझि न सकत कुसल प्रीतम की हृदय यहै पछितायो ।
साँचेहु सुतबियोग सुनिबे कहँ धिग बिधि मोहिं जियायो ॥ ३ ॥
तुलसिदास प्रभु जानि निठुर हौं न्याय नाथ बिसरायो ।
हा रघुपति कहि परेउ अवनि जनु जल ते मीन बिलगायो ॥ ४ ॥

जब सुना कि सुमन्त पुर को लौट आये, तब चक्रवर्ती महाराज विकल हो उठ दौड़े। यह जानने को कि प्राण के पति रघुनन्दन की कैसी गति कहेंगे ॥ १ ॥ सन्मुख होते ही मन्त्री सुमन्त व्याकुल हो पाँवों पर गिरे। तब महाराज ने सुमन्त को उठाकर उर में लगा लिया। उस समय चक्रवर्ती महाराज की दशा देख सुमन्त से कुछ कहते न बन पड़ा। जो संदेश प्रभु ने कहा था, सो न कह सके ॥ २ ॥ प्रीतम जो श्रीरघुनाथजी, तिनकी कुशल

श्रीदशरथ महाराज पूछ नहीं सकते। काहे से हृदय में यह पछितावा है कि ऐसे पुत्र का सच्चा वियोग सुनने को धिक्कार है, जो विधाता ने हमको जीता रक्खा ॥ ३ ॥ गोसाईंजी कहते हैं कि श्रीदशरथ-जी ने प्रभु को निठुर जाना। कहा कि उन्होंने न्याय भुलाया। कैकेयी का अपराध, हमको फलभोग। यह समझ हाय कर भूमि में गिरे यथा जल से मीन अलगकर कोई डाले ॥ ४ ॥

मुयहु न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताउ।
नारिबस न बिचारि कीन्हो काज सोचत राउ ॥ १ ॥
तिलक को बोल्यो दियो बन चौगुनो चित चाउ।
हृदय दाड़िम ज्यों न बिहरेउ समुझि शीलसुभाउ ॥ २ ॥
सीय रघुबर लखन बिनु भय भभरि भाग्यो न आउ।
मोहिं बूझि न परत याते कौन कठिन कुघाउ ॥ ३ ॥
सुनि सुमन्त कि आनु सुन्दर सुवन सहित जियाउ।
दास तुलसी नतरु मो कहँ मरन अमी पियाउ ॥ ४ ॥

महाराज सोचते हैं क्या हमारे मन का पछितावा मरने पर भी न मिटेगा। काहेसे नारी के वश हो विना विचारे काम कर डाला, यह शोच है ॥ १ ॥ तिलक देने को वचन कहकर बुलाये और दिया वनवास! तिस पर भी चित्त में चौगुना चाव कहे आनन्द बना रहा। ऐसे भी शील स्वभाव समझकर हृदय दाड़िम अनार सम न बिहरेउ, फट न गया ॥ २ ॥ श्रीराम लक्ष्मण जानकी विना मंदिर देख उनके विरह की चोट का भय कर भभरि कहे गड़बड़ा कर भागी न आउ कहे आयुर्दाय। जो ऐसे अवसर में भी प्राण ने न पयान किया तो इससे अधिक कुघाव हमको और नहीं समझ पड़ता। इसमें प्राण जायँगे ॥ ३ ॥ हे सुमन्त, सुनो

या तो हमारे पुत्रों को लाओ, तिन सहित जिलाओ हमको, नहीं तो हमको जीवन विष है। इससे मरण ही अमृत है, उस को पिलाओ ॥४॥

अवध बिलोकिहौं जीवत रामभद्रविहीन।
काह करिहैं आइ सानुज भरत धरमधुरीन॥ १ ॥
रामसोक सनेहसंकुल तन बिकल मन लीन।
टूटि तारा गगन मग ज्यों होत छिनछिन छीन॥ २ ॥
हृदय समुझि सनेह सादर प्रेम पावन मीन।
करी तुलसीदास दसरथप्रीति परिमिति पीन॥ ३ ॥

भद्र कहे कल्याणरूप रघुनन्दन बिना मैं अयोध्या को कैसे देखूँगा। सानुज शत्रुघ्न सहित धर्मधुरीण भरत यहाँ आकर क्या करेंगे। काहे से यह अनुचित का वह उपद्रव कैसे सह सकेंगे? इससे न आवें॥ १ ॥ श्रीरघुनाथजी के विषय सनेह संकुल कहे पूर्ण है। उसमें मन लीन है। उनके बिछुरे का शोक, उसमें तनु कैसा विकल है, जैसे आकाश-मग में टूटा हुआ तारा क्षण-क्षण क्षीण कहे हीन होता है॥ २ ॥ गोसाईंजी कहते हैं कि जल विना नहीं जीता, इससे मीन का प्रेम पवित्र है। उसके सनेह को आदरपूर्वक उर में समझ दशरथ महाराज प्रीति की परिमिति कहे मर्यादा को पीनपुष्ट कर, यथा जल विना मीन तनु त्यागता है, तथा उन्होंने शरीर त्याग किया॥ ३ ॥

करत राय मन में अनुमान।
सोकबिकल मुख बचन न आवै बिछुरे कृपानिधान॥ १ ॥
राज देन कहँ बोलि नारिबस मैं जो कह्यों बन जान।
आयसु सिर धरि चले हरषि हिय कानन भवन समान॥ २ ॥

ऐसे सुत के बिरह अवधि लौं जो राखहुँ यह प्रान।
तौ मिट जाय प्रीति की परिमिति अजस सुनौं निजकान ॥ ३ ॥
राम गये अजहूँ हौं जीवत समुझत हिय अकुलान।
तुलसिदास तनु तजि रघुपति हित कियो प्रेम परमान ॥ ४ ॥

कृपानिधान श्रीरघुनाथजी के बिछुड़ने के दुःख से मन विकल है, इससे मुख से वचन नहीं निकलते। राय दशरथजी मन में अनुमान करते हैं ॥ १ ॥ यह अनुमान करते हैं कि राज्य देने को कहा, पर नारी के वश में हो बुलाकर वन जाने को कहा सो आज्ञा माथे पर धर, हर्ष सहित उर में, घर के समान वन को मानकर चले गये ॥ २ ॥ ऐसे पुत्र के विरह में जो अवधि चौदह वर्ष तक अपने प्राण रख छोड़ूँ, तो प्रेम की परिमिति मर्यादा मिट जाय। अपने कानों से अयश सुनना पड़े ॥ ३ ॥ रघुनन्दन से पुत्र चले गये, अब तक हम जीते हैं यह समझकर अकुला उठे। गोसाईंजी कहते हैं कि रघुनाथजी के हित श्रीदशरथमहाराज ने प्रेम को परमान कहे सत्य करके तनु त्याग किया ॥ ४ ॥

राग सोरठ।

ऐसो तैं क्यों कटु बचन कह्यो री।
राम जाहु कानन कठोर तेरो कैसो धौं हृदय रह्यो री ॥ १ ॥
दिनकरबंस पिता दसरथ से राम लखन से भाई।
जननी तू जननी तौ कहा कहौं बिधि केहि खोरि न लाई ॥ २ ॥
हौं लहिहौं सुख राजमातु ह्वै सुत सिर छत्र धरैगो।
कुलकलंक मलमूल मनोरथ तैं बिन कौन करैगो ॥ ३ ॥

ऐहैं राम सुखी सब ह्वैहैं ईस अजस मेरो हरि है।
तुलसिदास मोको बड़ो सोच तू जनम कौन बिधि भरि है ॥ ४ ॥

कैकेयी प्रति भरतजी के वचन हैं। कहते हैं कि ऐसे कठोर वचन तूने कैसे कहे कि रघुनाथजी वन को जायँ? कैसा तेरा कठोर हृदय था, जो ऐसे वचन कहे गये ॥ १ ॥ सूर्यवंश ऐसा कुल, उसमें जन्म, दशरथ से पिता, राम लक्ष्मण से भाई। ये तीन बड़ाई हमको प्राप्त हैं। उसकी जननी, हे जननी, तुझको हमारी माता होने को था! क्या कहिये, विधाता ने किसको दोष नहीं लगाया। अथवा जैसी तेरी जननी वैसी तू भई ॥ २ ॥ हमारा पुत्र राजगद्दी पर बैठ शिर पर छत्र धारण करेगा, राजा की माता हो हम सुख पावेंगी (यहाँ छोटे भाई को राज्य देना कुल को कलंक, प्रभु को वन का दुःख, भूप का तनुत्याग, माताओं को विरह) इत्यादि मल पाप उसका मूल तेरा मनोरथ है, जिससे सबको दुःख भया। ऐसा मनोरथ तेरे सिवा और कौन करेगा ॥ ३ ॥ श्रीरघुनाथजी अयोध्याजी को आवेंगे, पुरवासी सब सुखी होंगे, हमारा अयश ईश्वर हरेंगे; परन्तु तू अपना जन्म किस तरह बितावेगी यह हमको बड़ा शोच है ॥ ४ ॥

ताते हौं देत न दूखन तोहीं।
राम बिरोधी उर कठोर ते प्रकट कियो बिधि मोहीं ॥ १ ॥
सुन्दर सुखद सुसील सुधानिधि जरनि जाय जेहि जोये।
बिषबारुनी बन्धु कहियत बिधु नातो मिटत न धोये ॥ २ ॥
होते जो न सुजानसिरोमनि राम सबन मन माहीं।
तौ तेरी करतूति मातु सुनि प्रीतिप्रतीति कहाहीं ॥ ३ ॥

मृदु मंजुल साँची सनेह सुचि सुनत भरत बर बानी ।
तुलसी साधु साधु सुर नर मुनि कहत प्रेम पहिचानी ॥ ४ ॥

हे कैकेयी, रामविरोधी जो तू है, उसके कठोर उर से विधाता ने हमको प्रकट किया है, इससे तेरे सम्बन्ध से हम भी दोषी हुए। हम इसी कारण तुझको भी दोष नहीं देते ॥ १ ॥ देखने में सुन्दरता का प्रकाश, सुखदायी, सुशील, सदा शीतल, जिसके देखे से जलन ताप जाता है, काहे से सुधा का धाम है, उस चन्द्रमा को भी विष अरु वारुणी का बन्धु कहते हैं। इससे निश्चय ही नाता धोने से नहीं मिटता ॥ २ ॥ सुजानशिरोमणि श्रीरघुनाथजी यदि सबके उर में न बसे होते, अर्थात् अन्तर्यामी न होते, तो हे माता, सुन, तेरी करतूत के आगे मेरी प्रीति की प्रतीति कहाँ थी ! ॥ ३ ॥ भरतजी की कोमल सुन्दर सनेह की भरी सच्ची वाणी सुनकर गोसाईंजी कहते हैं कि भरतजी के प्रेम को पहचान कर सुर नर मुनि कहते हैं कि हे भरतजी, तुम साधु हो, तुम्हारी वाणी सत्य है ॥ ४ ॥

जो पै हौं मातुमते महँ ह्वैहौं ॥
तौ जननी जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं ॥ १ ॥
क्यों हौं आजु होत सुचि सपथन कौन मानि है साँची ।
महिमा मृगी कौन सुकृती की खलबचन बिसिख तें बाँची ॥ २ ॥
गहि न जाइ रसना काहू की कहौ जाहि जोइ सूझै ।
दीनबन्धु कारुन्य सिन्धु बिनु कौन हृदय की बूझै ॥ ३ ॥
तुलसी रामबियोग बिषम बिष बिकल नारि नर भारी ।
भरतसनेहसुधा सींचे सब भये तेहि समय सुखारी ॥ ४ ॥

श्रीकौशल्याजी से भरतजी कहते हैं कि जो हम माता कैकेयी के मत में होंगे, तो हे माता, जगत् में अपने इस मुख की स्याही कहाँ धोवेंगे? काहेसे रामविरोधी के लिये नरक में भी जगह नहीं ॥ १ ॥ आज हम शपथ करके कैसे शुद्ध होंगे? हमारी वाणी को आज कौन सत्य मानेगा। काहे से कौन सुकृती की महिमारूपी मृगी खलों के वचनरूपी बाणों से बची है? खलों से किसी की महिमा शुद्ध नहीं रहने पाई ॥ २ ॥ किसी की रसना हमारी पकड़ी नहीं रह सकती इससे जिसको जैसा सूझ पड़े सो वैसा कहे। करुणा के समुद्र दीनबंधु श्रीरघुनाथजी के विना हमारे हृदय की कौन जाने ॥ ३ ॥ गोसाईंजी कहते हैं, श्रीरघुनन्दन के वियोगरूप तीक्ष्ण विष का पान किये से अवध के सभी नर-नारी विकलता को प्राप्त थे। भरतजी ने सनेहरूपी अमृत वचन कह कर सींचा, इससे उस समय सब सुखी भये ॥ ४ ॥

काहे को खोरि केकइहि लाओ।
धरहु धीर बलि जाउँ तात मोको आजु बिधाता बाओ ॥ १ ॥
सुनिबे जोग बियोग राम को हौं न होउँ मेरे प्यारे।
सो मेरे नयनन के आगे रघुपति बनहि सिधारे ॥ २ ॥
तुलसिदास समुझाय भरत कहँ आँसु पोंछि उर लाये।
उपजी प्रीति जानि प्रभु के हित मनहुँ राम फिरि आये ॥ ३ ॥

भरतजी से कौशल्याजी कहती हैं कि कैकेयी को दोष क्यों लगाते हो? हमको विधाता ही वाम है। मैं बलिजाऊँ, हे तात, धीरज धरो। पुत्र, इसमें किसी का दोष नहीं है ॥ १ ॥ काहे से हे मेरे प्यारे पुत्र, श्रीरघुनाथजी का वियोग मैं सुनने के भी योग्य नहीं थी। सो मेरे नेत्रों के आगे रघुपति वन को सिधार

गये। मैं जीती न रही, इससे विधाता हमको वाम है॥ २॥ गोसाईंजी कहते हैं कि कौशल्याजी ने भरतजी को समझाकर आँसू पोंछ उर में लगा लिया। प्रभु के परम हितकारी भरतजी को जानकर कैसी प्रीति उपजी, मानों राम फिर आये॥ ३॥

मेरो अवध धौं कहहु कहा है।
करहु राज रघुराज चरन तजि लय लटि लोगु रहा है॥ १॥
धन्य मातु हौं धन्य लागि जेहि राजसमाज ढहा है।
ता पर मोसे प्रभु करि चाहत सब बिनु दहन दहा है॥ २॥
रामसपथ कोउ कछू कहै जनि मैं दुख दुसह सहा है।
चित्रकूट चलिहौं प्रभात ही छमियो मोहिं हहा है॥ ३॥
यों कहि भोर भरत गिरिवर कहँ मारग बूझि गहा है।
सकल सराहत एक भरत जग जनमि सुलाहु लहा है॥ ४॥
जानहिं सिय रघुनाथ भरत को सील सनेह महा है।
कै तुलसी जा को रामनाम सों प्रेमनेम निबहा है॥ ५॥

इस कुल के धर्म में धुरीण, रामभक्तशिरोमणि भरतजी हैं। तहाँ कुल का धर्म, ज्येष्ठ स्वामी सेवक लघुभाई, और "जानेहु सदा भरत कुलदीप।" इससे धर्मधुरीण भक्तों का धर्म है, सकल-कामना-हीन जो रामभक्ति रसलीन भक्त हैं, उनमें शिरोमणि भरतजी विचार करके कहते हैं कि हमारा हित प्रभु की सेवा में है सो तो यहाँ हैं नहीं, इससे अयोध्याजी में मेरा अब क्या है? कदाचित् कोई कहै कि प्रभु के चरण कमल छोड़ राज्य करो, तो उसका फल वर्त्तमान है, जो अवध के राज्य को लय कहे लीन हो रहा, आसक्त हो पड़ा रहता था, इससे प्रभु के चरणों का

वियोग हुआ। उस शोक से अवधवासी लोग लट रहे हैं, दुर्बल हो रहे हैं। सोई राज्य हमसे करने को कहते हैं॥ १॥ ताते हमारी माता धन्य है, हम धन्य हैं; क्योंकि जेहि लागि कहे हमारे राज्य करने के लिये हमारी माता ने ऐसा प्रबन्ध बाँधा, जिसमें सब राजसमाज ढहा कहे गिर गया। चक्रवर्ती ने प्राण त्याग किया, श्रीराम जानकी लक्ष्मण ने वनवास के दुःख सहे, माता विधवा भई, अवधवासी समग्र प्रजा महा आर्त्त हुई। उस पर भी मुझको प्रभु राजा बनाना चाहते हो उसका फल यह है कि विना अग्नि जला चाहते हो॥ २॥ हमारे सुख के निमित्त प्रभु को वनवास का दुःख! यह दुःख हमको दुस्सह है, सो हम सहते हैं। इससे तुमको रघुनाथजी की शपथ है, हम से मत कोई कुछ कहे। प्रभात समय हम चित्रकूट को चलेंगे। तुम भी सब साथ चलो। हम हाहा कहे चिरौरी करते हैं, क्षमा कीजिये। अब मत कोई कुछ कहे॥ ३॥ ऐसा कहकर भरतजी ने प्रभात ही मार्ग पूछकर गिरिवर चित्रकूट को पयान किया। भरतजी की रीति देख सब प्रशंसा करते हैं कि जगत् में एक भरतजी ने ही जन्म लेने का लाभ लहा है। काहे से प्रभु के वियोग में सब अवधवासी धाम ही में पड़े रहे और भरतजी राज्य का ऐश्वर्य त्याग प्रभु के सम्मुख भये। इससे जन्म के लाभ श्रीरामभक्ति के अधिकारी हुए॥ ४॥ भरतजीका शीलमय स्वभाव और प्रभु में स्नेह इत्यादि महा कहे बड़ा भारी है। उसे केवल राम जानकी जानते हैं, अथवा गोसाईंजी कहते हैं कि रामनाम से प्रेम-सहित नेम जिनका निभा है, जो रामानुरागी हैं, वे जानते हैं॥ ५॥

माई हौं अवध कहा रहि लैहौं।
राम लखन सिय चरन विलोकन कालिह काननहिं जैहौं॥ १॥

जद्यपि मोते कै कुमात ते ह्वै आई अतिपोची।
सनमुख गये सरन राखहिंगे रघुपति परमसकोची॥ २॥
तुलसी यों कहि चले भोर ही लोग विकल सँग लागे।
जनु वन जरत देखि दारुन दव निकसि विहँग मृग भागे॥ ३॥

अवधवासियों से भरतजी कहते हैं—भाई, हम अयोध्याजी में रहकर क्या पावेंगे? अभिप्राय यह कि जिससे जग में अयश तथा परलोक में दुःख हो, उस वस्तु को हम नहीं ग्रहण करेंगे। इससे श्रीराम लक्ष्मण जानकी के चरण विलोकने को कल वन को हम जायँगे। कोई संदेह करे कि भरतजी फिर अवध को क्यों आये इसका उत्तर यह है कि आप सेवक हो स्वामी की आज्ञा पाकर स्वामी का कार्य करने को आये। उस पर भी डर मान अवध में ऐश्वर्य को पीठ दे नन्दिग्राम में कार्य करते रहे॥ १॥ भरतजी कहते हैं, यद्यपि हमसे कुमाता से पोची कही अत्यन्त बुराई भई, तथापि सम्मुख जाने पर शरण में रक्खेंगे; क्योंकि रघुपति परम सकोची हैं। इससे हम को भरोसा है॥ २॥ गोसाईंजी कहते हैं कि ऐसे वचन कहकर भरतजी भोर ही चित्रकूट को चले। अवधवासी लोग विकल थे, वे सब भरतजी के संग ही चले। महादावानल लगने पर वन को जलता देख विहंग पक्षी और मृग विकल हो वन से निकलकर जैसे भागे तैसे ही रामविरह तप्त अवधवासी चले॥ ३॥

शुक सों गहबर हिय कह सारो।
वीर कीर सिय राम लखन बिन लागत जग अँधियारो॥ १॥
पापिनि चेरि अयानि रानि नृप हित अनहित न विचारो।
कुलगुरु सचिव साधु सोचत विधि को न बसाइ उजारो॥ २॥

अवलोके न चलत भरि लोचन नगर कुलाहल भारो ।
सुने न वचन करुनाकर के जब पुर परिवार सँभारो ॥ ३ ॥
भैया भरत भावते के सँग वन सब लोग सिधारो ।
हम पर पाइ पींजरन तरसत अधिक अभागि हमारो ॥ ४ ॥
सुनि खग कहत अम्ब मौनी रहु समुझि प्रेमपथ न्यारो ।
गये ते प्रभु पहुँचाय फिरे पुनि करत करम गुन गारो ॥ ५ ॥
जीवन जग जानकी लखन को मरन महीप सँवारो ।
तुलसी और प्रीति की चरचा करत कहा कछु चारो ॥ ६ ॥

गहवर कहे व्याकुल हृदय हो सारिका तोते से कहती है--भाई कीर. श्रीराम जानकी लक्ष्मण विना हमको जग अँधियारा लगता है ॥ १ ॥ इसका हेतु कहती है. चेरी मन्थरा पापिनी कारण का मूल हुई । इसका कहा मानकर निर्बुद्धि कैकेयी ने समग्र उपद्रव रचा । उसको देख महाराज ने अपना हित-अहित नहीं विचारा । उसका फल प्राप्त हुआ । उसको देख कुलगुरु वशिष्ठ, सचिव सुमन्तादि, साधु अपर सज्जन, सब सोचते हैं कि विधाता ने किसे बसाकर नहीं उजारा ॥ २ ॥ जिस समय श्रीरघुनाथजी चले उस समय नेत्र भर देखे नहीं । जिस समय पुर और परिवार का सँभाल कर रहे थे, उस समय विविध भाँति के वचन कहे हैं, करुणा करके उन वचनों को नहीं सुना । काहे से नगर में कोलाहल कहे भारी शब्द होता था ॥ ३ ॥ प्यारे भैया भरत के साथ अब सब अवधवासी लोग चित्रकूट को सिधारे, और हम पर पंख पाये हैं, एक क्षण में जाते, सो परवश पींजड़ों में पड़े तरसते हैं । इससे हमारा अभाग्य अधिक है ॥ ४ ॥ ऐसे वचन सुन तोता कहता है, माता मैना, प्रेम का मार्ग न्यारा

है। उसको समुझके मौनी कहे मौन हो रहो। काहेसे जो प्रभु के संग गये, वे पहुँचाकर मन में कर्म के गुणनको गारो कहे निन्दा करते फिर लौट आये ॥ ५ ॥ जीवन का लाभ लक्ष्मण जानकीजी को मिला और मरण महाराज दशरथ ने अपना सुधारा। गोसाईंजी कहते हैं कि और कोई प्रीति की चर्चा नाहक करता है? और का कौन चारा वश है? काहे से न संग जा सके, न तनु त्याग सके ॥ ६ ॥

कहै शुक सुनहु सिखावन सारो।
बिधि करतब बिपरीत बाम गति रामप्रेमपथ न्यारो ॥ १ ॥
को नर नारि अवध खग मृग जेहि जीवन राम ते प्यारो।
विद्यमान सब के गवने वन वदन करम को कारो ॥ २ ॥
अम्ब अनुज प्रिय सखा सुसेवक देखि विषाद बिसारो।
पच्छी परबस परे पींजरन लेखो कौन हमारो ॥ ३ ॥
रहि नृप की बिगरी है सब की अब एक सँवारनहारो।
तुलसी प्रभु निज चरन पीठि मिस भरत प्रान रखवारो ॥ ४ ॥

तोता कहता है, मैना, सिखावन सुनो। हमारा करतब जो कर्म है, सो विधि के विपरीत होने से कर्म की वाम गति कहे उलटी गति हो जाती है, सुख में दुःख, दुःख में सुख। कर्म संसार में एकरस नहीं निभता है। राम के प्रेम का पथ जो भक्ति है, सो न्यारी सदा एकरस है ॥ १ ॥ अब कर्म का निषेध करते कहते हैं कि अयोध्या में खग, मृग, नर, नारी, ऐसा कौन है, जिसको अपना जीव राम से प्यारा है। सबको श्रीराम जीव से बढ़कर प्यारे रहे। तिन सबके विद्यमान कहे नेत्रों के आगे श्रीरघुनन्दन वन को चले गये। न किसी ने प्राण छोड़ दिये, न

कोई संग सिधारा इससे कर्म के वदन में स्याही लगी । कहते हैं, राम प्राणसे प्यारे चले गये, प्राण रह गये, इससे कर्म का कुछ नहीं है ॥ २ ॥ अम्ब जो माता हैं, अनुज जो बन्धुवर्ग हैं, प्रिय जो सखा हैं, और सुसेवक, उन सबने देखकर जो विषाद था, सो सब भुलाकर संतोष किया । फिर हम तो पक्षी हैं, उस पर परवश पींजरे में पड़े ! हमारा कौन लेखा ॥ ३ ॥ एक नृपति की तो रही कि प्रेम को सोचकर प्राण तजे, और सब की बिगड़ गई। परन्तु अब एक बात सँवारनेवाली है । गोसाईंजी कहते हैं कि चरण पीठि जो खराऊँ हैं, तिनको प्रभु ने दिया, सोई मानों इस बहाने से प्रभु भरतजी के प्राणों के रखवाले हुए ॥ ४ ॥

ता दिन सिंगबेरपुर आयो ।
रामसखा तें समाचार सुनि बारि बिलोचन छायो ॥ १ ॥
कुस साथरी देखि रघुपति की हेतु अपनपौ जाना ।
कहत कथा सियराम लखन की बैठेहि रैनि बिहानी ॥ २ ॥
भोरहि भरद्वाज आस्रम है करि निषादपति आगे ।
चल्यो जनु तक्यो तड़ाग तृषित गज घोर घाम के लागे ॥ ३ ॥
बूझत चित्रकूट कहँ जेहि तेहि मुनि बालकन बतायो ।
तुलसी मनहुँ फनिक मनिढूंढ़त निरखिहरखिउठिधायो ॥ ४ ॥

उस दिन शृंगवेरपुर आये । वहाँ राम के सखा निषाद से समाचार सुने कि प्रभु चित्रकूट में हैं, सो सुन भरतजी के नेत्रों में जल भर आया ॥ १ ॥ वहाँ प्रभु की विश्रामस्थली की साथरी देख उसका कारण अपने को जान उर में महादुःख है । इससे श्रीराम, जानकी, लक्ष्मणजी के सुखविभव त्याग व दुःखग्रहण इत्यादि की कथा कहते वहाँ रात्रि व्यतीत हुई ॥ २ ॥ प्रभात

प्रयाग में भरद्वाज के आश्रम में वास कर वहाँ से निषादपति को आगे कर चले, कैसे, यथा गज घोर कहे महाकठिन घाम लगने से तनु तपित हो तृषा सहित यथा तडाग देखकर चले, तथा विरह-तप्त दरशतृषित भरतजी प्रभु का रूप जल चित्रकूट तडाग देख चले ॥ ३ ॥ मार्ग में जो कोई मिलता उससे चित्रकूट में प्रभु आश्रम का मार्ग पूछते। तब मुनियों के बालकों ने प्रभु के वास का मार्ग बताया। उसको सुनकर भरतजी कैसे प्रसन्न हो चले, गोसाईंजी कहते हैं, मानों सर्प की मणि हेरानी, उसको ढूँढ़ते में जैसे वह मणि को देख हर्षित होकर दौड़े ॥ ४ ॥

बिलोके दूर ते दोउ बीर।
उर आयत आजानु सुभग भुज स्यामल गौर सरीर ॥ १ ॥
सीस जटा सरसीरुह लोचन बने परिधन मुनिचीर।
निकट निषंग संग सिय सोभित करन धुनत धनुतीर ॥ २ ॥
मन अंगहु तन पुलकि सिथिल भयो नलिननयनभरे नीर।
गड़त गोड़ मानों सकुच पंक महँ कढ़त प्रेम बल धीर ॥ ३ ॥
तुलसिदास दसा देखि भरत की धाये अतिहि अधीर।
लिये उठाय उर लाय कृपानिधि बिरहजनित हरि पीर ॥ ४ ॥

चित्रकूट में प्रभु के आश्रम के निकट भरतजी पहुँचे। वहाँ दूर ही से दोनों वीर श्रीराम-लक्ष्मण को देखा। वे कैसे हैं, उर जो छाती सो आयत कहे चौड़ी है, सुन्दर आजानु जानुपर्यन्त लम्बायमान भुजा हैं। श्याम श्रीरघुनन्दन गौर लक्ष्मणजी, ऐसे सुन्दर शरीर हैं ॥ १ ॥ शीश पर जटा, कमलसम नेत्र, परिधन कहे मुनिचीर वल्कलादि कटि में सोहते हैं। बाम ओर तरकस धारण किये हैं। उनके निकट जानकीजी

शोभित हैं। हाथों में धनुष-बाण धुनत कहे बारम्बार फेरते हैं॥ २॥ प्रभु को देख मन ने अगहुड़ कहे आगे को इरादा किया। तनु प्रेम से पुलक कर शिथिल है। इससे कमलसम नेत्र युगल में जल भरा है। तहाँ सकुचरूपी कीचड़ में पग गड़से जाते हैं। प्रेम के बल का धीरज है, इससे पग निकल आता है॥ ३॥ गोसाईंजी कहते हैं, कि भरतजी की ऐसी दशा देख दया-निधि जो श्रीरघुनन्दन हैं, वह अत्यन्त अधीर हो उठकर दौड़े, भरतजी को उठाकर उर में लगाकर विरह से जनित कहे उत्पन्न जो पीड़ा उसको श्रीरघुनाथजी ने हरलियाकरुणा की ओषधि से॥ ४॥

राग केदार

भरत भयो ठाढ़े कर जोरि।
है न सकत सामुहे सकुचबस समुझि मातुकृत खोरि॥ १॥
फिरिहैं किधौं फिरन कहिहैं प्रभु कलपि कुटिलता मोरि।
हृदय सोच जल भरे बिलोचन देह नेह भइ भोरि॥ २॥
बनबासी पुर लोग महामुनि किये हैं काठ के से कोरि।
दै दै स्रवन सुनिबे को जहँ तहँ रहे प्रेम मन बोरि॥ ३॥
तुलसी राम सुभाव सुमिरि उर धरि धीरजहिं बहोरि।
बोले बचन बिनीत उचित हित करुना रसहि निचोरि॥ ४॥

प्रभु के सम्मुख भरतजी हाथ जोड़ खड़े हुए। माता कैकेयी कृत जो कर्त्तव्य, उसको खोर समझ संकोचवश सामने नेत्र नहीं हो सकते॥ १॥ मन में तर्कणा करते हैं कि प्रभु अयोध्याजी को फिरेंगे या हमारी कुटिलता की कलपना कर मुझको फिर जाने को कहेंगे? यह शोच हृदय में होने से नेत्रों में जल भरा है और नेह के वश भरतजी की देह भोरी कहे देह की सुध भूल

गई ॥ २ ॥ उस समय वनवासी कोलभिल्ल आदि अवधवासी लोग और महामुनि वाल्मीकि, अत्रि अथवा वशिष्ठादि जो थे, वे कैसे भये, मानों काठ को कोरि खोदकर बनाये गये हैं। भाव यह कि जड़ से रह गये। कारण यह कि प्रभु कुसमय में क्या कहेंगे, इसे सुनने हेतु श्रवण दिये जहाँ तहाँ मन को प्रेम में डुबाये स्थिर हैं ॥ ३ ॥ गोसाईंजी कहते हैं, भरतजी प्रभु का स्वभाव समझ उर में धीरज धर बहोरि कहे फिर करुणा-रसहिं निचोरि कहे विशेष आर्त्त हो नरम वचन बोले। जो उचित कहने योग्य हैं और जिनमें सबका हित है ॥ ४ ॥

जानत हौ सबही के मन की।
तदपि कृपालु करौं बिनती सोइ सादर सुनहु दीनहितजन की १
ये सेवक संतत अनन्य अति ज्यों चातकहिं एकगति घन की।
यह बिचारि गवनहु पुनीत पुर हरहु दुसह आरति परिजन की २
मेरो जीवन जानिय इमि ज्यों जियै अहि जासु गई मनि फन की।
मेटहु कुलकलंक कोसलपति आज्ञा देहु नाथ मोहिं बन की ३
मोको जोइ लाइये लागै सोई जो उतपति कुमातु ते तन की।
तुलसिदास सब दोष दूरि करि प्रभु अब लाज करहु निजपन की ४

भरतजी कहते हैं कि हे कृपालु, तुम सबके मन की गति जानते हौ, तथापि मुझको संतोष नहीं ; इससे मैं बिनती करता हूँ। आप दीनों के हितू हैं। मैं आपका सेवक हूँ, इस-से जन की बिनती आदर सहित सुनिये ॥ १ ॥ ये जो अयोध्या-वासी हैं, ते सदा आपके अनन्य सेवक हैं। यथा चातक को एक स्वाती में मेघ की गति, केवल स्वाती की वृष्टि के बूँद को वह पीता, अन्य जल को त्यागता है, तथा अयो-

ध्यावासी आपके सिवा दूसरा नहीं जानते । प्रमाण महारामायणे । बाह्यान्तरं शृणु तथा गिरिराजकन्ये त्वत्तो वदामि रघुनाथजनस्य मुख्यम् ॥ अन्यं विहाय सकलं सदसच्च कार्य्यं रामस्य पंकजपदं सततं स्मरन्ति ॥ ऐसा विचार कर पुनीत कहे पवित्र पुर श्रीअयोध्या उसको गवनहु कहे चलो, और परिजन का दुस्सह (जो सहा न जाय) जो आपका वियोग है, उसकी आर्ति दुःख को हर लो ॥ २ ॥ मेरा जीवन इस प्रकार जानिये, जैसे किसी सर्प के फण की मणि जाती रही हो, वह जैसे जिये वैसे मुझको जानिये । हे कोशलपति, कुल का कलंक जो छोटे भाई को राज्य तथा बड़े भाई को वनवास है, उसको मेटो । पिता की आज्ञा न भंग हो, इसके हेतु हे नाथ, वन जाने की आज्ञा मुझको दो ॥ ३ ॥ हमारे इस तनु की उत्पत्ति जो कुमाता से है, तो मुझको जो दोष लगाइये, सो लगेगा । यहाँ अपने को राज्य होना भरत ने दोष माना है । अतएव मुझसे "अयोध्याजी को जाओ' ऐसी बात दूर करिये न कहिये । अब अपना जो शरणागतपालन का प्रण है, उसकी लाज कीजिये ॥ ४ ॥

ताते बिचारौ धौं हौं क्यों आवों ।
तुम सुचि सुहृद सुजान सकल बिधि,
बहुत कहा कहि कहि समुझावों ॥ १ ॥
निज कर खाल खैंचि या तन की,
जो पितु पग पानहीं करावों ।
होहुँ न उऋन पिता दसरथ ते,
कैसे ताके बचन मेटि पति पावों ॥ २ ॥

तुलसिदास जाको सुजस तिहूँ पुर,
क्यों तेहि कुलहिं कालिमा लावों।
प्रभु रुख निरखि निरास भरत भये,
जान्यो है सबहि भाँति बिधि बावों ॥ ३ ॥

हे तात, भरतजी, विचारो तो, हौं क्यों आवों अर्थात् हम काहे को वन को आये हैं या हमको आवो अयोध्याजी को। तुम तो पवित्र बंधु सब विधि से धर्मशास्त्र में सुजान हो। तुमको बहुत क्या कहकर समझाऊँ ॥ १ ॥ रघुनाथजी कहते हैं कि जो हम अपने हाथ से अपने तनु की खाल खींचकर पिता के पाँव की पनहीं बनवावें, उस पर भी पिता दशरथ से उऋण नहीं हो सकता। उनके वचन त्यागकर कैसे पति पावों कहे कैसे मर्यादा पाऊँ ॥ २ ॥ गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु ने कहा कि जिन दशरथ का उज्ज्वल यश तीनों लोक में छाया है, उनके कुल में हम क्यों कालिमा कहे स्याही लगावें। ऐसे वचन सुन न लौटने का प्रभु का रुख देख भरतजी निराश भये। यह जाना कि सब विधि से विधाता हमारे बाम है ॥ ३ ॥

राग सोरठ

बहुरो भरत कह्यो कछु चाहैं।
सकुचसिंधु बोहित बिबेक करि बुधि बल बचन निबाहैं ॥ १ ॥
छोटे हुते छोह करि आये मैं सामुहे न हेरे।
एकहि बार आज बिधि मेरो सील सनेह निबेरे ॥ २ ॥
तुलसी जो फिरिबो न बनै प्रभु तौ हौं आयसु पावों।
घर फेरिये लखन लरिका हैं नाथ साथ हौं आवों ॥ ३ ॥

भरतजी निराश तो हुए पर उस पर भी कुछ कहा चाहते हैं। किन्तु सकुचसिन्धु के पार नहीं जा सकते। उसके लिये विवेक का जहाज़ कर उस पर बुद्धि का बल सोई कर्णधार खेनेवाला हुआ। वे वचन पथिकों को पार किया चाहते हैं ॥ १ ॥ भरतजी कहते हैं कि लरिकाई से मुझपर मया कर आये और मैंने सामने कभी न ताका। सो आज एक ही वार विधाता ने हमारा शीलसनेह छुड़ा दिया ॥ २ ॥ इससे जो आपका अवध को लौटना न बने, तो लक्ष्मण अभी लड़के हैं इनको लौटाकर घर को भेजिये और मैं साथ आऊँ कहे साथ रहूँ, यह आज्ञा मुझको दीजिये॥३॥

रघुपति मोहिं संग किन लीजै।

बारबार पुर जाहु नाथ केहि कारन आयसु दीजै ॥ १ ॥

जद्यपि हौं अतिअधम कुटिलमति अपराधिनि को जायो।

प्रनतपाल कोमल स्वभाव जिय जानि सरन हौं आयो ॥ २ ॥

जो मेरे तजि चरन आन गति कह्यो हृदय कछु राखी।

तौ परिहरहु दयाल दीनहित प्रभु अभि अन्तर साखी ॥ ३ ॥

ताते नाथ कहौं मैं पुनि पुनि प्रभु पितु मातु गोसाईं।

भजनहीन नरदेह बृथा खर स्वान फेरु की नाईं ॥ ४ ॥

भरतबचन सुनि स्रवन नयनराजीव नीर भरि आये।

तुलसिदास प्रभु परमकृपा गहि बाँह बन्धु उर लाये ॥ ५ ॥

भरतजी कहते हैं, हे रघुपति, मुझको साथ क्यों नहीं लेते। हे नाथ, अयोध्याजी में जाने की मुझको क्यों आज्ञा देते हो ॥ १ ॥ यद्यपि मैं अधम कुटिलमति अपराधिनी के पेट से प्रकट हुआ हूँ, तथापि आपको कोमलस्वभाव प्रणतपाल जान शरणागत

आया ॥ २ ॥ जो आपके चरण छोड़ मेरे और गति हो अथवा हृदय में छल रख मुखसे कुछ और कहता होऊँ तो आप मुझको त्यागिये। हे दीन के हित आप हृदय के जाननेवाले हो । जो सांची कहता होऊँ तो हे दीनदयालु मुझको शरण लीजिये ॥ ३ ॥ जो कहो कि माता पिता की आज्ञा प्रतिपाल करो, तो माता, पिता, स्वामी सब हमारे आप ही हैं। इससे बारबार मैं कहता हूँ कि आपकी सेवा हमारा धर्म है। उसमें माता-पिता के वचन से विरोध होता है। इससे भजनहीन जो आपसे विमुख भये, तो नरदेह वृथा है। संसार में पड़े यथा खर मोह भारवाहक यथा श्वान लोभ लोलुपता यथा शृगाल मलिन वासना मलभक्षक। तहाँ यावत् लौकिक वैदिक धर्म हैं, तिनको भक्ति के विरोधी जानकर भक्तजन त्यागते हैं। प्रमाण शिवसंहितायाम् ॥श्लोक॥ लौकिका वैदिका धर्मा उक्ता ये गृहवासिनाम् ॥ त्यागं तेषां तु पातित्यं सिद्धौ कामविरोधिता। और यावत् सम्बन्ध के भाव जग से त्याग कर सब नाते प्रभु में रखते हैं। प्रमाणं शिवसंहितायां हनुमद्वाक्यम्॥ पुत्रवत्पितृवद्रामोमातृवन्ममसर्वदा ॥ श्यालवद्रामवद्रामः श्वश्रुवच्छ्वशुरादिवत् ॥ पुत्रीवत्पौत्रवद्रामो भागिनेयादिवन्मम ॥ सखीवत्सखिवद्रामः पत्नीवदनुजादिवत् ॥ राजवत्स्वामिवद्रामो भ्रातृवद्बन्धुवत्सदा ॥ धर्मवत्अर्थवद्रामः काममोक्षादिवन्मम ॥ व्रतवत्तीर्थवद्रामः सांख्ययोगादिवत्सदा ॥ दानवज्जपवद्रामो यागवन्मंत्रवद्बलम् ॥ राज्यवत्सिद्धिवद्रामोयशोवत्कीर्तिवन्मम ॥ घृतादिरसवद्रामोभक्ष्यभोज्यादिवत्समे ॥ गोसाईंजी बारंबार लिखते हैं—"जहँ लगि नात नेह या जग में प्रीति प्रतीति सगाई। ते सब तुलसिदास मेरे प्रभु सिमिटि होइँ यकठाईं ॥" इति विनय। और "जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥ सब तजि तुमहिं रहै लव लाई। तिनके हृदय बसहु

रघुराई ॥" इति अयोध्याकाण्डे और "सबकी ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँधि वर डोरी ॥" इति सुन्दरकाण्डे । "ये सब रामभक्ति के बाधक ॥" इति किष्किन्धा । और "राम मात पितु बन्धु सुजन गुरु पूज्य परमहित । साहेब सखा सहाय नेह नातो पुनीन चित ॥" इति कवितावली । और भक्तों को ऐसे भी चाहिये ॥ यथा—"हरि हर निन्दा सुनहिं जे काना । होहि पाप गोघात समाना ॥ सन्त सम्भु श्रीपति अपबादा । सुनिये जहँ तहँ असि मरजादा ॥ काटी जीभ जो तासु बसाई । स्रवन मूँदि नतु चलिय पराई ॥" प्रमाण शिवसंहितायां हनुमद्वाक्यम्—रामादन्यं वदेच्छ्रेष्ठं यो वै पाण्डित्यमात्रतः ॥ संतसहृदयस्तस्य जिह्वां छिद्यामहं मुने ॥ तहाँ कैकेयी के वध करने में भरतजी ने केवल रघुनाथजी का डर माना । यथा प्रमाण वाल्मीकीये—हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम् ॥ यदि मां धार्म्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् ॥ इससे जन्मपर्यंत त्याग किया । यथा कैकेयी जब तक जीती रही तब तक भरत ने उससे भूलकर भी अच्छी तरह बात नहीं की ॥ ४ ॥ ऐसे निश्छल वचन भरतजी के श्रवणों से सुन प्रभु के कमलसम नेत्रों में जल भर आया । गोसाईंजी कहते हैं कि श्रीरघुनाथजी ने अत्यन्त कृपा करके बन्धु भरत की बाँह पकड़ उन्हें हृदय से लगा लिया ॥ ५ ॥

काहे को मानत हानि हिये हौ ।
प्रीति नीति गुन सील धरम कहँ तुम अवलम्ब दिये हौ ॥ १ ॥
तात जात जानिबे न ये दिन करि प्रमान पितुबानी ।
ऐहौं बेगि धरहु धीरज उर कठिन कालगति जानी ॥ २ ॥
तुलसिदास अनुजहि प्रबोधि प्रभु चरनपीठ निज दीन्हे ।
मनहुँ सबन के प्रानपाहरू भरत सीस धरि लीन्हे ॥ ३ ॥

प्रीति के आठ अंग यथा—प्रनय, प्रेम, आसक्ति, पुनि लगन, लाग, अनुराग। नेह-सहित सब प्रीति के, जानब अंग विभाग॥ नीति, प्रथम राजनीति, उसके चार अंग साम, दाम, दण्ड, भेद। दूसरी लोकनीति, उसके चार अंग धीरज, संतोष, विचार, नम्रता। गुण लोकव्यापी बत्तीस अंग॥ शुक्ल रूप अरु सील गुन सत्य पराक्रम जान॥ सुचित आत्मअभ्यास गनि वर विचार परिमान॥ सास्त्रज्ञान ज्ञानी परम पूरन परतियत्याग॥ मानी पुनि लोकेस गनि औ दासत्व-विभाग॥ विद्या पुष्टि बखानिये प्रियवादी सुभ अंग॥ आत्मकाम सूछम बहुत गुन परिपूरन अंग॥ मात पिता गुरुभक्त है मन वच कर्महि जान॥ रूप कर्न जित इन्द्रि औ दाता धर्मनिधान॥ सुरपूजन निद्रा अलप स्वल्पअहारी होइ॥ ये बत्तिस लच्छननजुत विरले जग में कोइ॥ पुनः—जग-व्यापक जगबसिकरन जगत सराहत जाहि॥ जग चाहत जेहि तेहि सुकवि गुनगन कहिये ताहि॥ धर्म के चार अंग सत्य, शौच, तप, दान इत्यादि। रघुनाथजी कहते हैं कि हे भरतजी, प्रीति, नीति, गुण, शील, धर्मादि, इन सबको तुम अवलंब दिये हो। प्रीति आदि जो जग में लोप होने लगे, तो तुम्हारा नाम लेने से रह जायँ। तुम तो ऐसे धर्मधुरीण हो। अपने हृदय में हानि काहे को मानते हो? जो कहो, चौदह वर्ष हमारा विछोह है॥ १॥ तो यह काल की गति है। जब जो होनहार है, तब उस काल में वही होता है। इससे काल की गति कठिन जानकर हृदय में धीरज धरो। हे तात, ये जे चौदह वर्ष बीतते न जानोगे। हम पिता के वचन प्रमाण कर जल्दी अवध को आवेंगे॥ २॥ गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु ने अनुज भरत को प्रबोध देकर अपने चरणपीठ खराऊँ दीं। उन्हें अपने और अवधवासियों के प्राण के पाहरू प्रहरुए जानकर भरतजी ने माथे पर धर लिया॥ ३॥

विनती भरत करत कर जोरे ।
दीनबन्धु दीनता दीन की कबहुँ परै जनि भोरे ॥ १ ॥
तुमसें तुमहिं नाथ मोको मोसे जन तुमको बहुतेरे ।
यहै जानि पहिचानि प्रीति छमिये अघ अवगुन मेरे ॥ २ ॥
यों कहि सिया राम पाँयन परि लखनलाइ उर लीन्हे ।
पुलक सरीर नीर भरि लोचन कहत प्रेमपन कीन्हे ॥ ३ ॥
तुलसी बीते अवध प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐहौ ।
तौ प्रभु चरन सरोजसपथ जीवत परिजनहिं न पैहौ ॥ ४ ॥

श्रीभरतजी हाथ जोड़े बिनती करते हैं। हे दीनवन्धु, मुझ दीन की दीनता कभी भोरे कहे भूल न जाय ॥ १ ॥ तुम सरीखा नाथ मुझको दूसरा नहीं है । मेरे एक आप ही नाथ हैं । और मुझ से सेवक आपके बहुत हैं । यह जान मेरी प्रीति पहचान मेरे अघ अवगुण क्षमा कीजिये ॥ २ ॥ ऐसे कह श्रीराम और जानकीजी के पैरों पर गिरकर लक्ष्मणजी को हृदय से लगा लिया । देह पुलकित, नेत्रों में जल भरा, प्रेम से प्रण किये कहते हैं ॥ ३ ॥ हे प्रभु, जो अवधि चौदह वर्ष बीते बाद प्रथम दिन अयोध्याजी में न आओगे, तो आपके चरणकमल की शपथ है, परिजनहिं कहे मुझको जीवत न पाओगे ॥ ४ ॥

अवसि हौं आयसु पाय रहौंगो ।
जनम केकयीकोखि कृपानिधि क्यों कछु चपरि कहौंगो ॥ १ ॥
भरत भूप सिय राम लखन बन सुनि सानन्द सहौंगो ।
पुर परिजन अवलोकि मातु सब सुख सन्तोष लहौंगो ॥ २ ॥

प्रभु जानत जेहि भाँति अवधि लौं बचन पालि निबहौंगो ।
आगे की बिनती तुलसी तब जब फिरि चरन गहौंगो ॥ ३ ॥

आपकी आज्ञा पाकर अवश्य अयोध्याजी में रहूँगा; क्योंकि हे कृपानिधान, कैकेयी की कोख से जन्म लेकर मैं कैसे कुछ बात चपरिकै साहस करके कहूँगा ॥ १ ॥ भरत को राज्य, इसी हेतु श्रीराम जानकी लक्ष्मण वन में, ऐसे वचन खुशी से सहूँगा पुर में परिजन और माताओं को दुःखित देख सुखपूर्वक सन्तोष को प्राप्त होऊँगा ॥ २ ॥ इसका हाल, प्रभु, आप जानते हो कि मैं जिस भाँति अवधि तक आपके वचन को पालकर निर्वाह करूँगा। जब आप अयोध्याजी को आवेंगे, तब फिर जब चरण गहूँगा, तब आगे की बिनती करूँगा अभिप्राय यही कि आप राज्य-सिंहासन पर विराजमान हों, यह शेष है ॥ ३ ॥

प्रभु सों हौं ढीठौ बहुत दई है ।
कीनी छमा नाथ आरति ते कही कुजुक्ति नई है ॥ १ ॥
यों कहि बारबार पाँयन परि पावरि पुलकि लई है ।
अपनो अदिन देखि हौं डरपत जेहि बिषबेलि बई है ॥ २ ॥
आये सदा सुधारि गोसाईं जन ते बिगरि गई है ।
थके बचन परतहि सनेहसरि पर्यो मनो घोर घई है ॥ ३ ॥
चित्रकूट तेहि समय सबन की बुद्धि बिषाद दई है ।
तुलसी राम भरत के बिछुरत सिला सप्रेम भई है ॥ ४ ॥

मैंने प्रभु से बहुत ढिठाई की है, काहे से आपकी आज्ञा मानकर चुप रहना हमारा धर्म है, सो मैंने बारबार आपसे कहा। यह नई कुयुक्ति है। सो आरत कहे दुःखित हूँ, इससे कहा। यह

जानकर हे नाथ, क्षमा कीजिये ॥ १ ॥ ऐसा कह बारबार पाँव पड़ भरतजी ने प्रेम में पुलकि पाँवरी खड़ाऊँ लीं और कहा कि हम अपना अदिन देखकर डरते हैं। काहेसे कैकेयी ने जो विष-बेलि बो दी, उसके फल से यह हाल हुआ कि जो श्रीदशरथजी विना जाने खा गये, तिनको तुरंत मृत्यु प्राप्त हुई, और अवध-वासियों ने जब जाना तब तिरस्कार कर भागे। उनके हवा लग गई, तो मृतसरीखे हो गये, इसी से हम डरते हैं ॥ २ ॥ हे गोसाईं, जन जो मैं हूँ, उससे बिगड़ गई है, तो आप सदा जन की बिगड़ी को सँवारते आये हैं। इतना कह वचन थकित भये, चुप हो रहे, मानों सनेहरूप नदी को पैरते में घोर घई कहे कठिन धार में पड़े हैं ॥ ३ ॥ उस समय चित्रकूट में सबकी बुद्धि का विषाद ने नाश किया। गोसाईंजी कहते हैं कि श्रीराम और भरत के बिछुड़ते में चैतन्य की कौन कहे, जड़ शिला भी प्रेमवश कठोरता तज नम्रता को प्राप्त हुई ॥ ४ ॥

जब ते चित्रकूट ते आये।
नन्दिग्राम खनि अवनि डासि कुस पर्नकुटी करि छाये ॥ १ ॥
अजिन बसन फल असन जटा धरि रहत अवधि चित दीन्हे।
प्रभुपदप्रेम नेम ब्रत निरखत मुनिन नमित मुख कीन्हे ॥ २ ॥
सिंहासन पर पूजि पादुका बारहिंबार जुहारे।
प्रभुअनुराग माँगि आयसु पुर जन सब काज सँवारे ॥ ३ ॥
तुलसी ज्यों ज्यों घटत तेज तन त्यों त्यों प्रीति सवाई।
भये न हैं नहिं होहिंगे कबहूँ भुवन भरत से भाई ॥ ४ ॥

जब से चित्रकूट से भरतजी आये, तब से नंदिग्राम खोदकर साढ़े तीन हाथ तले भूमि पर कुश बिछाकर पत्तों की कुटी छाकर

उसमें वास करने लगे ॥ १ ॥ अजिन मृगचर्म के वसन धारण किये फल-भोजन करते, शीश पर जटा, चौदह वर्ष की अवधि में चित्त लगाये रहते। प्रभु के पदकमलों में मन, प्रेम की उमंग से नेत्रों से जल बहता था। नेम कहे त्रिकालस्नान, किसी को स्पर्श न करना इति शौच नेम। एक बार अल्पभोजन, किसी की वस्तु न ग्रहण करना इति सन्तोषनेम। जल, अग्नि, शीत का सहन इति तपनेम। मंत्र संख्या नित्य जप नेम। प्रभु हमारा कार्य पूर्ण करेंगे, यह ईश्वरनिष्ठा नेम। व्रत, प्रथम अनन्यता व्रत, एक भरोसा, दूसरा चांद्रायणादि व्रत इत्यादि। भरतजी के ये नियम व व्रत देख मुनियों का मुख नमित होता है एक तो राजकुमार, दूसरे थोड़ी उमर, तीसरे राज्य का सुख त्यागे, इससे मुनियों को लज्जा होती है कि ऐसा हम भी नहीं कर सकते ॥ २ ॥ प्रभु की जो पादुका हैं, तिनको सिंहासन पर धर अनुराग से पूजते और बारबार जुहार कर आज्ञा माँग पुर के जनों के काज सँवारते हैं ॥ ३ ॥ गोसाईंजी कहते हैं कि ज्यों ज्यों तनु का तेज पुष्टता घटती है, त्यों त्यों प्रीति बढ़ती जाती है। भरतसम भाई भुवन में न हुआ, न है, न कभी होगा ॥ ४ ॥

राग रामकली

राखी भगति भली भलाई भली भाँति भरत।
स्वारथ परमारथ पथी जै जै जग करत ॥ १ ॥
जो ब्रत मुनिबरन कठिन मानस आचरत।
सो ब्रत लिये चातक ज्यों सुनत पातक हरत ॥ २ ॥
सिंहासन सुभग रामचरन पीठ धरत।
चालत सब राजकाज आयसु अनुसरत ॥ ३ ॥

आपु अवध बिपिन बंधु सोचजरनि जरत।

तुलसी सम बिषम सुगम अगम लखि न परत ॥ ४ ॥

कवि की उक्ति है परमार्थपथ में भक्ति जगत् में भलाई स्वार्थपथ में दोनों को भरत ने भली भाँति राखी रक्खा है। भरत स्वार्थ परमार्थ दोनों मार्गों के पथिक हैं। ऐसा कहकर सब जग जयजय-कार करता है ॥ १ ॥ मुनियों में जो श्रेष्ठ, तिनका मन से सोचने में भी जो कठिन है, वचन और कर्म की कौन कहे, ऐसा जो अनन्य व्रत है ताको धारण किये हैं। वचन, मन, कर्म तीनों से परिपक्व वह व्रत है। यथा चातक को स्वातीबूँद आधार है, वैसे भरत का वह व्रत आधार है। कैसा व्रत है, जिसके सुने से पातक नष्ट होते हैं! अनन्य प्रमाण शिवसंहितायाम्—मधुरे भोजने पुंसों विषवद्भोजने मलम् ॥ मलं स्यादन्य देवानां सेवनं फलवाञ्छया ॥ तस्मादनन्यसेवीसन्सर्वकाम-पराङ्मुखः ॥ जितेन्द्रियमनःकायो रामं ध्यायेदनन्यधीः ॥ सुन्दरसिंहासन पर रामचरण पीठि कहे खड़ाऊँ, तिनको धरते हैं, इत्यादि परमार्थ पथ में भक्ति भली भाँति रक्खी। उन्हीं खड़ा-उओं से आज्ञा माँग राज का काज चालत कहे करते हैं। यह स्वार्थ पथ में भलाई भली भाँति रक्खी आप तौ भरतजी अवध में हैं, बंधु श्रीरघुनन्दन वन में हैं, इस शोचरूपी जलन में भरत जी जलते हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि सम और सुगम श्री अयोध्याजी हैं, उनमें भरतजी रहते हैं, वहाँ का सुख नहीं जान पड़ता। विषम और अगम वन पहाड़ हैं, उन पर श्रीरघु-नाथजी हैं। वहाँ का क्लेश प्रभु को नहीं जान पड़ता॥ २। ४॥

मोहिं भावत कहि आवत नहिं भरतजी की रहनि।

सजल नयन सिथिल बयन प्रभुगुनगनकहनि ॥ १ ॥

असन बसन अयन सयन धरम गरुव गहनि।
दिन दिन पन प्रेम नेम निरुपधि निरबहनि ॥ २ ॥
सीता रघुनाथ लखनबिरहपीर सहनि।
तुलसी तजि उभय लोक रामचरन चहनि ॥ ३ ॥

कवि की उक्ति है। कहते हैं, भरतजी की रहनि मुझको भाती है, परंतु कह नहीं आती। कैसी रहनि है, सजल कहे नेत्रों में जल भरा, सिथिल बैन कहे, प्रेम से कंठरोधन है, इससे गद्गद वचनों से प्रभु के गुणगण (सुशीलता, वत्सलता, करुणा, दया, उदारता, सौलभ्य, सौहार्द, कृतज्ञतादि) वर्णन कर नाम का स्मरण करना इत्यादि रामभक्त के लक्षण हैं ॥ प्रमाण महारामायणे—श्रीरामनामरसिकाः प्रपठंति भक्त्या प्रेम्णा च गद्गदगिरोऽप्यथ हृष्टलोमाः ॥ सीतायुतं रघुपतिं च विशोकमूर्तिम्पश्यंत्यहर्निशि मुदा परया च रम्यम् ॥१॥ अशन भोजन फलमूलादि, वसन वल्कलादि, अयन मन्दिर नंदिग्राम में निवास किये, शयनशय्या भूमि में कुशसाथरी बिछाये, उस पर विराजमान, धर्म कहे जो जगत् धर्म सत्य, शौच, तप, दान, दूसरा क्षत्रिय का धर्म खड्गदान, तप में शूर, धीरज, सावधान, विद्या, नीति, तीसरा श्रीराम भक्त का धर्म सत् असत् कर्म त्यागकर प्रभुपद में प्रीति। प्रमाण महारामायणे—"अन्ये विहाय सकलं सदसच्च कार्यं श्रीरामपंकजपदं सततं स्मरन्ति ॥" गुरुता कहे असत्य बात बहुत न बोलना, सत्य बात थोड़ी बोलना। प्रमाण राजनीतौ यथा—मुखरता लघुता प्रतिपादिका मुखरताहि गुरुत्वविधायिका। कथमहो हृदये हरिणीदृशां मणिगणश्चरणे खलु नूपुरः ॥ इससे धर्म गुरुता धारण किये दिन प्रति प्रेम का प्रण नियम सहित उपाधिरहित निबाहते हैं ॥ २ ॥ रघुनन्दन जानकी लक्ष्मण के वियोग-

विरह की पीड़ा को सहते हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि इस लोक में सुख का त्याग किये, परलोक में मुक्ति त्याग किये, श्रीरघुनन्दन के चरणों में मन लगाये हैं। यथा प्रयाग त्रिवेणी तीर भरतवचन—अर्थ धर्म कामादि सुख गति न चहौं निरबान। जन्म जन्म रतिरामपद यह वरदान न आन॥ ३॥

जानिहैं शंकर हनुमान लखन भरत राम-भगति।
कहत सुगम करत अगम सुनत मीठी लगति॥ १॥
लहत सुकृत चहत सकल जुगजुग जगमगति।
रामप्रेमपथ ते कबहुँ डोलत नहिं डगति॥ २॥
ऋधि सिधि बिधि पूरि सुगति जा बिनु मति अगति।
तुलसी त्यहिं सम्मुख बिन विषय ठगिनि ठगति॥ ३॥

कवि की उक्ति। भक्ति का प्रभाव शिवजी ने जाना, यथा—"प्रन करि रघुपति भक्ति दृढ़ाई। को शिवसम रामहिं प्रियभाई॥" प्रमाण शिवसंहितायां शिववाक्यम्—ज्ञात्वैवं राममंत्रार्थं मनोरामे निवेश्य च॥ राममेव सदा भद्रे जपभक्तिरसाश्रया॥ कूर्मपुराणे—श्रीरामनाम सर्वेषामद्भुतं भुक्तिमुक्तिदम्॥ जपस्व सततं भक्त्या ममेष्टं प्राणवल्लभे॥ और लक्ष्मणजी तथा हनुमान्‌जी ने रामभक्ति जानी है। यथा—"अहोधन्य लछिमन बड़भागी। रामपदारविंदअनुरागी॥" हनुमान् यथा—पवनतनय सम को बड़भागी। नहिं कोउ रामचरन अनुरागी॥ गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बारबार प्रभु निज मुख गाई॥" तत्र प्रमाण शिवसंहितायाम्॥ इदं रसज्ञहृदये लक्ष्मणानिलपुत्रयोः। धन्याः शृण्वंति भावज्ञा भक्ताः श्रीरामसीतयोः॥ अथवा भरतजी में जो रामभक्ति है, उसको शंकर, हनुमान्, लक्ष्मणजी जानते हैं। तहाँ शिवजी का तो मानस

में मुख्य संवाद है । हनुमान्‌जी का प्रमाण उत्तरकाण्डे—"बैठि देखि कुसआसन जटामुकुट कृसगात । रामराम रघुपति जपत स्रवत नयनजलजात ॥" प्रभु के उपदेश से लक्ष्मणजी ने जाना । लखन तुम्हारि सपथ पितुआना । सुचि सुबोध नहिं भरतसमाना ॥ सुनहु लखन भल भरतसरीखा । बिधिप्रपञ्च जिन सुना न दीखा॥ सो कैसी है रामभक्ति, जो कहते में सुगम लगती है, काहे से माधुर्यरसमयी बात है, इससे सुनने में भी मीठी लगती है, परंतु करते में अगम है। "सकलवासनाहीन जे रामभक्तिरसलीन।" तहाँ अनेकजन्म जप, तप, योग, वैराग्य, ज्ञान, विज्ञान से वासना-नाश होने पर शुद्ध मन जब हो, तब रामभक्ति की प्राप्ति होती है। यथा—"नरसहस्र महँ सुनहु पुरारी । कोउ यक होइ धर्म व्रत धारी ॥ धर्मसील कोटिन महँ कोऊ। सम्यक् ज्ञान सुकृत कोउ कोऊ॥ ज्ञानवन्त कोटिन महँ प्रानी । जीवन ब्रह्मलीन विज्ञानी ॥ सबते अतिदुर्लभ सुरराया। रामभक्तिरत गतमदमाया॥"तत्र प्रमाण महारामायणे-मुग्धे शृणुष्व मनुजोऽपि सहस्रमध्ये धर्मव्रती भवति सर्वसमानशीलः । तेष्वेव कोटिषु भवेद्विषयेविरक्तः सद्ज्ञानको भवति कोटिविरक्त-मध्ये ॥ तेषांहि कोटिषु सजीवनकोपि मुक्तः कश्चित्सहस्रशतजीवन-मुक्तमध्ये ॥ विज्ञानरूपविमलोऽप्यथ ब्रह्मलीनस्तेष्वेव कोटिषु सकृत्खलु रामभक्तः ॥ ये कल्पकोटिसततं जपहोमयोगैर्ध्यानैः समाधिभिरहो परबोधनिष्ठाः ॥ ते देवि धन्यमनुजा हृदि बाह्य-शुद्धा भक्तिस्तदा भवति तेष्वपि रामपादे ॥ ऐसी जो प्रभु की भक्ति है, उसकी सब चाह करते हैं ; परन्तु सुकृत से कोई एक को ही प्राप्त होती है । परन्तु लोप नहीं होती, युग युग में जगमगाती प्रसिद्ध प्रकाशमान बनी रहती है । सत्ययुग में प्रह्लाद, मनु, ध्रुव, त्रेता में पृथु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, शबरी, विभीषण, द्वापर में भीष्म, मोरध्वज, कलि में रामानुज, रामानंदआदि के द्वारा

प्रसिद्ध है। श्रीराम प्रेममार्ग से कभी डोलत कहे बिलग नहीं होती, डगत कहे किसी की हिलाई हिलती नहीं, सदा अचल है ॥ २ ॥ अब माहात्म्य कहते हैं। ऋद्धि कहे जग में ऐश्वर्य, सिद्धि कहे अणिमादि सामर्थ्य सुगति चार प्रकार की मुक्ति इत्यादि, भक्ति विना सब गति की अगति है। धर्म से ऋद्धि, तप से सिद्धि, ज्ञान से सुगति इत्यादि। बिना भक्तिपक्ष विषयरूप ठगनी ठग लेती है। भाव धर्म, तप, ज्ञान से जीव को पतित कर देती है, अर्थात् भक्ति विना जीव का कल्याण नहीं है। तत्र प्रमाण सत्योपाख्याने सूतवाक्यम्—लोके भवतु चाश्चर्यं जलाज्जन्म घृतस्य च ॥ सिकतायाश्च तैलं तु यत्नात्स्यात्तु कथंचन ॥ विना भक्ति न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते ॥ यूयं धन्या महाभागा येषां प्रीतिस्तु राघवे ॥ अन्यच्च—पठितसकलवेदः शास्त्रपारंगतो वा यमनियमपरो वा धर्मशास्त्रार्थकृद्वा ॥ अपितु सकलतीर्थव्राजको वाहिताग्निर्नहि हृदि यदि रामः सर्वमेतद् वृथा स्यात् ॥ १-३ ॥

राग गौरी

कैकेयी करी धौं चतुराई कौन ।
रामलखन सिय बनहिं पठाये पति पठये सुरभौन ॥ १ ॥
काह भलो धौं भयो भरत को लगे तरुन तनदौन ।
पुरबासिन के नयन नीर बिन कबँहु तौ देखति हौं न ॥ २ ॥
कौशल्या दिन राति बिसूरति बैठि मनहिंमन मौन ।
तुलसी उचित न होइ रोइबो प्रान गये सँग जौ न ॥ ३ ॥

श्रीकौशल्याजी की उक्ति है कि कैकेयी ने इसमें कौन धौं चतुराई की है। काहे से श्रीरामलक्ष्मण जानकी को वन को भेजा और पति को देवलोक भेजकर आप विधवा भई ॥ १ ॥ इसमें भरत

का क्या भला भया, जो युवावस्था को तनदौन लगे। भाव विरह पीड़ा में तप्त रहते हैं। और पुरवासियों के ऐसे आँसू गिरते हैं कि विना जलके नेत्र मुझको कभी उनके नहीं देख पड़ते ॥ २ ॥ श्रीकौशल्या जी मौन बैठी मनहीमन बिसूरती हैं, क्या चिन्तन करती हैं कि हमको रोना उचित नहीं, काहेसे जो हमारे प्राण रघुनन्दन के साथ न गये, तो हमारा रोना झूठ है ॥ ३ ॥

हाथ मींजिबो हाथ रह्यो।
लगी न संग चित्रकूटहु ते ह्यां कहँ जात बह्यो ॥ १ ॥
पति सुरपुर सिय राम लखन बन मुनिब्रत भरत गह्यो।
हौं रहि घर मशान पावक ज्यों मरिबो मृतक दह्यो ॥ २ ॥
मेरो हिय कठोर करिबे कहँ बिधि कहुँ कुलिश लह्यो।
तुलसी बन पहुँचाइ फिरी सुत क्यों कछु परत कह्यो ॥ ३ ॥

श्रीकौशल्याजी कहती हैं कि हम को हाथ मींजिबो मलना हाथ रहा। काहेसे हम चित्रकूट से भी रघुनन्दन के साथ नहीं लगीं। हमारे विना यहाँ क्या बिगड़ा जाता था, जिसके हेतु लौटीं ॥ १ ॥ पतिसे सुख, सो सुरलोक को गये। पुत्र के देखने का सुख, सो राम जानकी लक्ष्मण वन को गये, भरत यहाँ से मुनिव्रत धारण किये चले गये। हम घर में कैसे रहीं। जैसे मशान की अग्नि मृतक जलाती है, सो अशुभ होती है, वैसे हम अपनी मृत्यु, सोई एक मृतक है, उसको जलाकर मशान की अग्नि भई। भाव हमने मृत्यु अंगीकार नहीं की ॥ २ ॥ हमारा हृदय कठोर करने को विधाता ने कहीं कुलिश पाया, उसीसे हमारा हृदय कठोर बना दिया; काहेसे हम पुत्र को वन पहुँचाकर फिर आईं। इससे कुछ कहते नहीं बनता ॥ ३ ॥

हौं तो समुझि रही अपनो सो।
राम लखन सिय की सुषमा कहुँ भयो सखी सपनो सो ॥ १ ॥
जिनके बिरह बिषाद बढ़ावन खग मृग जीव दुखारी।
मोहिं कहा सजनी समुझावति हौं तिनकी महतारी ॥ २ ॥
भरतदसा सुनि सुमिरि भूपगति देखि दीन पुरबासी।
तुलसी राम कहति हौं सकुचति ह्वैहै जग उपहासी ॥ ३ ॥

सखी समुझाती हैं, तिनसे कौशल्याजी कहती हैं कि हे सखी, हमको क्या समझाती हो। हम तो आपहीसे समझ रही हैं। काहेसे श्रीराम लक्ष्मण जानकी की सुषमा कहे शोभा, सो हम को सपने का सा देखना भया है ॥ १ ॥ जिन राम जानकी लक्ष्मण के विरह-दुख बढ़ाने में पक्षी, मृग आदि जीव दुःखित हैं, तिनकी हम माता होकर जीती हैं। इससे हे सजनी, हमको क्या समझाती हो ॥ २ ॥ राजसुख त्यागकर प्रभु-विरह में तप्त हैं, ऐसी दशा भरत की सुन, रघुनन्दन के विरह में तुरंत तनु त्यागा, ऐसी गति भूप की सुमिरकर, प्रभु-वियोग में पुरवासी दुःखित देखकर राम का नाम लेते भी मुझको संकोच लगता है ॥ ३ ॥

आली हौं इनहिं बुझावहुँ कैसे।
लेत हिये भरि भरि पति को हित मातु हेतु सुत जैसे ॥ १ ॥
बारबार हिहिनात हेरि उत जो बोलै कोउ द्वारे।
अंग लगाइ लिये बारे ते करुनामय सुत प्यारे ॥ २ ॥
लोचन सजल सदा सोवत से खान पान बिसराये।
चितवत चौंकि नाम सुनि शोचत रामसुरति उर आये ॥ ॥ ३

तुलसी प्रभु के बिरह बधिक हठि राजहंस से जोरे।
ऐसे दुखित देखि हौं जीवत राम लषन के घोरे॥ ४॥

श्रीकौशल्याजी कहती हैं। आली, मैं इन घोड़ों को कैसे समुझाऊँ? अपने स्वामी रघुनन्दन लक्ष्मण के देखने को हृदय में दुःख भरकर उसाँसें लेते हैं। कैसे, जैसे माता के लिये लघु अवस्था का पुत्र रोता है॥ १॥ वैसे बारबार हिहिनाते हैं। जब कोई द्वार पर बोलता है, तो सोचते हैं कि प्रभु तो नहीं आये। करुणामय प्यारे पुत्र ने इन्हें बचपन से दुलराकर अंग से लगाया है॥ २॥ घोड़ों के नेत्र आँसुओं से भरे और जैसे सोते हैं। ऐसी दशा से रहकर ये खाना पीना भुलाये हैं। जब कोई राम लक्ष्मण का नाम लेता है तो सुनकर चकित हो चितवत ताकते हैं। प्रभु की सुरति आने से हृदय में शोचते हैं॥ ३॥ गोसाईंजी कहते हैं कि श्रीराम लक्ष्मण के घोड़े राजहंस के से जोड़े हैं, तिनको विरहरूप वधिक ने ग्रसा है। कौशल्याजी कहती हैं, तिन घोड़ों को दुःखित देख मैं जीती हूँ॥ ४॥

राघव एकबार फिरि आवो।
ये बरबाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधावो॥ १॥
जे पय प्याय पोषि कर पंकज बारबार चुचकारे।
क्यों जीवहि मेरे राम लाड़िले ते अब निपट बिसारे॥ २॥
भरत सौगुनी सार करत हैं अतिप्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे मनहुँ कमलहिम मारे॥ ३॥
सुनहु पथिक जो मिलहिं राम बन कहियो मातु सँदेशो।
तुलसी और मोहिं सबहिन ते इनको बड़ो अँदेशो॥ ४॥

विरहवश कौशल्याजी कहती हैं। हे राघव, एक बार अयोध्याजी को फिर आओ। ये जो तुम्हारे वर कहे श्रेष्ठ वाजी घोड़े हैं, तिन को देख फिर वन को चले जाना ॥ १ ॥ जिन घोड़ों को दूध पिलाकर अपने करकमलों से पोसा पालन किया, बार बार चुचकारा, हे मेरे लाड़िले राम, तिनको निपट बिसार दिया। वे अब कैसे जीवें ॥ २ ॥ हे रघुनाथ, तुम्हारे अत्यन्त प्रिय जान भरत घोड़ों की तुमसे सौगुना सार कहे सेवा या प्रतिपाल करते हैं, नित्य अपने हाथ से। फिर भी वे दिन प्रति झाँवरे दुर्बल होते जाते हैं। यथा हिम पाला मारे से कमल सूख जाय ॥ ३ ॥ हे पथिको, मेरी बात सुन लो। जो कहीं वन में रघुनन्दन मिलें, तो मुझ उनकी माता का इतना संदेशा कहना कि तुम्हारी माता ने कहा है कि कुल परिवार प्रजा आदि सबसे अधिक अंदेशा मुझको इन घोड़ों का है ॥ ४ ॥

राग केदार

काहू सों काहू समाचार अस पाये।
चित्रकूट ते राम लखन सिय सुनियत अनत सिधाये ॥ १ ॥
शैल सहित निर्झर बन मुनिथल देखि देखि सब आये।
कहत सुनत सुमिरत सुखदायक मानस सुगम सोहाये ॥ २ ॥
बड़ि अवलम्ब बाम बिधि बिघटित बिषम बिषाद बढ़ाये।
सिरससुमनसुकुमार मनोहर बालक बिंध चढ़ाये ॥ ३ ॥
अवध सकल नर नारि बिकल अति अकनि बचन अनभाये।
तुलसी राम बियोग शोकवश समुझत नहिं समुझाये ॥ ४ ॥

किसी पथिक से प्रभु के कुशल के समाचार पुरवासी परस्पर कहते हैं कि हमने सुना, श्रीराम लक्ष्मण जानकी चित्रकूट से

अन्यत्र कहीं चले गये ॥ १ ॥ वहाँ के पर्वत, नदी, झरना, वन, मुनियों के आश्रम आदिको पथिक जो देख आये, उन्होंने हमसे कहा है। वहाँ की शोभा कहते और सुमिरते में सुखदायक है, बसने का सुख कौन कहे। मनसे सुगम और सुहाते हैं ॥ २ ॥ ऐसे वचन सुन दूसरा कहत , देखो तो, बड़ा जो अवध का राज्य, उसका अवलंब युवराज होना प्रभु का, उसको विधाता ने विघटित कहे तोड़ डाला और विषम विषाद कठिन दुःख को बढ़ा दिया। काहेसे सिरस के फूलसम कोमल, मन के हरनेवाले बालक श्रीराम लक्ष्मण को विन्ध्याचल पर्वत पर चढ़ा दिया ॥ ३॥ ऐसे अनभाये वचन को अकनि कहे सुन समझ कर व्याकुल गोसाईंजी कहते हैं कि रघुनन्दन के वियोग-दुःख के वश अवधवासी व्याकुल हैं, इससे समझाये से समझते नहीं ॥ ४ ॥

सुनी मैं सखी मंगल चाह सुहाई।
सुभ पत्रिका निषादराज की आज भरत पहँ आई ॥ १ ॥
कुँवर सो कुशलछेम तेहि अवसर कुलगुरु कहँ पहुँचाई।
गुरु कृपालु संभ्रम पुर घरघर सादर सबहिं सुनाई ॥ २ ॥
बधि बिराधु सुर साधु सुखी करि ऋषिसिख आसिख पाई।
कुम्भज शिष्य समेत संग सिय मुदित चले दोउ भाई ॥ ३ ॥
रेवा बिन्ध सुपास मध्य थल बसे हैं परनगृह छाई।
पन्थकथा रघुनाथ पथिक की तुलसिदास सुनि गाई ॥ ४ ॥

पुर की स्त्री परस्पर कहती हैं, हे सखी, मैंने सुन्दर मंगल की चाह खबर सुनी है। प्रभु के शुभ क्षेम कुशल की पत्रिका निषादराज की लिखी आज भरतजी के पास आई है ॥ १ ॥ उस पत्रिका को कुँअर भरतजी ने वशिष्ठजी के पास प्रभुजी की कुशलक्षेम

पहुँचाने को भेजा है। उसको कृपालु गुरु न संभ्रम हर्षपूर्वक शीघ्र ही आदर सहित पुर में घर घर में सबको सुनाया है ॥ २ ॥ उसका हाल कहती हैं। मार्ग में विराध-वध किया उससे देवता व साधुओं को सुख हुआ। आगे अगस्त्यादि ऋषियों का खल-वधादि सिखावन व आशीर्वाद पाकर कुम्भज शिष्य सुतीक्ष्ण व जानकी सहित आनन्द से दोनों भाई आगे को चले ॥ ३ ॥ रेवा कहे नर्मदा और विन्ध्याचल के बीच में सुपास थल पंचवटी में पत्तों से मन्दिर छाकर वहाँ निवास किये हैं। ऐसी रघुनाथ कुँवर की पन्थ की कथा वेद पुराण रामायण और गुरु-मुख से सुन तुलसीदास ने गाई है। यह हाल बारह वर्ष बाद का है। काहे से अवध से जब प्रभु चले तब से चैत शुक्ल नवमी पर्यंत बारह वर्ष बीते। चैत शुक्ल पूर्णिमा को पंचवटी में वास किया। उस के दश पाँच दिन बाद निषादराज की पत्रिका आई ॥ ४ ॥

सवैया

अठ विस्फुरमुग्धलता कुसुमांकुर-सौरभ-मत्तमधुव्रत धारे।
अचला हरिताचल निर्झर पै तटन्यंतर कञ्ज सुपुञ्ज पसारे ॥
फटिकाद्रिप्रशस्तसुपुत्रनतल्प सुखामृत प्रेम-तृषा जु बढ़ारे।
बसि बैजसुनाथ उरस्थल मो सुमनीशप्रिया अवधेन्दुदुलारे ॥

इति रसिकलताश्रितकल्पद्रुमसियावल्लभशरणबैजनाथकृतगीतावली-मणिदीपिकाटीकासहितअयोध्याकांड समाप्त।

श्रीगणेशाय नमः

गीतावली

(मणिदीपिका टीकासहित)

आरण्यकाण्ड

श्लोक
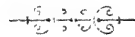
ध्येयं यस्य सुखालयं सुगतिदं धर्मार्थकामप्रदं
संसारामयजीवनार्थसुगमं यस्यैकनामामृतम् ॥
सर्वस्मिन् रमते रमन्ति यस्मिन् सर्वे च रूपे सदा
कीर्त्या कल्मषनाशनं सुखकरं तं जानकीशं भजे ॥ १॥

देखे राम पथिक नाचत मुदित मोर ।
मानत मनहुँ सतड़ित ललित घन धनु सुरधनु गरजनि टकोर ॥१॥
कम्पै कलाप बर बरहि फिरावत गावत कल कोकिलकिशोर ।
जहँ जहँ प्रभु बिचरत तहँ तहँ सुख दण्डकबन कौतुक न थोर ॥२॥
सघन छाँह तम रुचिर रजनिभ्रम बदनचन्द्र चितवत चकोर ।
तुलसी मुनि खग मृगन सराहत भयेहैं सुकृत सब इन कि ओर ॥३॥

देखे इति कवि की उक्ति है। श्रीराम लक्ष्मण जानकीजी को मार्ग में जाते देख आनन्द से मयूर नाचते हैं। काहेसे मानों तड़िता सहित सुन्दर मेघ मानकर श्रीजानकीजी को तड़िता, प्रभु को मेघ, प्रभु के धनुष को इन्द्रधनुष, उस की टंकोर को मेघ का गर्जना मान मोर नाचते हैं। इससे भ्रमालंकार है ॥ १ ॥ वहीं जो मयूर कलाप कहे पक्ष समूह को कँपाकर फिराते घूमते हैं, उसके साथ किशोर कहे युवावस्था के कोकिल स्वरसहित गान करते हैं। इसी भाँति जहाँ जहाँ प्रभु विचरते हैं, वहाँ वहाँ दण्डक वन में सुख का कौतुक थोड़ा नहीं है, बहुत है॥ २॥ सघन वृक्षों की छाँह का अँधेरा, उसमें रात्रिका भ्रम। उसमें प्रभु के सुन्दर मुख को पूर्ण चन्द्र मानकर चकोर एकटक ताक रहे हैं। इत्यादि आनन्द में पक्षियों की आनन्द की प्राप्ति अर्थात् विषय में स्नेह किये से वे रामानुरागी हुए। यथा मोरों ने घन दामिनी जानकर स्नेह किया सो अनुराग प्रभु में ठहरा तथा चकोरोंने चन्द्रमा जानकर अनुराग किया और ठहरा प्रभु में। सो रहस्य खग मृगोंका देख मुनिजन प्रशंसा करते हैं कि यावत् सुकृत है, सो सब इन पक्षियों, मृगों की ओर हुआ है। काहेसे इनको विषय-अनुराग में रामानुराग प्राप्तहुआ, अर्थात् जब अनेक जन्म का सुकृत उदय होता है, तभी जीव रामानुरागी होता है। महारामायणे—ये कल्पकोटिसततं जपहोमयोगैर्ध्यानैस्समाधिभिरहो परबोधनिष्ठाः ॥ ते देवि धन्यमनुजा हृदि बाह्यशुद्धा भक्तिस्तदा भवति तेष्वपि रामपादे ॥ ३ ॥

सुभग सरासन सायक जोरे ।
खेलत राम फिरत मृगया बन बसत सो मृदुमूरति मन मोरे ॥१॥
पीत बसन कटि चारु चारि शर चलत कोटि नट सो तृन तोरे।
स्यामल तन श्रम कन राजत ज्यों नवघन सुधासरोवर खोरे ॥२॥

ललित कन्ध बर भुज बिशाल उर लेहिं कण्ठरेखाचित चोरे।
अवलोकत मुख देत परम सुख लेत सरद ससि की छबि छोरे॥३॥
जटा मुकुट शिर सारसनयनन गोहैं तकत सु भौंह सिकोरे।
शोभा अमित समात न कानन उमँगि चली चहुँदिशि मति फोरे ४॥
चितवत चकित कुरंग कुरंगिनि सब भये मगन मदन के भोरे।
तुलसिदास प्रभु बान न मोचत सहज सुभाय प्रेमबस थोरे॥ ५॥

कवि की उक्ति । सुन्दर धनुष पर बाण को लगाये श्रीरघुनाथजी वन में मृगया खेलते फिरते हैं। उस समयकी कोमल मूर्ति श्यामसुन्दर रघुनन्दन हमारे मन में बसते अर्थात् हमको भाते हैं॥ १॥ कैसा वेष है, कटि में पीताम्बर, तहाँ चार बाण धारण किये हैं। कैसे अंग झुककर चलते हैं जिसमें कोटियों नटों की गति हरते हैं। नट कहे नृत्यकार के अंग झुक जाने में कोमल तथा प्रभु के कोमल अंग के झुक जाने पर कोटियों नटों की गति तृणसम तोड़कर एक साथ ही वार दीजिये। जो श्यामसुन्दर शरीर पर श्रमकण स्वेदबिन्दु छारहे हैं, सो कैसे शोभित होते हैं, मानों नवीन श्याम घन अमृत के तड़ाग में अवगाहित हुआ, इससे उसमें अमीबिन्दु खोरे कहे लगे हैं॥ २॥ सुन्दर कंधे, श्रेष्ठ आजानुभुजा, विशाल कहे चौड़ी छाती, कण्ठ की जो रेखा सो चित्त को चुराये लेती हैं। मुखकी शोभा देखतेमें परम सुख देती है। और शरदके पूर्ण चन्द्रमा की छवि को मुख हरे लेता है॥ ३॥ जटा के मुकुट शिर पर राजते हैं। सारस कहे कमल। यथा—सारसः पक्षिभेदः स्यात् क्लीबे तु सरसीरुहम् इत्यमरः॥ उन जैसे नयनों से भौंहैं सिकोड़े गोहे कहे घात देखते हैं। उस समय प्रभु के अंग की शोभा अमित है। उस समय की

मारीच-वध

शोभा की मर्यादा नहीं है। इससे कानन जो है वन, उसमें अमाता नहीं, इससे दसो दिशा की मर्यादा फोड़कर उमँग चली है। यहाँ चारो दिशा से देखनेवाले देखते ही शोभा में मगन होते हैं, इससे मर्यादारहित कहे ॥ ४ ॥ चार बाण प्रभु की कटि में, एक बाण धनुष में जोड़े, इसी भाँति पाँच बाणों से मदन का भ्रमकर कुरंग-कुरंगिनी सब चकित हो चितवते हैं। यहाँ प्रभु की मदन की समता दिखाते हैं। इसी भाँति जगत्‌रूपी वन में मृगसरीखे प्राणियों का मदन वधिक हो निपात करता है, उस को मोहवश बधिक नहीं जानते। मदन की बात श्रवण में पड़ते ही मृग सरीखे प्राणी मोहित होते हैं, वैसे प्रभु मृगों के मारने पर तत्पर हैं, और प्रभु को देख मृग मोहित होते हैं। तहाँ भेद दिखाते हैं कि मदन में प्राणी तो मोहित होते हैं और मदन उनका निपात ही करता है, इससे मदन दयारहित है। गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु का सहज ही स्वभाव ऐसा है कि थोड़े ही प्रेम में वश होते हैं। इससे मृगों को मोहित देख प्रभु बाण नहीं छोड़ते। इससे दयावान् हैं। मदन निर्दयी है ॥ ५ ॥

बैठे हैं राम लखन अरु सीता।

पंचबटी वर परन कुटी तर कहैं कछु कथा पुनीता ॥ १ ॥

कपटकुरंग कनकमनिमय लखि प्रिय सों कहति हँसि बाला।

पाइ पालिबेजोग मंजु मृग मारेहु मंजुल छाला ॥ २ ॥

प्रियाबचन सुनि बिहँसि प्रेमबस गवहिं चाप सर लीन्हे।

चला सो भजि फिरि फिरि चितवत मुनिमखरखवारे चीन्हे॥ ३ ॥

सोहत मधुर मनोहर मूरति हेमहरिन के पाछे।

धावनि नवनि बिलोकनि बिथकनि बस तुलसीउर आछे ॥ ४ ॥

पञ्चवटी में सुन्दर पत्तों की कुटी में श्रीराम जानकी लक्ष्मणजी बैठे कथा पुनीत कहे ज्ञानभक्ति का निरूपण करते हैं। उसी समय ॥ १ ॥ कनकमणिमय कपट-मृगरूप मारीच देख पड़ा। उसको देख बाला श्रीजानकीजी ने प्रिय श्रीरघुनाथजी से हँसके कहा कि यह सुन्दर मृग जो पकड़े मिले तो पालने योग्य है। जो मारे मिले तो सुन्दर मृगचर्म होगा ॥ २ ॥ श्रीजानकीजी के वचन सुन प्रेमवश हो कारण जान हँसकर गवहिं कहे घात से धनुष बाण हाथ में राम ने लिया। पीछे दौड़ते देख मारीच ने पहचाना कि विश्वामित्र के यज्ञ के रखवाले यही हैं। यह जान पीछे फिर कर देखता भाग चला ॥ ३ ॥ मन को हरनेवाली वह माधुरी मूर्ति कपट हेमहरिण के पीछे धावती शोभित है। उस अवसर का प्रभु का दौड़ना, झुकना, मृग को निहारना, थकित हो खड़े हो रहना। उस अवसर की माधुरी गोसाईंजी कहते हैं कि हमारे उर में अच्छी तरह बसती है ॥ ४ ॥

कर सर धनु कटि रुचिर निषंग।
प्रियाप्रीतिप्रेरित बनबीथिन,
बिचरत कनक कपट मृग संग ॥ १ ॥
भुज बिसाल कमनीय कंध उर,
स्रमसीकर सोहैं साँवरे अंग।
मनु मुक्ता मनि मरकत गिरि पर,
लसत ललित रबि किरनप्रसंग ॥ २ ॥
नयन नलिन सिर जटामुकुट बिच,
सुमनमाल मानों सिवसिर गंग।

तुलसिदास असि मूरति की बलि,
छबि बिलोक लाजै अमित अनंग ॥ ३ ॥

हाथ में धनुषबाण लिये, कटि में सुन्दर तरकस लगाये, प्रिया जो श्रीजानकीजी तिनकी प्रीति की प्रेरणा कहे आज्ञा के अनुकूल कपट-मृग के साथ श्रीरघुनाथजी वन की राहों में विचरते हैं ॥ १ ॥ लंबायमान भुजा, सुन्दर कन्धे, उच्च चौड़ी छाती, सुन्दर साँवले अंग में पसीने के कण शोभित हैं। सो कैसे हैं, मानों मरकत श्याम मणि-पर्वत पर सूर्य की किरण के प्रसंग सहित मुक्तामणि शोभित हैं ॥ २ ॥ कमल से नेत्र, शीश पर जटा का मुकुट, उसके बीच फूलों की माला कैसी शोभित है, मानों शिवजी के शीश पर जटा में गंगाजी की धारा है। जिनकी अनूप छवि को देख अनेकों कामदेव लज्जित होते हैं, ऐसी श्रीरघुनन्दन की प्यारी साँवली मूर्त्ति पर तुलसीदास बलिहारी है ॥ ३ ॥

राघव भावति मोहिं बिपिन की बीथिन धवनि।
अरुनकंजबरन चरन सोकहरन,
अंकुस कुलिस केतु अंकित अवनि ॥ १ ॥
सुन्दर स्यामल अंग बसन पीत सुरंग,
कटि निषंग परिकर सिर बनि।
कनककुरंग संग साजे कर सर चाप,
राजीवनयन इतउत चितवनि ॥ २ ॥
सोहत सिर मुकुट जटापटलनिकर,
सुमनलतासहित रची बनवनि।

तैसेई स्रमसीकर रुचिर राजत मुख,
तैसीयै ललित भृकुटिन की नवनि ॥ ३ ॥
देखत खगनिकर रवनिनजुत मृग,
थकित बिसरि जहाँ तहँ कि भवनि ।
हरिदरसन फल पायो है ज्ञान बिमल,
जाँचत भक्ति मुनि चहत जवनि ॥ ४ ॥
जिन के मन मगन भये हैं रस सगुन,
तिनके लेखे अगुन मुक्ति कवनि ।
स्रवनसुखकरनि भवसरितातरनि,
गावत तुलसिदास कीरति पवनि ॥ ५ ॥

अरुण कहे लालकमलवर्ण चरणों के दुःख हरनेवाले अंकुश, वज्र, केतु आदि चिह्नों से भूमि अंकित हो रही है। उस समय का वन की बीथियों में श्रीराघव का मधुर-मधुर दौड़ना हमको भाता कहे अत्यन्त प्यारा लगता है ॥ १ ॥ सुन्दर श्याम अंग में पीताम्बर, सिंहसम स्वच्छ कटि में सुन्दर तरकस लगाये, उसके शिर पर परिकर कहे फाँड़ बाँधे बनि कहे शोभा दे रही है। कपट-कनकमृग के पीछे हाथ में धनुषबाण साजे कमल-सम नेत्रों से इधर-उधर देखना मुझको भाता है ॥ २ ॥ पटल कहे समूह जटा का मुकुट बाँधे उसके बीच में अनेक फूल-दलसहित रचित सोहता है। वन कहे बनक बनी है, जटा के बीच फूल-दल की रचना की बनावट अपूर्व बनी है। वैसे सुन्दर श्रमसीकरों सहित चन्द्रमा-सा मुख शोभित होता है। वैसे कमल से नेत्रों की चितवन में भृकुटियों की नवन शोभा देती है ॥ ३ ॥ उस अवसर पर प्यारे रघुनन्दन

की छवि की छटा देख अनेक पक्षी, मृगियों सहित मृग देखते हैं। प्रेम से थकित हो जहाँ तहाँ की भवनि कहे घूमना बिसर गया। प्रभु के दर्शन होने से विकार-रहित हुए, इससे ज्ञान भया, अब भक्ति माँगते हैं। जिसकी मुनि चाहना करते हैं। ज्ञान फल का भक्ति रस है ॥ ४ ॥ इसका हेतु कहते हैं कि सगुण-रस भक्ति में जिनके मन मग्न भये हैं, तिनके लेखे निर्गुण मुक्ति क्या है। महारामायणे—ये रामभक्तिममलां सुविहाय रम्यां ज्ञाने रताः प्रतिदिनं परिक्लिष्टमार्गे । आरान्महेन्द्रसुरभीम्परिहृत्य मूर्खा अर्कं भजंति सुभगे सुखदुग्धहेतुम् ॥ भक्ति कैसी है, सुनते में श्रवण को सुखकारी है, भवसरिता के पार करनेवाली है। ऐसी पावन कीर्ति तुलसीदास गाते हैं ॥ ५ ॥

रघुबर दूरि जाइ मृग मारो ।
लखन पुकारि राम हरुये कहि मरतहु बयर सँभारो ॥ १ ॥
सुनहु तात कोउ तुमहिं पुकारत माननाथ की नाईं ।
कह्यो लखन हत्यो हरिन को!पि सिय हठि पठयो बरिआईं ॥ २ ॥
बन्धु बिलोकि कहत तुलसी प्रभु भाई भली न कीन्ही ।
मेरे जान जानकी काहू खल छल करि हरि लीन्ही ॥ ३ ॥

कपटरूप मृग को दूर जाकर श्रीरघुनाथजी ने मारा। तब मारीच ने लक्ष्मणजी का नाम ज़ोर से पुकार रामनाम धीरे से कहा। यहाँ मुनिमख-समय का वैर मरती बार सँभाला ॥ १ ॥ सो सुन श्रीजानकीजी कहती हैं, हे लक्ष्मण, प्राणनाथ की नाईं तुमको कोई पुकारता है। जाकर देखो। लक्ष्मणजी बोले—मृग को प्रभु ने मारा है, वही सोई मृग पुकार करता है। सो सीता ने नहीं माना, कोप कर हठ से जबरन लक्ष्मणजी को भेजा ॥ २ ॥

बन्धु को आते देख प्रभु बोले—हे भाई, यहाँ आये सो भला नहीं किया। काहे से हमको जान पड़ता है कि किसी खल ने छल करके जानकी को हर लिया ॥ ३ ॥

आरत बचन कहत बैदेही
बिलपत भूरि बिसूरि दूरि गये मृग सँग परम सनेही ॥ १ ॥
कहि कटु बचन रेख नाँघी मैं तात छमा सो कीजै।
देखि बधिक बस राजमरालिनि लखनलाल छिनि लीजै॥ २ ॥
बनदेवन सिय कहन कहत यों छल करि नीच हरी हौं।
गोमर कर सुरधेनु नाथ ज्यों त्यों पर हाथ परी हौं ॥ ३ ॥
तुलसिदास रघुनाथ नाम धुनि अकनि गीध धुकि धायो।
पुत्रि पुत्रि जनि डरहि न जैहै नीच मीचु हौं आयो ॥ ४ ॥

जिस समय लक्ष्मणजी चले गये, उसी अवसर में कपटरूप यती बन छल कर रावण ने जानकीजी को रथ पर बैठा लिया। तब परवश पड़ी सीता आर्त वचन कहती हैं। यह मन में बिसूरती हैं कि परम सनेही प्रभु मृग के साथ दूर गये हैं। यह विचार कर भूरि कहे बहुत विलाप करती हैं ॥ १ ॥ लक्ष्मणजी को कटु-वचन कहे, उनकी खिचाई रेखा मैं नाँघ गई। इसको तात, क्षमा कीजै। काहे से यथा बधिक के वश राजहंसी पड़े तथा मैं परवश हूँ। यह जानकर हे लषणलाल, मुझ परवश को रावण से छीन लो ॥ २ ॥ प्रभु से कहने को जानकीजी वन के देवतों से कहती हैं कि प्रभु से कहना कि मुझको छल करके नीच रावण हर ले गया है। हे नाथ, जैसे गोमार कसाई के वश कामधेनु पड़े, वैसे मैं पराये हाथ पड़ी हूँ ॥ ३ ॥ गोसाईंजी कहते हैं कि जानकीजी के मुखते रघुनाथ के नाम की धुनि अकनि कहे

अचानक सुन समझकर गीधराज जटायु धुकि कहे क्रोध कर वेग से दौड़े और कहा कि हे पुत्री, डरना नहीं। यह तुझको लेके जाने नहीं पावेगा नीच रावण की मीचु मृत्युरूपी मैं आ गया ॥४॥

फिरत न बारहिबार प्रचारयो ।
चपरि चोंच चंगुल हय हति रथ खण्ड-खण्ड करि डारयो ॥१॥
बिरथ बिकल कियो छीनि लीन्ह सिय घन घावन अकुलान्यो।
तब असि काढ़ि काटि पर पाँवर लै प्रभुप्रिया परान्यो ॥२॥
रामकाज खगराज आज लरयो जियत न जानकि त्यागी ।
तुलसिदास सुर सिद्ध सराहत धन्य बिहँग बड़भागी ॥३॥

गीधराज बारबार प्रचारते हैं, परन्तु रावण लौटता नहीं। चपरि हर्षपूर्वक बढ़कर चोंच-चंगुलों से घोड़ों को घायल कर रथ को खण्ड खण्ड कर तोड़ डाला ॥ १ ॥ रावण को रथ से गिरा दिया, जानकीजी को छीन लिया, चोंच से देह विदीर्ण की। उन सब घावों से रावण अकुला उठा । तब पाँवर दुष्ट रावण तलवार निकाल गीध के पच्च काट प्रभु की प्रिया जानकीजी को लेकर परान्यो भाग गया ॥ २ ॥ देवता सिद्ध यह प्रशंसा करते हैं कि देखो, गीधराज प्रभु के काम को आज रावण से लड़ा और अपने जीते श्रीजानकीजी को नहीं दिया, इससे विहंग बड़भागी धन्य हैं ॥ ३ ॥

हेम को हरिन हनि फिरे रघुकुलमनि,
लखन ललित कर लिय मृग छाल ।
आश्रम आवत चले सगुन न भये भले,
फरके बाम बाहु लोचन बिशाल ॥ १ ॥

सरित जल मलिन सरन सूखे नलिन,
अलि न गुंजत कल कूजैं न मराल ।
कोकिला न काल किरात जहाँ तहाँ बिलखात,
बन न बिलोकि जात खग मृगमाल ॥ २ ॥
तरु जे जानकी लाय ज्याये हरि करि कपि,
हेर न हुँकरि झरे फलन रसाल ।
जे शुक सारिका पाले मातु ज्यों ललकि लाले,
तेऊ न पढ़त पढ़ावैं मुनि बाल ॥ ३ ॥
समुझि सहमैं सुठि प्रिया तौ न आई उठि,
तुलसी बिबरन परन तृन साल ।
औरै सो सब समाजु कुसल न देखौं आजु,
गहवर हिय कहै कोशलपाल ॥ ४ ॥

हेमहरिण को मारकर श्रीरघुनाथजी फिरे । उसी मृग की सुन्दर छाला ललित कहे सुन्दर करकमल में लक्ष्मणजी लिये आश्रम को चले आते में सगुन अच्छे नहीं भये, अशकुन भये, अर्थात् वामअंग के नेत्र, भुजा फड़कने लगे । वनवीथी उदास देख पड़ीं, इससे चित्त भी उदासीन भया ॥ १ ॥ सरिताओं में जल मलीन हो रहा, तड़ागों में कमल सूख रहे । उन पर भौंरे नहीं गुञ्जारते । सुन्दर स्वर से हंस नहीं कुहकते । कोकिला नहीं बोलतीं । कोल, किरात जहाँ तहाँ बिलखते हैं । वन के पक्षी और मृगों की माल कहे पाँति ऐसी उदास है, जो देखी नहीं जाती ॥२॥ जिन वृक्षों को जानकीजी ने अपने हाथ से लगाया था, वे कुँभला गये । जो सिंह, हाथी, वानरादि पाले थे, उन्होंने हुँकरकर

उत्साह से देखा नहीं। उदासीन हैं। रसाल कहे आम के वृक्षों से फल बौर झड़ पड़े हैं। फाल्गुनकृष्ण अष्टमी की यह लीला है। इससे फलों की ऋतु रही। जो तोता मैना पाले, माता के समान ललककर दुलारे, वे भी नहीं पढ़ते हैं। न मुनियों की स्त्री उनको पढ़ावें ॥ ३ ॥ पत्तों की शाला विवर्ण देखी। उससे प्रिया उठकर नहीं आईं। यह समझ सुन्दर रघुनाथजी सहम गये। कोशलपाल गहवर हृदय से कहते हैं कि सब समाज और भाँति की देख पड़ती है। उदासीनता से आज कुशल नहीं है ॥ ४ ॥

आश्रम निरखि भूले द्रुम न फले फूले,
अलि खग मानो कबहुँ न रहे।
मुनि न मुनिबधूटी उजरी परनकूटी,
पंचवट पहिचानि ठाढ़ेइ रहे ॥ १ ॥
उठि सलिल लिये प्रेम प्रमुदित हिये,
प्रिया न पुलकि प्रिय वचन कहे।
पल्लवसाल न हेरी प्रानवल्लभा न टेरी,
बिरहबिथा कि लखि लखन गहे ॥ २ ॥
देखे रघुपति गति विबुध विकल अति,
तुलसी गहन बिन दहन दहे।
अनुज दियो भरोसो तौलौं है सोच खरो सो,
सिय समाचार प्रभु जौलौं न लहे ॥ ३ ॥

आश्रम को देख भूले, काहे से वृक्ष न फूले हैं न फले हैं, भ्रमर और पक्षी मानों कभी रहे ही नहीं। न आश्रम में कोई मुनि देख पड़े, न मुनियों की स्त्री देख पड़ीं। पत्तों की कुटी उजाड़ सी देख

पड़ती हैं। यह गति पंचवटी विषे पहचान कर श्रीरघुनाथजी खड़े ही रह गये ॥ १ ॥ श्रीरघुनाथजी कहते हैं कि प्रेम से आनन्दित हृदय में पुलकित हो प्रिया श्रीजानकीजी ने प्रिय वचन उठकर नहीं कहे। प्राणवल्लभा प्राणप्यारी टेरी नहीं कहे बोली नहीं। इससे पत्तों की शाला को नहीं निहारा। विरह में थकित देख लक्ष्मणजी ने प्रभु को पकड़ लिया ॥ २ ॥ श्रीरघुनाथजी की गति देख देवता अत्यन्त विकल हुए। गोसाईंजी कहते हैं कि उस समय प्रभु की दशा देख वन विना अग्नि ही सब जला सा देख पड़ता था। प्रभु की गति देख लक्ष्मण ने भरोसा दिया कि जब तक श्रीजानकीजी की सुध नहीं पाते, तभी तक यह घोर दुःख है। खबर पाते ही रिपु को जीत जानकीजी को लावेंगे ॥ ३ ॥

जबहिं सियासुधि सुरन सुनाई।
भयो सुनि सजग विरहसरि पैरत थके थाह सी पाई ॥ १ ॥
कसि तूनीरबान धनुधरधुर धीर बीर दोउ भाई।
पंचवटी गोदहि प्रनाम करि कुटी दाहिनी लाई ॥ २ ॥
चले बूझत वन बेलि विटप खग मृग अलिअवलि सुहाई।
प्रभु की दसा सो समौ कहिबे को कवि उर आह न आई ॥ ३ ॥
रटनि अकनि पहिचानि गीध फिरे करुनामय रघुराई।
तुलसी रामहि प्रिया बिसरि गई सुमिरि सनेह सगाई ॥ ४ ॥

जब देवतों ने श्रीजानकीजी की खबर सुनाई, तो उसको सुन सजग भये। यथा विरह की सरिता में पैरते रहे, उसमें थाह सी पाई ॥ १ ॥ तब कटि में तरकस धारण कर हाथ में धनुष बाण ले धीरज की धुरी के धारण करनेवाले दोनों भाई वीर पंचवटी

गोदावरी को प्रणाम कर कुटी की प्रदक्षिणा कर ॥ २ ॥ वन में बेल विटपों से, पक्षी मृगआदि, सुन्दर भौंरों की पंक्तियों से बूझते मार्ग में चले। उस समय की प्रभु की जो दशा है, सो समझ कवि के उर में आह की पीड़ा है, इससे वह दशा नहीं कहि आई, प्रभु-विरह की दशा कहते नहीं बनी ॥ ३ ॥ रामनाम की रटन, अकनि सुन गीध को पहचानकर करुणामय रघुराई फिरे। उस गीध के सनेह की सगाई सुमिरकर गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु को प्रिया की सुध भूल गई ॥ ४ ॥

मेरे एकौ हाथ न लागी।
गयो वपु बीति बादि कानन ज्यों कल्पलता दवदागी ॥ १ ॥
दसरथ सों न प्रेम प्रतिपाल्यो हुते सकल जग साखी।
बरबस हरत निसाचरपति सों हठि न जानकी राखी ॥ २ ॥
मरत न मैं रघुबीर बिलोके तापसवेष बनाये।
चाहत चलन प्रान पाँवर बिनु सिय सुधि प्रभुहिं सुनाये ॥ ३ ॥
बार-बार कर मींजि सीस धुनि गीधराज पछिताई।
तुलसी प्रभु कृपालु तेहि अवसर आइगये दोउ भाई ॥ ४ ॥

गीधराज अपने मन में पश्चात्ताप करके कहते हैं कि हमारे हाथ एक भी बात नहीं लगी। हमारी देह व्यर्थ ही बीत गई। जैसे वन में कल्पलता किसी के काम न लगी, दावानल में जल गई ॥ १ ॥ दशरथजी से हमसे मित्रता थी। उसका साखी गवाह सब जगत् है। उनका प्रभु का प्रेम राज्याभिषेक का था। उस प्रेम का हमने नहीं प्रतिपाल किया, कुछ सहायता न की। अथवा श्री-दशरथ के साथ ही प्राण न त्यागे। जब सीता राक्षसपति हरे लिये जाता था, तो हठ कर जानकीजी को न रख छोड़ा ॥ २ ॥

हमारी देह छूटने चाहती है। इस समय तापसवेष बनाये रघुवीर को देख न पाये और जानकीजी की खबर प्रभु को बिना सुनाये हमारे पामर प्राण चलना चाहते हैं ॥ ३ ॥ इसी प्रकार गीधराज हाथ मल, सिर धुन पछताता है। गोसाईंजी कहते हैं कि इसी समय में कृपा के आलय दोनो भाई आ गये। यह पद नाटक के अनुकूल है यथा—न मैत्री निर्व्यूढा दशरथनृपे राज्यविषया न वैदेही त्राता हठहरणतोराक्षसपतेः ॥ न रामस्यास्येन्दुर्नयनविषयोभूत्सुकृतिनो जटायोर्जन्मेदं वितथमभवद्भाग्यरहितम् ॥ ४ ॥

राघो गीध गोद करि लीन्हो।

नैनसरोज सनेह सलिल सुचि मनहुँ अर्घ जल दीन्हो ॥ १ ॥

सुनहु लखन खगपतिहि मिले बन मैं पितु मरन न जान्यो।

सहि न सक्यो सो कठिन बिधाता बड़ो पच्छ अजु भान्यो ॥ २ ॥

बहु बिधि राम कह्यो तन राखन परमधीर नहिं डोल्यो।

रोकि प्रेम अवलोकि बदन बिधु बचन मनोहर बोल्यो ॥ ३ ॥

तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखे लैहौं।

जाको नाम मरत मुनि दुर्लभ तुमहिं कहाँ पुनि पैहौं ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजी ने गीधराज को गोद में कर लिया। प्रभु के नेत्र कमलों से सनेहसलिल आँसू गिरे। मानों आधी तिलांजलि दे चुके ॥ १ ॥ प्रभु कहते हैं कि हे लक्ष्मणजी, वन में गीधराज के मिलने से मुझको पिता का मरण भूल गया। उसको कठिन विधाता सह न सका। आज हमारा बड़ा भारी पक्ष तोड़ सा डाला ॥ २ ॥ गीध से प्रभु ने बहुत भाँति से देह रखने को कहा, पर धैर्य्यशाली गीध ने मन को नहीं डोलाया। प्रेम को रोक प्रभु का मुखचन्द्र निहार मनोहर वचन बोला ॥ ३ ॥ गीधराज

बाले, संसार में जीना झूठा है, आखिर एक दिन मरना है। इससे झूठे जीने को इस समय का मरना छोड़ और समय का मरना मैं धोखे से न लूँगा। काहे से जिसका नाम लेना मरते समय मुनियों को दुर्लभ है, वह मेरे आगे हैं। फिर तुमको कहाँ पाऊँगा ॥ ४ ॥

नीके कै जानत रामहियो हौं।
प्रनतपाल सेवक कृपालुचित पितुपटतरहिदियो हौं ॥ १ ॥
त्रिजग जोनि गत गीध जन्म भरि खाइ कुजंतु जियो हौं।
महाराज सुकृती समाज सब ऊपर आजु कियो हौं ॥ २ ॥
स्रवन बचन मुख नाम रूप चख राम उछंग लियो हौं।
तुलसी मोहिं समान बड़भागी को कहि सकतबियोहौं ॥ ३ ॥

गीधराज कहते हैं कि मैं प्रभु का स्वभाव हृदय से अच्छी तरह जानता हूँ। कैसे हैं प्रभु, प्रणत कहे दुखिया के पालनेवाले हैं, और सेवक पर उनका चित्त कृपालु है काहे से हमको पिता के तुल्य माना ॥ १ ॥ कैसा मैं हूँ, त्रिजगयोनि में गीधजाति में गत कहे उत्पन्न हुआ हूँ। जन्म भर कुजन्तु मलीन जीव खाकर जग में जीता रहा हूँ। उस मुझ अधम को सुकृतियों की समाज में सर्वोपरि महाराज रघुनाथजी ने आज किया है ॥ २ ॥ काहे से श्रवणों से प्रभु के वचन सुनता हूँ, मुख से प्रभु का नाम लेता तथा नेत्रों से रूप देखता हूँ। उस पर प्रभु मुझको गोद लिये हैं। गीध कहता है कि मेरे समान बड़भागी बियो कहे दूसरा संसार में कौन कह सकता—बताया जा सकता है ॥ ३ ॥

मेरे जान तात कछु दिन जीजै।
देखिये आपु सुवन सेवा सुख मोहिं पितु को सुख दीजै ॥ १ ॥

दिव्यदेह इच्छा जीवन जग विधि मनाइ माँगि लीजै।
हरिहरसुजस सुनाय दरस दै लोग कृतारथ कीजै॥ २॥
देखि वदन सुनि वचन अमिय तनु राम नैनजल भीजै।
बोल्यो विहंग विहँसि रघुबर बलि कहौं स्वभाव पतीजै॥ ३॥
मेरे मरिबे सम न चारि फल होहिं तौ क्यों न कहीजै।
तुलसी प्रभु दिय उतरु मौन ही परिमानो प्रेम सहीजै॥ ४॥

श्रीरघुनाथजी गृध्रराज से कहते हैं—हे तात, मेरी जान आप कुछ दिन और जीवन जग में रखिये। पुत्र की सेवा का सुख आप हमसे लीजिये। पिता का सुख आप हमको दीजिये॥ १॥ जो कहो कि गृध्रदेह अधम है, तो दिव्य देह लो। जो कहो, जग में जीवन झूठा है, तो इच्छा मृत्यु (जब चाहो तब मृत्यु हो) जीवन जियो। जो कहो, जन्म भर हिंसा की है, सो कर्म विधाता के यहाँ लिखा है, उसका फल दुःख देने को विधाता क्रोधित है, तो विधाता को मनाइकै कहे प्रसन्न देख तब हमसे माँग लो। भाव आपके अशुभकर्म नष्ट ह्वै गये इससे विधाता प्रसन्न है। जो कहो, हम संसार में क्या करैं, तो प्रभु कहते हैं कि हरि हर का सुयश सुनाकर अपने दर्शन दे जग में लोगों को कृतार्थ कीजिये॥ २॥ श्रीरघुनाथजी का मुख देख, वचनामृत सुन, प्रभु के नेत्र-जल से अपना गात भीगा जानकर श्रीरघुनाथजी से गृध्र हँसकर बोला। हे प्रभु, तुम्हारी बलिहारी है। मैं सहजस्वभाव कहता हूँ, उसको मान लीजे॥ ३॥ गृध्र कहता है कि हमारे मरने के समान चारोफल आज नहीं हैं। कदाचित् हों, तो कहिये। गोसाईंजी कहते हैं, कि इसका जवाब प्रभु ने मौन ही दिया, चुप हो रहे। मानों प्रेम वाग्विलास में प्रभु मौन रहे, इससे अपनी पराजय कर गृध्रराज की जय प्रभु को सहना पड़ी॥ ४॥

मेरो सुनियो तात सँदेसो ।
सियाहरन जनि कहेउ पिता सों ह्वैहै अधिक अँदेसो ॥ १ ॥
रावर पुन्य प्रताप अनल महँ अलपदिनन रिपु दहिहौं ।
कुलसमेत सुरसभा दसानन समाचार सब कहिहौं ॥ २ ॥
सुनि प्रभुवचन राखि उर मूरति चरनकमल सिर नाई ।
चल्यो नभ गुनत रामकलकीरति अरु निजभाग्य बड़ाई ॥ ३ ॥
पितु ज्यों गृध्र क्रिया करि रघुपति अपने धाम पठायो ।
ऐसे प्रभु बिसारि तुलसी सठ तू चाहत सुख पायो ॥ ४ ॥

हे तात, मेरा संदेशा सुनिये । जानकीजी का हरण पिता से न कहियेगा । काहे से एक तो हमारा अँदेशा है ही, उस पर यह हाल सुनकर अधिक अँदेशा होगा ॥ १ ॥ आपके पुण्य के प्रतापरूपी अग्नि में थोड़े ही दिनों में शत्रु रावण भस्म होगा । तब कुलसहित रावण देव-सभा में ये सब समाचार कहेगा ॥ २ ॥ ऐसे वचन सुन प्रभु की मूर्ति उर में लाकर चरणकमलों में माथा नवाकर प्रभु की सुन्दर कीर्ति गुनते हुए अपने भाग्य की बड़ाई करता आकाशमार्ग से गृध्रराज चला ॥ ३ ॥ पिता के समान क्रिया कर रघुनाथने गृध्र को दिव्य देह धारण कराकर अपने धाम को भेज दिया । गोसाईंजी कहते हैं—हे शठ मन, ऐसे प्रभु को बिसार कर तू सुख चाहता है ॥ ४ ॥

सबरी सोइ उठी फरकत बाम बिलोचन बाहु ।
सगुन सोहावन सूचित मुनिमन अगम उछाहु ॥ १ ॥
मुनि अगम उर आनन्द लोचन सजल तनु पुलकावली ।
तृनपर्नसाल बनाइ जल भरि कलस फल चाहन चली ॥ २ ॥

मंजुल मनोरथ करत सुमिरत बिप्रबरबानी भली।
ज्यों कलपबेलि सकेलि सुकृत सुफूल फूली सुख फली ॥ ३ ॥
प्रानप्रिय पाहुने ऐहैं राम लखन मेरे आजु।
जानत जन जिय की मृदु चित राम गरीबनेवाजु ॥ ४ ॥
मृदुचित गरीबनेवाज आज बिराजि हैं गृह आइ कै।
ब्रह्मादि संकर गौरि पूजित पूजिहौं अब जाइकै ॥ ५ ॥
लहि नाथ हौं रघुनाथ बानो पतितपावन पाइकै।
दुहु ओर लाहु अघाइ तुलसी तीसरे गुन गाइ कै ॥ ६ ॥

प्रभातकाल शबरी के उठते ही वाम नेत्र और भुजा फरकने लगीं। इसका हेतु यह है कि मुनियों के मन को अगम प्रभु का दरश होनेवाला है। इस कारण सुहावने शकुन होते हैं, सो सूचित करते हैं कि प्रभु आते हैं॥ १ ॥ मुनियों को अगम आनन्द शबरी के उर में है, इससे नेत्रों में जल भरा है, प्रेम से पुलकित गात हैं। तृणपत्रों की शाला बहार लीपकर बना रक्खी है। उसमें कलश में जल भर धरकर आप फल लेने को चली ॥२॥ विप्र मतंग ऋषि की वाणी को स्मरण कर मन में मंजुल उज्ज्वल मनोरथ करती है। यथा कलपलता सब सुकृतियों को बटोर सुन्दर फूलों सहित सुखरूपी फलों से फली है। शबरी कलपलता। सुन्दर मनोरथ फूल। प्रभुदर्शन फल ॥ ३ ॥ अब मनोरथ कहते हैं। प्राणों से प्रिय पाहुने श्रीराम लक्ष्मण आज मेरे धाम आवेंगे, तो मैं क्या पहुनाई करूँगी। यही सन्तोष है कि राम ग़रीबनेवाज, कोमलचित्त, जन के उर की गति के जाननेवाले हैं ॥ ४ ॥ वेही कोमलचित्त, ग़रीबनेवाज रघुनाथजी मेरे धाम में विराजमान होंगे। वह कैसे हैं, ब्रह्मा, शङ्कर, पार्वती के पूजनीय हैं। उनको

अब मैं जाकर पूजूँगी ॥ ५ ॥ अब पतित मैं प्रभु का पतित पावन बाना पाकर दोनों ओर से अघाकर लाभ लूँगी। गोसाईंजी कहते हैं दूसरे गुणानुवाद गान करके मैं भी अघाकर लाभ लूँगा ॥ ६ ॥

दोना रुचिर रचे पूरन कंदमूल फल फूल।
अनुपम अमियहु ते अंबक अवलोकत अनुकूल ॥ ७ ॥
अनुकूल अंबक अंब ज्यों निज डिंभ हित सब आनिकै।
सुन्दर सनेह सुधा सरिस जनु सरस राखे सानिकै ॥ ८ ॥
छन भवन छन बाहर बिलोकत पंथ भ्रू पर पानि कै।
दोउ भाइ आये सबरिका के प्रेम प्रन पहिचानि कै ॥ ९ ॥
स्रवनहिं सुनी चली आवत देखि लखन रघुराउ।
सिथिल सनेह कहै सपनो बिधि कैधौं सति भाउ ॥ १० ॥
सति भाउ कै सपनो निहारि कुमार कोसलराय के।
गहे चरन जे अघहरन नत जन बचन मानस काय के ॥ ११ ॥
लघु भाग्यभाजन उदधि उमँग्यो लाभ सुख चित चायकै।
सो जननि ज्यों आदरी सानुज राम भूखे भाय के ॥ १२ ॥

सुन्दर दोना बनाकर वे कन्दमूल, फल, फूल आदि से पूर्ण कहे भर लिये। कैसे हैं फल, अनूप हैं, जिनमें अमृत से भी अधिक स्वाद है। और अम्बक कहे नेत्र, तिनसे देखने में अनुकूल कहे प्रिय लगते हैं। नेत्रों से देखने में सुन्दर ऐसे फल प्रीति से शबरी ने रक्खे। यथा अम्ब माता डिंभ पुत्र के लिये सब वस्तु लाती है, उसी भाव से शबरी ने फल धरे, जो सुधा से हजार गुने स्वाद सुन्दर सनेह में सने हैं। वे सनेह के रस से सानकर मानो धरे

हैं ॥ ७। ८॥ क्षण भर भवन में बैठती है, क्षण भर बाद द्वार पर आकर भ्रू कहे भौंह उस पर हाथ लगाकर पंथ को निहारती है कि प्रभु आते हैं कि नहीं। क्षण भवन क्षण द्वार पर। प्रभु मिलने की आतुरता को नेहीजन जानते हैं। उस शबरी का प्रेम प्रण पहचान दोनो भाई आये। भौंह पर हाथ लगाये दूर तक देखती है॥ ९॥ प्रभु का आगमन श्रवण से सुनते ही शबरी चली। आगे श्रीरघुनन्दन लक्ष्मणलाल को देखा कि आते हैं। तब शबरी सनेह से शिथिल होकर कहती है—हे विधाता, प्रभु का आगमन सत्य है या स्वप्न॥ १०॥ स्वप्न है या सत्य, यह विचार करते ही कोशल राव के कुमारों को देख उसने उनके चरणारविन्द पकड़े। कैसे हैं चरण, नत कहे शरणागत जनों के वचन मन कर्म के अघ हर लेते हैं॥ ११॥ वे चरण पाकर शबरी विचारती है कि मेरे भाग्य का पात्र छोटा है और लाभ के सुख का चित्त में आनन्द का समुद्र उमँगा। यथा माता बालकों का तथा शबरी ने रघुनाथजी का लक्ष्मण सहित आदर किया। उसको प्रभु ने अंगीकार किया, काहे से प्रभु भाव के भूखे हैं॥ १२॥

प्रेम पट पाँवरे देत सु अर्घविलोचन वारि।
आस्रम लै दियो आसन पंकज पाँय पखारि॥१३॥
पदपंकजात पखारि पूजे पंथ स्रमविरहित भये।
फल फूल अंकुर मूल धरे सुधारि भरि दोना नये॥१४॥
प्रभु खात पुलकित गात स्वाद सराहि आदर जनु जये।
फल चारिहू फल चारि देत प्रचारि फल सबरी दये॥१५॥
सुमन वर्षि हर्षि सुर नि मुदित सराहि सिहात।
केहि रुचि केहि छुधासानुज माँगि माँगिप्रभु खात॥१६॥

प्रभु खात माँगत देत सबरी राम भोगी याग के।
बालक सुमित्रा कौसिला के पाहुने फल साग के ॥ १७ ॥
पुलकत प्रसंसत सिद्ध सिवसनकादि भाजन भाग के।
सुनि समुझि तुलसी जानि रामहिं बस अमल अनुराग के ॥ १८ ॥

प्रेमरूपी वसन के पाँवड़े देती है। विधि कहे दो लोचनों के जल का अर्घ्य देती है। आश्रम में लाकर आसन दिया। पद-पंकज धोये ॥ १३ ॥ पद-पंकज धोकर षोडशोपचार पूजा की, उससे पंथ चलने का परिश्रम प्रभु का विशेष रहित हुआ। तब नवीन दोनों में फल फूल अंकुर मूलादि भरकर दिये ॥ १४ ॥ प्रेम से पुलकित गात से स्वाद सराहकर प्रभु खाते हैं। फलों की प्रशंसा नहीं है, आदर को जाये कहे उत्पन्न करते हैं। मूल, अंकुर, फूल, फल, चार भाँति के शबरी ने दिये। वे कैसे चार भाँति के फल हैं, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष तिनको ललकार कर देते हैं। अभिप्राय यह कि अर्थ कहे द्रव्य की वृद्धि से शबरी का सत्संग-रूप मूल से सन्तोष है, इससे अचाह रूप द्रव्य से अर्थ को ललकार दिया। धर्म, सत्य, शौच, तप, दानादि से शबरी ने प्रभु-प्रीतिरूप अंकुर से धर्म को ललकार दिया। काम कहे कामना तथा उसका प्रयोजन पुत्र की प्राप्ति सो शबरी ने वात्सल्य रस की वासनारूप फूलों से प्रभु का सेवन कर कामफल को ललकार दिया। मोक्ष ज्ञानफल के रस सम भक्ति, सो शबरी नें मुक्ति को ललकार दिया ॥ १५ ॥ फूल बरसा कर देव मुनि हर्षसहित प्रशंसा करते, सिहात कहे ललचाते कि कौन क्षुधा से कौन रुचि से लक्ष्मणसहित प्रभु फल माँग माँग कर खाते हैं ॥ १६ ॥ योग यज्ञ उत्तम भाग के भोगी प्रभु माँग माँग खाते हैं और शबरी भावसहित देती है सुमित्रा कौशल्या के पुत्र उत्तम पदार्थ के खाने-

वाले राम-लक्ष्मण शबरी को मातासम मान कर पाहुने होकर साग कहे कन्दमूल खाते हैं ॥ १७ ॥ उनको देख सिद्धजन शिव-सनकादिक भाग्य के पात्र तेऊ प्रेम से पुलकांग हो शबरी की प्रशंसा करते हैं। काहेसे प्रभु के वचन सुन कर उनका अभिप्राय समझके गोसांईजी कहते हैं कि सिद्धजन यह विचारते हैं कि श्रीरघुनन्दनजी एक निर्मल अनुराग के वश हैं । वह अनुराग रँगे रहे, दूसरा न देख पड़े, अमल है ॥ १८ ॥

रघुबर अँचै उठे सबरी करि प्रनाम कर जोरि ।
हौं बलि बलि गई पुरई मंजु मनोरथ मोरि ॥ १९ ॥
पुरई मनोरथ स्वारथहु परमारथहु पूरन करी ।
अघ अवगुन की टीकरी करि कृपा मुद मंगल भरी ॥ २० ॥
तापस किरातिनि कोलमृदु मूरति मनोहर चितधरी ।
सिर नाइ आयसु पाइ गवनी परमनिधि पाले परी ॥ २१ ॥
सीय सुधि सब कही नख सिख निरखि निरखि दोउ भाइ ।
दै दै प्रदछिना करत प्रनाम न प्रेम अघाइ ॥ २२ ॥
अति प्रेम मानस राखि रामहिं रामधामहिं सो गई ।
तेहि मातु ज्यों रघुनाथ अपने हाथ जल अंजलि दई ॥ २३ ॥
तुलसी भनित सबरी प्रनति रघुबरप्रकृति करुनामई ।
गावत सुनत समुझत भगति हिय होय प्रभुपद नित नई ॥ २४ ॥

श्रीरघुनाथजी आचमन कर उठे, तब शबरी हाथ जोड़ प्रणाम कर कहती है—हौं कहे मैं बलि गई । काहे से मेरा मंजु कहे उज्ज्वल मनोरथ पूर्ण किया ॥ १९ ॥ ऐसे कृपालु हो । हे प्रभु, मेरा स्वार्थ परमार्थ दोनो पूर्ण किया। काहे से पाप और अवगुण

की मैं ठिकरी उसमें मुद मंगल आपने भर दिया कृपा करके॥ २०॥ उस समय मनोहरमूर्ति प्रभु की कोमलता को तापस, किरातिनी, कोल, सबने हृदय में धारण की। परमनिधि भक्ति पाले पड़ी कहे प्राप्त हुई। प्रभु की आज्ञा पाकर माथा नवाकर गवनी कहे परमधाम को गई॥ २१॥ श्रीजानकीजी की ख़बर बताकर नखशिख लौं दोनों भाइयों को निहारकर प्रदक्षिणा कर प्रणाम करते प्रेम से मन नहीं अघाता॥ २२॥ अति प्रेम से मनमानस में राम को रखकर, अत्यन्त प्रेम से रघुनाथजी को हृदय में रखकर प्रभु के धाम को शबरी गई। उसको माता के समान रघुनाथजी ने अपने हाथ से तिलांजलि दी॥ २३॥ तुलसी की भणित को गाते, शबरी की प्रणति कहे गरीबी को सुनते प्रभु की करुणामयी प्रकृति स्वभाव को जो प्राणी समझते हैं, उन्हें भक्ति प्रभुपद में प्रीति नित नई होती है॥ २४॥

सवैया

मुकुटाद्भुत पत्र प्रसून जटाल्लसरोज शुभास्य सुधार सटी।
वपुषाम्बुद से श्रमसी करणी पटपीतिषु धीवर लंक तटी॥
कर मार्गन कार्मुक संयुतकै पुरटेन हतार्थ चितै कपटी।
उर बैजसुनाथ सदैव बसौ रघुनन्द सिया छवि पंचवटी॥

इति रसिकलताश्रितकल्पद्रुमसियावल्लभशरणबैजनाथकृत गीतावली-भणिदीपिकाटीकासहितआरण्यकाण्ड समाप्त।

श्रीगणेशाय नमः

गीतावली

(मणिदीपिका टीकासहित)

किष्किन्धाकाण्ड
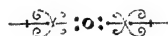
श्लोक

बभूवुः पुलकांगाश्च यस्य दृष्ट्वा मृगादयः ।
श्रीरामस्यास्योषधीशं भजेऽहं तं चकोरवत् ॥ १ ॥

भूषन बसन बिलोकत सिय के ।
प्रेम बिबस मन कंप पुलक तन
नीरजनयन नीर भरे पिय के ॥ १ ॥
सकुचत कहत ससुझि उर उमँगत
सील सनेह सगुनगन तिय के ।
स्वामिदसा लखि लखन सखा कपि
पघिले हैं माठ आँच मानो घिय के ॥ २ ॥

सोचत हानि मानि मन गुनि गुनि
गये विघटि फूल सकलसुकिय के ।
बरन्यो जाम्बवंत तेहि अवसर
बचन बिबेक बीर रस बिय के ॥ ३ ॥
धीर बीर सुनि समुझि परस्पर
बल उपाय उघटत निज हिय के ।
तुलसिदास यह समउ कहे कबि
लागत निपट निठुर जड़ जिय के ॥ ४ ॥

ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव ने श्रीजानकीजी के भूषण वस्त्रादि दिये । तिनको विलोकि उद्दीपन से विरह से प्रभु का मन विशेष प्रेम के वश हुआ । तनु में कम्प भई, प्रेम से पुलकि कमल से नेत्रों में जल भर आया ॥ १ ॥ तिय जो श्रीजानकीजी हैं, उनका शील-सनेह-सहित गुण गण समझ कहने को उर उमँगता है, परंतु संकोच से नहीं कहते । ऐसी दशा श्रीरघुनाथजी की देख लक्ष्मणजी सुग्रीव तथा अपर वानर ऋक्षादि सब कैसे प्रेम से उमँगे, यथा आँच लगे घृत के मटके पिघलते हैं, वैसे सब समाज विकल हो गया, नेत्रों से जल की धारा बहने लगी । यहाँ वियोग-श्रृंगार रस से करुणरस की प्रबलता देख वीर रस की सहायता जानिये । सो आगे जाम्बवन्त के वचन में प्रसिद्ध है ॥ २ ॥ वियोग की हानि मान करुण रस से शोचवश बारंबार मन में हानि को गुनते बिसूर बिसूर करुणारस-सिंधु में मग्न हुए । उससे निकलने को उपाय ढूँढ़ते, सो नहीं मिलता । काहे से सुकिय कहे सुकृत फल सब निघटि कहे चुक गये । यहाँ प्रारब्ध को प्रबल माना है । उन विद्यमान कर्मों को बली ठहराकर उसे

तेहि अवसर में विवेक मय वीररस के उत्पन्न करनेवाले बीज के समान वचन जाम्बवंत ने धैर्य धर कहे। भाव सबको धीरज देकर कहा कि शोच त्याग इसका उपाय बाँधिये ॥ ३ ॥ जाम्बवन्त के वचन सुन मन में समझकर धैर्यवान् जो सब समाज है, अथवा धीर वीर श्रीरघुवीर ने सुन निज उर से बल का उपाय उघटे कहे प्रकट किया। सो सुन सब समाज के वीर अपने-अपने हृदय से प्रकटे। अथवा जाम्बवन्त के वचन सुन सब धैर्यवान् वीर हुए। तब अपने-अपने हृदय से बल का उपाय प्रकट कहने लगे। सो समय की जो व्यवस्था रही सो नहीं कहते बनती। गोसाईंजी कहते हैं कि उस समय की जो दशा वर्णन करे सो निपट जी से निठुर लगता है। इससे नहीं कहते बना ॥ ४ ॥

प्रभु कपिनायक बोलि कह्यो है ॥
बर्षा गई सरद ऋतु आई अब लौं नहिं सियसोधु लह्यो है ॥ १ ॥
जा कारन तजि लोकलाज तन राखि बियोग सह्यो है ।
ताको तौ कपिराज आजु लगि कछु न काज निबह्यो है ॥ २ ॥
सुनि सुग्रीव सभीत नमितमुख उत्तरु देन चह्यो है ।
आइ गये हरि जूथ देखि उर परि प्रमोद रह्यो है ॥ ३ ॥
पठये बदि बदि अवधि दसहु दिसि चले बल सबन गह्यो है ।
तुलसी सिय लगि भवदधि मानो फिरि हरि चहत मह्यो है ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथ ने सुग्रीव को बुलाकर कहा कि वर्षा ऋतु बीत गई, शरद ऋतु आई, पर अब तक श्रीजानकीजी की ख़बर नहीं ली ॥ १ ॥ जिन जानकीजी के कारण जग में लोक की लाज तज देह रखकर वियोग सहे, हे कपिराज, उसका कार्य

आज लग नहीं निवहा, नहीं भया ॥ २ ॥ ऐसे वचन सुन सुग्रीव ने सभीत कहे डरकर मुख नमित कहे नवा लिया। कुछ जवाब देने की चाह नहीं की। भाव अपनी ग़फ़लत को क़सूर मान चुप हो रहे। इसी अवसर में हरि कहे वानरों के यूथ आ गये। तिनको देख आनन्द से हृदय भर रहा है। अभिप्राय यह कि वानरों में यूथपति बलवान् चतुर हैं और बात करते ही पहुँचे, तो जल्दी कार्य होगा ॥ ३ ॥ तिन वानरों को सुग्रीव ने अवधि मास दिवस की देकर दशों दिशाओं को भेजा। वे चले। सब बल गहे कहे मन में प्रभु कार्य करने का बूत रक्खे हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि वानरों का चलना नहीं है, मानों जानकीजी के अर्थ भवनिधि कहे संसार सिन्धु को फिर प्रभु मह्यो कहे मथा चाहते हैं ॥ ४ ॥

छन्द

मेदुरतोयधरैतड़िताम्बर दर्शतलोपसवृष्टिघमण्डा ।
यस्यसहर्षनिनादितनृत्यतभू धरशृंगकलापशिखण्डा ॥
बागविलाससुपत्रनसालसुचाहतसोधसियारिपुखण्डा ।
बैजसुनाथसदारघुनन्दन वासप्रवर्षणशैलअखण्डा ॥

इति रसिकलताश्रितकल्पद्रुमसियावल्लभशरणबैजनाथकृतगीतावली-
मणिदीपिकाटीकासहितकिष्किन्धाकाण्ड समाप्त ।

श्रीगणेशाय नमः

गीतावली

(मणिदीपिका टीकासहित)

सुन्दरकाण्ड

श्लोक
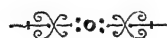
पनसनीलनलांगदऋक्षपप्रमुखसंनुत आहतरावणिः ।
पवनजोवनिजावनसुत्तमोवतु सदैव भवाम्बुधिभीतितः ॥ १ ॥

रजायसु राम को जब पायो ।
गाल मेलि मुद्रिका मुदितमन पवनपूत सिर नायो ॥ १ ॥
भालुनाथ नल नील साथ चलो बली बालिको जायो ।
फरकि सुअँग भये सगुन कहत मनु मग मुद मंगल छायो ॥ २ ॥
देखि बिबर सुधि पाइ गीध सों सबन अपन बल मायो ।
सुमिरि राम तकि तड़कि तोय निधि लंक लूक सो आयो ॥ ३ ॥
खोजत घर घर जनु दरिद्र मनि फिरत लागि धनु धायो ।
तुलसी सिय बिलोकि पुलक्यो तनु भूरि भाग भयो भायो ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजी की आज्ञा पाकर हनुमान्जी ने आनन्द मन से मुद्रिका को गाल में धारण कर प्रभु को माथा नवाया ॥ १ ॥ जाम्बवन्त, नल, नील, वालि को जायो अंगद इत्यादि बली वीर सब साथ चले। उनके सुअंग दक्षिण अंग फड़के। अपर शकुन मंगलीक भये। तिनको विचार कर सब परस्पर कहते हैं, मानों आनन्दमंगल राह में छा रहा है ॥ २ ॥ सब वीरों ने जल-हेतु विवर में प्रवेश किया। वहाँ विष्णु की माया जिसने नारदजी को मोहित किया, सोई भगवती अपराध मिटाने के हेतु तपस्या करती थी। सो कपियों से सुन प्रभु के दर्शन कर पावन हुई। उससे बातें कर सिन्धु तीर संपाति से खबर पाकर सब वानरों ने लंका जाने का अपना बल मायो कहे तौला। पार जाने की शक्ति किसी की पूरी न उतरी। इस अवसर में जाम्बवंत के कहने पर हनुमानजी श्रीरघुनाथजी को माथा नवाकर प्रभु को स्मरण कर के तर्कके समुद्र फाँद लूक कहे यथा आकाश में तारा टूट चले वैसे लंका को हनुमान्जी गये ॥ ३ ॥ लंका में घुसकर हनुमान्जी श्रीजानकीजी को कैसे ढूँढ़ते हैं जैसे मणि और धन पाने को दरिद्री ढूँढ़ता विकल दौड़ा दौड़ा फिरता है। गोसाईंजी कहते हैं कि श्रीजानकीजी को देख तन पुलकित हुआ कि मन का भाया भया। इससे अपने भाग्य को हनुमान्जी ने बहुत माना ॥ ४ ॥

देखी जानकी जब जाय।

परम धीर समीरसुत के प्रेम उर न समाय ॥ १ ॥

कृस सरीर सुभाय सोभित लगी उड़ि उड़ि धूलि।

मनहुँ मनसिज मोहनी मनि गई भोरे भूलि ॥ २ ॥

रटति निसिबासर निरन्तर राम राजिवनैन।

जात निकट न बिरहिनी चरि अकनि ताते बैन ॥ ३ ॥

नाथ के गुन गाय कहि कपि दई मुँदरी डारि।
कथा सुनि उठि लई करवर रुचिर नाम निहारि ॥ ४ ॥
हरष हृदय विषाद अति पतिमुद्रिका पहिचानि।
दास तुलसी दसा सो केहि भाँति कहै बखानि ॥ ५ ॥

श्रीजानकीजी को जब जाकर देखा, उस समय धैर्यवान् जो श्रीहनुमान्जी, तिनके हृदय में करुणा समूह से प्रेम नहीं समाता। इससे नेत्र द्वारा आँसू गिरने लगे ॥ १ ॥ श्रीजानकीजी सहज ही शोभायमान हैं। तिनके कृश कहे दुर्बल देह में उड़ उड़ धूल लग गई है। सो कैसी देख पड़ती है, मानों कामदेव की मोहनी मणि है, उसको भोरे कहे भ्रम से वह भूल गया है ॥ २ ॥ राजीव कमल-नयन रघुनाथजी का नाम दिनरात रटती हैं। निरन्तर कहे इसमें अन्तर नहीं पड़ता। उसी रटन की गरम वाणी अकनि कहे सुनकर विरहिणी और त्रिविध पवन सो श्रीजानकीजी के निकट नहीं जाता। डरता है कि भस्म हो जाऊँगा। यहाँ सुख की विपरीतता का वर्णन है ॥ ३ ॥ नाथ श्रीरघुनाथ के गुणगान कर कहकर हनुमानजी ने मुद्रिका डाल दी। उस कथा को सुन उठकर श्रीजानकीजी ने करवर कहे श्रेष्ठ हाथ में लेकर देखा। श्रीरामो-जयति इति सुन्दर नाम अंकित निहारकर ॥ ४ ॥ पति की मुद्रिका पहिचान कर उसके मिलने का हर्ष, यहाँ कौन भाँति आई यह विषाद, अत्यन्त हृदय में भया। गोसाईंजी कहते हैं कि उस समय की दशा कौन भाँति से कहूँ ॥ ५ ॥

बोलु बलि मुँदरी कुसल कोसलपाल।
अमिय बचन सुनाय मेटहि बिरह ज्वाला जाल ॥ १ ॥

कहत हित अपमान मैं कियो होत हिय सोइ साल ।
रोष छमि सुधि करत कबहूँ ललित लछिमन लाल ॥ २ ॥
परस्पर पति देवरहि का होत चरचाचालु ।
देवि कहु केहि हेतु बोले बिपुल बानरभालु ॥ ३ ॥
सीलनिधि समरथ सुसाहिब दीनबंधु दयाल ।
दास तुलसी प्रभुहि काहु न कह्यो मेरो हाल ॥ ४ ॥

श्रीजानकीजी पूछती हैं। हे मुँदरी बोल । अनुज सहित कोशलपाल कुशल हैं । अमृतमय वचन सुनाकर हमारे उर के विरहअग्नि के ज्वालों के जाल को मेटहि मिटा दे ॥ १ ॥ हमारे हित के वचन कहते में लक्ष्मणलाल का मैंने अपमान किया। उसको सुमिरकर मेरे हृदय में साल होता है । उस रोष को क्षमा कर ललित लक्ष्मणलाल कभी मेरी सुरति करते हैं ॥ २ ॥ पति श्रीरघुनाथजी, देवर श्रीलक्ष्मणजी, तिनसे आपस में कौन चाल की चरचा होती है । हे देवि, बहुत वानर भालु किसलिये बुलाये हैं ? यहाँ मुद्रिका डालने में हनुमान्‌जी ने प्रभु के गुणगान कहे। उसमें वानरों को बोलाना सुनकर पूछा ॥ ३ ॥ शीलनिधि प्रभु सब लायक समर्थ हैं। सुसाहिब सबके सुखदाता, दीनबन्धु दुखित पर दया करनेवाले हैं। परन्तु मेरा हाल प्रभु से किसी ने नहीं कहा कि रावण ज़बरदस्ती हर ले गया ॥ ४ ॥

सदल सलखन हैं कुशल कृपाल कोसलराउ ।
सीलसदन सनेहसागर सहज सरल सुभाउ ॥ १ ॥
नींद भूख न देवरहि परिहरे को पछिताउ ।
धीरधुर रघुबीर को नहिं सपनेहु चित चाउ ॥ २ ॥

सोध बिनु अवरोध रिपु को बोध बिहित उपाउ ।
करत है सोइ समय साधन फलत बनत बनाउ ॥ ३ ॥
पठे कपि दिसि दसहु जे प्रभुकाज कुटिल न काउ ।
बोलि लिये हनुमान करि सन्मान जानि समाउ ॥ ४ ॥
दई हौ संकेत कहि कुसलात सियहि सुनाउ ।
देखि दुर्ग बिसेषि जानकि जानि रिपुगति आउ ॥ ५ ॥
कियो सोइ प्रभु बोध मुँदरी दियो कपिहि लखाउ ।
पाइ अवसर नाइ सिर तुलसी सगुन गुन गाउ ॥ ६ ॥

श्रीजानकीजी से मुद्रिका कहती है कि शील के मंदिर, सनेह के समुद्र सहज में सरल स्वभाव जिनका, ऐसे कृपालु कोशलराव रघुनाथजी कपिदल और लक्ष्मण सहित कुशल से हैं॥ १ ॥ रोष की कैसी बात है ? लक्ष्मणलाल को तुम्हारे छोड़ने का पछितावा है। न दिन को भूख, न रात्रि को नींद है। धैर्य-धुरी के धारक जो रघुवीर हैं, तिनको तुम विना स्वप्न में भी चित्त में चाउ कहे आनन्द नहीं है ॥ २ ॥ रिपु को बोध कहे युद्ध कर जीत लेना सो सोध कहे खबर विना पाये रिपु के बोध को अव-रोध कहे रोक रहा है। विहित कहे वर्तमान में रिपु के बोध का जो उपाय है, उसी समय के साधन की कर्त्तव्यता, उसका वही जो वानर रीछ हैं, वे करते हैं। उनका बनाव बनते ही कहे खबर तुम्हारी पाते ही फलत कहे रिपु को बोध होता ही है। इसमें वानर सो विहित पद से वर्तमान काल हुआ। इस हेतु फलत कहा। इसका अर्थ रिपु को बोध होता है। लंका भस्म इति निश्चय ॥ ३ ॥ दशो दिशाओं को वानर भेजे हैं। जो प्रभु के कार्य करने में कुटिल कोई नहीं हैं। उनमें समय कहे कार्य करने

लायक जान हनुमान्‌जी को आदरसहित प्रभु ने बुला लिया ॥ ४ ॥ संकेत कहे एकांत में मुझे देकर प्रभु ने कहा कि जानकीजी को कुशल समाचार सुनाकर कोट को देख, विशेष करके जानकीजी को देख रिपु की गति को जान। भाव पराक्रम फ़ौज कैसी है सो देखकर लौट आ ॥ ५ ॥ इत्यादि वचन कह मुद्रिका ने श्रीजानकीजी को प्रबोध दे हनुमान्‌जी को दिखा दिया। सोई अवसर पाकर माथा नवाकर तुलसी के ईश श्रीरघुनाथजी के गुण के गण का गान हनुमान् करने लगे ॥ ६ ॥

सुवन समीर को धीरधुरीन वीर बड़ोइ।
देखि गति सियमुद्रिका की बाल ज्यों दियो रोइ ॥ १ ॥
अकनि कटु बानी कुटिल की क्रोधबिन्ध्य बढ़ोइ।
सकुचि सम भयो ईसआयसु कलसभव जिय जोइ ॥ २ ॥
बुद्धि बल साहस पराक्रम अछतराखे गोइ।
सकल साज समाज साधक समख कह सब कोइ ॥ ३ ॥
उतरि तरु ते नमत पद सकुचात सोचत सोइ।
चुके अवसर मनहुँ सुजनहिं सुजन सनमुख होइ ॥ ४ ॥
कहे बचन बिनीत प्रीति प्रतीति नीति निचोइ।
सीय सुनि हनुमान जान्यो भली भाँति भलोइ ॥ ५ ॥
देखि बिन करतूति कहिबो जानिहै लघु लोइ।
कहो गोमुख की समर सरि कालिकारिख धोइ ॥ ६ ॥
करत नहिं कछु बनत हरि हिय हर्ष सोक समोइ।
कहत मन तुलसीस लंका करहुँ सघन घमोइ ॥ ७ ॥

यद्यपि श्रीहनुमान्जी धीरज की धुरी के उठानेवाले बड़े वीर हैं, परन्तु श्रीजानकीजी और मुद्रिका की गति देख बालक की तरह रो दिये ॥ १ ॥ कुटिल रावण की कही कटु वाणी सुन श्रीहनुमान्जी के उर में क्रोधरूप विंध्याचल वढ़ा । परन्तु ईश रघुनाथजी की आज्ञा-रूप अगस्त्य को विचार कर कि हमें रावण को मारने की आज्ञा नहीं है, सकुच कर सम भया। यथा विंध्याचल बढ़ते में गुरु अगस्त्य को देख सकुच कर थोड़ा रह गया, तथा हनुमान्जी का क्रोध प्रभु की आज्ञा को विचार कर सकुचकर थोड़ा भया ॥ २ ॥ बुद्धिबल, निश्शंकता, पराक्रम सब वर्तमान हैं । परन्तु इनको हनुमान्जी ने छिपा रक्खा। काहे से सब कोई यह कहते हैं कि जैसे समय का समाज हो वैसे साधक होना चाहिये । यह विचार कर हनुमान्जी ने बुद्धि के बल से साहस पराक्रम को छिप रक्खा ॥ ३ ॥ सकुच सहित शोक करते वृक्ष से उतर हनुमान् ने श्रीजानकीजी के चरणकमलों को नमस्कार किया। किस प्रकार, यथा अवसर पर सज्जन का कार्य सज्जन चूक जाइ, तो उसे उससे मिलने में संकोच लगता है ॥ ४ ॥ हे मातु, यह विनीत वचन है। मुद्रिका मैं लाया, यह प्रीति वचन है । तुमको प्रभु ने सहिदानी निशानी दी यह प्रतीति वचन है । और नीति का निचोड़ वचन आगे कहते हैं कि "जो कालिह कारिख धोइ कहौंगो" । हनुमान्जी के वचन सुन जानकीजी ने भली भाँति से भला कर जाना ॥ ५ ॥ नीति का निचोड़ कहते हैं—हे देवि, विना करतूत किये कहे सब लोग लघु तुच्छ जानेंगे, इससे समर-रूपी नदी में अपने मुख की स्याही धोकर कल आपसे कहूँगा ॥ ६ ॥ जानकीजी के मिलने का हर्ष, दुःख की दशा देख शोक, इससे हरि हनुमान्जी से कुछ हृदय में करते नहीं बनता। तब तुलसीश हनुमान्जी मन में यह कहते हैं कि

लंका को ऐसा चौपट करूँ जिसमें सघन घमोय जामे। घमोय बढ़े से नगर उजाड़ होता है ॥ ७ ॥

हौं रघुबंसमनि को दूत।
मातु मानु प्रतीति जानकि जानु मारुतपूत ॥ १ ॥
मैं सुनी बातैं असैली कहि जे निश्चर नीच।
क्यों न मारे गाल बैठो काल दाढ़न बीच ॥ २ ॥
निदरि अरि रघुबीर बल लै जाउँ जो हठि आजु।
डरौं आयसुभंग ते अरु बिगरि है सुरकाजु ॥ ३ ॥
बाँधि बारिधि साधि रिपु दिन चारि में दोउ बीर।
मिलहिंगे कपि भालुदल सँग जननि उर धरु धीर ॥ ४ ॥
चित्रकूटकथा कुसल कहि सीस नायो कीस।
सुहृद सेवक नाथ को लखि दई अचल असीस ॥ ५ ॥
भये सीतल स्रवन तन मन सुने बचनपियूख।
दास तुलसी रही नयनन दरस ही की भूख ॥ ६ ॥

मैं रघुवंशमणि का दूत हूँ और पवन का पुत्र हूँ। हे माता जानकी, मेरी बात की प्रतीति मानो ॥ १ ॥ नीच निशाचर रावण ने जो असैली कहे विषय की आशा लिये दुष्टता की बातें कही हैं, सो सब मैंने सुनी हैं। काल की दाढ़ों के बीच में बैठा है, तो क्यों न गाल मारे? भाव काल के वश है, उसको सन्निपात चढ़ा है, इससे ऐसी बात क्यों न कहे ॥ २ ॥ श्रीरघुनाथजी के बलसे अरि रावण का निदरि कहे जीत कर आजु हठि ज़बर-दस्ती तुमको मैं ले जाऊँ, तो प्रभु के आयसु भंग को डरता हूँ कि प्रभु की आज्ञा नहीं है। दूसरे देवतों का कार्य रावण का

परिवार सहित नाश होना, सो बिगड़ जायगा ॥ ३ ॥ रिपु को साधि कहे फोड़ कराकर विभीषण को मिलाकर चार दिन कहे अल्प दिनों में समुद्र में सेतु रच कपि भालुदल संयुक्त दोनों भाई आ मिलेंगे। हे जननी, धैर्य को धारण कर। यहाँ चार दिन कहने में दूसरा अभिप्राय है। अगहन शुक्ल द्वादशी को हनुमान्‌जी श्रीजानकीजी से बातें करते हैं, और पौषशुक्ल त्रयोदशी को सेतु बाँध तैयार हुआ। इसमें एक मास का अन्तर है। एक मास में एक दिन चार बार बीतता है, इससे चार दिन कहे। रिपु को साधना एक तो विभीषण को मिलाना, दूसरे समुद्र लंका का प्रथम फाटक है, उसका टूट जाना समुद्रपार प्रभु के आने की खबर मिलना सोई कपि-सैन्यसहित प्रभु का मिलना श्रीजानकीजी को है। इसी अभिप्राय से श्रीहनुमान्‌जी श्रीजानकी प्रति यह कहते हैं ॥ ४ ॥ चित्रकूट की कथा इंद्र के पुत्र जयन्त की तुम्हारे विरोध से कैसी दशा प्रभु ने की, जो देवराज का पुत्र है। और दुष्टों की क्या हकीकत है। प्रभु की कुशल कह हनुमान्‌जी ने माथा नवाया। सुहृद मित्रवर्ग सहित श्रीरघुनाथजी के सेवक हनुमान् को देख जानकीजी ने अचल असीस दी कि प्रभु में तुम्हारी प्रीति अचल रहे ॥ ५ ॥ श्रीजानकीजी के अमृतमय वचन सुन हनुमान्‌जी श्रवण से, मन से, तन से शीतल भये। सब आशा भरोसा छोड़ एक नेत्रों में श्रीराम जानकी के दर्शन की भूख रह गई, अथवा हनुमान्‌जी के अमी वचन सुनि श्रीजानकीजी शीतल हुईं। विरहताप जाता रहा, केवल नेत्रों में प्रभु के दर्शन की भूख रह गई ॥ ६ ॥

तात तोहूँ सों कहत होति हिये गलानि।
मन को प्रथम मन समुझि अछत तन
लखि नई गति भई मति मलानि ॥ १ ॥

पियको बचन परिहरेउ जियके भरोसे
संग चली बन बड़ो लाभ जानि ।
पीतम बिरह तौ सनेह सरबस सुत
अवसर को चूकिबो सरिस न हानि ॥ २ ॥
आरज सुवन के तौ दया दुवनहु पर
मोहिं सोच मोते सब बिधि नसानि ।
आपनी भलाई भलो कियो नाथ सबही को
मेरे ही अदिनबस बिसरी बानि ॥ ३ ॥
नेम तो पपीहा ही के प्रेम प्यारी मीनही के ।
तुलसी कही है नीके हृदय आनि ।
इतनी कही सो कही सिया ज्यों की त्यों ही
रही प्रीति परसही विधि सो न बसानि ॥ ४ ॥

हे तात, तुझसे भी बात कहते मेरे हृदय में ग्लानि होती है। काहे से प्रथम का अपना यह प्रण समझ कि प्रभु विना मेरे प्राण न रहेंगे, सोई अछत कहे तनु के रहे से नई गति, प्रीतम का वियोग भया, तनु बना रहा, यह गति देख मेरी मति मलिन हुई। इसको समुझ ग्लानि आती है ॥ १ ॥ प्रभु का यह वचन कि तुम अयोध्या में रहो, इसका परित्याग कर जी का भरोसा रख कि संग गये मेरे प्राण रहेंगे, घर रहे प्राण न रहेंगे, यह जी का भरोसा जान प्रभु के संग आई कि प्रभु के संग वन में बड़ा लाभ है। यह जान वहाँ लोग-कुटुम्ब छोड़ सर्व सनेह प्रीतम को जाना। तिनके वियोग का विरह हुआ तो उस अवसर पर प्राण छोड़ देना उचित था। सो नहीं भया। उस अवसर के चूकने के

समान और दूसरी हानि नहीं है ॥ २ ॥ आर्य गुरुजन को कहते हैं। सो बड़े राजा दशरथ के पुत्र राम की दया तो दुवन शत्रुओं पर भी देखी जाती है। जो शत्रुता करते हैं, उनका भी वध कर सुन्दर गति देते हैं। फिर मैं तो शरणागत हूँ; मेरी तो सब क्षमाही करैंगे। मुझ को यह शोच है कि मुझसे सब विधि से नशानी है। प्रथम आज्ञाभंग कर वन में संग आई, दूसरे हित के वचन कहते में लषणलाल को कटु वाणी कही, तीसरे वियोग में तनु रख छोड़ा। हाँ, प्रभु अपनी भलाई से सबका भला किये हैं। परंतु मेरे अदिन हैं, इसीसे प्रभु ने अपनी बानि कहे स्वभाव को बिसार दिया ॥ ३ ॥ नियम तो एक पपीहा के है कि घन कितना ही निरादर करे, परंतु पपीहा नियम को नहीं छोड़ता। और प्रेम एक प्यारी मीन ही के है। जल से अलग होते ही प्राण छोड़ती है। यह बात नीकी भाँति श्रीजानकीजी हृदय में लाकर कहती भई। इतनी बात कह सिया ज्यों की त्यों रह गई। भाव प्रीति तो सही, पर चित्र सी लिखी रह गई, परंतु विधि तो कहे जैसी मरज़ी प्रभु की होती है वैसी विधाता कराता है। इसमें किसी का उपाय नहीं ॥ ४ ॥

मातु काहे को कहत अति वचन दीन ।
तब की तुही जानत अबकी हौंहीं कहत
सबके जिय की जानत प्रभु प्रबीन ॥ १ ॥
ऐसे तो सोचहि न्याय निठुर नायक रत
सलभ कुरंग खग कमल मीन ।
करुना निधान को तौ ज्यों ज्यों तनु छीन भयो
त्यों त्यों मन भयो तेरे प्रेम पीन ॥ २ ॥

सिया को सनेह रघुबर की दसा सुमिरि
पवनपूत देखि प्रीति लीन ।
तुलसी जनक जननिहु प्रबोध कियो
समुझि तात जग बिधि अधीन ॥ ३ ॥

हनुमान्‌जी कहते हैं हे मात, अत्यन्त दीन वचन काहे को कहती हो। प्रभु की प्रीति तुम में जैसी थी, सो तबकी तुमही जानती हो, अब की प्रीति मैं कहता हूँ। और प्रभु तो प्रवीण सबके जी की गति जानते हैं। तुम्हारे दुःख समझ क्यों न दुःखित हों ॥ १ ॥ जैसा तुम शोच करती हो, वैसा शोच तो वे करें, जो निठुर नायक में रत हों। यथा शलभ को दीपशिखा, कुरंग को गान, खग पपीहा को स्वाती के मेघ, कमल को सूर्य, मीन को जल इत्यादि निठुर नायक हैं। करुणानिधान रघुनन्दन की तो ज्यों ज्यों तनु क्षीण कहे दुर्बल होती है त्यों त्यों तुम्हारे प्रेम में पीन कहे पुष्टता होती है ॥ २ ॥ श्रीजानकीजी का नेह और रघुनाथजी की दशा सुमिरि हनुमान्‌जी प्रीति में लीन भये दुःखित भये। यह देख श्रीजानकीजी ने हनुमान्‌जी को समझाया कि हे तात, जगत् विधि के अधीन है ॥ ३ ॥

राग जैतश्री

कहौ कपि कब रघुनाथ कृपाकरि हैं
निज वियोग सम्भव दुख ।
राजिवनयन मयन अनेक छबि
रघुकुलकुमुद सुखद मयंकमुख ॥ १ ॥

बिरह अनल सहायक समीर निज
तनु जरिबे कहँ रही न कछु सक।
अति बल जल बरषत दोउ लोचन
दिन अरु रयनि रहत एकहि तक ॥ २ ॥
सुदृढ़ ज्ञान अवलंब सुनहु सुत
राखौं प्रान बिचारि दहन मत।
सकुन रूप लीला विलास सुख
सुमिरन करत रहत अन्तरगत ॥ ३ ॥
सुनु हनुमन्त अनन्त बन्धु को
करुना सुभाउ सुसील कोमल अति।
तुलसिदास यह त्रास जानि जिय
बरु दुख सहौं प्रकट न कहि सकति ॥ ४ ॥

हे कपि, श्रीरघुनाथजी कब कृपा करके अपने वियोग से सम्भव कहे उत्पन्न दुःख को हरेंगे। कैसे हैं प्रभु, कमल सम जिनके नेत्र हैं। तनु में अनेक कन्दर्पों की शोभा है। रविकुल-कुमुद के लिये प्रकाशक सुखदायक जिनका मुख सुन्दर चन्द्रमा है ॥ १ ॥ अपनी श्वास पवन की सहायता से विरहरूप अग्नि में तनु के जलाने में कुछ सन्देह नहीं था; परन्तु दिनरात लगातार दोनों नेत्र प्रबल जलधारा बरसाते हैं और बिरह-अग्नि बुझा देते हैं, जिससे मैं तनु जलाने नहीं पाती ॥ २ ॥ सुदृढ़ ज्ञान (दुःख-सुख तो देह का धर्म है, आत्मा सदा एकरस है, इस से दुःख का भी नाश है, सुख का भी नाश है। उसको सत्य मानकर दुःख में अधीर हो तनु को भस्म कर देना अज्ञानमत है) अवलम्ब कर धैर्य धारण कर

विचार बल से दहनमत अज्ञान का खण्डन कर प्रधान को रखती हूँ। अथवा शरणपाल दयालु प्रभु जिसको अपनाते हैं, उसको त्यागते नहीं। तो फिर मुझ को क्यों न मिलेंगे, यह सुन्दर दृढ़ ज्ञान का अवलम्ब विचार बलसे दहनमत देह को भस्मकर देना उसको रोक प्राण को रखती हूँ। विचार यह कि प्रभु फिर मिलेंगे। और शकुन कहे सुन्दर दिव्यगुण सहित जो प्रभु के नाम, रूप, लीला, धाम, तिनको अन्तर्गत कहे मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार इत्यादि अन्तःकरण में स्मरण करती रहती हूँ। भाव प्रभु का नाम अनेक पतितों को पावन करता है। उसका अहंकार अन्तःकरण में सुमिरती हूँ। लीला का जो विलास उसको बुद्धि अन्तःकरण में स्मरण करती हूँ। रूप जो है उसके अंग अंग की माधुरी चित्त में स्मरण करती हूँ। धाम का जो सुख उसको मन अन्तःकरण में स्मरण करती हूँ ॥ ३ ॥ हे हनुमन्त, अनन्त जो लक्ष्मणजी, तिनके बन्धु श्रीरघुनाथजी का करुणामय स्वभाव है। यथा कवितावल्यां—तौलौं न दाप दल्यो दसकन्धर जौलौं बिभीखन लात न मारे ॥ और सुशील हैं। यथा भगवद्गुणदर्पणे—शोणितोत्सिक्तसर्वाङ्गं क्रव्यादं च जटायुषम्। अङ्कमाराध्य पप्रच्छ संचस्कार मृतं नृपः॥ और प्रभु अत्यंत कोमल हैं इससे श्रीजानकीजी कहती हैं कि प्रभु का करुणामय स्वभाव सुशील कोमल समझ इस त्रास से दुःख सहती और प्रकट कह नहीं सकती कि जब तुम कहोगे, तब प्रभु बड़े दुःख में पड़ेंगे। इसी त्राससे नहीं कहती ॥ ४ ॥

राग केदार

कबहुँक कपि राघव आवहिंगे।
मेरे नैन चकोर प्रीति बस
राकाससि मुख देखरावहिंगे ॥ १ ॥

मधुप मराल मोर चातक ह्वै
लोचन बहु प्रकार धावहिंगे ।
अंग अंग छबि भिन्न भिन्न सुख
निरखि निरखि तहँ तहँ छावहिंगे ॥ २ ॥
बिरहअग्नि जरि रही लता ज्यों
कृपादृष्टि जल पलुहावहिंगे ।
निज बियोगदुख जानि दयानिधि
मधुर बचन कहि समुझावहिंगे ॥ ३ ॥
लोकपाल सुर नाग मनुज सब
परे बन्दि कब मुकतावहिंगे ।
रावनबध रघुनाथ बिमल जस
नारदादि मुनि सब गावहिंगे ॥ ४ ॥
यह अभिलाष रैनि दिन मेरे
राज्य बिभीखन कब पावहिंगे ।
तुलसिदास प्रभु मोहजनित भ्रम
भेदबुद्धि कब बिसरावहिंगे ॥ ५ ॥

हे कपि, कभी श्रीरघुनाथजी यहाँ आवेंगे ? हमारे नेत्रचकोर जो प्रीति के वश हैं, तिनको राका पूर्णमासी के चन्द्रसा मुख दिखावेंगे ॥ १ ॥ सो छवि देख हमारे नेत्र बहुत प्रकार के रूप धर धावेंगे और अंग अंग पर छवि भिन्न भिन्न अपना सम्बन्धी सुख देख वहाँ छावेंगे। सो कहते हैं, मधुप कहे भ्रमर हो पद-कर-नेत्र-मुख कमल जान दौड़कर उसपर वास करेंगे। नाभी-सरोवर में

श्रमसीकर मुक्ता जान मराल हो वास करेंगे। वाणी की गर्जना, पीताम्बर को दामिनी जान मोर हो छावेंगे। श्याम तनु मेघ जान चातक हो कब धावेंगे॥ २॥ विरह की दावानल में लता के समान जल रही हूँ। उसको कृपा की दृष्टि रूपी जल सींच पलुहावहिं कहे हरित करेंगे। अपने वियोग का दुःख जान कृपा के निधि रघुनन्दन मधुर वचन कह कह समझावेंगे॥ ३॥ लोकपाल सब, और स्वर्गवासी देवता, पातालवासी नाग, मर्त्य-लोकवासी मनुष्य, ते सब रावण के बंदीखाने में पड़े हैं। तिनको कब छुड़ावेंगे। सेन परिवारसहित रावण का वध, उसका सुन्दर यश रघुनाथजी का, विमल कहे जिसमें कोई मलिन कर्त्तव्यता नहीं है, ऐसा विमल यश नारद आदि मुनिजन गावेंगे॥ ४॥ यह अभिलाषा हमारे रातदिन है कि विभीषण लंका का राज्य कब पावेंगे इत्यादि। पूर्वाभिलाष दशा है। श्री-जानकीजी कहती हैं कि हमारे मोह से जनित कहे उत्पन्न जो कनकमृग का भ्रम अथवा मारीच को लक्ष्मण कहकर पुकारने से जो प्रभु का भ्रम हुआ और भेद बुद्धि से लक्ष्मणजी को दुर्वचन कहे, उसको प्रभु कब बिसरावेंगे॥ ५॥

सत्य बचन सुनु मातु जानकी।
जन के दुख रघुनाथ दुखित अति
सहज प्रकृति करुनानिधान की॥ १॥
तुव बियोग सम्भव दारुन दुख
बिसरि गई महिमा सुबान की।
नतु कहु कहँ रघुपति सायक रबि
तमअनीक कहँ जातुधान की॥ २॥

कहँ हम पसु साखामृग चंचल
बात कहौं मैं विद्यमान की ।
कहँ हरि सिव अज पूज्य ज्ञानघन
नहिं बिसरत वह लगनि कान की ॥ ३ ॥
तुव दरसन सँदेश सुनि हरि की
बहुत भई अवलम्ब प्रान की ।
तुलसिदास गुन सुमिरि राम के
प्रेमबिबस नहिं सुधि अपान की ॥ ४ ॥

हे मातु जानकी, हमारे सत्य वचनों को सुनो। श्रीरघुनाथजी करुणानिधान हैं। जिनका सहजही में प्रकृति कहे स्वभाव है कि अपने जनके दुःख से आप अत्यन्त दुःखित होते हैं ॥ १ ॥ हे माता, तुम्हारे वियोग से सम्भव कहे उत्पन्न जो है दारुण दुःख, उससे अपने वाणों की महिमा को प्रभु भूल गये। नहीं तो कहाँ रघुनाथजी के सूर्यरूपी बाण और कहाँ राक्षसों की अनी कहे सेना अंधकारसम। उसकी क्या हक़ीक़त है ॥ २ ॥ काहे से बाणों की महिमा भूली जानते हैं। कहाँ हम शाखामृग वानरचंचल पशु, तिनसे प्रीति कर सलाह करते हैं। सो विद्यमान जो हमारे ऊपर बीती है उसकी बात कहता हूँ। और कहाँ ब्रह्मा विष्णु शिव के पूजनीय, ज्ञानघन कहे पूर्णज्ञानमय स्वरूप परब्रह्म श्रीरघुनाथजी ! वह हमारे कान में लगकर बातें करते हैं। सो कान का लगना हमको भूलता नहीं। महिमा यथा—"विधि हरि हर पद बन्दत रेनू॥" पुनः—"शिव विरंचि हरि जाके सेवक।" तत्र प्रमाणवशिष्ठसंहितायाम्—जयमत्स्याद्यसंख्येयावतारोद्भवकारण॥ ब्रह्मविष्णुमहेशादिसंसेव्यचरणाम्बुज ॥ पुनः शिववाक्यं महारामा-

यथा—अहं विधाता गरुडध्वजश्च रामस्य बाले समुपासकानाम् । गुणाननंतान् कथितुं न शक्ताः सर्वेषु भूतेष्वपि पावनास्ते ॥ पुनः स्कन्दपुराणे विष्णुवाक्यम्—नमो रामाय विभवे तुभ्यं विश्वैक-साक्षिणे । नमोविश्वैकदेहाय नमोविश्वातिगायते ॥ सत्वोपाधिरहं राम हृदयं तु पितामहः ॥ कण्ठस्ते नीलकण्ठोऽयं भ्रूमध्ये च तवे-श्वरः ॥ ऐसी महिमा जिनकी वेदवेदांतप्रतिपाद्य ज्ञानसमूह पर-ब्रह्म श्रीराम, वह अपने भक्तों पर करुणा कर आप दुःखित होते हैं ॥ ३ ॥ हनुमान्‌जी कहते हैं—हे श्रीजानकीजी, तुम्हारे दर्शन के सन्देश सुन कर प्रभु को बहुत प्राणों का अवलम्ब हुआ अर्थात् अब होगा । यहाँ धीरज दृढ़ करवाने को भूतकाल भविष्यकाल वर्तमान सा बोधक है । जब सुग्रीव से भेंट भई, तब पट भूषण दे आपके दर्शन का सन्देश सुग्रीव से सुन प्रभु को प्राणों का बहुत अवलंब हुआ । यह भूतकाल है । और अब संदेश सुनकर होगा, इसमें विलम्ब नहीं, यह भविष्य काल है । गोसाईंजी कहते हैं कि उस अवसर में शील, सौहार्द, करुणा आदि गुण प्रभु के स्मरण कर श्रीहनुमान्‌जी प्रेम के वश हुए, इससे अपान कहे अपनी देह की सुध नहीं रही ॥ ४ ॥

राग कान्हरा ।

रावन जोपै राम रन रोखे ।
को सहिसकै सुरासुर समरथ
बिसिख काल दसनन ते चोखे ॥ १ ॥
तपबल भुजबल कै सनेहबल
सिव बिरंचि नीके बिधि तोखे ।

सो फल राजसमाज सुवन जन
आपन नास आपने पोखे ॥ २ ॥
तुला पिनाक साह नृप त्रिभुवन
भट बटोरि सबके बल जोखे ।
परसुराम से सूर सिरोमनि
पल में भये खेत केसे धोखे ॥ ३ ॥
कालिह कि बात बालि की सुधि करि
समुझ हिताहित खोलि झरोखे ।
कहो कुमंत्रिन को न मानिये
बड़ी हानि जिय जानि त्रिदोखे ॥ ४ ॥
जासु प्रसाद जन्मि जग पुरिखन
सागर सजे खने अरु सोखे ।
तुलसिदास सो स्वामि न सूझ्यो
नयन सीस मंदिर के से मोखे ॥ ५ ॥

रावण प्रति श्रीहनुमान्जी के वचन हैं। हे रावण, तुझपर जो श्रीराम रण में रोषे, भाव रोष करेंगे, तब विशिख जो प्रभु के बाण हैं, सो काल के दाँतों से चोखे कहे पैने हैं, तिनको देवता दैत्य ऐसा कौन समर्थ है, जो सह सकेगा। भाव ऐसा कोई नहीं है, जो सह सके ॥ १ ॥ तपबल से अर्थात् शीश काट शिव को चढ़ाये, अथवा भुजबल से कैलास उठाया, उससे, अथवा तप का फल ब्रह्मा का वरदान पाया, अथवा विश्रवा ने अपने पौत्र का पुत्र जान सनेह किया, उसके बलसे इत्यादि। शिव व विरंचि को अच्छी तरह तोषे प्रसन्न किया। उसका फल राजसमाज पुत्र

सेवक पाया। उस अपने पोषे परिवार को अपने हाथही नाश किया चाहते हो ॥ २ ॥ साहु राजा जनकजी पिनाक धनुष को तराजू बनाकर तीनों लोक के योद्धाओं का बल बटोरकर तौल लिया, भाव किसी का उठावा न उठा। उसको प्रभु ने सहज ही में तोड़ डाला और परशुराम से शूर-शिरोमणि प्रभु के सामने पल में खेत के से धोखे हो गये। खेतमें जैसे नक़ली आदमी की शकल बनाकर खड़ी कर दी जाती है और उसमें कुछ करने की शक्ति नहीं होती, वैसे परशुराम हो गये ॥ ३ ॥ कालिह कहे थोड़े दिन की बात है, वालि सा वली, जिसके सम्मुख कोई वीर नहीं होता और तुमभी छःमहीने वगल में जिसकी दवे रहे, उस वालि को एक वाण से प्रभु ने मारा। उसकी सुध करके झरोखा खोल मोह अभिमान छोड़ हृदय से विचार देखो, क्या हित है क्या अहित मन से विचारो और कुमंत्रियों का कहा न मानो। काहे से यथा कफ पित्त वात तथा काम क्रोध लोभ के त्रिदोष का सन्निपात से काल के वश हैं, तिन मंत्रियों का वचन मानने से बड़ी तुम्हारी हानि है, यह जी में जानिये ॥ ४ ॥ जिन श्रीरघुनाथजी के प्रसाद से जन्म ले कर पुरखा या पुरुषों से प्रियव्रत ने सागर को सजा उत्पन्न किया सगर के पुत्रों ने खोदा अगस्त्यजी ने सोखा, गोसाईंजी कहते हैं कि हनुमान्‌जी रावण से कहते हैं कि ऐसे स्वामी रघुनाथजी तुझको नहीं सूझ पड़ते तो तेरे नेत्र शीश मंदिर के से झूठे झरोखे हैं ॥ ५ ॥

राग मारू

जो हौं प्रभु आयसु लै चलतो।
तौ यहि रिस तोहिं सहित दसानन जातुधानदल दलतो ॥ १ ॥
रावन सो रसराज सुभट रस सहित लंक खल खलतो।

करि पुटपाक नाकनायक हित घने घने घर घलतो ॥ २ ॥
बड़े समाज लाजभाजन भयो बड़ो काज बिन छलतो ।
लंकनाथ रघुनाथ बैर तरु आज फैलि फुलि फलतो ॥ ३ ॥
कालकर्म दिगपाल सकल जगजाल जासु करतल तो ।
तारिपु सों परभूमि रारि रन जीवन मरन सुथल तो ॥ ४ ॥
देखी मैं दसकन्धसभा सब मोते कोउ न सबल तो ।
तुलसी अरि खर आनि एक अब इती गलानि न गलतो ॥ ५ ॥

रावण से श्रीहनुमान्‌जी कहते हैं कि जो मैं युद्ध करने की प्रभु की आज्ञा लेकर चला होता तो इसी रिस में हे दशानन, तुझ सहित यातुधान राक्षसों के दल को दल डालता, किस तरह इसका रूपक आगे कहते हैं ॥ १ ॥ रसराज कहे पारा, जो मारने में दुर्घट होता है। सो रावण को रसराज करता अपर भटों को हरताल, गंधक आदि रस करता। उन सबको लंकारूप खरिल में खलतो कहे घोटता। पुट कहे अपर ओषधी सुहागा आदि को मिलाकर पाक कहे फूँककर खाक कर देता। क्यों? नाकनायक इन्द्र का महारोग नाश करने के हेतु घने कहे बहुत राक्षसों के घर घालतो नाश करता ॥ २ ॥ बिना प्रभु की आज्ञा आज जहाँ देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व सब हैं, इससे बड़ा समाज है, उस में लाज का भाजन हुआ। नहीं तो आज बिना छल के किये सन्मुख में प्रचारि बड़ा काम करता। हे लंकनाथ, आज प्रभु से वैर करने का वृक्ष फैल, फूल फलता। शत्रु का उपद्रव फैलना, उसका पछताना फूलना, सज़ा पाना फल है ॥ ३ ॥ लव निमेष दण्ड दिन मास वर्ष युग कल्प आदि काल हैं। शुभाशुभ कर्म कर्तव्यता कर्म हैं। इन्द्र वरुण कुबेर यम आदि दिग्पाल हैं। इत्यादि सब

संसार मायाजाल "मेरा, तेरा" पड़ा है। सब संसार जिनके हाथ में है, ऐसे जो श्रीराम हैं, तिनके रिपु रावण से परभूमि कहे शत्रु की सभा में युद्ध करता, तो जीना मरना दोनों सफल थे ॥ ४ ॥ जो कहो पर सभा में युद्ध कैसे बनता, तो कहते हैं—हे दशकण्ठ, तुम्हारी सभा में हम से सबल कोई नहीं है, यह हम देख चुके हैं। सब सभा का एक अन्दाज़ ले लिया है। जो युद्ध करने की प्रभु की आज्ञा पाकर आते तो रिपु का अन्दाज़ पाकर इतनी ग्लानि न करना पड़ती ॥ ५ ॥

तौलौं मातु आप नीके रहिबो।
जौलौं हौं ल्यावौं रघुबीरहि
दिनद्वै और दुसह दुख सहिबो ॥ १ ॥
सोखिकै खेत कै बाँधि सेतु करि
उतरिबो उदधि न बोहित चहिबो।
प्रबल दनुज दल दलि पलआध में
जीवत दुरित दसानन गहिबो ॥ २ ॥
बैरिबृन्दबिधवा बनितन को
देखिबो बारि बिलोचन बहिबो।
सानुज सैन्य समेत स्वामिपद
निरखि परम मुद मंगल लहिबो ॥ ३ ॥
लंकदाह उर आनि मानिबो
साँच राम सेवक को कहिबो।
तुलसी प्रभु सुर सुजस गाइहैं
मिटि जैहैं सकल सोचदव दहिबो ॥ ४ ॥

लंका भस्म करके हनुमान् जाकर श्रीजानकीजी से कहते हैं—हे मातु, तबतक आपको नीके रहना है। (भाव दुःख सुख सह कर शरीर को रखना) जबतक मैं श्रीरघुनाथजी को यहाँ लिवा लाऊँ। तबतक दिन द्वै कहे थोड़े दिन दुसह दुःख सहना है ॥१॥ समुद्र को सोख कर या खेत कहे पाट कर सम थल करके या सेतु बाँधकर समुद्र को उतरना है। बोहित कहे जहाज़ का काम नहीं है। प्रबल कहे कठिन निशाचर दल को आधे पल में दलि नाश करके दुरित कहे पापरूप रावण को जीता ही पकड़ लूँगा। भाव डरकर भागे तो न जाने पावेगा ॥ २ ॥ वैरी शत्रु-समूह की विधवा स्त्रियों के रोते में नेत्रों में जल की धारा बहना देखोगी। अपनी सेना और अनुज-सहित श्रीरघुनाथजी के चरणारविंद निरख मन में मोद और नैत्रों से मंगल पाओगी ॥ ३ ॥ लंका का भस्म होना जान उसको उर में लाकर मुझ श्रीराम सेवक का कहा सच मानना। गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु का सुयश देवगण गान करेंगे। दव कहे विरहाग्नि का दहना और शोच सब मिट जायगा ॥ ४ ॥

कपि के चलत सिय को मन गहबरि आयो।

पुलकि सिथिल भयो सरीर
नीर नयनन छायो ॥ १ ॥

कहन चह्यो संदेस नहिं कह्यो पिय के
जिय की जानि हृदय दुसह दुःख दुरायो।

देखि दसा व्याकुल हरीस ग्रीषम के
पथिक ज्यों धरनि तरनि तायो ॥ २ ॥

सीताजी से हनुमान् की बिदाई

मीचंते नीच लगी अमरता छल को
न बल को निरखि परुष प्रेम पायो।
कै प्रबोध मातु प्रीति सों मनु
असीस दीन्हीं ह्वैहै तिहारोई भायो॥ ३ ॥
करुना कोप लाज भय भन्यो कियो
गौन मौनही चरन कमल सीस नायो।
यह सनेह सरबस सनो तुलसी
रसना रूखी ताही ते परत गायो॥ ४ ॥

हनुमान्‌जी के चलते समय श्रीजानकीजी का मन गहवर कहे करुणा से भर आया। प्रेम से पुलकित हो देह शिथिल हुई, नेत्रों में जल छा रहा॥ १॥ अपने दुःख की बात कहने का इरादा किया, परन्तु प्रभु के जी की कोमलता जान कि हमारे दुःख सुन कोमल मन के प्रभु अधिक दुःखित होंगे, नहीं कहा। अपना दुसह दुःख अपने हृदय में छिपा रक्खा। सो जानकीजी की विरह की दशा देखि हरीश हनुमान्‌जी व्याकुल हो गये। कैसे, जैसे ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के तपने से भूमि तप जाती है, तो उस पर चलते पथिक व्याकुल होता है, वैसे विरह-सूर्य ने श्रीजानकीजी के मन तनु रूप तप्त भूमि पर प्रेमपथिक हनुमान्‌जी का मन व्याकुल हुआ॥ २॥ मृत्यु से अपनी अमरता हनुमान्‌जी को नीच कहे तुच्छ लगी। भाव इस अवसर में जीने से मरना अच्छा। काहे से यहाँ छल से काम चले, न बल से काम चले। इस थल में छल बल नहीं चल सकता। इसको विचार हनुमान्‌जी ने अपने प्रेम को परुष कहे कठोर कर पाया। भाव मृत्यु न हुई, तो प्रेम झूठा है। माता जानकी ने हनुमान्‌जी को प्रबोध किया, प्रीति पूर्वक मन से

अशीष दी कि हे पुत्र, तुम्हारे मन का भाया जो है, सोई होगा ॥ ३ ॥ श्रीजानकीजी की दशा देख करुणा भरे, रावण की कुटिल वाणी सुने से कोप भरे, विना शत्रु का नाश किये लौटे, इससे लाज, विना प्रभु की आज्ञा लंका जलाई, इससे भय कहे डर से भरे। श्रीजानकीजी के चरण-कमल को शीश नवाकर मौन ही गमन किया। तन, मन, वचन से सर्वस्व सनेह में है, उसके गाने को तुलसी की रसना रूखी है, अर्थात् दास-भाव से गाते बनता है, जो सरस होती अर्थात् रसिक होते, तो इस समय गाते न बनता। यथा—"अंचल-ओट भये सजनी लघुमीन ज्यों बारि विना दहिये" इत्यादि ॥ ४ ॥

राग वसंत

रघुपति देखो आयो हनुमंत।
लंकेस नगर खेलो वसंत ॥ १ ॥
श्रीरामराजहित सुदिन सोधि।
साथी प्रबोधि लाँघ्यो पयोधि ॥ २ ॥
सिय पाँइ पूजि आसीस पाय।
फल अमीसरिस खायो अघाय ॥ ३ ॥
काननदल होरी रचि बनाय।
हठि तेल बसन बालधि बँधाय ॥ ४ ॥
दिये ढोल चले सँग लोग लागि।
बरजोर दई चहुँओर आगि ॥ ५ ॥
आखत आहुति कियो जातुधान।
लखि लपटि भभरि भागे बिमान ॥ ६ ॥

नभतल कौतुक लंकाबिलाप ।
परिनाम पचहि पातकी पाप ॥ ७ ॥

श्रीलक्ष्मणजी किष्किन्धा नगर गये । वहाँ से हाल पाकर कहते हैं—हे रघुनाथजी, देखो, हनुमान् लंका में वसन्त खेलकर आये हैं ॥ १ ॥ श्रीरामराज्य के लिये सुन्दर दिन शोध कर साथी अंगदादिक को प्रबोध कर पयोधि समुद्र को नाँघ गया ॥ २ ॥ तहाँ अशोकवाटिका में श्रीजानकीजी के पाँव पूज, अशीष पाकर रावण की फुलवारी में अमीसम फल अघाकर खाये ॥ ३ ॥ उस वन को उजाड़कर होली रची बनाकर हठ करके तेल में डुबाए पट बालधि पूँछ में बँधा लिये ॥ ४ ॥ निशाचर लोग साथ लगे ढोल बजाते चले । पूछ में आग जलती है, सोई बरजोर कहे ज़बरदस्ती चारो ओर लंका में आग लगा दी ॥ ५ ॥ तहाँ आहुति के आखत जव वल्ला आदि निशाचरों को कर बलती आग में डाल दिये। उस अग्नि की लपट झपट में आकाश के विमान भभरि कहे घबड़ाकर भागे ॥ ६ ॥ विमान भागे सोई कौतुक, लंका के विलाप का कौतुक नभ में देवता देखते हैं । पातकीजन परिणाम कहे अन्त में अपने पापही में पचहिं कहे बिला जाते हैं । सोई लंका में वर्तमान है ॥ ७ ॥

हनुमान हाँक सुनि बरषि फूल ।
सुर बारबार बरनहि लँगूल ॥ ८ ॥

भरि भुवन सकल कल्यान धूम ।
पुर जारि बारिनिधि बोरि लूम ॥ ९ ॥

जानकी तोषि पोष्यो प्रताप ।
जै पवनसुवन दलि दुवनदाप ॥ १० ॥

नाचहिं कूदहिं कपि करि विनोद।
पीवत मधु मधुबन मगन मोद ॥ ११ ॥
यों कहत लखन गहे पाँय आय।
मनि सहित मुदित भेंट्यो उठाय ॥ १२ ॥
लगे सजन सैन्य भयो हियहुलास।
जयजय जस गावत तुलसिदास ॥ १३ ॥

श्रीहनुमान्जी के गर्जने की हाँक सुन देवता फूल बरसाकर बारबार लंगूर की उपमा देदे वर्णन करते हैं। यथा कवितावल्यां "बालधी विशाल बिकराल ज्वाल-जाल मानों लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है। कैधौं व्योम बीथिका भरे हैं भूमि धूमकेतु बीररस बीर तरवारिसी उघारी है। तुलसी सुरेस-चाप कैधौं दामिनी कलाप कैधौं चली मेरु ते कृशानु-सरि भारी है। देखे जातु-धान जातुधानी अकुलानी कहैं कानन उजारो अब नगर पजारी है" ॥ ८ ॥ सब लोकों के द्रोही रावण का नगर भस्म होना संसार को कल्याण-रूप धूम्र भुवन में भरा है। पुर जो लंका, उसको जला-कर हनुमान्जी वारिनिधि समुद्र में लूम पूँछ को बोरि कहे बुझा कर ॥ ९ ॥ प्रभु का प्रताप पोषे कहे पुष्ट कर लङ्का में दिखाया। उससे श्रीजानकीजी को तोषे संतोष दिया। दुवन जो शत्रु दुष्ट राक्षस उनका दाप कहे दर्प अभिमान दलकर पवन-सुवन हनुमान्जी ने जय पाई ॥ १० ॥ अब इस समय में यहाँ आकर किलकारी मार नाचते कूदते इत्यादि विनोद कहे क्रीड़ा सब कपि कर रहे हैं और आनन्द में मग्न मधुवन में मधुपान कर रहे हैं। मधु फलों का मकरंद अथवा फलों का रस अथवा शहद ॥ ११ ॥ यों ऐसे वचन लक्ष्मणजी ने कहे। उसके साथ ही

हनुमान्‌जी ने प्रभु के पाँव गहे। हनुमान्‌जी को चूड़ामणि सहित प्रभु उठा कर भेंटे ॥ १२ ॥ लंका का सब हाल सुन प्रभु हृदय में आनन्द उमंग सहित सेना सजने लगे। उस यश को जयजयकार कर तुलसीदास गाते हैं ॥ १३ ॥

राग जैतश्री

सुनहु राम बिसरामधाम हरि जनकसुता अतिबिपति जैसे सहति।
हे सौमित्रि बंधु करुनानिधि मनमहँ रटति प्रकटहु नहिं कहति १
निजपदजलज बिलोक सोकरत नयन निवारि न रहत एक छन।
मनहुँ नील नीरज ससिसंभव रबिबियोग द्वौ स्रवत सुधाकन २
बहु राच्छसी सहित तरु के तर तुम्हरे बिरह निजजन्म बिगोवत।
मनहुँ दुष्ट इन्द्रिय संकट महँ बुद्धि बिबेक उदय मगु जोवत ३
सुनि कपिबचन बिचारि हृदय हरि अनपायिनी सदा सो एकमन।
तुलसिदास दुखसुखातीत हरि सोच करत मानहुँ प्राकृतजन ४

हे विश्रामधाम हरि श्रीरघुनाथजी, जिस भाँति श्रीजानकीजी अत्यन्त विपत्ति सहती हैं, उसको सुनो। हे सौमित्रि बंधु, करुणा-निधान, जानकीजी आपका नाम मन में रटती हैं अथवा हे सौमित्रिबंधु, हे करुणानिधि, हे दीनदयालु इत्यादि मन में रटती हैं और आपके वियोग का जो विरह है उसको प्रकट में नहीं कहती हैं ॥ १ ॥ नीचे को शीश किये अपने पद-कमलों को देखती हैं। दुःख में रत हैं, इससे नेत्रों से जल एक क्षण भी बन्द नहीं रहता। वे नेत्र दोनों मानों नील कमल मुख-शशि में संभव कहे उत्पन्न भये हैं। सो रवि जो तुम हो, तिनके वियोग से नेत्र-कमलों को दुःख है, इससे अमृत के कण मोचत कहे छोड़ते

हैं ॥ २ ॥ बहुत राक्षसियों सहित अशोक-वृक्ष के तले आपके विरह में अपना जन्म बिताती हैं। कैसे, मानों राक्षसी ही दुष्ट इन्द्रिय हैं। तिनके बीच में जानकीजी बुद्धि हैं। वह इंद्रियों की विषय-चाह-दुःख से पीड़ित विवेक जो तुम हो, उनका उदय अर्थात् आने का मार्ग देखती हैं ॥ ३ ॥ कपि हनुमान्जी के वचन सुन हरि श्रीरघुनाथजी ने हृदय में ऐसा विचारा कि जानकीजी का मन अनपायिनी जो अचल भक्ति उसमें सदा रत है। गोसाईंजी कहते हैं कि दुःख-सुखसे परे हरि रघुनाथजी कैसे शोच करते हैं, यथा प्राकृत संसारी जन अथवा भक्त के दुःख में प्रभु दुःखित होते हैं, इससे इस समय का दुःख सुख से परे है। भाव जन्म भर का सुख एक पल भर के दुःख से तौलिये तो दुःख भारी लगे ॥ ४ ॥

राग केदार

रघुकुलतिलक बियोग तिहारे।
मैं देखी जब जाय जानकी मनहुँ बिरहमूरति मन मारे ॥ १ ॥
चित्र से नयन अरु गढ़े से चरन कर मढ़े से स्रवन नहिं सुनति पुकारे।
रसना रटति नाम कर सिर चिर रहै निज निज पदकमल निहारे २
दरसन आस लालसा मन महँ राखे प्रभु ध्यान प्रान रखवारे।
तुलसिदास पूजति त्रिजटा नीके रावरे गुनगन सुमन सुधारे ३

रघुकुल-तिलक, तुम्हारे वियोग में दुःखित जानकीजी को जब मैंने देखा तो कैसी देख पड़ीं, मानों विरह की मूर्ति हैं। सो भी मन मारे उदासीन बैठी हैं ॥ १ ॥ नेत्र मानों चित्र की प्रतिमा कैसे पलक रहित हैं, हाथ पाँव गढ़े ऐसे चेष्टारहित हैं, कान मानों मढ़े ऐसे हैं, जो धीरे की कौन कहे, पुकारने से भी नहीं सुनते हैं। रसना से तुम्हारा नाम रटती हैं। कर हाथ को माथे पर

चिर कहे बहुत समय तक धरे रहती हैं। नेत्रों से अपने पद्-कमल निहार निहार रहती हैं ॥ २ ॥ तुम्हारे दर्शन की आशा की लालसा मन में है, इससे अपने प्राणों के रखवाले जो तुम हो उनका ध्यान हृदय में किये रहती हैं। ऐसी विरह की सी मूर्ति श्रीजानकीजी को त्रिजटा राक्षसी तुम्हारे गुणगण के सुन्दर फूल बनाकर उन्हीं से पूजती हैं। भाव तुम्हारे गुणगण सुनाकर प्रसन्न रखती हैं ॥ ३ ॥

अतिहि अधिक दरसन की आरति।
रामबियोग असोक बिटप तर
सीय निमेष कल्पसम टारति ॥ १ ॥
बारबार बर बारिजलोचन
भरि भरि बरत बारि उर ढारति।
मनहुँ बिरह के सद्य घाय हिय
लखि तकि तकि धरि धीरज तारति ॥ २ ॥
तुलसिदास जद्यपि निसिबासर
छन छन प्रभुमूरतिहि निहारति।
मिटत न दुसह ताप तउ तनु की
यह बिचारि अन्तरगति हारति ॥ ३ ॥

हे श्रीरघुनाथजी, बिना आपके दर्शन भये जानकीजी अत्यन्त अधिक आर्त्त कहे दुःखित हैं। हे रघुनन्दन, तुम्हारे वियोग से अशोक वृक्ष के तले जानकीजी पल को कल्पसम बिताती हैं ॥ १ ॥ श्रेष्ठ कमल से नेत्रों से बरत कहे गरम वारि जो जल है सो बराबर भर भर हृदय पर आँसू ढालती हैं मानों उर में विरह

के घाव सद्य कहे तुरंत के जान तिनको तकि तकि धीरज धर तारत कहे गरम जल का छींटा दे दे धोती हैं ॥ २ ॥ गोसाईंजी कहते हैं कि यद्यपि श्रीजानकीजी दिनरात ध्यान में प्रभु की मूर्ति को क्षण क्षण प्रति निहारती रहती हैं तथापि, तिसपर भी, विरह का ताप नहीं मिटता । दुसह. जो सह न जाय । सगुणरूप लीला-सुख-संयोग के भोक्ता प्रत्यक्ष रूपदर्शन के सदा प्यासे हैं और उसी में आनन्दित हैं । उनके वियोग के दुःख के सामने अन्तर की जो गति है, ध्यान का जो सुख है, सो अपना प्रभाव नहीं विस्तार कहे फैला सकता । इससे वियोग-दुःख को प्रबल विचार कर अन्तरगति तो ध्यान के सुख से आप ही हार जाता है । यहाँ प्रीति की लगन, अंग वर्णन, इसकी उत्कण्ठा-दृष्टि अभिलाष-दशा है ॥ ३ ॥

तुम्हरे बिरह भई गति जौन ।
चित दै सुनहु राम करुनानिधि
जानहुँ कछु पै सकौं कहि हौं न ॥ १ ॥
लोचन नीर कृपन के धन ज्यों
रहत निरन्तर लोचन कौन ।
हा धुनि खगी लाजपिंजर महँ
राखि हिये बड़े बधिक हठि मौन ॥ २ ॥
जेहि बाटिका बसति तहँ खग मृग
तजि तजि भजे पुरातन भौन ।
स्वास समीर भेंट भइ भोरेहु
तेहि मगु पगु न धरो तिहुँ पौन ॥ ३ ॥

तुलसिदास प्रभु दसा सिया की
मुख करि कहत होत अति गौन ।
दीजै दरस दूरि कीजै दुख
हौ तुम आरति आरत दौन ॥ ४ ॥

हे करुणा-निधान श्रीरघुनाथजी, तुम्हारे वियोग से जो गति श्रीजानकीजी की भई है, उसको चित्त देकर सुनो । काहे से कुछ जानता तो मैं हूँ, परन्तु कह नहीं सकता । इससे चित्त में विचार कीजिये ॥ १ ॥ कैसी दशा है, नेत्रों का जल नेत्रों के कोने में सदा भरा रहता है यथा कृपण का धन तथा । हा ध्वनि हृदय में खगी कहे लगी रहती है । किस भाँति ? लाजरूपी पिंजड़े में मौनरूपी बधिक ने पक्षी सरीखी हा ध्वनि को हठि ज़बरदस्ती बंद कर रक्खा है, इससे निकलने नहीं पाती ॥ २ ॥ जिस वाटिका में वास लिये हैं, वहाँ के पक्षी, मृग जानकीजी के विरहाग्नि की ज्वाला को डरकर व्याकुल हो अपने पुराने स्थान छोड़ भाग गये । श्रीजानकीजी के श्वास के पवन से भूले से भी भेंट हो गई तो सपने में जानकीजी की तरफ़ शीतल, मन्द, सुगन्ध तीनो पवन नहीं जाते । भाव श्वासा हमको जला देगी, यह सोचकर पवन डरते हैं ॥ ३ ॥ हनुमान्‌जी कहते हैं कि हे श्रीरघुनाथ, जानकीजी की जो दशा है, सो कहते नहीं बनती काहेसे मुख से कहिये तो गौन होत । भाव उनकी जो दुःख की दशा है, उसको कहिये तो सोई दशा हमारी भी होती है । उस करुणा का प्रबल भय करके हम कह नहीं सकते । दूसरे का गुण आने से गौणी लक्षणा कहाती है । इससे हे प्रभु, अपने दर्शन दीजिये और दुःख को दूर कीजिये । काहेसे आर्त दुःखित की आर्ति कहे दुःख के दमन कहे नाश करनेवाले आप हैं ॥ ४ ॥

कपि के सुनि कल कोमल बैन।
प्रेम पुलकि सब गात सिथिल भयो भरे सलिल सरसीरुह नैन १
सिय बियोगसागर नागर मनु बूड़न लग्यो सहित चित चैन।
लही नाव पवनजप्रसन्नता बरबस तहाँ गह्यों गुन मैन २
सकत न बूझि कुसल बूझे बिनु गिरा बिपुल ब्याकुल उर ऐन।
ज्यों कुलीन सुचि सुमति बियोगिनि सन्मुख सहै बिरहसर पैन ३
धरि धरि धीर बीर कोसलपति कियो जतन सके उतर न दैन।
तुलसिदास प्रभु सखा अनुज सों सैनहिं कह्यो चलहु सजि सैन ४

उक्ति-युक्ति से कल हैं। करुणारस भरे इससे कोमल हैं। ऐसे कल कहे सुन्दर कोमल कहे मधुर वचन कपि हनुमान्‌जी के सुन श्रीरघुनाथजी का गात प्रेम से पुलकि शिथिल हो कमल से नेत्रों में जल भर आया॥ १॥ श्रीजानकीजी के वियोगरूपी समुद्र में प्रभु का मन नागर कहे चतुर उस सहित चित्त का आनन्द बूड़ने लगा। उस अवसर में पवनज हनुमान्‌जी की जानकीजी के देख आने की प्रसन्नतारूप जहाज़ पाया। तहाँ संयोग-सुखरूपी वासनारूपगुण कहे डोरी को कन्दर्प ने बरबस ज़बरदस्ती पकड़ रक्खा। मैन मन को खींचता है, इससे बहने नहीं पाया॥ २॥ प्रेम से कण्ठावरोध होने से कुशल पूछ नहीं सकते। विना पूछे हृदयरूप मन्दिर में वाणी अत्यन्त व्याकुल हो किस भाँति कहती है, यथा कुलीन पवित्र मतिवाली वियोगिनी स्त्री विरहरूपी पैने बाण सम्मुख सहती है, तथा प्रभु के हृदय में वाणी विकल है। यहाँ पतीव्रत अनुकूल नायकत्व वर्णन किया॥ ३॥ वीर कोशलपति ने धीरज धर वचन कहने को अनेक यत्न किये पर

कुछ कहते न बना। तब सखा सुग्रीव और लक्ष्मणजी से सैन ही में प्रभु ने कहा कि सेना सजकर चलो॥ ४॥

राग मारू

जब रघुबीर पयानो कीन्हों।
छुभित सिंधु डगमगत महीधर सजि सारँग कर लीन्हों॥ १॥
सुनि कठोर टंकोर घोर अति चौंके बिधि त्रिपुरारि।
जटापटल ते चली सुरसरी सकत न शम्भु सँभारि॥ २॥
भये बिकल दिगपाल सकल भयभरे भुवन दशचारि।
खरभर लंक ससंक दसानन गर्भ स्रवहिं अरिनारि॥ ३॥
कटकटात भट भालु बिकट मर्कट करि केहरिनाद।
कूदत करि रघुनाथ शपथ उपरी उपरा बदि बाद॥ ४॥
गिरितरुधर कर नख कराल रद कालहु करत विषाद।
चले दसदिसिरिसि भरि धरु धरु कहि को बराक मनुजाद॥ ५॥
पवन पंगु पावक पतंग ससि दुरि गये थके बिमान।
जाँचत सुर निमेष सुरनायक नयनभार अकुलान॥ ६॥
गये पूरि सर धूरि भूरिमय अग जग जलधि समान।
नभ निसान हनुमान हाँक सुनि समुझत कोउ न अपान॥ ७॥
दिग्गज कमठ कोल सहसानन धरत धरनि धर धीर।
बारहिंबार अमर्षत कर्षत करकैंवरी सरीर॥ ८॥
चली चमू चहुँ ओर सोर कछु बनै न बरनत भीर।
किलकिलात कसमसत कोलाहल होत नीरनिधितीर॥ ९॥

जातुधानपति जानि कालबस मिले बिभीखन आइ।
सरनागत पालक कृपाल कियो तिलक लियो अपनाइ॥ १०॥
कौतुक ही बारिधि बँधाइ उतरे सुबेलतट जाइ।
तुलसिदास गढ़ देखि फिरे कपि प्रभुआगमन सुनाइ॥ ११॥

जिस समय श्रीरघुनाथजी ने लंका को पयान किया उस अवसर में बाँधने का भय करके समुद्र सशंक भया। पृथ्वी हिल उठी। उससे पर्वत डगमगा उठे। उस समय शारँग धनुष को सजि कहे रोदा चढ़ाकर हाथ में प्रभु ने लिया॥ १॥ रोदा खींचकर छोड़ दिया। उस टंकोर की कठोर घोर ध्वनि सुन ब्रह्मा चौंक पड़े, शिवजी के जटा-पटल से गंगाजी बहचलीं। उनको शिवजी सँभाल नहीं सकते॥ २॥ सकल दिग्पाल विकल हो गये। काहे से चौदहों भुवन में भय भर रहा है, लंका में खलभली भई है, रावण शंकायुत भया, निशाचरों की नारियों के गर्भ गिरपड़े॥३॥ रीछ भट कटकटाते, दाँत पीसते हैं। मर्कट वानर विकट कठिन भट सिंह के समान गर्जते हैं। उपरी उपरा बढ़ा बढ़ी का वाद कर प्रभु की शपथ खाकर कूदते हैं॥ ४॥ पर्वत, वृक्ष धारण किये हैं। जिनके कर में नख, मुख में दाँत कराल देख काल भी विषाद करता है। वे कोप के भरे वानर, रीछ धरु धरु मारु मारु करते दसो दिशाओं को चले। उनके आगे तुच्छ राक्षस बेचारे क्या ॥ ५॥ पवन का चलना बन्द हो गया। धूल के समूह से अग्नि, रवि, चन्द्रमा छिप गये। हाहाकार से विमान थकित हो थम गये। धूलि से आँखें बंद हैं, इससे देवता पलक चलाना चाहते हैं। धूल भर जाने से इंद्र नेत्रभार से अकुला उठे॥ ६॥ सर, तड़ाग धूल से पूरित हो पट गये। भूरि कहे अनेकों अंग जो हैं पर्वत वे पृथ्वी में समा गये। इससे भूमि से जल

निकल आया। सब जलाशय जलधि के समान हो गये। आकाश से देवतों के वाजों का शब्द और यहाँ हनुमान्‌जी की हाँक में अपना कहा भी किसी को नहीं समझ पड़ता ॥ ७ ॥ दिग्गज दिशि-कुंजर, कच्छप, वाराह, सहसानन शेषजी आदि धीरज धर धर पृथ्वी को धारण करते हैं; लेकिन भार नहीं सह सकते, इससे अंग में करकैवरी चोट खा गये। इससे अमर्षि कहे कुपित हो कर्षत कहे ललकार के अथवा कर्षत कहे खींचकर देह सीधी बराबर करते हैं ॥ ८ ॥ चमू सेना चली, इससे चारो दिशाओं में शोर मचरहा है। जैसी भीड़ है सो वर्णन करते नहीं बनता। वानर किलकिलाते हैं, कसमसत कहे एक में एक की देह कस गई है, इससे समुद्रतीर में कोलाहल शब्द हो रहा है ॥ ९ ॥ राक्षसों के पति रावण को काल के वश जान विभीषण प्रभु को आ मिले। शरणागतपाल कृपालु रघुनाथजी ने लंका का राज्य दे तिलक कर अपना भक्त मान लिया ॥ १० ॥ कौतुक मात्र में समुद्र में सेतु बाँध पार उतर सुबेल पर्वत के किनारे निवास किया। गोसाईंजी कहते हैं कि वानर, रीछ लंकागढ़ देख प्रभु का आगमन जनाकर लंका-तट से घूमे ॥ ११ ॥

राग आसावरी

आये दूत देखि सुनि शोचै शठ मन में।
बाहिर बजावैं गाल भालु कोपकालबस,
मोसे वीरसों चहत जीत्यो रारि रन में ॥ १ ॥
राम छाम लरिका लछन बालिबाल कुल-
घाल को गनत रिच्छ जल ज्यों न घन में।
काज कौन कपिराज कायर कपिसमाज
मेरे अनुमान हनुमान हरिगन में ॥ २ ॥

समय सयानी रानी मृदु बानी कहै पिय
पावक न होहिं जातुधान बेनु बन में।
तुलसी जानकी दिये स्वामी सों सनेह किये
कुसल नतरु सब ह्वैहैं छार छन में॥ ३॥

अब रावणका हाल कहते हैं। रावण के दूत ने प्रभु की सेना देख आकर हाल कहा। सो सुन शठ रावण के मन में शोच तो है, परन्तु बाहर से गाल बजाता है कि देखो, वानर भालु काल के वश हैं, जो मुझ जैसे वीर को रण में युद्ध कर जीतना चाहते हैं॥ १॥ राम छाम कहे दुर्बल हैं। लक्ष्मण लड़के हैं। बालिका बालक कुलघालक है। रिच्छ जाम्बवान् यथा विना जल का मेघ तथा बल से खाली है। सुग्रीव कुछ काम का नहीं। वानर समाज सब कायर हैं। मेरे अनुमान से एक हनुमान् कपिगण में बली है॥ २॥ उसी समय में सयानी रानी मन्दोदरी मृदु वाणी कहती है कि हे पति, रामस्वरूप वेणु कहे बाँस वन में तुमहीं अग्नि न होओ श्रीजानकीजी को देकर प्रभु से स्नेह करो। तभी कुशल है, नहीं तो श्रीरघुनाथजी के बाणों की आग में जलकर सब वंश सहित छार कहे खाक हो जाओगे॥ ३॥

अपनी अपनी भाँति सब काहू कही है।
मंदोदरी महोदर मालिवान महामति
राजनीति पहुँच जहाँलों जाकी रही है॥ १॥
महामदअन्ध दसकन्ध न करत कान
मीचबस नीच हठि कुगहनि गही है।

हँसि कहै सचिव सयाने मोसे यों कहत
मेरु चहै उड़न बड़ी बयारि बही है ॥ २ ॥
भालु नर बानर अहार निसिचरन को
सोऊ नृपबालकन मांगी धार लही है।
देखो कालकौतुक पिपीलिकन पंख जामे
भाग मेरे लोगन के भई चितचही है ॥ ३ ॥
तोसे न तिलोक आजु साहस समाजु साजु
महाराज आयसु भो जोई सोई सही है।
तुलसी प्रनाम कै बिभीखन बिनीत कहै
ख्याल बेधे ताल कोप केलि लंक दही है ॥ ४ ॥

अब रावण के समझाने का हाल कहते हैं। मंदोदरी, महोदर, महामतिमान् माल्यवान् (जो रावण का नाना और मंत्री है) उन सबने सब (राजनीति की पहुँच जिस की जहाँतक थी) अपनी-अपनी विधिसे रावण को समझाकर कहा ॥ १ ॥ पर महामद में अंधे रावण ने किसी के कहे पर कान नहीं दिया। काहेसे मृत्यु के वश नीच रावण ने हठि कुगहनि गही कुमार्ग गहा है। हँसकर रावण कहता है कि देखो, ऐसे सयाने सचिव मुझसे कहते हैं कि ऐसी बड़ी बड़ी हवा चली, जिस में सुमेरु उड़ा चाहता है। प्रभु-सेना पवन, सुमेरु सम आप ॥ २ ॥ एक तो नर वानर रिच्छ निशाचरों का आहार, तिसपर नृपबालकों की माँगी धार कहे फ़ौज है। माँगिलाई फ़ौज युद्ध के लायक़ नहीं होती। यह काल का कौतुक देखो। पिपील चींटी के पंख जामे। अर्थात् नर वानर चढ़ आये, सो मेरे निशाचरों के भाग्य से चितचाही भई

मन भाया आहार मिला ॥ ३ ॥ प्रणाम करके विभीषण नम्र वचन बोले कि आज तुम्हारे समान साहसी, बलवान् त्रैलोक्य में नहीं है और राज्य के साज का समाज तुम्हारा सा किसी का नहीं है। हे महाराज रावण, जो आपकी आज्ञा हुई, सोई सही है, परन्तु प्रभु का प्रताप तो देखो, जिन्होंने ख्याल ही में ताल कहे ताड़ के पेड़ बेधे (बालिवध के प्रथम), और केलि खेलवाड़ ही में हनुमान् ने तुम्हारे सामने ही लंका फूँकी ॥ ४ ॥

दूसरो न देखियत साहिब सम रामहिं ।
बेदउ पुरान कबि कोबिद बिरदरत
जाको जस गावत सुनत गुनग्रामहिं ॥ १ ॥
माया जीव जगजाल सुभाव करम काल
सब को सासकु सब में सब जामहिं ।
बिधि से करनहार हरि से पालनहार
हर से हरनहार जपै जाके नामहिं ॥ २ ॥
सोई नरबेष जानि जग की बिनती मानि
मतो नाथ सोइ जाते भलो परिनामहिं ।
सुभट सिरोमनि कुठारपानि सारि लेहु
लखी औ लखाई इहाँ कियो सुभ सामहिं ॥ ३ ॥
बचन बिभूषन बिभीखन बचन सुनि
लागे दुःख दूखन से दाहिने उर बामहिं ।
तुलसी हुमकि हिये हन्यो लात भलो तात
चलो सुरतरु तकि तजि घोर घामहिं ॥ ४ ॥

रावण प्रति विभीषण कहते हैं कि श्रीरघुनाथजी के समान-स्वामी दूसरा नहीं देख पड़ता काहेसे जिसको चारो वेद, अठारह पुराण, उप पुराण, कवि शेष वाल्मीकि आदि, पंडित ब्रह्मा सरस्वती आदि, विरत कहे वैराग्यरत शंकर, नारदादि, सब जिसका यश गाते हैं और करुणा, सौशील्यादि दिव्यगुण ग्राम को सब सुनते और अन्त कोई नहीं पाता। प्रमाण सामवेदे यथा—"या देवानां पूरयोध्या तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गलोको ज्योतिषावृतो यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेन वृतां पुरीं तस्मै ब्रह्म च ब्रह्म च आयुः कीर्तिजां ददुरितिसामवेदेतैत्तरीयश्रुतिः।" यथा पद्म-पुराणे शिववाक्यम्—न तत्पुराणं नहि यत्र रामो यस्यां न रामो न च संहिता सा॥ स नेतिहासो नहि यत्र रामः काव्यं न तत्स्या-न्नहि यत्र रामः॥ सर्वेषां वेदसाराणां रहस्यं ते प्रकाशितम्॥ एको देवो रामचन्द्रो व्रतमन्यन्न तत्समम्॥ भागवते नवमे शुकवा-क्यम्—यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि गायंत्यघघ्नमृषयो दिग्गिभेन्द्रपट्टम्। तन्नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टं पादांबुजं रघुपतेः शरणं प्रपद्ये॥ पुनः काव्ये बाल्मीकीये—वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे। वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना॥ पुनः हनुमन्नाटके—महाराज श्रीमञ्जगति यशसा ते धवलिते पयः-पारावारं परमपुरुषोऽयं मृगयते। कपर्दी कैलासं कुलिशधरणोऽब्जं करिवरं कलानाथं राहुः कमलभवनो हंसमधुना॥ पुनः कोविदर्वि-रागरतसनत्कुमारसंहितायां यथा— तत्त्वस्वरूपं पुरुषं पुराणं स्व-तेजसा पूरितविश्वमेकम्। राजाधिराजं रविमंडलस्थं विश्वेश्वरं राममहं भजामि॥ इत्यादि। सब प्रभु का यश गाते और गुणग्राम सुनते हैं तिनके सम और कौन है॥ १॥ माया पंचप्रकार अविद्या; १, जो जीव को भुलावे विद्या; २, जीव को चेतन करे, संधिनी; ३, जो जीव ईश्वर की संधि मिलावे, संदीपनी; ४, जो

जीव के भीतर ईश्वर की दीप्ति प्रकाशे आह्लादिनी; ५, जो जीव के अंदर परब्रह्म का आनन्द करे इति माया। अथ जीव के ५ भेद या अवस्था—बद्ध, मुमुक्षु, मुक्त, कैवल्य, नित्य। यथा अर्थपंचके—बद्धो मुमुक्षुः कैवल्यो मुक्तो नित्य इतिक्रमात्। बद्ध के तीन भेद। एक पामर, जो ईश्वर को जानते नहीं। दूसरे विषयी, जो जानते हैं, पर विषय में रत हैं। तीसरे चतुर, जो समझकर धिक्कार मानते हैं, पर ईश्वर सम्मुख होने की शक्ति नहीं। इति बद्ध। अथ मुमुक्षु के चार भेद। प्रथम विषयमुमुक्षु जो द्रव्य का उपाय करे, पर भागवत शास्त्र सुन मंद वैराग्य में आरूढ़ हो। दूसरा कृपाशील मुमुक्षु, जो श्रवण, कीर्तन, पूजन, जपादि कर भगवत्-अर्पण करता है। आप वैराग्यवान् है। तीसरा मननशील मुमुक्षु जो शास्त्र सुन उसका मननकर सारासार विचार कर तीव्र वैराग्य में आरूढ़ है। चौथा मुक्तशील मुमुक्षु, जो सारासार दृढ़ विचार मुक्त की दशा में अनुसंधान करे, वह तीव्रतर वैराग्यवान्। इति मुमुक्षु। अथ मुक्तता के तीन भेद। एक जीवन्मुक्त, यथा जनक। दूसरे विदेह मुक्त, यथा ऋषभदेव। तीसरे जीवन्मुक्त और विदेहमुक्त दोनों दशाओं में, यथा सनकादि। इति मुक्त। अथ कैवल्य जो ज्ञानानन्द में मग्न, यथा अष्टावक्र, जो तीव्रतम वैराग्य में आरूढ़ हैं। इति कैवल्य। अथ नित्य जो दास प्रभु के पास रहते हैं, यथा हनुमान् आदि। इति नित्य। जगजाल कहे अविद्या मायारचना, यथा—"जन्म मरन जहँ लगि जगजालू। संपति विपति कर्म अरु कालू॥ धरनि धाम धन पुर परिवारू। स्वर्ग नरक जहँ लगि व्यवहारू॥" स्वभाव कहे जैसे उत्तम मध्यम कर्म करता है वैसा ही जीव का स्वभाव पड़जाता है। इति स्वभाव। अथ कर्म प्रथम कायिक, वाचिक, मानसिक। पुनः उत्तम, मध्यम, निकृष्ट, पुनः वर्णाश्रम-अनुकूल, पुनः रजोगुणी, तमोगुणी, सतोगुणी कर्म।

यथा—"संग राग अरु द्वेष बिन नित्य कर्म जो होय। तजि फल इच्छा कीजिये सात्त्विक कर्म सुजोय॥ जो कीजै करि कामना कीधौं करि हंकार। जामें स्रम है अतिघनो सो राजस निरधार॥ पौरुष हिंसा सुभासुभ-ज्ञान न वचन-विचार। जो कीजै अज्ञान ते तामस कर्म निहार॥" अथवा कर्म, ज्ञान, भक्ति, सदाचार, शरणागत-अभिमान ये पाँच उपाय जीव के कल्याणार्थ हैं। यथा अर्थपंचके—उपायाः कथिताः कर्मज्ञानभक्तिप्रवृत्तयः। सदाचारोऽभिमानश्चेदित्येवं पंचधामतः॥ इति कर्म। अथ काल पल, दण्ड, दिन, रात। उसके षट्अंग तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, लग्न। पुनः वर्ष, उसके पाँच अंग पक्ष, मास, ऋतु, काल, अयन। पुनः सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुगादि कल्पपर्यन्त इतिकाल। विभीषण कहते हैं कि माया, जीव और जगत् का जाल स्वभाव, कर्म, काल इत्यादि जो विश्वरचना है, उस सबके शासक कहे प्रेरक श्रीरघुनाथजी हैं। सबके प्रकाशरूप व्यापक हैं श्रीरघुनाथजी। सब जामहिं कहे जिन रघुनाथजी में सब रमते हैं, अर्थात् सबको अपने वश किये आप स्ववश हो सबका तमाशा देख रहे हैं। यथा राममहिमनि—निजाव्यक्तेनेदं जगदखिलमिच्छाविकरणे समुत्पन्नं कृत्वा ह्यवसिसततं श्रीरघुपते॥ युगान्ते सर्वं वै हरसि किल रौद्रेण वपुषा त्वमेकः सर्वात्मन् विहरसि न चान्यो गुणनिधे॥ रमन्ते योगीन्द्रास्त्रिपुरहरमुख्यास्त्वयि सदा समाधौ विश्वात्मन् नियमितहर्षाका रघुपते॥ तथाप्येते पारं निखिलनिगमागोचरविभो महिम्नस्ते नूनं गमयितुमलं नैव कुशलाः॥ स्थावर, जंगम आदि जो ब्रह्मांड की समग्र रचना है, उसे जिनकी इच्छा से विधि जैसे उत्पन्न करनेवाले हैं, तथा जिन रघुनाथजी के अनुग्रह से हरि विष्णु जैसे पालनेवाले हैं, और जिनके प्रभाव से शिव से नाश करनेवाले हैं वे ही

ब्रह्मा, विष्णु, महेश जिन श्रीरघुनाथजी का नाम सदा जपते हैं। यथा बिनयपत्रिकायाम्—"हरिहि हरिता विधिहि विधिता सिवहि सिवता जिन दई। सो जानकीपति मधुरमूरति मोद-मय मंगलमई॥" तत्र प्रमाण रुद्रयामले शिववाक्यम्—यत्प्रभावेण हर्त्ताहं त्राता विष्णूरमापतिः॥ यत्प्रसादेन कर्त्ताभूद्देवो ब्रह्मा प्रजापतिः॥ पुनः भविष्योत्तरपुराणे नारायणवाक्यम्—भजस्व कमले नित्यं नाम सर्वेषु पूजितम्। रामेति मधुरं साक्षादहं संकीर्त्तये हृदि॥ आदिपुराणे शिववाक्यम्—अहं जपामि देवेशि रामनामाक्षरद्वयम्। श्रीसीतायाः स्वरूपस्य ध्यानं कृत्वा हृदि स्थले॥ ब्रह्मपुराणे ब्रह्मवाक्यं नारदं प्रति—इदमेवापि मांगल्यमिद-मेव धनागमम्। जीवितस्य फलं चैव रामनामानुकीर्त्तनम्॥ पुनः निर्वाणखण्डे शिववाक्यम्—भवन्नामामृतं पीत्वा गीत्वा च भवतो यशः। शिवोऽहं सर्वदेवैश्च पूजनीयो दयानिधे॥ पुनः स्क-न्दे निर्वाणखंडे—विष्णुरुवाच। नमोरामाय विभवे तुभ्यं विश्वैक-साक्षिणे। नमोविश्वैकदेहाय नमोविश्वातिगाय ते॥ नमोनित्याय शुद्धाय प्रभवे कालमूर्तये। दशदिग्बाहवे तुभ्यं नमोस्तु चरणाय च॥ इस तरह विधि हरि हर से जिन दशरथनन्दन का नाम जपते हैं॥२॥ उन्हीं परात्परब्रह्म साकेतविहारी श्रीरघुनाथजी ने अपनी इच्छा से नर का वेष बनाया है। उसमें न भूलो। जो परब्रह्मरूप श्रीरघुनाथजी को जानकर जन जो मैं हूँ, उसकी विनती मान कर अपने मन में विचार कर ऐसा मत करो, जिसमें परिणाम कहे अन्त में भलाई निकले। काहे से देखो सुभटों में शिरोमणि कुठारपाणि परशुराम से वीर ने भी अपना बल दिखाकर प्रभु का बल देख अपना शुभ कर्म कल्याण विचार सामै कहे मिलाप ही कर लिया॥३॥ ईश्वर का रूप लखाना शरणागत लखाना इस हेतु के जो वचन हैं, सो अपर सब वचनों के विशेष भूषण हैं।

ऐसे वचन विभीषण के सुन रावण को दुःख दूषण से लगे। यद्यपि वचन दाहने हैं, काहे से यह वेद पुराण का सिद्धांत है कि विना ईश्वर की शरण गये जीव का कल्याण नहीं है। प्रमाण सत्योपाख्याने सूतवाक्यम्—विना भक्तिं न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते। यूयं धन्या महाभागा येषां प्रीतिस्तु राघवे॥ परंतु वे वचन रावण को वाम ही लगे; काहे से जो ईश्वर से विमुख हैं, वे वाममार्गी पाप ही को पुण्य मानते हैं। तथा वज्रसूच्याम्—शाक्ताः कौलकुलात्मचारनिरताः कापालिकाः शाम्भवाः सर्वे वाम-निरस्तदुस्सह महा द्वैतेपराश्शाक्तिकाः। कर्तारं प्रभजंति पाप-निरता भूतेषु ते निर्दयास्तेषामैहिककल्पमेव निफलं नैवास्ति मोक्षः परः॥ ऐसे वेदसिद्धांत के वचन हरिविमुख रावण को वाम लगे। गोसाईंजी कहते हैं कि इसी से रिसाकर हुमककर रावण ने विभीषण के हृदय में लात मारी। "हे नाथ, भली करी" ऐसा कह कर विभीषण चले। किस तरह यहाँ रावण-रूप घोर घाम में तप्त हुआ, उसको त्याग कर सुरतरु की छाँह-रूप रघुनाथजी की शरण ताक कर चला॥ ४॥

जाय माथ पाँय परि कथा सो सुनाई है।
समाधान करत बिभीखन को बार बार
काह भयो तात लात मारे बड़ो भाई है॥ १॥
साहिब पितुमान जातुधान को तिलक ताके
अपमान कीन्हें तेरी बड़ी यें बड़ाई है।
गरत गलानि जानि सनमानि सिख देत
रोष किये दोष सहे समुझे भलाई है॥ २॥

यहाँ ते बिमुख भये राम की सरन गये
भले नेकु राखे तोहिं निपट निकाई है।
मात पग सीस नाइ तुलसी असीस पाइ
चले भले सगुन कहत मनभाई है ॥ ३ ॥

विभीषण ने अपनी माता के पास जाकर पाँव पड़कर हित-उपदेश करते में रावण के लात मारने की कथा सुनाई। सो सुन माता विभीषण का बारबार समाधान करती है कि हे तात, जो बड़ा भाई होकर उसने लात मारी, तो उसमें क्या हुआ? क्या तुम्हारी बड़ाई घट गई ॥ १ ॥ एक तो मालिक, दूसरे पितासम बड़ा भाई, तीसरे निशाचरों का राजा उसने अगर तेरा अपमान किया तो इसमें तेरी बड़ी बड़ाई है। ग्लानि में गलते जान विभीषण को माता सिखावन देती है कि हे पुत्र, रोष किये दोष है। और रोष रोक सहलेने में समझे पर भलाई है ॥ २ ॥ काहेसे यहाँ रावण से विमुख होकर प्रभु की शरण जाने से यद्यपि भला है, पर लोक रखने में किञ्चित् निपट निकाई है। काहे से अनीति विचार कर प्रथम क्यों न चले गये? अब लोग कहेंगे कि असमय पड़े डर गये, भाई को छोड़ शत्रु से मिले। गोसाईंजी कहते हैं कि माता के पैरों में माथा नवाकर अशीष पाकर विभीषण चले। मार्ग में भले भले सगुन मिले। इससे कहते हैं कि मनभाई भई, प्रभु प्रसन्न होकर शरण रक्खेंगे ॥ ३ ॥

भाई कैसी करौं डरौं कठिन कुफेरै।
सुकृत संकट परो जात हौं गलानि गरो
कृपानिधि को मिलौं पै मिलिकै कुबेरै ॥ १ ॥

जाय गहे पाँय धाय धनद उठाय भेंटे
समाचार पाय पोच सोचत सुमेरै।
तहँई मिले महेस दियो हित उपदेस
राम की सरन जाहि सुदिन न हेरै॥ २ ॥
जाको नाम कुम्भज कलेससिंधु सोखिबे को
मेरो कह्यो मानु तात बाँधै जनि बेरै।
तुलसी मुदित चले पाये हैं सगुन भले
लंक लूटिबे को मानों मानिमगन ढेरै॥ ३ ॥

विभीषण कुबेर से कहते हैं कि भाई, कैसी करूँ, कुटिल कुफेर पड़ा है, उसको डरता हूँ। सुकृत कहे धर्मसंकट में पड़ा हूँ। काहे से एक तो रामविरोधी का संग अनुचित, दूसरे मेरा अपमान किया, इससे त्यागने योग्य है। पर त्याग से जग में उपहास है कि आपत्काल में भाई को छोड़ भागे। इस ग्लानि में गलता हूँ। इससे विचार कर यह निश्चय किया कि प्रथम कुबेर को मिल लूँ, तब कृपानिधान श्रीरघुनाथजी को मिलूँ॥ १॥ ऐसा विचार कर विभीषण जिस समय कुबेर के पास गये, तभी धनद ने उठाकर हृदय से लगा लिया। कुशल पूछेसे पोचे समाचार विग्रह के पाये। इससे शोचते हैं। सुमेरै कहे सुन्दर दोनों भाई मेरु मिलाप किये रहे। सो आपस में विग्रह हुआ, अथवा सुमेरु गिरि पर अथवा विग्रह समेरु सम भारी किसी के मान का नहीं है, इससे सोचते हैं, वहाँ शिवजी मिले। उन्होंने हित का उपदेश दिया, जिसमें सदा कल्याण है। हे तात, श्रीराम की शरण जाओ। इसमें सुदिन कहे अवसर कुअवसर न बिचारे॥ २॥ क्लेशरूपी समुद्र सोखने को नाम अगस्त्यसम है। उस क्लेश के पार जाने को

जहाज़रूपी उपाय जनि बाँधे, या बेर-यात्रा न विचारे या बेर न करे। मेरा कहा मानकर शीघ्र प्रभु की शरण जाओ। जिनका नाम लेते ही सब शुभ होता है। तत्र प्रमाण महोदधेः--तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चंद्रबलं तदेव। विद्याबलं दैवबलं तदेव सीतापतेर्नाम यदा स्मरामि ॥ २ ॥

राग केदार

शंकर सिख आसिख पाइ कै।
चले मनहिं मन कहत बिभीखन सीस महेसहि नाइ कै ॥ १ ॥
गये सोच भये सगुन सुमंगल दस दिसि देत दिखाइ कै।
सजल नयन आनन्द हृदय तन प्रेमपुलक अधिकाइ कै ॥ २ ॥
अन्तहु भाइ भलो भाई को कियो अनभलो मनाइ कै।
भइ है घर की लात बिधाता राखी बात बनाइ कै ॥ ३ ॥
नाहित क्यों कुबेर घर मिलि हर हित कहते चित चाइ कै।
जो सुनि सरन राम ताके मैं निज बामता बिहाइ कै ॥ ४ ॥
अनायास अनुकूल सूलधर मग मुदमूल जनाइ कै।
कृपासिंधु सनमानि जानि जन दीन लियो अपनाइ कै ॥ ५ ॥
स्वारथ परमारथ करतलगत स्रमतप गयो रिसाइ कै।
सपने कैसो दुख सुख सस सुर सींचत देत निराइ कै ॥ ६ ॥
गुरु गौरीस साईं सीतापति हित हनुमानहि जाइ कै।
मिलिहौ मोहिं कहा कीबे अब अभिमत अवधि अघाइ कै ॥ ७ ॥
मरतो कहाँ जाइ को जानै लटि लालची ललाइ कै।
तुलसिदास भजिहौं रघुबीरहि अभयनिसान बजाइ कै ॥ ८ ॥

शिवजी का अशीर्वाद और सिखावन पाकर महेश को माथा नवाकर विभीषण मनहीमन मनोरथ करते चले। सो आगे कहते हैं ॥ १ ॥ चलते में दसो दिशाओं में सुन्दर मांगलीक शकुन देखे, इससे मन का प्रथम का शोच जाता रहा। मन में आनन्द उमँगा, उससे देह में पुलकावली अधिकाई। नेत्र जल से भर आये ॥ २ ॥ विभीषण कहते हैं कि आखिर अन्त में भाई को भाई ही भला होता है। तहाँ रावण ने हमारा अनभला मनाकर लात मारी, तिरस्कार किया, सो कुबेर की लात हुई, लात लगे कुबेर सीधा हुआ। इसी भाँति विधाताने हमारी बात बना कर रक्खी ॥३॥ नहीं तो कुबेर के घर में शिव क्यों मिलते? चित्त लगा कर हमारा हित क्यों कहते, जिसको सुन मैं प्रभु की शरण गया। अपने राक्षस-कुल की वामता कहे टेढ़ाई छोड़कर ॥ ४ ॥ विना परिश्रम ही कृपालु शूलपाणि ने अनुकूल हो मुझ को दीनजन जान अपनाय कहे अपना मान लिया। काहे से मुद आनन्द का मूल कहे जड़ श्रीरघुनाथजी की शरण का मार्ग कहे राह दिखा दी। संसाररूपी वन से मोहरूपी अन्धकार जग की लज्जा में भूला था उससे उबारा ॥ ५ ॥ इसमें स्वार्थ परमार्थ दोनों हाथ आये। परिश्रम का मार्ग जप, तप आदि सिरा गये। कैसे, यथा स्वप्न का परिश्रम जागने से मिटता है। सुख किस भाँति भया, यथा तुख कहे भूसी के बोये से शस्य कहे अन्न जामे। उसको भी देवता सींच कर निरा दें। यहाँ रावण-निरादर की ग्लानि को वैराग्य असार भूसी सम, प्रभु की सच्ची शरण भूसी से नाज होना, शिव की कृपा का उपदेश सींचना निराना है। स्वप्न से दूर संसार प्रभुशरण जाने का ज्ञान जागना है ॥ ६ ॥ गौरीश-मुख के उपदेश से स्वामी सीतापति और हित हनुमान् से जाकर मिलूँगा। अब मुझ को क्या करने को है। वाञ्छित की मर्यादा अघाकर मिली ॥ ७ ॥

विभीषण कहते हैं कि मैं लालची अर्थात् विषय में आसक्त, उसी की वासनारूप क्षुधा से विकल तुच्छ देव अथवा उपाय आदि के द्वार द्वार ललाकर दौड़ दौड़ लटकर न जाने कहाँ मर जाता। अब उपायरहित शून्य शरणागत धर्म से अभय हो कर। यथा प्रमाण गीतायाम्—सर्वधर्म्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः॥ इससे निशान भक्तिरूप नगाड़ा। अनन्य हो रघुवीर को भजूँगा॥ ८॥

पदपदुम गरीबनेवाज के।
देखिहौं जाय पाय लोचनफल हित सुर साधु समाज के॥ १॥
गई बहोर ओरनिरबाहक साजक बिगरे साज के।
सबरी-सुखद गीध गतिदायक समन सोक कपिराज के॥ २॥
नाहिन मोहिं और कतहूँ कछु जैसे काग जहाज के।
आयो सरन सुखद पदपंकज चौंथे रावन बाजके॥ ३॥
आरति हरन सरन समरथ सब दिन अपने की लाज के।
तुलसी याहि कहत नतपालक मोसे निपट निकाज के॥ ४॥

देवता साधुओं की सभा के हितकर्ता, ऐसे गरीबनेवाज श्रीरघुनाथजी के चरणकमल जाकर देखूँगा नेत्रों का फल प्रभु के दर्शन पाकर सनाथ होऊँगा॥ १॥ गई बात के बहोरनेवाले। यथा जीव को अपना स्वरूप भूल गया, सो शरण आते ही सुध करा देते हैं और प्रीति व कृपा अन्त तक निबाहनेवाले अपना-कर फिर त्यागते नहीं। बिगड़े साज के साजनेवाले। यथा मोहवश भक्त ने बिगाड़ दिया तो उसको सुधार देते हैं। यथा नारद गरुड़ का सुधारा। फिर कैसे हैं। श्रीरघुनाथजी, जिन्होंने शबरी को सुख दिया अरु गीध जटायु को सुन्दर गति

दा, कपिराज सुग्रीव का शोक कहे दुःख, उसका शमन कहे नाश किये जिन्होंने ॥ २ ॥ यथा जहाज़ पर के काग को सिवाय जहाज़ के और अवलम्ब कुछ नहीं, उसी भाँति मुझको सिवा आपकी शरण के और दूसरा अवलम्ब कुछ नहीं है। रावणरूप बाज के पंजों का चोथा हुआ दुःखित पीड़ित आपके चरण सुखदायक जान उनकी शरण में आया हूँ ॥ ३ ॥ अपने शरणागत की लाज के रखनेवाले सदा समर्थ हो। विभीषण यही कहते हैं कि मुझ से निपट निकाज अर्थात् जो संसार को निपट त्याग किये हैं या जो अपने को किसी काम का नहीं गिनते, तिन शरणागतों के पालक हो ॥ ४ ॥

महाराजा राम पहँ जाउँगो।

सुख स्वारथ परिहरि करिहौं सोइ जो साहिबहि सुहाउँगो ॥ १ ॥

सरनागत सुनि बेगि बोलिहैं हौं निपटहिं सकुचाउँगो।

राम गरीबनिवाज निवजिहैं जानिहैं ठाकुर ठाउँगो ॥ २ ॥

धरिहैं नाथ हाथ माथे यहि ते केहि लाभ अघाउँगो।

सपनो सो अपनो न कछू लखि लघु लालच न लोभाउँगो ॥ ३ ॥

कहिहौं बलि रोटिहा रावरो बिन मोलही बिकाउँगो।

तुलसी पट उबरे ओढ़िहौं उबरी जूठनि खाउँगो ॥ ४ ॥

विभीषण कहते हैं कि महाराज रघुनाथजी के पास जाऊँगा। अपने सुख का स्वार्थ छोड़ जो मालिक को भावेगी, सोई मैं करूँगा ॥ १ ॥ मुझ शरणागत का आगमन सुन जल्दी बुलावेंगे और मैं अपने को रावण का सम्बन्धी विचार कर निपट संकोच करूँगा। ठाउँगो ठाकुर अपनी जगह का छूटा ठाकुर मुझ को जान राम गरीब-निवाज मुझको निवाजेंगे। यह स्वाभाविक राजों

की रीति है ॥ २ ॥ नाथ श्रीरघुनाथजी मेरे माथे पर कृपा करके हाथ धरेंगे। इससे अधिक और कौन लाभ है, जिसमें अघाऊँगा। भाव इसीमें अघाऊँगा। स्वप्न कासा झूठा सुख संसार है। उसमें अपना कुछ न मानूँगा। काहेते जग की तुच्छ वस्तु के लालच में न लुभाऊँगा॥ ३ ॥ विभीषण कहते हैं कि मैं यह बात प्रभु से कहूँगा कि आपका रोटिहा होकर बलिहारी बिना मोल ही आपके हाथ बिकाऊँगा। आपके उतारे वस्त्र पहिनूँगा, बची जूठन खाऊँगा ॥ ४ ॥

अस सचिव बिभीखन के कही।
कृपासिंधु दसकन्धबन्धु लघु चरन शरन आयो सही ॥ १ ॥
बिषम बिषादवारिनिधि बूड़त थाह कपीस कथा लही।
गये दुख दोष देखि पदपंकज अब न साध एकौ रही॥ २ ॥
सिथिल सनेह सराहत नखसिख नीकि निकाई निबही।
तुलसी मुदित दूत भये मन महँ अमियलाहु माँगत मही ॥ ३ ॥

विभीषण के सचिव ने रघुनाथजी से कहा हे कृपासिन्धु, दशकंध का लघुबंधु छोटा भाई आपके चरणों की शरण आया है। सही सच्चा, छल रहित ॥ १ ॥ विषम कहे तीक्ष्ण, विषाद कहे दुःखरूप समुद्र में डूबता था। उस अवसर में सुग्रीव की कथा सुन समुझ थाह पाई। भाव बालि के त्रास से सुग्रीव को उबारा तो शरण गये हमको भी उबारेंगे। आपके पदकमल देखे से संसार-रूपी दुःख प्रभुपद-विमुखतारूपी दोष सब जाते रहे। सो साध कहे वासना अब कुछ नहीं रही ॥ २ ॥ निकाई कहे सौंदर्य। प्रभुके तनमें जो नख ते शिखातक जहाँ चाहिये, वहाँ वैसी नीकी भाँति निबही है। भाव कोई अंग में दूषण की संधि नहीं है।

ऐसे श्यामसुन्दर तनु की माधुरी नखशिख लौं देख सनेहवश प्रेम उमँग देह शिथिल भई। मन में आनन्द से प्रशंसा करते हैं गोसाईंजी कहते हैं कि विभीषण का दूत किस प्रकार मन में आनन्द है, यथा मही माठा माँगते में अमृत मिले। संदेह नही। प्रभु अमी ॥ ३ ॥

बिनती सुनि प्रभु मुदित भये।

ऋच्छराज कपिराज नील नल बोलि बालिनन्दन लये ॥ १ ॥

बूझिय कहा रजाय पाय नय धर्म्मसहित उत्तर दये।

बली बन्धु ताके बिमोहवश बयरबीज बरबस बये ॥ २ ॥

बाँहपगार द्वार तेरे ते सभय न कबहूँ फिरि भये।

तुलसी असरन सरन स्वामि के बिरद बिराजत नित नये ॥ ३ ॥

विभीषण के सचिव की प्रेम आर्तियुक्त विनती सुन प्रभु आनन्द भये। तहाँ जाम्बवन्त, सुग्रीव, नील, नल, अंगद आदि को बुलाया ॥ १ ॥ सबसे प्रभु ने पूछा कि इसमें तुम्हारी क्या सलाह है? यह प्रभु की रजाय पाय नीति-धर्ममय वचन सब बोले कि उस बली रावण का बन्धु है, जिसने विशेष मोहवश हो वैर का बीज बरबस कहे जबरदस्ती बोया। यह नीति है कि शत्रु से गाफिल न रहे और छल बल कर जीते ॥ २ ॥ परन्तु पगार कहे दीवार उसकी आड़ में कोई चोट नहीं लगती, तथा आपकी बाँह का अचल भरोसा कर सभीत आये आप के द्वारते लौट नहीं गये। गोसाईंजी कहते हैं कि अशरणशरण लेने का बाना नित नया बिराजता है ॥ ३ ॥

हिय बिहँसि कहत हनुमान सों।

सुमति साधु सुचि सुहृद बिभीखन समुझि परत अनुमानसों ॥१॥

हौं बलि जाउँ और को जानै कहि कपि कृपानिधान सों ।
छली न होय स्वामि सम्मुख ज्यों तिमिर सातहयान सों॥२॥
खोटो खरो सभीत पालिये सो सनेह सनमान सों ।
तुलसी प्रभु कीबो जो भलो सोई बूझि सरासन बान सों ॥३॥

श्रीरघुनाथजी विहँस कर हनुमान्‌जी से कहते हैं कि हमारे अनुमान से यह समझ पड़ता है कि सुन्दर, मतिमान्, पवित्र मित्र विभीषण साधु है ॥ १ ॥ तब कृपानिधान रघुनाथजी से हनुमान्‌जी कहते हैं कि मैं बलि जाऊँ, आप छोड़ दूसरा कौन हृदय की बात जाने। काहे से स्वामी जो हैं आप, तिनके सम्मुख छली पुरुष नहीं हो सकता, कैसे, जैसे सातयान सूर्य के सम्मुख अंधकार नहीं जा सकता ॥ २ ॥ सो विभीषण सभीत डर सहित शरणागत आया है। तो चहे खरा हो चहे खोटा, उसको सनेहसम्मान-सहित पालिये। नहीं, जो कुछ आपको करना मंजूर हो सो कीजिये। उसी में भला है। और जो बूझना हो तो धनुषबाण से पूछ लीजिये। भाव दुष्ट छलियों का नाशक साधुओं का पालक है, वा दूसरा आपको सहायक अपर कौन है, जिससे बूझिये ॥ ३ ॥

साँचेहु बिभीखन आइ है ।
बूझत बिहँसि कृपालु लखन सुनि कहत सकुचि सिर नाइ है ॥१॥
ऐहैं कहा नाथ आयो है ह्यां क्यों कहि जात बनाइ है ।
रावन रिपुहि राखि रघुबरबिनु को त्रिभुवन पति पाइ है ॥२॥
प्रभु प्रसन्न सब सभा सराहत दूत बचन मनभाइ है ।
तुलसी बोलिय बेगि लखन सों भइ महराजरजाइ है ॥३॥

कृपालु रघुनाथजी विहँसि कर बूझते हैं कि सत्यही बिभीषण आवेंगे? इसको सुन संकोच सहित माथ नवाकर लक्ष्मणलाल बोले ॥ १ ॥ हे नाथ, आप भविष्य काहे को कहते हैं कि आवेगा। हे नाथ विभीषण तो वर्त्तमान आ गया। काहे से यहाँ आप के सामने कोई झूठी बनाकर नहीं कह सकता। यह काम विमुख है। एक आपके रिपु रावण को छोड़ विना आपकी साँची सम्मुखता, झूठ कह, ऐसा त्रैलोक्य में कौन है, जो पति कहे मर्यादा पावेगा। अथवा विभीषण शरण क्यों न आवे। काहे से रावण रिपुहि राखि रावण से शत्रुता रख एक रघुवीर के सिवा और ऐसा त्रैलोक्य में कौन समर्थ है, जिसको विभीषण पति रक्षक पावेगा, जो रावण को रिपु राख सके ॥ २ ॥ आप ही शरणागत लायक हो। यह सुन प्रभु प्रसन्न भये। सभा सब लक्ष्मणलाल की प्रशंसा करती है। सो लक्ष्मण के वचन दूतों के मनभावते भये। गोसाईंजी कहते हैं कि महाराज रघुनाथ की रजाय आज्ञा लषणलाल को भई कि विभीषण को जल्दी बुला लीजिये ॥ ३ ॥

चले लेन लखन हनुमान हैं।
मिले मुदित बूझि कुसल परस्पर सकुचत करि सनमान हैं ॥ १ ॥
भयो रजाय सुपात्र धारिये बोलत कृपानिधान हैं।
दूरि ते दीनबन्धु देखे जन देत अभय बरदान हैं ॥ २ ॥
सील सहस हिम भानु तेज सतकोटि भानु के भानु हैं।
भक्तन को हित कोटि मातु पितु अरिन्ह को कोटि कृसानु हैं ॥ ३ ॥
जनगुनरज गिरि गनि सकुचत निजगुन गिरि रज परमानु हैं।
बाँह पगार बोल को अविचल बेद करत गुनगान हैं ॥ ४ ॥

चरचा चलत बिभीखन की सोइ सुनत सुचित दै कान हैं।
चारु चाप तूनीरतामरस कर तें सुधारत बान हैं॥ ५॥
हरषत सुर बरषत प्रसून सुभ सगुन कहत कल्यान हैं।
तुलसी ते कृतकृत्य जे सुमिरत समय सुहावन ध्यान हैं॥ ६॥

विभीषण के बुलाने को हनुमान् और लक्ष्मणजी चले। मिलने पर परस्पर कुशल पूछ आनन्दपूर्वक सम्मान किया। हित से समान प्रेम की बात ही समान है। रिपुपक्ष से मित्रपक्ष होते हैं, इससे प्रथम समागम संकोच है॥ १॥ हनुमान्‌जी कहते हैं कि प्रभु की आज्ञा भई। चलिये, कृपानिधान बुलाते हैं। दीनबंधु दूर ही से देख जन को अभय वरदान देते हैं। प्रभु के निकट भय नहीं है। इससे निर्भय चलिये। यहाँ दयालुता दीनपालकता शरणपालकतादि गुण दिखाते हैं॥ २॥ कैसे हैं प्रभु हजारों चन्द्रसम शीतल हैं। शीलवान् हैं और प्रतापवान् कैसे हैं कि कोटि शत सूर्य से अधिक हैं। और भक्तों के हितकर्ता भक्तवत्सल कैसे हैं कि कोटियों माता पिता के समान हैं। यथा रामायणे लक्ष्मणवाक्यम्—अहं तावन्महाराजन् पितृत्वं नोपलप्स्यसे। भ्राता भर्ता च बंधुश्च पिता माता च राघवः॥ शत्रुनाश करने को कोटि अग्नि के समान हैं। भगवद्गुणदर्पणे—पूर्णेन्दुस्स्वजनेष्वेतरत्कालाग्निरितरेषु च॥ भाव जिन के शत्रु का कोई रक्षक नहीं है। रामायणे हनुमद्वाक्यम्—ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननो वा इन्द्रो महेंद्रः सुरनायको वा। रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरांतको वा त्रातुश्च शक्ता युधि रामवध्यम्॥ ३॥ जन का गुण रज रेणुका भर हो उसको गिरिसम कर उसका सलूक मान संकोच करते हैं और अपना गुण जो गिरि के सम हो, उसको रेणुकासम जानते हैं। यथा भगवद्गुणदर्पणे—दोषादर्शी गुणग्राही भावग्राही च

राघवः ॥ और शरणागतरक्षा को बाँह पगार कहे प्रबल हैं। यथा काव्ये कालिदासेन—"सानन्दाः पावमानौ हिमरुचिसरुषः सागरे सावलेपाः। सुग्रीवे सानुरागा रजनिचरचमूचूर्णने पूर्ण-कोपाः॥" और बोल अविचल कहे श्रीरघुनाथजी जो वचन बोले, सो सत्य अचल बोले। यथा भगवद्गुणदर्पणे—न वेत्ति रामः परुषाणि भाषितुं न वेत्ति रामो विनयं च जल्पितुम् ॥ ऐसे सत्यसन्ध कहकर वेद गान करते हैं ॥ ४॥ उस समय में विभीषण की जो चरचा हो रही है, उसको सुचित्त हो प्रभु कान देकर सुनते हैं और तरकस-धनुष-शोभित करकमलों से बाण सुधारते हैं ॥ ५ ॥ उस अवसर पर प्रभु की भक्तवत्सलता देख हर्षित देवता फूल वर्षते हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि उस समय को सुन्दर सुहावना जो कल्याण करनेवाला ध्यान है, सो स्मरण कर जो शुभ सगुन कर स्मरण करते हैं, वे कृतकृत्य हैं ॥ ६ ॥

रामहि करत प्रनाम निहारि कै।
उठे उमँगि आनंदप्रेमपरिपूरन बिरद बिचारि कै ॥ १ ॥
भयो बिदेह बिभीखन उत इत प्रभु अपनपौ बिसारि कै।
भलीभाँति भाव ते भरत ज्यों भेंट्यो भुजा पसारि कै ॥ २ ॥
सादर सबहि मिलाइ समाजहि निपट निकट बैठारि कै।
बूझत कुसल छेम सप्रेम अपन्याय भरोसो भारि कै ॥ ३ ॥
नाथ कुसल कल्यान सुमंगल बिधि सुख सकल सुधारि कै।
देत लेत जे नाम रावरो बिनय करत मुख चारि कै ॥ ४ ॥
जो मूरति सपने न बिलोकत मुनि महेस मन मारि कै।
तुलसी तेहि हौं लियो अंक भरि कहत कछू न सँवारि कै ॥ ५ ॥

विभीषण प्रभु को निहारकर नमस्कार करते हैं। तिनको देख प्रभु अपना विरद कहे शरणपाल का बाना विचार कर प्रेम से परिपूर्ण आनन्द से उमँग कर प्रभु उठे। उस समय उधर प्रेमावेश से विभीषण विदेह भये, इधर प्रभु ने अपनी देह की सुधि बिसारी। भावते कहे प्रिय मान भली भाँति से भुजा पसार कर भेंटे। यथा भरत से प्रभु भेंटे॥ १॥ २॥ आदर सहित सब समाज को मिलकर प्रभु ने विभीषन को अति समीप बिठाकर अपना मानकर भारी भरोसा देकर (भाव हमारे हो, किसी को डरो नहीं, यह कहकर) प्रेमपूर्वक कुशल पूछ सम्मान किया। इसमें प्रभु के सौलभ्य, सौशील्य, क्षमा गुण का वर्णन है॥ ३॥ रघुनाथ से विभीषण बोले—हे नाथ, जो संसार में आप का नाम लेते हैं, तिनकी ब्रह्मा कुशल कल्याण सुन्दर मंगल सकल प्रकार का सुधार देते हैं, और चारो मुख से बिनती करते हैं। फिर मैं तो आपके समीप शरण हूँ। मेरी कुशल क्या पूछते हैं॥ ४॥ मुनिजन सनकादि और महादेव, जो मन को जीते हैं, उन्होंने मूर्ति को नहीं देखा, तिन प्रभु को मैं अंक भर मिला। इससे अधिक क्या कहूँ। यह सच्ची बात कहता हूँ। इसमें कुछ बनाकर नहीं कहता॥ ५॥

करुनाकर की करुना भई।
मिटी मीचु लहि लंक संक गइ काहु सों न खुनस खई॥ १॥
दसमुख तजो दूध माखी ज्यों आपु काढ़ि साढ़ी लई।
भवभूषन सोइ कियो बिभीखन मुदमंगलमहिमा मई॥ २॥
बिधि हरि हर मुनि सिद्ध सराहत मुदित देव दुन्दुभी दई।
बारहिबार सुमन बरषत हिय हरषत जयजयजय जई॥ ३॥

कौसिक सिला जनक संकट हरि भृगुपति की टारी टई।
खग मृग सबर निसाचर सब की पूजी बिन बाढ़ी सई॥ ४॥
जुग जुग कोटि कोटि करतब करनी न कछुक बरनी नई।
रामभजनमहिमा हुलसी हिय तुलसी हू की बनि गई॥ ५॥

करुणाकर श्रीरघुनाथजी की करुणा हुई इससे राक्षस-कुल की मृत्यु मिटी या जीवन्मुक्त हुए, लंका का राज्य मिला, रावण की शंका गई अरु और किसी से खुनस ईर्षा नहीं हुई बिना परिश्रम ही सब हुआ॥ १॥ रावण ने विभीषण को दूध की सी मक्खी त्यागकर आप मलाई सरीखा लंका का सुख लिया। उसी विभीषण का भव जो संसार उसको भूषण प्रभु ने किया, भगवद्भक्तों में गिनती हुई। जिनकी महिमा पुराणों में रामचरित्र मिल मुद-मंगलमयी है॥ २॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश, मुनि नारदादि, सिद्ध लोमशादि प्रशंसा करते हैं। आनन्द से देव दुन्दुभी बजा रहे हैं। विभीषण पर प्रभु की भक्तवत्सलता देख हृदय से हर्षित हो जयजयकार करके फूल वर्षते हैं॥ ३॥ विश्वामित्र का यज्ञ पूर्ण कर अहल्या को तारा, धनुष तोड़ जानकीजी का संकट हरा। तहाँ परशुराम की टई कहे जनकपुर-वासियों के सुख में आड़ थी, सो प्रभु ने टालदी। खग गीध, मृग मारीच आदि, शबर-शबरी, कोल-किरात, निशाचर विभीषणादि, इन सबकी पूजा बिना बढ़ती हुई। भाव बिना सुकृती की पूजा सई कहे बरकत हुई इससे महासुकृती हुए॥ ४॥ गोसाईंजी कहते हैं कि युगयुगप्रति कोटियों कर्तव्य प्रभु के हैं। यह करनी कुछ नई नहीं बरनी गई। जिन श्रीरघुनाथ के भजनकी महिमा हृदय में हुलसी इससे तुलसी की भी बन गई॥ ५॥

मंजुल मूरति मंगलमई ।
भयो बिसोक बिलोकि बिभीखन नेह देह सुध सीव गई ॥ १ ॥
उठि दाहिनी ओर ते सम्मुख सुखद मांगि बैठक लई ।
नख सिख निरखि निरखि सुख पावत भावत कछु कछु औरै भई २
बार कोटि सिर काटि साटि लटि रावन संकर पै लई ।
सोइ लंका लखि अतिथि अनवसर रामतृना सम ज्यों दई ॥ ३ ॥
प्रीति प्रतीति रीति सोभासरि थाहत जहँ तहँई बई ।
बाहु बली बानैत बोलको बिरद बिस्वबिजयी जई ॥ ४ ॥
को दयालु दूसरो दुनी जेहि जरनि दीन हिय ली हई ।
तुलसी काको नाम जपत जग जगती जामति बिनु बई ॥ ५ ॥

प्रभु की मंगलमयी मंजुल मूर्ति देख विभीषण दुःख से रहित हुआ इससे देह सम्बन्धी नेह की मर्यादा जगत् का मोह उसकी सुध भूल गई ॥ १ ॥ दाहनी ओर बैठे थे वहाँ से उठ सामने की बैठक सुखदाता जानि विभीषण ने माँग ली। भाव सखा पद छोड़ सेवक पद लिया, या सम्मुख से सब अंग देखने को ऐसा किया प्रभु का रूप नखशिख देख परम सुख पाते है। देखो, मन में कुछ और भावना रही, अर्थात् रावण के समीप में कुछ और भई। भाव प्रभु के समीपी हो गये ॥ २ ॥ साटि कहे ऊँख। यथा सिर काटे से सिर जमता है, परंतु क्षीण पड़ जाती है वैसे करोड़ों बार सिर काट काट रावण ने शिवजी को चढ़ाये। तहाँ शीश तो जमे, परन्तु परिश्रम भी तो पड़ा। इससे लटि कहे देह दुर्बल भई तब लंका का ऐश्वर्य शिवजी ने रावण को दिया। सोई लंका विभीषण को अतिथि मान अनवसर समझ भाव आर्ति-समय में

विशेष सत्कार नहीं बनता। वन में वास, प्रिया-वियोग में विभीषण को लंका का राज्य तृण के समान जान प्रभु ने सकुच के साथ दिया। भाव हम कुछ नहीं देते॥ ३॥ प्रीति के अंग यथा—"प्रणव प्रेम आसक्त पुनि लगन लाग अनुराग। नेह सहित सब प्रीति के जानब अंगविभाग॥" इत्यादि। हम तुम्हारे तुम हमारे यह प्रण है। इसकी सौम्य दृष्टि है। जिसमें आसक्त होना, सो आसक्ति है। इसकी थकटक दृष्टि है। ये दोनों अहंकार के विषय हैं। और प्रीति उमँगि नेत्र कंठ भर जाय, उसको प्रेम कहिये। इसकी विह्वल दृष्टि है। प्रति क्षण सुध होना, यह लगन है। इसकी उत्कंठा दृष्टि है। ये प्रेम और लगन दोनों मन के विषय हैं। चित्त की जो चाह सो लाग है। इसकी चोपदृष्टि है। जिसके रंग में चित्त रँगा है, उसको अनुराग कहिये। इसकी मत्त दृष्टि है। ये लाग और अनुराग दोनों चित्त के विषय हैं। मिलना, बोलना, हँसना, सो प्रसन्नता, सो स्नेह है। इसकी ललित दृष्टि है। शोभा-सहित सर्वांग व्यवहार सो प्रीति है, इसकी अधीन दृष्टि है इत्यादि। अहंकार, मन, चित्त, बुद्धि द्वारा सब विषय अनुकूल हो जिस रस को अत्यंत भोगें, जो सर्वांग में परिपूर्ण हो जाय, उसको प्रीति कहिये। भगवद्गुणदर्पणे—अत्यंत भोग्यता बुद्धिरानुकूलादिशालिनी। परिपूर्णस्वरूपा या सास्यात् प्रीतिरनुत्तमा॥ सो प्रीति छः प्रकार से होती है। दिये, लिये, गोप्य पूछे, कहे, खाने से, खवाने से। भगवद्गुणदर्पणे—ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यं वक्ति च पृच्छति। भुंक्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्॥ इत्यादि। प्रीति प्रतीति कहे विश्वास रखने योग्य प्रभु यथा—"सरन गये नहिं त्यागि हैं मोहिं रघुवीर भरोस।" प्रभु में विश्वास सेवक का यथा—"भरतहि होइ न राजमद विधि हरि हर पद पाइ॥"

इत्यादि। प्रतीति-रीति कहे सदा शरणपालभाव यथा—"करि आई करि हैं करती हैं तुलसिदास दासन पर छाँहैं॥" अथ शोभा यथा—"द्युति लावन्य स्वरूप सोइ सुन्दरता रमनीय। कांति माधुरी मृदुलता सौकुमार्य कमनीय॥" चन्द्रमा की सी झलक को द्युति कहिये। मोती कासा पानी लावण्य। बिना भूषण भूषित सो स्वरूप। सब अंग सुठाम सुन्दरता देखते अनदेखी सी लगे सो रमणीकता। सोने सी झलक कांति। देखे तृप्ति न हो सो माधुरी। कोमलता, सुकुमारता प्रसिद्ध है। इत्यादि। प्रभु का रूप समुद्र है। तहाँ जैसे अनेक नदी एक में मिलकर समुद्र में मिलती हैं, वैसे यहाँ सौशील्य, वात्सल्य, सौहार्द, सौलभ्य, करुणा, दया, उदारता आदि अनेकों दिव्य गुण मिलकर प्रीति। कृतज्ञता, चातुर्य ज्ञान वाग्मिता, नीति आदि गुण मिलकर प्रतीति। आदभ्रनियतात्मा, वशीकरण, संहनन, स्थैर्य, धैर्य आदि गुण मिलकर रीति। रूप, सौंदर्य, माधुर्य, सौकुमार्य, नवयौवन, लावण्य, सौगन्ध्य, वेष खड्ंग उज्ज्वलत्व, प्रतापादि गुण मिलाकर शोभा। इत्यादि प्रीति प्रतीति रीति शोभा आदि नदी सरीखी अथाह प्रभु में देखकर विभीषण जहाँ जिस गुणरूप नदी की थाह लेते हैं कि कितनी है, वहाँ बड़ी कही अथाह ही देख पड़ती है। किसी गुण का अंत नहीं पाते। इससे प्रभु सब गुणों की मर्यादा हैं॥ प्रमाण भगवद्गुण-दर्पणे—अवतीर्णे रघेर्वंशे रामनाम्नीति विश्रुते। ईक्ष्यतां भग-शब्दार्थे नान्यत्र क्रियतां मनः॥ सौभाग्यसीमाखिलभाग्यसीमा प्रकाशसीमा महनीयसीमा। स्तोतव्यसीमा मननीयसीमा शोभैकसीमा रमणीयसीमा॥ दायित्वसीमाखिलसिद्धिसीमा दानादिसीमा गुणरत्नसीमा। द्रष्टव्यसीमा मननीयसीमा प्रासाद्यसीमा गृहमध्यसीमा॥ माधुर्यसौंदर्यशुभैकसीमा मांगल्यसीमा सुमुखै-

कसीमा। विद्याविनोदादिरसैकसीमा ॥ बाहु बली कहे जिन बाहुओं से कठोर धनुष शिवजी का भंजन किया, त्रैलोक्य-विजयी परशुराम का गर्व तोड़ा, बालि को एक बाण से मारा। जिन बाहुओं से शत्रु का त्रिलोक में रक्षक नहीं। यथा जयंत ॥ "ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा स्रमित व्याकुल मन-सोका ॥ काहू बैठन कहा न वोही। राखि को सकै राम कर द्रोही ॥" प्रमाण भगवद्गुणदर्पणे—रामवध्यो न शक्यः स्याद्रक्षितुं सुरसत्तमैः। ब्रह्मरुद्रेंद्रसंज्ञैश्च त्रैलोक्ये च प्रभुस्त्रिभिः ॥ इत्यादि। बाहुओं का बली वचन का अविचल बाना जो सोई करे। यथा—"रामो मिथ्या न भाषते।" सनत्कुमारसंहितायां—"सत्यसंधं जितक्रोधं शरणागतवत्सलम्।" पुनः भगवद्गुणदर्पणे—"न वेत्ति रामः परुषाणि भाषितुं न वेत्ति रामो वितथं च जल्पितुं ॥" पुनः रामायणे—"सत्येन लोकान् जयति दीनान् दानेन राघवः।" विश्वविजयी कहे परशुराम, बालि, रावणादि जो सब जग जीत कर विजय पाये थे। ऐसे जो विश्वविजयी हैं, तिनकी जयी कहे जीतनेवाली। वीरता का विरद कहे बाना है जिनका। ऐसे श्रीरघुनाथजी हैं ॥ ४ ॥ एक श्रीरघुनाथजी को छोड़ और ऐसा कौन दयालु दुनी कहे संसार में है, जो दीनों के हृदय की जलन--आधिदैहिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, अथवा काम, क्रोध, लोभ, मोह अथवा सुत, वित्त, नारी अथवा जन्म-मरण—को हर सकता है ? गोसाईंजी कहते हैं कि और किसका ऐसा नाम है, जिसको जपते में पृथ्वी विना बोये जमती अर्थात् विना सुकृत ही नाम जपते जपते महासुकृती शिरमौर होता है। यथा—"उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भे ब्रह्म समाना ॥" अथवा जाट धना का खेत विना बोये ही उग आया ॥ ५ ॥

सब भाँति बिभीखन की बनी।
कियो कृपाल अभय कालहु ते गई संसृति साँसति घनी ॥ १ ॥
सखा लखन हनुमान सम्भु गुरु धनी राम कोसलधनी।
हियहि और औरहि कीन्ही विधि रामकृपा औरै ठनी ॥२॥
कलुष कलंक कलेस कोस भयो जो पद पाय रावन रनी।
सोइ पद पाय बिभीखन भो भवभूषन दलि दूखन अनी ॥ ३ ॥
बाँहपगार उदार सिरोमनि नत पालक पावन पनी।
सुमन बरषि रघुपति गुन बरनत हरषि देवदुन्दुभी हनी ॥ ४ ॥
रंक निवाजि रंक राजा कियो गयो गर्भ गिरि गिरि गनी।
रामप्रनाममहामहिमा कर सकल सुमंगल मनि जनी ॥ ५ ॥
होय भलोय सही अजहू गये रामसरन परिहरि मनी।
भुजा उठाइ साखि संकर करि कसम खाइ तुलसी भनी ॥ ६ ॥

विभीषण की सब भाँति से बनी, लोक और परलोक से। कृपालु श्रीरघुनाथजी ने काल से भी अभय किया, जीवन्मुक्त भये। इससे संसृति संसार की साँसति घनी जन्म-मरण, सो सब जाती रही। संसार में राजा भये॥ १ ॥ लक्ष्मणजी हनुमान्जी से सखा पाये, शिवजी से गुरु पाये, श्रीरघुनाथजी से धनी कहे स्वामी पाये। प्रथम हृदय में और रहा कि रावण को हित-उपदेश करके भला करें, उसको विधाता ने और कर दिया, जिससे रावण ने अनहित मान चरणप्रहार कर तिरस्कार किया। अब रामकृपा से औरै ठनी। भाव प्रभु के समीपी भये ॥ २ ॥ रनी युद्ध करनेवाला रावण जो पद पाकर कलुष पाप का कलंक का कलेश का ख़ज़ाना कहे कलंक पाप कर कलेश का

पात्र हुआ, सोई लंका का राज पद पाकर विभीषण समूह दूषणों का नाश कर सुकृती हो संसार का विभूषण भया। ऐसे भक्तों से संसार भूषित है ॥ ३ ॥ सभीत को अभयपद देने को पगार कहे भारी है बाँह जिनकी। उदारता में शिरोमणि, दीन शरणागत पालने में पनी कहे प्रतिज्ञा पावन पवित्र है जिनकी। ऐसे श्रीरघुनाथजी के अनूप दिव्य गुणानुवाद वर्णन कर, फूल बरसाकर देवता आनन्द मनते दुन्दुभी हनी कहे नगाड़े बजा रहे हैं ॥ ४ ॥ रंक-निवाज रघुनाथजी ने रंक विभीषण को राजा किया। कैसे गनी जो धनी कुवेर आदि वे भी विभीषण का ऐश्वर्य देख अपना गर्व छोड़ अथवा रंक राक्षस पाप का पात्र सुकृत का रंक उसको राजों में प्रभुत्व किया। तिनको देख भक्तों में जो गनी कहे गिनती वाले नारदादि वे अपनी कर्त्तव्यता का गर्व छोड़ शरणागत हो विचारते हैं कि श्रीरघुनाथजी के प्रणाम की जो महा महिमा, सोई एक खान है। उससे सब प्रकार सुन्दर मंगल रूप अनेक मणियाँ प्रकट हुईं ॥ ५ ॥ मनी कहे अभिमान, उसको छोड़ अब भी शरण गये उसी भाँति भला हो यथा विभीषण का भया। भुजा उठाकर सब सुनें, शंकर की साक्षी देकर इसे सब सत्य मानें। इस पर भी क़सम खाकर तुलसीदास कहते हैं ॥ ६ ॥

कहौ क्यों न बिभीखन की बनै।
गयो छाँड़ि छल सरन राम की जो फल चारि चार्‍यो जनै ॥ १ ॥
मंगलमूल प्रनाम जासु जग मूल अमंगल के खनै।
तेहि रघुनाथ हाथ माथे दियो को ताकी महिमा भनै ॥ २ ॥
नाम प्रताप पतित पावन किये जे न अघाने अघ घनै।
कोउ उलटो कोउ सूधो जपि भये राजहंस बायस तनै ॥ ३ ॥

हुतो ललात कृशगात खात खरि मोद पाय कोदोकनै ।
सो तुलसी चातक भयो जांचत राम स्याम सुन्दर घनै ॥ ४ ॥

आर्त को अर्थ, जिज्ञासु को धर्म, अर्थार्थी को काम, ज्ञानी को मोक्ष इत्यादि चार प्रकार के भक्तों को चारो फल उत्पन्न करनेवाली श्रीरघुनाथजी की शरण को छल छोड़ विभीषण गये, तो उनकी क्यों न वने ॥ १ ॥ जिन रघुनाथजी का प्रणाम जगत् में मंगल का मूल है और अमंगल के मूल को खोद डालता है, रघुनाथजी ने विभीषण के माथे पर हाथ धरा तो उसकी महिमा कौन बरने ॥ २ ॥ जो पाप और अनीति से नहीं अघाने उन पतितों को प्रभु के नाम ने अपने प्रताप से पावन कर दिया। कोई उलटा जपकर, यथा बाल्मीकि कोई सीधा जपकर, यथा प्रह्लाद, गीध, शबरी आदि, नीच वायस काग समेत राजहंससम पावन उत्तम हो गये ॥ ३ ॥ क्षुधा से आर्त, दुर्बलगात, एक टूक को ललाते, पशुवत् खली को खाते संसार असार सुख याचक कोदों के कण सम स्वर्ग-सुख पाने में सुखी रहो। सो तुलसी प्रभु की शरणागत भये से चातक हो रामरूप श्याम मेघ स्वाती को जाँचता हूँ ॥ ४ ॥

अतिभाग बिभीखन के भले ।
एक प्रनाम प्रसन्न राम भये दुरित दोष दारिद दले ॥ १ ॥
रावन कुम्भकरन बर माँगत सिव बिरंचि बाचा छले ।
रामदरस पायो अबिचल पद सुदिन सगुन नीके चले ॥ २ ॥
मिलनि बिलोकि स्वामि सेवक की उकठे तरु फूले फले ।
तुलसी सुनि सनमान बन्धु को दसकन्धर हँसि हिये जले ॥ ३ ॥

विभीषण के अत्यन्त भाग्य भले हैं । काहेसे एक प्रणाम के किये रघुनाथजी प्रसन्न भये, इससे दुरित सामान्य पाप दोष,

अनुचित पाप गोब्राह्मण-वध आदि पाप दोष दारिद सहित सबको प्रभु ने दल डाला ॥ १ ॥ रावण कुम्भकर्ण के वर माँगते में शिव ब्रह्माने बाचा छला। भाव माँगने की और इच्छा रही, सरस्वती की प्रेरणा से और ही कुछ माँगा, यह न्यूनता है। और यहाँ विना वर माँगे प्रभु के दर्शनमात्र से विभीषण ने अविचल पद पाया और सुन्दर दिन सुन्दर सगुन नीकी भाँति से चले। भाव विभीषण ने प्रभु की शरण आते में सुदिन नहीं विचारा, न सगुन विचारा, परन्तु प्रभु की शरण जाते जान सब बली हो संग ही चले। यथा—तदेव लग्नं सुदिनं तदेव तारावलं चन्द्रबलं तदेव। विद्याबलं दैवबलं तदेव सीतापतेर्नाम यदा स्मरामि ॥ २ ॥ स्वामी रघुनाथजी सेवक विभीषण का मिलना भाव सहित देख उकठे तरु सहित प्रेम रहित वे भी फूले फले, भाव प्रेमी भये। गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु के पास का सन्मान विभीषण का सुन रावण मुख से तो हँसा, परंतु हृदय में दाह हुआ ॥ ३ ॥

गये राम सरन सब को भलो।
गनी गरीब बड़ो छोटो बुध मूढ़ हीनबल अतिबलो ॥ १ ॥
पंगु अन्ध निरगुनी निसंबल जो न लहै जाँचे जलो।
सो निबह्यो नीके जु जनमि जग रामराजमारग चलो ॥ २ ॥
रामप्रतापदिवाकर कर ते गरत तुहिन ज्यों कलिमलो।
सुत हित नाम लेत भवनिधि तरि गयो अजामिल सो खलो ॥ ३ ॥
प्रभुपदप्रेम प्रनाम कामतरु सद्य बिभीखन को फलो।
तुलसी सुमिरत नाम सबन को मंगलमय नभ जल थलो ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजी की शरण गये सबका भला है। धनी हो या

ग़रीब हो, बड़ा, छोटा, पण्डित, मूढ़, विना बल, अतिबली इत्यादि कोई हो, विना प्रभु के शरण गये कल्याण नहीं ॥ १ ॥ पंगु, अंधा, विना गुण का, निसंबल विना ख़र्च का, जो माँगे से पानी तक नहीं पाते वे भी रामराज-मार्ग कहे शरण हो भक्तिमार्ग में चले से जग में जन्म पाकर नीकी भाँति वे भी निबहे ॥ २ ॥ काहे से प्रभु के नाम का प्रताप सूर्य की किरण सम तिनके आगे कलिमल जो पाप सो तुहिन बर्फ़ सम गल जाता है। देखो, पुत्र के हेतु प्रभु का नाम लेकर अजामिल ऐसा खल भवसागरपार हुआ ॥ ३ ॥ प्रभु के पदपङ्कज में प्रेम किये से प्रणामरूप कल्पवृक्ष से तत्काल ही विभीषण का भला भया। गोसाईंजी कहते हैं कि सब जीवों का प्रभु का नाम सुमिरते में नभ आकाश में, जल थल कहे पृथ्वी में, सर्वत्र मंगल होता है ॥ प्रमाण कालिकापुराणे धर्मराजवाक्यं—रामेति नाम यात्रायां ये स्मरन्ति मनीषिणः। सर्वसिद्धिर्भवेत्तेषां यात्रायां नात्र संशयः। अरण्ये प्रांतरे वापि श्मशाने च भयानके। रामनाम स्मरेत्तस्य विद्यन्ते नापदो द्विजेत्यादि ॥ ४ ॥

सुजस सुनि स्रवन हौं नाथ आयों सरन।

उपल केवट गीध सबरी संसृतिसमन

सोक सम सीव सुग्रीव आरतिहरन ॥ १ ॥

राम राजीवलोचन बिमोचन बिपति स्याम

नव तामरस दाम बारिदबरन।

लसत जटाजूट सिर चारु मुनिचीर कटि धीर

रघुबीर तूनीर सर धनु धरन ॥ २ ॥

जातुधानेसभ्राता बिभीखन नाम बन्धु

अपमान गुरु ग्लानि चाहत गरन।

पतितपावन प्रनतपाल करुनासिन्धु
राखिये मोहिं सौमित्रिसेवितचरन ॥ ३ ॥
दीनता प्रीति संकुलित मृदु वचन सुनि
पुलकि तन प्रेमजल नैन लागे भरन ।
बोलि लंकेस कहि अंक भरि भेंटि प्रभु
तिलक करि दियो दीनदुखदोषदारिददरन ॥ ४ ॥
रातिचर जाति आराति सब भाँति गत
कियो कल्यानभाजन सुमंगलकरन ।
दास तुलसी सदय हृदय रघुबंसमनि
पाहि कहे काहि कीन्हों न तारन तरन ॥ ५ ॥

विभीषण कहते हैं हे नाथ, आपका सुयश कानों से सुनकर मैं आपकी शरण आया हूँ। कौन सुयश, पाषाण से अहल्या दिव्य देह की। केवट को मित्र कर कुलसहित पावन किया। गीध शबरी को संसृति संसार छुड़ा अपना धाम दिया। दुःख व परिश्रम की मर्यादा सुग्रीव, तिन के दुःख हर लिये इत्यादि ॥ १ ॥ राजीव जो कमल तद्वन्नेत्र, श्याम कमल की माला सम श्याम-वर्ण देह। जटा का जूट बाँधे सुन्दर शिर पर शोभित है। मुनि के से वसन धारण किये। कटि में तरकस, कर में धनुष बाण धारण किये। ऐसे श्रीराम धीर मान रघुवंशियों में वीर, विपत्ति से छुड़ानेवाले हो ॥ २ ॥ यातुधानेश रावण का भ्राता विभीषण, सो बंधु रावण के अपमान किये गुरु कहे बड़ी ग्लानि में गला चाहता था। हे पतित-पावन, हे प्रणतपाल, हे करुणासिन्धु, हे सौमित्रि से सेवितचरण, मैं दीन और पतित हूँ। इससे मुझको शरण

रखिये ॥ ३ ॥ संकुलित कहे प्रीति सहित दीनता के कोमल वचन सुन श्रीरघुनाथजी के मन में प्रेम उमँग तनु पुलकित हो भरि आया, इससे नेत्रों से जल बहने लगा। सुशीलता भक्तिवत्सलता गुण को सँभाल शरणागतपाल प्रभु ने विभीषण को तुरंत ही बुला लंकेश कह अंक भरि भेंटा। दीन के दुःख दोष दारिद्र्य के दरनेवाले ने लंका का तिलक किया। बुलाने में वत्सलता, भेंटने में सौलभ्य, राज देने में उदारता ॥ ४ ॥ रातिचर निशाचर जाति, आराति शत्रु रावण का भाई, सब भाँति से गत शरण राखने योग्य नहीं, उसको कल्याण का पात्र बनाया, सुन्दर मंगल भरने को। गोसाईंजी कहते हैं कि पाहि पाहि शरण हौं ऐसा कहे से रघुवंशमणि दया सहित हृदय से किसको तारनेवाला नहीं किया है ॥ ५ ॥

दीनहित बिरद पुरानन गायो।
आरतबंधु कृपाल मृदुलचित जानि सरन तकि आयो ॥ १ ॥
तुम्हरे रिपु को अनुज बिभीखन बंस निसाचर जायो।
सुनि गुन सील स्वभाव नाथ कोमैं चरनन चित लायो ॥ २ ॥
जानत प्रभु दुख सुख दासन को ताते कहि न सुनायो।
करि करुना भरि नैन बिलोकहु तब जानौं अपनायो ॥ ३ ॥
बचन बिनीत सुनत रघुनायक हँसि करि निकट बोलायो।
भेंटे हरि भरि अंक भरत ज्यों लंकापति मन भायो ॥ ४ ॥
करपंकज सिर परसि अभय करि जन पर हेतु देखायो।
तुलसिदास रघुबीर भजन करि को न अभय पद पायो ॥ ५ ॥

दीनों का हितकारक बाना आपका पुराणों ने गाया है।

दीनबन्धु, कृपालु, कोमल-चित्त आपको जान मैं शरणागत आया हूँ ॥ १ ॥ आपका रिपु रावण, उसका अनुज, विभीषण नाम, निशाचर कुल में जन्म, सो मैंने शील-गुणमय आपका स्वभाव सुनकर हे नाथ, आपके चरणों में चित्त लगाया है ॥ २ ॥ हे प्रभु, आप दासों के दुःख सुख जानते हैं। इससे कह कर नहीं सुनाये। जब आप करुणा करके नेत्र भर मेरी ओर देखो, तब जानूँगा कि प्रभु ने मुझको अपनाया है ॥ ३ ॥ ऐसे नम्र वचन सुन रघुनाथजी ने हँसकर समीप बुलाकर अंक भर भेंटा, यथा भरत से प्रभु मिले। तब लंकापति विभीषण के मन में भाये ॥ ४ ॥ करकमल शिर पर फेरकर अभय किया। जब विभीषण पर हेतु कहे प्रीति देखाई। गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु के भजन से किसने अभय पद नहीं पाया ॥ ५ ॥

राग धनाश्री

सत्य कहौं मेरो सहज सुभाउ।
सुनहु सखा कपिपति लंकापति तुम सन कौन दुराउ ॥ १ ॥
सब बिधि हीन दीनअति जड़मति जाको कतहुँ न ठाउँ।
आये सरन भजौं न तजौं त्यहि यह जानत ऋषिराउ ॥ २ ॥
जिन को हौं हित सब प्रकार चित नाहिन और उपाउ।
तिनहिं लागि धरि देह करौं सब डरौं न सुजस नसाउ ॥ ३ ॥
पुनि पुनि भुजा उठाय कहत हौं सकल सभा पतियाउ।
नाहिंन कोउ प्रिय मोहिं दाससम कपटप्रीति बहि जाउ ॥ ४ ॥
सुनि रघुपति के बचन बिभीखन प्रेममगन मन चाउ।
तुलसिदास तजि आस त्रास सब ऐसे प्रभु कहँ गाउ ॥ ५ ॥

रघुनाथजी कहते हैं। मेरा सहज जो स्वभाव है, उसको सत्य करके कहता हूँ। हे सखा कपिपति, लंकापति, तुमसे कुछ छिपाना नहीं है ॥ १ ॥ चाहे दीन हो, चाहे जड़मति हो, जिसको कहीं ठौर नहीं, इत्यादि सब विधि से हीन, नीच, ऐसा भी शरण आवे, उसको भजता अंगीकार करता हूँ। तजता नहीं। उस शरणागत का प्रभाव ऋषिराज नारद, वाल्मीकि जानते हैं अथवा ऋषि दुर्वासा, राव अम्बरीष जानते हैं ॥ २ ॥ जिनके सब प्रकार एक हम ही हित हैं, चित्त में दूसरा उपाय नहीं है, तिनहीं के हित को देह धर ऊँच नीच सब काम करता हूँ। उसमें अपने सुयश के नाश का डर नहीं करता ॥ ३ ॥ बारबार भुजा उठाकर कहता हूँ, सब सभा प्रतीति मानो। मुझको दास के समान कोई प्रिय नहीं है। यह मैं सत्य अचल वचन कहता हूँ। और कपटप्रीति बहि जाव कपट की प्रीति का कुछ काम नहीं, इससे दुरि जाव। बहि कहे प्रीति से बाहर हो, या कपट प्रीति-वाला भवसागर में जाकर बहे, वह मुझको नहीं पा सकता ॥ ४ ॥ रघुनाथजी के वचन सुन विभीषण प्रेम में मग्न मन में आनन्दित हुए। गोसाईंजी कहते हैं कि स्वर्ग-सुख की आशा नरक-दुःख का त्रास छोड निर्वासित हो ऐसे प्रभु श्रीरघुनाथजी का सुयश प्रेम-सहित गाओ ॥ ५ ॥

नाहिन भजिबे जोग बियो।

श्रीरघुबीर समान आन को पूरन कृपा हियो ॥ १ ॥

कहौ कौन सुर सिला तारि पुनि केवट मीत कियो।

कौने गीध अधम को पितु ज्यों निज कर पिंड दियो ॥ २ ॥

कौन देव सबरी के फल करि भोजन सलिल पियो।

बालित्रास बारिधि बूड़त कपि केहि गहि बाँह लियो ॥ ३ ॥

भजन प्रभाव बिभीखन भाष्यो सुनि कपि कटक जियो ।
तुलसिदास को प्रभु कोसलपति सब प्रकार बरियो ॥ ४ ॥

कवि की उक्ति । बियो कहे दूसरा भजने योग्य नहीं है। श्रीरघुनाथजी के समान कृपा से पूर्ण हृदय और कौन है, जिसको भजिये । यथा—"अस सुभाव कहुँ सुनो न देखो। केहि खगेस रघुपति सम लेखो" ॥ १ ॥ ऐसा कौन देवता है, कहो, जिसने शिलारूप अहल्या तारी, नीचजाति केवट को मित्र कर उसके अवगुण नहीं बिचारे, कुलसहित पावन किया । गीध ऐसे आमिषभोगी अधम पक्षी को पिता के समान जान अपने हाथ से उसको तिलांजलि दी, पिंडदान किया । यहाँ दया, सौहार्द्र और सौलभ्य गुण है । यथा रामायणे—मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथंचन । दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥ १ ॥ पुनः स्तवराजे—भक्तप्रियं भानुकुलप्रदीपं ॥ २ ॥ कौन ऐसा पतितपावन देव है, जो शबरी के जूठे फल खाकर उसके हाथ का भरा जलपान करे, अत्यन्त बली बालि के त्रासरूप समुद्र में बूड़ते सुग्रीव को बाँह पकड़कर रक्खे । ऐसा कौन बली है ॥ ३ ॥ इत्यादि प्रभु के भजन का प्रभाव विभीषण ने कहा । उसको सुन वानरों की सब सेना जी उठी । आप प्रभु की शरण जान आनन्द भये । गोसाईंजी कहते हैं, कि कोशलपाल जो श्रीरघुनाथजी हैं, तिनके समान सब प्रकार से बरियो कहे बली और दूसरा कौन है । भाव केवल रघुनाथजी ही हैं ॥ ४ ॥

राग जैतश्री

कब देखौंगी नयन वह मूरति ।
राजिवदल नयन कोमल कृपा अयन
मयन बहु छबि अनंग दूरति ॥ १ ॥

सिरसि जटाकलाप पानि सायक चाप
उरसि रुचिर बनमाल लूरति ।
तुलसिदास रघुबीर की सोभा सुमिरि
भई है मगन नहिं तन सूरति ॥ २ ॥

श्रीजानकीजी की उक्ति। नवीन कमलसम नेत्र, कोमल-स्वभाव, कृपा के मन्दिर, अपने अंग की छवि के आगे अनेकों कामदेवों की छवि को दुरत कहे दूर करते हैं। सोई वह मूर्ति नेत्र भर कब देखूँगी। शिरसि कहे शिर पर कलाप कहे समूह जटा शोभित हैं। हाथों में धनुष वाण लिये। उरसि कहे छाती विशाल कहे चौड़ी। उस पर वनमाला लुरति कहे लटकती है। वनमाला तथा—तुलसीकुंदमंदारपारिजातसरोरुहैः। पञ्चभिर्ग्रथिता माला वनमाला प्रकीर्तिता ॥ १ ॥ गोसाईंजी कहते हैं कि नखशिख प्रभु की शोभा को सुमिर करके प्रेम में मगन हुई। इससे जानकीजी को तनु की सुरति भूल गई। यह उत्कण्ठा है ॥ २ ॥

कहुँ कबहुँक देखिहौं आली आरज सुवन।
सानुज सुभग तन जब ते बिछुरे बन
तब ते दव सी लागि तीनिहुँ भुवन ॥ १ ॥
मूरति सुरति किये प्रकट प्रीतम हिये
मनके करन चाहै चरन छुवन ।
चित चढ़िगो बियोग दसा न कहिबे जोग
पुलक गात लागे लोचन चुवन ॥ २ ॥
तुलसी त्रिजटा जानी सिया अति अकुलानी
मृदु बानी कह्यो अहै दव दुवन ।

तमीचर तमहारी सुरकंज सुखकारी
रविकुल रवि अब चहत उवन ॥ ३ ॥

त्रिजटा से जानकीजी कहती हैं। हे आली, आरज-श्रेष्ठ दशरथ-सुवन को कभी क्या मैं देखूँगी ? शोभायमान जिनका तनु ऐसे रघुनन्दन लक्ष्मणलाल सहित जबसे वन में बिछुड़े, तबसे मुझको तीनो लोक में आग सी लगी है ॥ १ ॥ प्रभु की मूर्ति को सुरति कहे प्रीति हृदय में प्रकट होती है। मन के हाथों से चरण छुआ चाहती हूँ, परन्तु वियोग की दशा चित्त में बढ़ गई है। सो कहने के योग्य नहीं है। प्रेम से तन पुलकि नेत्रों से जल बहने लगा ॥ २ ॥ गोसाईंजी कहते हैं, त्रिजटा ने जाना कि जानकीजी अकुलानी हैं। तब उसने मृदु वाणी से कहा कि दुवन जो शत्रु, उसके नाशक प्रभु आवेंगे। निशाचर-अन्धकार के हरनेवाले, देव कमलों के प्रकाशक प्रभु रविकुल के रवि उदय होना चाहते हैं ॥ ३ ॥

अब लगि मैं तोसों न कहे री।
सुनु त्रिजटा प्रिय प्राननाथ बिन
बासर निसि दुख दुसह सहे री ॥ १ ॥
बिरह बिषम बिषबेलि बढ़ी उर
ते सुख सकल सुभाय दहे री।
सोइ सींचिबे लागि मनसिज के
रहट नयन नित रहत नहे री ॥ २ ॥
सर सरीर सूखे प्रान बारिचर
जीवनआस तजि चलन चहे री।

तैं प्रभु सुजस सुधा सीतल करि
राखे तदपि न तृप्ति लहे री ॥ ३ ॥
रिपु रिस घोर नदी बिबेक बल
धीरज सहितहु जात बहे री।
दै मुद्रिका टेकि तेहि अवसर
सुचि समीरसुत पैरि गहे री ॥ ४ ॥
तुलसिदास सब सोच पोच मृग
मनकानन भरि पूरि रहे री।
अब सखि सिय सँदेह परिहर हिय
आइ गये दोउ बीर अहेरी ॥ ५ ॥

हे त्रिजटा, अभी तक मैंने तुझसे नहीं कहा। अब सुन, प्राणनाथ विना निशिदिन दुःख को सहती रहूँ ॥ १ ॥ हृदय-रूप भूमि से विषम कहे तीक्ष्ण विरहरूप विष की बेल बढ़ी। उसने अपर वृक्षरूपी सकल सुखों को सहज ही में जला दिया। उस विरह-बेल को सींचने के लिये मनसिज के रहट सरीखे मेरे नेत्र नधे रहते हैं। रहट ही कूप से जल निकालते हैं ॥ २ ॥ विरह के ताप से शरीर तड़ाग सरीखा सूख गया। उससे जलचर सरीखे प्राण अकुलाकर जीने की आश छोड़ चला चाहते हैं। पर तूने प्रभुसुयशरूप अमृत से सुनाकर सींचकर शीतल कर रक्खे हैं; परन्तु तृप्त न भये ॥ ३ ॥ रिपु रावण की घोर रिस सोई नदी है। उसमें धीरज सहित विवेक का बल सेना सब बही जाती थी। मुद्रिकारूप टेक कहे आधार पकड़ाकर पवित्र मतवाले समीरसुत हनुमान्‌जी ने पैरकर गह लिया है ॥ ४ ॥ सब प्रकार के शोच सोई पोच मृग सरीखे मनरूप कानन में भरिपूरि रहे हैं। यह

सुन त्रिजटा कहती है, कि हे श्रीजानकीजी, संदेह हृदय से छोड़ दो। शोकरूपी मृग का शिकार खेलने को अहेरी शिकारी दोनों भाई आ गये ॥ ५ ॥

राग बिलावल

सो दिन सोने को कहु कब ऐहै ।
जा दिन बाँध्यो सिंधु त्रिजटा सों,
तू संभ्रम मोहिं आनि सुनैहै ॥ १ ॥
बिस्व दवन सुरसाधु सतावन,
रावन कियो आपनो पैहै ।
कनकपुरी भयो भूप बिभीखन,
बिबुधसमाज बिलोकन धैहै ॥ २ ॥
दिवदुंदुभि प्रसंसिहैं मुनिगन,
नभतल बिमल बिमानन छैहै ।
बर्षिहैं कुसुम भानुकुलमनि पर,
तब मोहिं पवनपूत लै जैहै ॥ ३ ॥
अनुज सहित सोभिहैं कपिन महँ,
तनुछबि कोटि मनोज हितैहै ।
इन नयनन यहि भाँति प्रानपति,
निरखि हृदय आनन्द समैहै ॥ ४ ॥
बहुरो सदल सनाथ सलछिमन,
कुसल कुसल बिधि अवध देखैहै ।

गुरु पुरलोग सासु दोउ देवर,
मिलत दुसह उर तपनि बुतैहै ॥ ५ ॥
मंगलकलस बधावन घर घर,
पैहै माँगने जो जेहि भैहै ।
बिजय राम राजाधिराज को,
तुलसिदास पावन जस गैहै ॥ ६ ॥

श्रीजानकीजी त्रिजटा से कहती हैं कि सो दिन सोने का उत्तम दिन कब आवेगा ? हे त्रिजटा, जिस दिन सिन्धु बाँधने का हाल तू संभ्रम हर्षवश विह्वल हो मुझे आकर सुनावेगी ॥ १ ॥ विश्व का दवन शत्रु सुर साधुओं को सतानेवाला रावण अपने किये कुकर्म का फल कब पावेगा । भाव वंशसहित नाश होगा । कनकपुरी लंका के राजा विभीषण भये, यह जान विबुध जो देवता, तिनका समाज देखने को कब धावेगा ॥२॥ दिव आकाश में देवता दुन्दुभी बजाकर प्रभु पर फूल वर्षाकर विमानों पर छा रहेंगे । तल जो पृथ्वी, उसमें मुनिगण प्रशंसिहैं कहे वेद की ऋचाओं सहित आशीर्वाद देंगे । तब पवनपूत हनुमान्जी मुझको यहाँ से लिवा ले जायँगे ॥ ३ ॥ मुझ सहित लषणलाल सहित श्रीरघुनाथजी कपि-कटक में शोभित होंगे । उस समय तन की छवि कोटियों मनोज सहित लगेगी, अथवा तन की छवि देख लज्जित हो कोटियों मनोज तैहैं संतप्त होंगे । इस भाँति प्राणपति को इन नयनों से निरखूँगी। तब आनंद हृदय में समायगा, दुःख निकल जायगा ॥ ४ ॥ कपि-दलसहित लषणलालसहित श्रीरघुनाथजी के साथ अपने समाज कुशल और कुशल सहित अयोध्याजी को विधाता कब दिखावेंगे। उस समय गुरु वशिष्ठ, सब पुरवासी, कौशल्या आदि सासु, भरत

शत्रुघ्न देवर, तिनको मिलते में हृदय का जो दुःसह ताप सो बुझा जायगा ॥ ५ ॥ पुर में द्वार-द्वार में मंगलकलश धरे होंगे। घर-घर में बधावे होंगे। उस समय याचकजन मनभावते दान पावेंगे। श्रीरघुनाथ राजाधिराज के विजय का पवित्र यश तुलसीदास गावेंगे ॥ ६ ॥

सिय धीरज धरिये राघव अब ऐहैं।
पवनपूत पहँ पाइ तोरि सुधि सहजकृपालु बिलंब न लैहैं ॥ १ ॥
सैन साजि कपि भालु काल सम कौतुक ही पाथोधि बँधैहैं।
घेरोई देखिबो लंकगढ़ बिकल जातुधानी पछितैहैं ॥ २ ॥
निसिचर सलभ कृसानु रामसर उड़ि उड़ि परत जरत जड़ जैहैं।
रावनकर परिवार अगमनो जमपुर जात बहुत सकुचैहैं ॥ ३ ॥
तिलक सारि अपनाइ बिभीखन अभयबाँह दै अमर बसैहैं।
जयधुनि मुनि वर्षिहैं सुमन सुर ब्योम बिमान निसान बजैहैं ॥ ४ ॥
बन्धु समेत प्रानबल्लभपद परसि सकल परिताप नसैहैं।
राम बामदिसि देखि तुमहिं सब नैनवन्त लोचनफल पैहैं ॥ ५ ॥
तुम अतिहित चितइहौ नाथ तनु बारबार प्रभु तुमहिं चितैहैं।
यह सोभा सुख समय बिलोकत काहू तौ पलकै नहिं लैहैं ॥ ६ ॥
कपिकुल लखनसुजसजयजानकि सहित कुसलनिजनगरसिधैहैं।
प्रेम पुलकि आनन्द मुदितमन तुलसिदास कलकीरति गैहैं ॥ ७ ॥

त्रिजटा कहती है। हे श्रीजानकी, धीरज धरिये। अब श्रीरघुनाथजी आवेंगे। काहे से तुम्हारी सुध हनुमान्‌जी से पाकर

सहज ही कृपालु श्रीरघुनाथजी यहाँ आने में बिलम्ब न लगावेंगे ॥ १ ॥ काल के समान कपिभालुओं की सेना साजकर कौतुकमात्र में समुद्र बँधा लेंगे और लंकागढ़ कपि-सेना से घेरा ही देख पड़ेगा। विकल होकर राक्षसी पछतायँगी। विमुखी ॥ २ ॥ रामबाण का प्रताप यथा हनुमन्नाटके—शतचक्रसमो विष्णुः शतशूलसमोहरः ॥ शतवज्रसमः शक्रो रामबाणः प्रतापवान् ॥ तूणेनैकशरः करेण दशधा संधानकाले शतम् चापेभूच्च सहस्रमेव गमने लक्षं च कोटिर्वधे ॥ अन्ते चार्बनिखर्वबाणनिकरैस्सीतापतिः शोभितः एतद्बाणपराक्रमस्यमहिमा सत्पात्रदाने यथा॥ नागानामयुतं तुरंगनियुतं सार्द्धं रथानां शतं पदानां शतकोटयो यदि हता एकः कबंधो रणे॥ एवंकोटिकबंधनर्त्तनविधौ किंचिद्ध्वनत्किंकिणिः पायाद्वै परमात्मनोरघुपतेः कोदंडघंटारवः ॥ श्रीरघुनाथजी के बाण अग्नि के समान, उनमें शलभ कहे पाँखी समान निशिचर उड़-उड़ पड़ते जलते चले जायँगे। जड़ मृत्यु के वश होंगे। परिवार को अगमनो कहे आगे कर रावण यमपुर जाते में बहुत संकोच करेगा। भाव अनेकों पातकों की सजा मुझको क्या होगी। जन्म भर का पाप मृत्यु के समय सबको याद आता है, यह स्वाभाविक सम्प्रदाय है ॥ ३ ॥ लंका के राज्य का तिलक दे विभीषण को अपना नित्यपार्षद बनाकर, भाव लंका से दुष्टता मिटाकर, तब श्रीरघुनाथजी देवतों को अभय बाँह देकर देवलोक में बसैंगे। पृथ्वी में वेदध्वनिसहित आशीर्वाद की जयजयकार-ध्वनि मुनियों की होगी। आकाश में देवता फूल वर्षाकर निशान कहे बाजे बजावेंगे। इत्यादि महाआनन्द उस समय में देखोगी ॥ ४ ॥ बंधु लक्ष्मण सहित प्राणवल्लभ श्रीरघुनाथजी के चरण परसि कहे छूकर आनंदित होगी। हृदय का विरहजनित सब परिताप नाश हो जायगा। श्रीरघुनाथजी के

वाम भाग में तुम्हें देख नैनवन्त इंद्रादि (अथवा जिनको प्रभु दर्शन की प्यास, वे ही नैनवन्त हैं, अपर सब अंधे हैं। वे ही जो प्रभुदर्शन के प्यासे कपि-मुनि-देवादि) नेत्रों का फल प्रभु का रूप अघाकर देखेंगे ॥ ५ ॥ अत्यन्त हितसहित तुम प्रभु के श्याम-सुन्दर तनु को देखोगी और प्रभु बारबार हितसहित तुमको देखेंगे। यहाँ परस्पर प्रीति सूचित की है। कवित्त यथा—जैसी रीति रहसि सुहाई मनभावन को रावरो सुभाव सोई सहज में देखती। प्रीतम की रुचि चित चखन सों चाहि-चाहि चारि जाम रुचि रचि रचना अशेषती ॥ बाम बरबदन बिलोकि बलि जात वर बर को बिलोकि वाम तन न सरेखती। बैजनाथ जस बुद्धि जोबन सकुचि भाग अचल सोहागभरी दूसरी न लेखती ॥ श्याम गौर रूप, अन्योन्य युवावस्था, अन्योन्य परस्पर प्रीति, अन्योन्य लावण्य, अन्योन्य सुकुमारता, अन्योन्य प्रेमावलोकन इत्यादि युगल तन की जो शोभा है, सो उस समय जिस समय लोकों के लिये रोगरूप रावण को मार जग को सुखी करेंगे, उसका सुख बिलोकते में किसी की पलक न लगेगी ॥ ६ ॥ लंकाविजय के सुयशसहित कपिकुलसमूह वानरोंसहित श्रीजानकी और लक्ष्मणजी सहित कुशलपूर्वक प्रभु निज नगर अयोध्याजी को सिधावेंगे। निशाचरों को सुगतिदान, देवतों को अभयदान इत्यादि कीर्ति को प्रेम से पुलकि मुदित मन आनंद से सुन्दर कीर्ति तुलसीदास गावेंगे अथवा तुलसी कवि कहते हैं कि त्रिजटा श्रीजानकीजी से कहती है कि प्रभु की सुन्दर कीर्ति को दास नारदादि ऋषीश्वर अथवा शिव, पार्वती, काकभुशुण्डि, गरुड़, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज अथवा वाल्मीकि, अगस्त्य, हनुमान् आदि जो प्रभु के दास हैं, वे कल कहे सुन्दर कीर्ति गावेंगे ॥ ७ ॥

दोहा

होत जो अस्तुति दान ते कीरति कहिये ताहि ।
होत बाहुबल सों सुजस सज्जन पढ़त सराहि ॥

सवैया

धरन्याजिनरम्यसधर्मसुखासन शोभिसबन्धकपीशऋच्छेशा ।
जलजाम्बकचन्द्रप्रभास्यमहाभुजदण्डशिरेमुकुटाङ्कतकेशा ॥
सुनियस्यसप्रेमविभीषणबाच कृताधिपलंकसमीपजलेशा ।
करुणाकरबैजसुनाथसदा मनकंजप्रकाशक राम दिनेशा ॥ ७ ॥

इति रसिकलताश्रितकल्पद्रुमसियावल्लभशरणबैजनाथकृतगीतावली-
मणिदीपिकाटीकासहितसुन्दरकांड समाप्त ।

श्रीगणेशाय नमः

गीतावली

(मणिदीपिका टीकासहित)

लङ्काकाण्ड
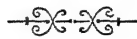
श्लोक

रामं कञ्जविलोचनं गुणनिधिं सीतापतिं राघवं
श्रीमत्पङ्क्तिरथात्मजं रघुवरं राजाधिराजं हरिम् ।
सांद्रानंदपयोदनीलवपुषं चापेषुपाणिं प्रभुं
वन्देऽहं रघुवंशभूषणवरं देवं प्रसन्नाननम् ॥ १ ॥

राग मारू

मानु अजहुँ सिख परिहरि क्रोध ।
पिय पूरो आयो अब क्यहि कहु करि रघुबीर विरोध ॥ १ ॥
जेहि ताड़का सुबाहु मारि मख राखि जनायो आपु ।
कौतुक ही मारीच नीच मिस प्रकट्यो बिसिखप्रतापु ॥ २ ॥

सकल भूप बलगर्बसहित तोरो कठोर सिवचापु ।
ब्याही जेहि जानकी जीति जग हर्यो परसुधरदापु ॥ ३ ॥
कपटकाक साँसति प्रसाद करि बिनु स्रम बधो बिराधु ।
खर दूषन त्रिसिरा कबन्ध हति किये सुखी सुर साधु ॥ ४ ॥
एकहि बान बालि को मारे जेहि बलउदधि अगाधु ।
कहु धौं कन्त कुसल बीते केहि किये राम अपराधु ॥ ५ ॥
लाँघि न सके लोकविजयी तुम जासु अनुजकृत रेखु ।
उतरि सिन्धु जारो प्रचारि पुर जाको दूत बिसेखु ॥ ६ ॥
कृपासिन्धु खलबच कृसानुसम जस गावत स्रुतिसेखु ।
सोइ बिरदैत बीर कोसलपति नाथ समुझि जिय देखु ॥ ७ ॥
मुनि पुलस्त्य के जसमयंक महँ कृत कलंक हठि होहि ।
और प्रकार उबार नहीं कहुँ मैं देख्यों जग तोहि ॥ ८ ॥
चलु मिलि बेगि कुसल सादर सियसहित अग्र करि मोहिं ।
तुलसिदास प्रभु सरनशब्द सुनि अभय करहिंगे तोहिं ॥ ९ ॥

रावण से मन्दोदरी कहती है कि हे पति, क्रोध छोड़ अब भी सिखावन मानो । काहे से श्रीरघुवीर से वैर-विरोध कर किस-का पूरा पड़ा है ? कहो ॥ १ ॥ जब रावण ने उत्तर न दिया, तब मंदोदरी वैर करनेवाले को दिखाती है । प्रथम मुनि के यज्ञ की रक्षा हेतु रहे । तहाँ ताड़का व सुबाहु ने वैर किया । तिनको मार मख की रक्षा की । इसमें अपना प्रभाव जनाया । कौतुकमात्र में मारीच को बाण में उड़ा दिया । समुद्रपार आया । उसके मिस से बाण का प्रभाव प्रकट किया ॥ २ ॥ सकल लोक के भूपों के गर्व-

सहित जनकपुर में शिवजी का महाकठोर धनुष तोड़ा। उसके हेतु परशुराम ने विरोध किया। उनका दाप अभिमान तोड़ जग को जीत श्रीजानकीजी ब्याहीं जिन श्रीरघुनाथजी ने ॥ ३ ॥ फटिकाशिला पर कपट कर काकरूप हो जयन्त ने विरोध किया। भाव श्रीजानकीजी के चोंच का प्रहार किया। उसकी ऐसी साँसत की कि उसका रक्षक कोई न ठहरा। तब व्याकुल हो शरण आया। प्रसाद कहे प्रसन्न होकर एक नेत्र नष्ट कर प्राण छोड़ दिये। वन में विराध ने वैर किया। उसको वर था कि अस्त्र से मृत्यु न हो। सो विना परिश्रम ही मारा। भाव जीते ही भूमि में गाड़ दिया। दण्डकारण्य में खर, दूषण, त्रिशिरा, कबंध ने विरोध किया। उनको मार देवतों व साधुओं को सुखी किया ॥ ४ ॥ सुग्रीव को बल दे भेजा। तहाँ बालि ने वैर किया, जो बल में अथाह समुद्र था। उसको एक बाण से मारा। मन्दोदरी कहती है, हे कन्त, श्रीरामचन्द्र का अपराध करके किसकी कुशल बीती है। अब तुम कहो ॥ ५ ॥ जासु कहे जिन श्रीरघुनाथजी के अनुज ने पंचवटी में जानकीजी के आसपास रेखा खिंचाई, उसको लोकविजयी तुम नाँघ न सके। उनका दूत समुद्र नाँघ विशेष करके तुम्हारे सम्मुख प्रचारि ललकारकर तुम्हारा नगर जलाकर कुशल से चला गया ॥ ६ ॥ सज्जनों के लिये कृपा के समुद्र, दुष्टवन के भस्म करने में अग्निसमान वह हैं। जिनका यह सुन्दर यश वेद शेष आदि गाते हैं, सोई विरदैत कहे वीर बानावाले कोशलपति श्रीरघुनाथजी हैं। हे नाथ, अपने जी में विचारकर देखो ॥ ७ ॥ पुलस्त्य मुनि का यश निर्मल चन्द्रमा है। उनके कुल में तुम हठिकै जानबूझकर काहे को कलंक होते हो ? भाव ईश्वर से विमुख होता है। मैंने सब जग टोहि कहे ढूँढ़कर विचार देखा, राम का विरोध किये और

किसी प्रकार तुम्हारा उबार कहीं नहीं है। भाव त्रैलोक्य में कोई रक्षक नहीं है। प्रमाण वाल्मीकीयरामायणे—ब्रह्मास्वयंभूश्चतुराननो वा इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा। रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरांतको वा त्रातुं न शक्ता युधि रामवध्यम् ॥ पुनः—भगवद्गुणदर्पणे ॥ रामवध्यो न शक्तः स्याद्रक्षितुं सुरसत्तमैः। ब्रह्मरुद्रेन्द्रसंज्ञैश्च त्रैलोक्यप्रभुभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥ मन्दोदरी कहती है कि और उपाय बचने का नहीं है। एक उपाय है। आगे मुझको करके आदर से जनकसुता को ले चलकर प्रभु को मिलो। तब तुम्हारी कुशल है। इस प्रकार शरणागत के आर्त शब्द सुन प्रभु तुमको अभय करेंगे ॥ ९ ॥

राग कान्हरा

तू दसकंठ भले कुल जायो।
तामहुँ सिवसेवा बिरंचि बर भुजबल बिपुल जगत जस पायो १
खर दूखन त्रिसिरा कबन्ध रिपु जेहि बाली जमलोक पठायो।
ताको दूत पुनीत चरित हरि सुभ सन्देस कहन हौं आयो २
श्रीमद नृप अभिमानमोहबस जानत अनजानत हरि लायो।
तजि व्यलीक भजु कारुनीक प्रभु दै जानकिहि सुनहि समुझायो ३
याते तव हित होहि कुसल कुल अचल राज चलिहै न चलायो।
नाहिं तो रामप्रताप अनल महँ ह्वै पतंग परिहै सठ धायो ४
जद्यपि अंगद नीति परमहित कह्यो तथापि न कछु मन भायो।
तुलसिदास सुनि बचन क्रोध अति पावक जरत मनहुँ घृत नायो ५

रावण प्रति अंगद कहता है कि हे दशकंठ, तू भले पुलस्त्य मुनि के कुल में उत्पन्न हुआ। उसमें शिवजी की सेवा में मन लगाया।

उसका बल। उस पर भी तप कर ब्रह्मा से वर पाया। उससे जग में भुज-बल का बड़ा यश पाया॥ १॥ खर, दूषण, त्रिशिरा, कबंधादि रिपु सहित बालि को यमलोक भेजा, काल को वश किया जिसने,उसका दूत मैं हूँ। जिनका यश पवित्र है ऐसे हरि का शुभ सन्देश तुम्हारे कल्याण के लिये मैं कहने को आया हूँ तुम्हारे पास॥ २॥ श्रीद्रव्य के मद से राजपद के अभिमान से महामोह में अन्ध हो जानते में अजान बन श्रीजानकीजी को हर लाये। अभी कुशल है। जानकीजी को देकर कपट अभिमान छोड़ कारुणीक प्रभु को भजो। इसमें तुम्हारा कल्याण है। यह हमारा समझाना सुनो॥ ३॥ इसमें तुम्हारा हित ऐसा है कि कुशलसहित तुम्हारा अचल राज्य होगा, जो किसी के चलाये न चलेगा। नहीं तो हे शठ, रघुनाथजी के प्रतापरूप अग्नि में पतंग हो दौड़-दौड़ उसमें पड़ भस्म होगा॥ ४॥ यद्यपि अंगद ने नीति और परम-हित कहा, तथापि रावण के मन कुछ नहीं भाया। गोसाईंजी कहते हैं कि अंगद के वचन सुन रावण के कैसे क्रोध हुआ, मानो जलते अग्नि में घृत पड़ने से वह अधिक प्रज्वलित हुआ॥ ५॥

तैं मेरो मरम कछू नहिं पायो।

रे कपि कुटिल ढीठ पाँवर पसु मोहिं दास ज्यों डाँटन आयो १

भ्राता कुम्भकरन रिपुघातक सुत सुरपतिहि बाँधि करि ल्यायो।

निजभुज बल अतिअतुल कहौं क्यों कंदुक ज्यों कैलास उठायो २

सुर नर असुर नाग खग किन्नर सकल करत मेरो मन भायो।

निसिचर रुचिर अहार मनुज तन ताको जस खल मोहिं सुनायो ३

कहा भयो वानर सहाय मिलि करि उपाय जो सिंधु बँधायो।

जो तरिहै भुज बीस घोर निधि ऐसो को त्रिभुवन जन जायो ४

सुनि दससीसबचन कपिकुञ्जर बिहँसि ईसमायहि सिरनायो।
तुलसिदास लंकेस कालबस गुनत न कोटि जतन समुझायो ५

अंगद से रावण कहता है कि तूने मेरा हाल कुछ नहीं पाया है। रे कपि कुटिल, ऐसा पसु पाँवर ढीठ है कि अपने दाससम मुझको डाँटने तू चला है॥ १ ॥ कुम्भकर्ण-सा मेरे भ्राता है, जो शत्रु का नाशकर्त्ता है। मेघनाद-सा पुत्र बली, जो इन्द्र को बाँध लाया। मेरे भुजाओं का बल अत्यन्त अतुल है। उसका कैसे बखान करूँ, जिनसे गेंद समान कैलास उठा लिया ॥ २ ॥ देवता, दैत्य, नर, नाग, पक्षी, किन्नर आदि सब मेरे मन का भाया करते हैं। भाव मेरे भय से सदा डरते हैं। और, मानुष तो निशाचरों का सुन्दर आहार हैं। उनका यश खल मुझको सुनाता है॥ ३ ॥ वानरों की सेना ने मिलकर उपाय करके समुद्र बँधा लिया, तो क्या हुआ? मेरे बीस भुजा घोर समुद्र हैं, तिनको जो तरेगा, ऐसा कौन वीर त्रिभुवन में है॥ ४ ॥ कपिकुञ्जर अंगद ने रावण के वचन सुन हँसकर रघुनाथजी की माया को माथा नवाया। गोसाईंजी कहते हैं कि अंगद ने कोटि भाँति से समझाया, परन्तु रावण काल के वश है, इससे कछु नहीं गिनता है मन में कि क्या बनी क्या बिगड़ी ॥ ५ ॥

सुनु खल मैं तोहिं बहुत बुझायो।
एतो मान तोहिं जो मोहबस,
जानत हू चाहत बिष खायो ॥ १ ॥
जगतबिदित अतिबीर बालि-बल,
जानत हौ किधौं अब बिसरायो।

बिन प्रयास सो हतो एक सर,
सरनागत पर प्रेम दिखायो ॥ २ ॥
पावहुगे निज कर्मजनित फल,
भले ठौर हठि बैर बढ़ायो।
बानर भालु चपेट लपेटनि,
मारत तब ह्वैहै पछितायो ॥ ३ ॥
हौंही दसन तोरिबे लायक,
काह करौं जौं न आयसु पायो।
अब रघुबीर बानबिदलित उर,
सोवहिगो रनभूमि सोहायो ॥ ४ ॥
अबिचल राज बिभीखन की सब,
जेहि रघुनाथचरन चित लायो।
तुलसिदास यहि भाँति बचन कहि,
गर्जत चलो बालि नृप जायो ॥ ५ ॥

अंगद कहते हैं, हे खल रावण, मैंने तुझे बहुत समझाया, सो तुम नहीं माने। उसका फल होनेवाला है, सो सुन। मोहवश तुझको इतना अहंकार भया। जानि बूझ ज़हर खाया चाहता है ॥ १ ॥ जग में विदित वीर अत्यन्त बली बालि, जिसके बल को तुम भी जानते हो, षट्मास बग़ल में रहे, उसको अब क्या बिसरा दिया ? ऐसे बालि को रघुनाथजी ने बिना प्रयास एक बाण से मारा। शरणागत सुग्रीव पर प्रेम जग में दिखाया, कृपा कर कपिकुल का तिलक किया ॥ २ ॥ भले ठौर हठ करके वैर

बढ़ाया है। इससे अपने कर्मजनित कर्म से उत्पन्न फल पाओगे, जब वानर भालु चपेट थपेड़ा, लपेटि मुष्टका तुम्हारे मारेंगे तब पछितावा होगा ॥ ३ ॥ हौंही मैं ही तुम्हारे दाँत तोड़ने लायक हूँ, पर प्रभु की आज्ञा नहीं है, इसको क्या करूँ ? अब रघुनाथजी के बाणों से तुम्हारा हृदय विशेष दलित होगा। तुम रणभूमि में सोओगे तब रणभूमि शोभित होगी ॥ ४ ॥ अब लंका का राज्य विभीषण का है, जो रघुनाथजी के चरणों में अचल चित्त लगाये हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि इस प्रकार की बातें कर बालि नृप का जाया जो अंगद सो गर्जकर चल दिया ॥ ५ ॥

राग केदारा

राम लखन उर लाइ लये हैं।
भरे नीर राजीवनयन सब अंग-अंग परिताप तये हैं ॥ १ ॥
कहत ससोक बिलोकि बंधुमुख बचन प्रीति गथये हैं।
सेवक-सखा भक्ति भायप गुन चाहत अब अथये हैं ॥ २ ॥
निज करनी करतूति तात तुम सुकृती सकल जये हैं।
मैं तुम बिन तनु राखि लोक अपने अपलोक लये हैं ॥ ३ ॥
मेरे पन की लाज इहाँ लौं हठि प्रिय प्रान दये हैं।
लागत साँग बिभीखन ही पर सो पर आपु भये हैं ॥ ४ ॥
सुनि प्रभुबचन भालु कपि सुरगन सोच सुखाय गये हैं।
तुलसी आइ पवनसुत बिधि मानों फिरि निर्मये नये हैं ॥ ५ ॥

शक्ति लगे लक्ष्मणजी को श्रीरघुनाथजी ने रोकर हृदय से लगा लिया। उस समय कमलसरीखे नेत्रों में जल भरा था, सब

अंग-अंग परिताप से तये कहे तप्त थे ॥ १ ॥ बन्धु लक्ष्मणजी का मुख देख श्रीरघुनाथजी प्रीति के सर्वांग गथये कहे गुह गये। हित शोक अर्थात् प्रीतियुक्त करुणारस सहित वचन बोले कि सेवक और सखा के जो गुण हैं और भाइप कहे भाईपन के यावद् गुण हैं, ते सब लक्ष्मणजी में पूर्ण थे सो सब अस्त हुआ चाहते हैं। भाव लक्ष्मण को छोड़ दूसरे में नहीं हैं। सेवक के गुण, यथा सिद्धांतमुक्तावली। दोहा—"सर्वेस्वर सर्वज्ञ प्रभु अतिसय कृपानिधान। इत्यादिक गुन आश्रयन सो अवलम्बन जान ॥ आठौं अंग प्रनाम पुनि पग प्रच्छालन पान। कृपा-दृष्टि की बाँह नित सो उद्दीपन जान ॥ आज्ञा सिर धारे सदा सेवन चतुर अमान। ढीठ बचन बोलै नहीं यह अनुभाव बखान। पूर्व कहे ते प्रनयजुत अष्टसात्वकीजान। तन मन को जो छोभ ही ताहि स्वातिका मान ॥ हर्ष गर्व चिन्ता समृति मति धृति अरु निरवेद। तर्क शंक पुनि दीनता सब संचारि सुवेद ॥ जिय प्रभुता को ज्ञान पुनि संभ्रम आदर दान। स्वामि भाव करि प्रीति यह स्थायि भाव जिय जान ॥ प्रथमहि ते सिय राम को दरस नहीं संयोग। दरसन पुनि अन्तर परे ताकहँ जानि वियोग ॥ वियुत प्रभुत द्वै जाग में यह दस दसा बखानि। कृसता जड़ता जागरन अनालम्ब धृति हानि ॥ ज्वरतापादिक व्याधि पुनि जरनि अंग सो जान। बाढ़ै चित्त उन्मत्तता मूर्च्छा मरन निदान ॥ इति सेवक। अथ सखागुण यथा—सरस सलोने नेहनिधि रघुवर बड़े सुजान। इत्यादिक गुन आश्रयन सो अवलम्बन जान ॥ चपल तुरंगनि फेरनि मृग तकि मारन बान। करि प्रन लच्छन बेधनी सब उद्दीपन जान ॥ धरि गल भुज बतलावनी इकसँग भोजन सैन। अनुभावन यह सखा के सब विधि सुख को ऐन ॥ पूर्व कहे ते स्वातिका रोमांचादिक अत्र। हर्ष गर्व आदिक सकल

संचारिहु जो तत्र ॥ सख्यरस को अस्थायि पुनि प्रनय प्रेम अरु नेह। अनुरागो अस जानिये एक जीव द्वै देह ॥ इति सखागुण। अथ भक्ति यथा, महारामायणे—बाह्यांतरं शृणु तथा गिरिराज-कन्ये त्वत्तो वदामि रघुनाथजनस्य मुख्यम् ॥ अन्ये विहाय सकलं सदसच्च कार्यं श्रीरामपंकजपदं सततं स्मरन्ति ॥ श्रीरामनामरसिकाः प्रपठन्ति भक्त्या प्रेम्णा च गद्गदगिरोऽप्यथ हृष्टलोमाः ॥ सीतायुतं रघुपतिं च विशोकमूर्तिं पश्यन्त्यहर्निशि मुदा परया च रम्यम् ॥ भूमौ जले नभसि देवनरासुरेषु भूतेषु देवि सकलेषु चराचरेषु ॥ पश्यन्ति शुद्धमनसा खलु रामरूपं रामस्य ते भुवितले समुपासकास्ते ॥ शांतः समानमनसा च सुशीलयुक्तस्तोषक्षमागुणदयामृदुबुद्धियुक्तः ॥ विज्ञानज्ञानविरतिः परमार्थवेत्ता निर्धामकोऽभयमनाः स च रामभक्तः ॥ भाले च रम्यतिलकं विवरेण दीप्तं रामस्यपादसदृशं त्वथ पीतमध्यम् ॥ कंठे तथा तुलसिदामलसद्भुजो वै तप्तेन बाणधनुषा स च रामभक्तः ॥ रामस्य चैव हृदयं शुचिमंत्रराजं श्रीरामनामसहितं सततं स्मरेद्यः ॥ सत्संगनित्यनिरतः श्रुतितत्त्ववेत्ता ज्ञातो महान् रघुपतेः समुपासकस्स ॥ इति भक्तगुणम् ॥ अथ भाईपन यथा, श्रीमद्रामायणेलक्ष्मणवाक्यम्—अहं तावन्महाराज पितृत्वं नोपलक्षये ॥ भ्राता भर्ता च बंधुश्च पिता माता च राघवः ॥ इत्यादि यावद् गुण हैं, सो सब लक्ष्मणजी में परिपूर्ण हैं।इनको इन बिना दूसरा कौन धारण करेगा? गुण सब लोप होना चाहते हैं ॥ २ ॥ निज कहे अपनी करतूत जो कर्तव्यता अर्थात् ज्ञान वैराग्य तप त्याग प्रभु में निश्छल अनुराग भक्ति अन्यता इत्यादि करतूत, उसकी कीर्ति। अथवा—होत जो अस्तुति दान सों कीरति कहिये ताहि। होत बाहु-बल ते सुजस कहत सुसज्जन ताहि। स्तुति यथा—"नाथ स्वामि तुम दास मैं तजौ तौ काह बसाइ।" और दान में तो लक्ष्मणजी ने तन मन

धन प्रभु पर वार दिया है। यथा—राम बिलोकि बंधु कर जोरे। देह गेह सब तृनसम तोरे॥ इत्यादि। सो कीरति करतूत कहे यावद्यशदायक कर्तव्यता। यथा—"रघुपतिकीरति रुचिर पताका। दण्डसमान भयो जस जाका॥ रघुनाथजी कहते हैं कि हे तात लक्ष्मणजी, तुमने अपनी करतूत की कीर्ति जो यावत् सुकृती हैं, तिनको जये कही जीत लिया। तहाँ प्रथम सुमित्राजी सुकृतशिरोमणि यथा—"पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति-भक्त जासु सुत होई॥" तेहि सुमित्रा के वचन यथा—"भूरि भागभाजन भयो मोहिं समेत बलि जाउ। जो तुम्हरे मन छाँड़ि छल कीन रामपद भाउ॥" पुनः सुकृतशिरोमणि भरतजी यथा—"सुनहु भरत रघुपति मन माहीं। प्रेमपात्र तुम सन कोउ नाहीं॥" तिन भरत के वचन यथा—"अहो धन्य लछिमन बड़भागी। रामपदारविंदअनुरागी॥" आगे पन्द्रहवें पद में गोसाईंजी ने लिखा है कि "उपमा राम लखन की प्रीति की क्यों दीजै छीरै नीरै।" तहाँ रघुनाथजी कहते हैं कि हे तात, तुम विना जगत् में मैंने अपना तन रखकर अपलोक कहे अयश लिया है। उसके निवारण हेतु उठो। काहे से हमारे वचन के सुयश के रक्षक हो। सो सँभलकर हमारा अयश मिटाओ॥ इति शेषः॥ प्रभु कहते हैं कि हे तात, तुमको मेरे प्रण की इतनी लाज है कि प्रण की रक्षा हेतु हठ करके प्रिय प्राण दे दिये। काहे से विभीषण को लंकाराज्य देने की प्रतिज्ञा जान विभीषण पर शक्ति आते देख लक्ष्मणजी ने सीपर कहे ढाल हो अपने ऊपर उसे ले लिया, जिसमें विभीषण के न लगे, जो प्रभु की प्रतिज्ञा जाय। यहाँ विभीषण के मारने का प्रण मेघनाद किये रहा। यथा—"कहाँ विभीषण भ्राताद्रोही। आजु सठै हठि मारौं वोही" ॥ ३। ४॥ उस अवसर में प्रभु के करुणा भरे वचन सुन वानर भालु देवगण शोचवश हो सुखा

गये। भाव अंत समझ शोक-अग्नि में तप्त भये। गोसाईंजी कहते हैं कि उसी समय पवनसुत ने ओषधि लाकर मानों विधाता होकर फिर नये सिरे से लक्ष्मणजी को बनाया है ॥ ५ ॥

राग सोरठ

मोपै तौ न कछू ह्वै आई।
और निबाहि भली बिधि भायप चल्यो लखन सों भाई ॥ १ ॥
पुर पितु मातु सकल सुख परिहरि जेहि बन बिपति बढ़ाई।
ता सँग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यों न प्रान पठाई ॥ २ ॥
जानत हौं या उर कठोर ते कुलिस कठिनता पाई।
सुमिरि सनेह सुमित्रासुत को दरकि दरार न जाई ॥ ३ ॥
तातमरन तियहरन गृद्धबध भुज दाहिनी गँवाई।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई ॥ ४ ॥

नरनाट्य में प्रभु कहते हैं मोपै कहे हमसे कछु न बन पड़ी। और कहे अन्त तक भली विधि भाईपना निबाहकर लक्ष्मण ऐसा भाई हमारे वर्त्तमान चला जाता है ॥ १ ॥ पुर का ऐश्वर्य छोड़ा। माता-पिता को छोड़ा। सब प्रकार का सुख छोड़ा। हमारे साथ वन में हमारी विपत्ति बँटा ली। तिन लक्ष्मण के साथ वन का शोक छोड़ सुरलोक प्राण न भेज सका। भाव जिनने सुख छोड़ वन में विपत्ति में साथ दिया, तिनके साथ हम वन की विपत्ति छोड़ स्वर्ग-सुख के साथी न भये ॥ २ ॥ यह मैं जानता हूँ कि मेरा यह उर ऐसा कठोर है जिससे कुलिश जो वज्र है, उसने भी कठोरता पाई है। काहे से सुमित्रा-सुत जो लक्ष्मण हैं, तिनका सनेह सुमिर हृदय में दरककर दरार न भई। इससे यह

कुलिश से भी कठोर है। पुर में मेरे हेतु पिता का तनुत्याग, वन में स्त्री-हरण, गृद्ध की मृत्यु भई। अब यहाँ दाहिनीभुजा लक्ष्मण से भाई को गँवाया। मैं सब भाँति से कुल में कालिमा कहे स्याही लगा अयशी हुआ ॥ ३ । ४ ॥

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपतिबटावन बन्धु बाहु बिन करौं भरोसो काको ॥ १ ॥
सुनु सुग्रीव साँचहू मोपर फेरो बदन बिधाता।
ऐसे समय समर संकट हौं तज्यो लखन से भ्राता ॥ २ ॥
गिरि कानन जैहैं शाखामृग हौं पुनि अनुज सँघाती।
ह्वैहै काह बिभीखन की गति रही सोच भरि छाती ॥ ३ ॥
तुलसी सुनि प्रभुबचन भालु कपि सकल बिकल हिय हारे।
जाम्बवन्त हनुमन्त बोलि तब अवसर जानि प्रचारे ॥ ४ ॥

नरनाट्य में प्रभु कहते हैं कि हमारा सब पुरुषार्थ थक गया; काहे से दाहनी भुजा विपत्ति बटानेवाले लक्ष्मण के बिना किसका भरोसा करूँ ॥ १ ॥ हे सुग्रीव, हमसे विधाता ने सचमुच मुख फेर लिया, भाव विमुख भये। काहे से ऐसे समय समर में संकट परे पर लक्ष्मण ऐसा भाई हमको तजे जाता है या हमने भाई को तजा। विधाता ने ऐसे समय में भाई को छुड़ाया ॥ २ ॥ कौन संकट सो कहते हैं। शाखामृग वानर तो गिरिकन्दराओं में जायँगे। हम बंधु के संग देह छोड़ देंगे। तब विभीषण की कौन गति होगी। यही शोच से हमारा हृदय भर रहा है, सो संकट है ॥ ३ ॥ गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु के करुणामय वचन सुन दुःख को मिटानेवाला पुरुषार्थ किसी में न देख पड़ा। इससे वानर ऋक्ष

तहाँ करुणरस में वीररस का समय जान जाम्बवान् ने हनुमान्जी को बुलाकर प्रचारे कहे ललकारा कि इसका उपाय तुम्हारे करने योग्य है ॥ ४ ॥

राग मारू

जो हौं अब अनुसासन पावौं ।
तौ चन्द्रमहिं निचोरि चैल जिमि आनि अमी सिरनावौं ॥ १ ॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृतकुंड महि लावौं ।
भेदि भुवन करि भानु बाहिरहि तुरत राहु दै तावौं ॥ २ ॥
बिबुधबैद्य बरबस आनौं धरि तौ प्रभुअनुग कहावौं ।
पटकौं नीच मीच मूषक जिमि सबहि को पाप बहावौं ॥ ३ ॥
तुम्हरी कृपा प्रताप तिहारे नेक बिलम्ब न लावौं ।
दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु ज्यहि तुम्हरे मन भावौं ॥ ४ ॥

यहाँ करुणारस अनुभाव देख दयावीर का उद्दीपन है। तहाँ उग्र वचन, लाल वदन, प्रफुल्लित देह, यह अनुभाव भया। गर्व धैर्य संचारी। उत्साह स्थायी। सो वीररस के वचन हनुमान्जी बोले कि जो अब मैं प्रभु की आज्ञा पाऊँ तो चन्द्रमा को वस्त्र के समान निचोड़कर अमृत लेकर लौटकर माथा प्रभु को नवाऊँ। उसको पीकर लक्ष्मणजी जी उठें ॥ १ ॥ कदाचित् चन्द्रमा में थोड़ा अमृत हो, निचोड़े से न मिले, तो पाताल में सर्पों की अवली जो रक्षक हैं, तिनको दलकर अमृतकुण्ड सहित भूमि उठा लाऊँ। कदाचित् उससे कार्य न हो, प्रभात भये से हानि है, उसके हेतु भुवन का मण्डल फाड़ सूर्य को ब्रह्माण्ड के बाहर निकाल उसी मार्ग में राहु को धरकर ताय दूँ, जिसमें इस लोक

में आ न सके तब प्रभात ही न होगा ॥ २ ॥ तब तक विबुधवैद्य अश्विनीकुमार शायद मृत्युलोक जान बुलाये न आवें, तो बरबस कहे ज़बरदस्ती पकड़ लाऊँ। उनसे कार्य न हो तो नीच मृत्यु को पकड़ मूष समान पटक डालूँ। इसमें सबके पाप बहाऊँ, जिसमें किसी की मृत्यु ही न हो ॥ ३ ॥ हे प्रभु, आपकी कृपा से आपके प्रतापसे ये सब कार्य करने में नेक कहे थोड़ा भी विलम्ब न लाऊँ। इससे ऐसी आज्ञा दीजे जिसमें आपके मन में मेरी कर्तव्यता रुचे ॥ ४ ॥

सुनि हनुमंत बचन रघुबीर।
सत्य समीरसुअन सब लायक कह्यो राम रनधीर ॥ १ ॥
चाहिय बैद्य ईसआयसु धरि सीस कीस बलऐन।
आन्यो सदनसहित सोवत ही जौलौं पलकु परै न ॥ २ ॥
जिये कुँवर निसि मिलै मूलिका कीन्ही बिनय सुषेन।
उठ्यो कपीस सुमिरि सीतापति चलो सजीवन लेन ॥ ३ ॥
कालनेमि दलि बेगि बिलोक्यो द्रोनाचल जिय जानि।
देखी दिव्य ओषधी जहँतहँ जरी न परी पहिचानि ॥ ४ ॥
लियो उठाय कुधर कंदुक ज्यों बेग न जाइ बखानि।
ज्यों धाये गजराजउधारन सपदि सुदर्शनपानि ॥ ५ ॥
आनि पहार जुहारे प्रभु किय बैद्यराज उपचार।
करुनासिंधु बंधु भेट्यो मिटि गयो सकल दुखभार ॥ ६ ॥
मुदित भालु कपि कटक लह्यो जनु समरपयोनिधिपार।
बहुरि ठौर ही राखि महीधर आयो पवनकुमार ॥ ७ ॥

सेनसहित सेवकहि सराहत पुनि पुनि राम सुजान।
बरषि सुमन हिय हरषि प्रसंसत बिबुध बजाइ निसान ॥ ८ ॥
तुलसिदास सुधि पाइ निसाचर भये मनहुँ बिनु प्रान।
परी भोर ही रोर लंकगढ़ दई हाँक हनुमान ॥ ९ ॥

हनुमान्‌जी के वचन सुन श्रीरघुनाथजी बोले कि हे पवनसुत, तुम्हारे वचन साँचे हैं, और तुम सब लायक हो। ऐसे वचन श्रीरामरणधीर ने कहे ॥ १ ॥ हे हनुमान्, लंका में सुषेण वैद्य है। उसको लिवा लाओ। ईश जो श्रीरघुनाथजी, तिनकी आज्ञा माथे धरि बल-ऐन कीश जो हनुमान्‌जी, वह सोते ही में मन्दिर सहित वैद्य को उठा लाये। जब तक पलक न पड़े, इतने ही समय में ॥ २ ॥ श्रीलक्ष्मणजी को देख सुषेण वैद्य ने बिनती कर कहा कि रात्रि ही को सजीवन मूल मिले तो कुँवर जीवें। प्रभात होने न पावे। तभी कुशल है। यह सुन प्रभु ने आज्ञा दी। उसको शिर धर कपीश हनुमान्‌जी उठे। दुर्घटकार्य साइत कुसाइत विना विचारे तत्काल जाने में विघ्ननिवारण हेतु सब मंगल के मूल सीतापति को सुमिर कर सजीवन लाने को चले ॥ ३ ॥ मग में छलरूपधारी कालनेमि मिला। उसको मार शीघ्र चले। जाकर द्रोणगिरि देखा। हृदय से जाना कि यही द्रोणगिरि है। काहे से दिव्य ओषधी, जो अग्निसम तेजवाली हैं, जहाँ तहाँ बहुत-सी देखीं। परन्तु सजीवन मूल नहीं पहचान पाये कि कौन है ॥ ४ ॥ तब कुधर जो पर्वत, उसको गेंद के समान उठा लिया। कैसे वेग से चले जो बखाना नहीं जाता। उसकी उत्प्रेक्षा करते हैं मानों गजराज के उबारने को चक्रपाणि जो विष्णु सो चले। तद्वत् वेग से हनुमान्‌जी चले ॥ ५ ॥ द्रोणगिरि को लाकर

हनुमान्‌जी ने प्रभु को जोहारा। तब वैद्यराज ने उपचार कहे ओषधी पियाई। तुरंत ही लक्ष्मणजी उठ बैठे। तब करुणासिंधु श्रीरघुनाथजी ने बन्धु को भेंटा। आनन्द भया। यावत् दुःख का भार सो सब मिट गया॥ ६॥ उस अवसर में कपि भालु ऐसे आनन्द भये मानों समररूपी समुद्र का पार पाकर समर जीत गये। महीधर जो द्रोणाचल उसको हनुमान्‌जी जिस स्थान से लाये थे, वहीं रख आये। इत्यादि कर्त्तव्यता मान-रहित हनुमान्‌जी की देख॥ ७॥ कपि-सेना-सहित सुजान अर्थात् कृतज्ञ जो रघुनाथजी हैं, सो सेवक जो हनुमान् तिनकी बारम्बार सराहना करते हैं। बिबुध देवता हृदय से हर्षित हो फूल बरसाकर बाजा बजा कर प्रशंसा करते हैं॥ ८॥ गोसाईंजी कहते हैं कि लक्ष्मणजी के जीने की खबर पाकर निशाचर मानों बिना प्राण के भये। प्रभात ही गर्जकर हनुमान्‌जी ने ललकारा। सो हाँक सुन लंका में रोर कहे हाहाकार मच गया॥ ९॥

राग केदार

कौतुक ही कपि कुधर लियो है।
चल्यो नभ नाइ माथ रघुनाथहि सरिस न बेग बियो है॥ १॥
देख्यो जात जानि निसिचर बिनु फर सर हयो हियो है।
पर्‌यो कहि राम पवन राख्यो गिरि पुर तेहि तेज पियो है॥ २॥
जाइ भरत भरि अंक भेंटि निज जीवन दान दियो है।
दुख लघु लखन मरम घायल सुनि सुख बड़ो कोस जियो है॥ ३॥
आयसु इतहि स्वामि संकट उत परत न कछू कियो है।
तुलसिदास बिहर्‌यो अकास सो कैसेकै जात सियो है॥ ४॥

कौतुकमात्र में हनुमान्जी ने कुधर जो पर्वत उसको उठा लिया। श्रीरघुनाथजी को माथ नवाकर आकाशमार्ग से चले। ऐसे वेग से चले, जिसके सरिस बियो कहे दूसरा नहीं है वेगवाला ॥ १ ॥ अयोध्याजी पर आये। जिस समय शक्ति लगी उस अवसर में सुमित्राजी को स्वप्न भया कि दाहनी भुजा सर्प ने लील ली। उसका फल वशिष्ठजी से पूछा। उन्होंने कहा कि लषणलाल को कुछ अरिष्ट है। उसकी शांति हेतु यज्ञ करना चाहिये। इससे भरतजी के पास चलो, तो वह यज्ञ की रक्षा करें। नहीं तो निशाचर विघ्न करेंगे। भरतजी के पास आकर वशिष्ठजी यज्ञ करने लगे। तब भरतजी रक्षा हेतु धनुष बाण लेकर बैठे। इसी अवसर में हनुमान्जी आकाश में गरजे। तहाँ भरतजी ने निशाचर जान बिना गाँसी का बाण हृदय में हयो कहे मारा। उसके लगते ही रामराम कहकर हनुमान्जी गिर पड़े और पर्वत को पवनदेव ने रोक रक्खा, जिसमें अवधपुर दब न जाय। उसी पवन की सहायता से पर्वत गिरने का जो वेग, उस तेज को पुर पियो कहे पान कर गया। भाव यथा कोई चोट मारे, उसको कुछ न माने, सोई पी जाना है। यथा घोड़ा के कोड़ा मारा, सो पी गया ॥ २ ॥ हनुमान्जी के मुख से राम राम शब्द सुनते ही भरतजी ने जाना कि कोई सज्जन है। तहाँ हनुमान्जी को अंक में उठाकर भरतजी ने निज जीवन-दान दिया। भाव जो कपि जीवेंगे, तो हम जीवेंगे, नहीं हम न जीवेंगे, अथवा जीवदान देकर मृतक शरीर जिलाया, इससे हनुमान्जी उठे। तब समाचार कहे। उसको सुन दुःख, लघु भाई के मर्मस्थान में घाव सुन, दुःख भया, सो थोड़ा दुःख भया और कीश हनुमान् जिये इसका सुख बड़ा भया। इसमें अभिप्राय एक तो क्षत्रिय को सन्मुख घाव लेना धर्म, दूसरे प्रभु के साथ में, तीसरे

लक्ष्मणजी के जीने की औषध हनुमान्‌जी लिये जाते हैं। उसके भक्षणमात्र ही में जी उठेंगे, यह समझ लघु दुःख भया, और हनुमान्‌जी औषध लिये न जीते, तो सम्पूर्ण कार्य नष्ट हो जाता और उस अयश के पात्र भरतजी होते ॥ ३ ॥ इत कहे अयोध्याजी में चौदह वर्ष रहने की आज्ञा प्रभु की है। उत लंका में स्वामी को रण संकट है। तहाँ न जाते वने न रहते वने। इससे कुछ करते नहीं बनता। गोसाईंजी कहते हैं कि यथा आकाश फटे, उसको कोई कैसे सींवे, तथा भरतजी से कुछ करते नहीं वन पड़ता ॥ ४ ॥

भरत शत्रुसूदन बिलोकि कपि चित चकित भयो है।
राम लखन रन जीति अवध आये कैधौं मोहिं भ्रम
कैधौं काहू कपट ठयो है ॥ १ ॥
प्रेम पुलकि पहिचानि कै पदपदुम नवायो है।
कह्यो न परत जेहि भाँति दुहुँ भाइन
सनेह सों सो उर लाय लयो है ॥ २ ॥
समाचार कहि गहरु भो तेहि ताप तयो है।
कुधर सहित चढ़ो बिसिख वेगि पठवौं सुनि
हरि हिय गर्भ गूढ़ ऊपयो है ॥ ३ ॥
तीर ते उतरि जस कह्यो चहै गुनगनन जयो है।
धन्य भरत भरत करत भयो मगन
मौन रह्यो मन अनुराग रयो है ॥ ४ ॥
यह जलनिधि खन्यो मथ्यो लंघ्यो बाँधो अचयो है।

तुलसिदास रघुबीर बंधु महिमा को सिंधु
तरि को कपि पार गयो है ॥ ५ ॥

भरत शत्रुघ्न को देख कपि हनुमान्‌जी का चित्त चकित हुआ है। यह भ्रम भया कि रणजीति श्रीराम लक्ष्मण अवध को आये। किधौं मुझको भ्रम भया है, किधौं किसी ने कपट ठयो कहे ठाना है। भाव कपट कर राम लक्ष्मण तो नहीं कोई बना है॥ १॥ तब धीरज धर पहचाना कि ये तो श्रीभरत शत्रुघ्न अयोध्याजी में हैं। यह जान प्रेम से पुलकित हो चरणकमलों में नमस्कार किया। हनुमानजीको श्रीभरत शत्रुघ्नजी दोनों भाइयों ने सनेह सहित जिस भाँति से उर में लगा लिया सो सनेह कहते नहीं बनता॥ २॥ तब कुशल पूछने पर हनुमान्‌जी ने युद्ध में शक्ति लगने के समाचार कहकर कहा कि मुझको औषध ले जाने को विलम्ब भई। उस ताप से भरतजी तप उठते भये। तब भरतजी ने कहा कि पर्वत सहित हमारे बाण पर चढ़ो। जहाँ प्रभु हैं, तहाँ तुमको जल्दी भेज दूँ। यह सुन हनुमान्‌जी के हृदय में भारी अहंकार भया कि हमारे भार से कैसे बाण चलेगा, अथवा हनुमान्‌जी के हृदय में गूढ़ कहे गुप्त जो प्रथमहिं बल भाषा था, उसके निवारण हेतु प्रभु ने भरतजी के द्वारा मिटाने का उपाय बाँध दिया॥ ३॥ परीक्षा लेने को बाण पर चढ़े। भरतजी को कुछ भार न समझ पड़ा। चलाने का इरादा कियो तब हनुमान्‌जी ने बाण से उतर प्रभाव समझ भरतजी का यश कहने का इरादा किया, परन्तु भरतजी के गुण-गण ने जीत लिया। इससे कहने की सामर्थ्य न हो सकी। हनुमान्‌जी भरतजी को धन्य धन्य कहकर रह गये। उनके अनुराग में मन रँग गया। उस आनन्द में मग्न हो मौन रहे॥ ४॥ यह जो समुद्र है,

उसको सगर के पुत्रों ने खोदा, देवतों व दैत्यों ने मिलकर मथा, हनुमान्जी ने नाँघा। श्रीरघुनाथजी ने बाँधा। गोसाईंजी कहते हैं कि भरतजी की महिमा का जो समुद्र है, उसको कौन ऐसा कवि है, जो पार जा सके। यथा भरद्वाज--भरत धन्य तुम जग जस ठयऊ। अस कहि प्रेममगन मुनि भयऊ॥ पुनः वशिष्ठ--भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति तीर ठाढ़ि अबला सी॥ पुनः विदेह--भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानत राम न सकत बखानी॥ ५॥

होतो नहिं जो जग जनम भरत को।
तौ कपि कहत कृपानधार मग चलि आचरन चरत को॥ १॥
धीरज धरम धरनिधर धुरहुते गुरु धुर धरनि धरत को।
सब सद्गुन सनमानि आनि उर अघ औगुन निदरत को॥ २॥
सिवहु न सुगम सनेह रामपद सुजननि सुलभ करत को।
सजि निज जस सुरतरु तुलसी कहु अभिमतफरनि फरतको॥ ३॥

कपि हनुमान्जी यह बात कहते हैं कि जो जग में भरतजी का जन्म न होता, तो उत्तम नेह का मार्ग कृपाण की धार के समान जो है उस पर चढ़कर उस प्रेमानन्यता व्रत के आचरण को कौन कर सकता। सो आचरण आगे कहते हैं॥ १॥ धरनिधर जो पर्वत है, उसके धुर कहे भार उससे भी गुरु कहे गरू जो धीरज अरु सेवक धर्म का धुर कहे भार है, उसकी धुरी का भार धरनि कहे भूमि में कौन धारण करता। भाव पर्वत से भारी जो धीरज धर्म का भार उसको भरत विना भूमि में और कौन है, जो धारण करता। और सद्गुण कहे ज्ञान, वैराग्य, क्षमा, दया, शांति, सन्तोष, सत्य, भक्ति आदि तिनको सन्मानित कर हृदय

में लाकर अघ अरु अवगुण कहे काम, क्रोध, लोभ, मद, अहङ्कार, असत्य, तनुपोषकता इत्यादि तिनको निदरत निरादर करता। भाव भरत के बिना और कौन अवगुण त्याग कर गुण ग्रहण करता ॥ २ ॥ जो सनेह शिवजी को नहीं सुलभ है, अर्थात् खान-पान शयन केलि एक संग, सदा माधुरी अवलोकनि इत्यादि श्रीरघुनाथजी के चरणों में सनेह भरत के बिना सज्जनों को कौन सुलभ करता। भाव भरतजी का स्नेह स्मरण कर, दशा समझ, कौन ऐसा सज्जन है, जिसकी प्रीति प्रभुपद में नहीं होती। भरतजी अपना यशरूप कल्पवृक्ष न सिरजते, तो तुलसी को वांछित फल कौन फलता ? ॥ ३ ॥

सुनि रन घायल लखन परे हैं।
स्वामिकाज संग्राम सुभट सों लोहे ललकि लरे हैं ॥ १ ॥
सूवन सोक सन्तोष सुमित्रहि रघुपति भगति बरे हैं।
छिनछिन गात सुखात छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं ॥ २ ॥
कपि सों कहत सुभाय अम्ब के अम्बक अम्बु भरे हैं।
रघुनन्दन बिनु बन्धु कुऔसर जद्यपि धनु दुसरे हैं ॥ ३ ॥
तात जाहु कपि सँग रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैत पूरे जनु बिधिबस सुढर ढरे हैं ॥ ४ ॥
अम्ब अनुज गति लखि पवनज भरतादि गलानि गरे हैं।
तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं ॥ ५ ॥

स्वामी श्रीरघुनाथजी के कार्य हेतु संग्राम में सुभट जो मेघनाद है, उससे ललकार कर लोह से लड़े हैं। उस रण में लक्ष्मणलाल

घायल पड़े हैं, यह सुन ॥१॥ तहाँ पुत्र का तो शोक है सुमित्राजी को, परंतु लक्ष्मणजी भक्ति को वरे हैं, भाव प्रभु की भक्ति अंगीकार किये हैं, इससे संतोष है। इसी हेतु जब पुत्र के घायल होने की सुध करती हैं, तब उस क्षण में गात सूख जाते हैं, और जब भक्ति में रत पुत्र को विचारती हैं, तो उस क्षण में सुमित्राजी का गात हुलस कर हरित होता है ॥ २॥ अम्ब सुमित्राजी के अम्बक नेत्रों में अम्बु जल भर आया। वह हनुमान्‌जी से सहज में कहती हैं कि कुअवसर में रघुनन्दन बिना भाई के भये, यद्यपि धनु-दूसरे कहे धनुष दूसरा अर्थात् साथी है ॥ ३॥ सुमित्राजी कहती हैं, हे तात रिपुसूदन, तुम कपि के साथ रघुनाथजी के पास जाओ। यह सुन शत्रुघ्न उठ हाथ जोर खड़े भये। हृदय में आनन्द, उससे तनु प्रेम से पुलकित भया। कैसे प्रसन्न भये मानों विधिवश पूरे दाँव पर सुढर हो पाँसा पड़े। प्रभु के निकट जाना पूरा पैंत कहे दाँव है। माता की आज्ञा विधिवश अनायास प्राप्त है ॥ ४ ॥ अम्ब सुमित्राजी, अनुज शत्रुघ्न, तिनकी गति देख हनुमान्, भरतादि सब ग्लानि में गलते भये। गोसाईंजी कहते हैं कि उस अवसर में करुणा में बेसुध सुमित्राजी को देख सब समझा कर सचेत करते भये ॥ ५ ॥

विनय सुनाइ बीर परि पाँय।
कहौं काह कपीस तुम सुचि सुमति सुहृद सुभाय ॥ १ ॥
स्वामिसंकट हेतु हौं जउ जननि जन्मौ जाय।
समय पाय कहाय सेवक घट्यो तौन सहाय ॥ २ ॥
कहत सिथिल सनेह भोजन धीर घायल घाय।
भरतगति लखि मातु सब रहिं ज्यों गुड़ी बिन बाय ॥ ३ ॥

भेंट कहि कहिबो कह्यो यों कठिनमानस माय।
लाल लोने लखन सहित सुललित लागत नाय॥ ४॥
देखि बन्धुसनेह अम्ब सुभाय लखन कुठाय।
तपत तुलसी तरनि त्रासक यहि न एतिहु ताय॥ ५॥

भरतजी कहते हैं कि हे हनुमान्‌जी, प्रभु के पैरों में पड़कर हमारी बिनती सुनाना। हे कपीश, तुम स्वाभाविक सुन्दर, पवित्र मतिवाले, सुहृद कहे प्रिय मित्र हो। तुमसे कहाँ तक कहूँ॥ १॥ स्वामी जो रघुनाथजी, तिनके केवल संकट हेतु हमको हमारी माता ने जन्मा है। जाये कहे वृथा मैंने जड़ जग में जन्म पाया है। काहे से सेवक कहाकर समय पर सहाय तो न घटा। भाव समय पर सहाय न कर सका॥ २॥ वार्ता करते में भरतजी सनेह में शिथिल भये। यथा धीरजवाला घाव से घायल हो। प्रभु वियोग-पीड़ित भरतजी की गति देख माता सब कैसी रहीं, यथा विना वायु की पतंग वैसी थकित भई॥ ३॥ श्रीकौशल्याजी कहती हैं कि हमारी भेंट कहकर ऐसा कहना कि कठिन मानस कठोर मन की तुम्हारी माता ने यों कहा है कि हे लाल रघुनन्दन, लोने लषण सहित तुम्हारा नाम ललित लगता है। यथा राम लक्ष्मण। अथवा श्याम के पास गोरा। अथवा स्वामि अनुकूल सेवक। यथा शृङ्गार के पास प्रेम तैसे लक्ष्मण सहित श्रीराम शोभित हैं। इससे जो अपनी शोभा चहो, तो लक्ष्मण सहित आना॥ ४॥ बन्धु जो भरत शत्रुघ्न तिनका सनेह देख, अम्ब कौशल्या तिनका सुभाय देख, लक्ष्मणजी को कुठावँ में घायल जान इन नये तीनों तापों में तरणि सूर्य के त्रासक हनुमान्‌जी तप्त हो रहे हैं॥ ५॥

हृदय घाव मेरे पीर रघुबीरै ।
पाइ सजीवन जागि कहत यों प्रेमपुलकि बिसरै सरीरै ॥ १ ॥
मोहिं कहा पूछत पुनि पुनि जैसे पाठअरथ चरचा करै ।
सोभा सुख छिति लाहु भूप कहँ केवल कान्ति मोलही हीरै ॥ २ ॥
तुलसी सुनि सौमित्रिबचन सब धरि न सकत धीरौ धीरै ।
उपमा राम लखन कि प्रीति की क्यों दीजै छीरै नीरै ॥ ३ ॥

जब सजीवन खिलाने पर लक्ष्मणजी जाग उठे, तब सब घाव के पीर का हाल पूछने लगे। उसको सुन प्रेम से पुलकित देह की सुध बिसराये लक्ष्मणजी कहते हैं—घाव देखना हो तो हमारे हृदय में देखो, पीड़ा पूछना हो तो रघुनाथजी से पूछो ॥ १ ॥ लक्ष्मणलाल कहते हैं कि हमसे बार बार क्या पूछते हो । यथा पाठ के अर्थ की चरचा कोई तोते से पूछे तो वह उसको क्या जाने। यथा हीरा की शोभा का सुख गये की हानि, मिले का लाभ, यह सब राजा को होना है, और हीरा को तो कांति व मोल कहे क़ीमत भर है, तैसे हमको जानो ॥ २ ॥ गोसाईंजी कहते हैं कि लक्ष्मणजी के वचन सुन सब जो धीरजवाले हैं तिनका भी धीरज धरा नहीं रह सकता। सो श्रीराम लक्ष्मण की प्रीति की उपमा क्षीर नीर की कैसे दीजिए। भाव दूध पानी खटाई से हंस की चोंच से बिलगा जाता है, इससे सम नहीं ॥ ३ ॥

राग कान्हरा

राजत राम काम सत सुन्दर ।
रिपु रन जीति अनुज सँग सोभित
फेरत चाप बिसिख बनरुहकर ॥ १ ॥

स्याम सरीर रुचिर समसीकर
सोनितकनि बिच बीच मनोहर ।
जनु खद्योत निकर हरिहित गन
भ्राजत मरकत सैल सिखर पर ॥ २ ॥
घायल बीर बिराजत चहुँ दिसि
हरषित सकल रीछ अरु बनचर ।
कुसुमित किंसुक तरु समूह महँ
तरुन तमाल बिसाल बिटपबर ॥ ३ ॥
राजिवनयन बिलोकि कृपा करि
किये अभय मुनि नाग बिबुध नर ।
तुलसिदास यह रूप अनूपम
हृदसरोज बसि दुसह बिपति हर ॥ ४ ॥

रिपु रावणादि को जीतकर लक्ष्मणजी सहित शोभित, कर-कमलों में धनुषबाण फेरते । उस अवसर में सैकड़ों काम की शोभा सम श्रीरघुनाथजी विराजमान हैं ॥ १ ॥ श्यामगात पर श्रमसीकर स्वेदबिंदु शोभित हैं । उसके बीच बीच शोणित के बिंदु सुन्दर शोभित हैं । मानो मरकतगिरि-शिखर पर समूह खद्योतों के बीच बीच हरिहित हरि कहे इन्द्र उसके हित इन्द्र-वधू बीरबहूटी के गण शोभित हैं । अथवा हरिहित मुनि तिनके गण लाल मुनिया पक्षी शोभित हैं अथवा हरि सूर्य उसके हित भौम खद्योतों के मध्य समूह राजते हैं या हरिहित चन्द्रमा उसके गण नक्षत्र राजते हैं ॥ २ ॥ वानर, रीछ आदि बहुत वीर घायल प्रभु की विजय से हर्षसहित चारों ओर विराजते हैं । उनके बीच

में प्रभु कैसे शोभित होते हैं, मानों फूले पलाश वृक्षों के मध्य नवीन सुन्दर तमालवृक्ष शोभित हैं ॥ ३ ॥ उन घायल वीरों को देख राजीवनयन श्रीरघुनाथजी ने कृपा करके, इंद्र द्वारा अमृत बरसाकर अभय किया, अथवा स्वर्गवासी देव भूमिवासी नर पातालवासी नाग इत्यादि और मुनियों के सहित सब पर कृपा कर अभय किया । भाव रावण का नाश किया । इससे सुजन-पालक, दुष्टजनघायक इस समय का अनूप रूप है । गोसाईंजी कहते हैं कि सोई उस समय का रूप हमारे हृदयकमल में वास कर दुसह विपत्ति जन्ममरण को दुष्ट जानि हर लो और भक्त को अभय करो ॥ ४ ॥

राग आसावरी

अवधि आजु किधौं औरौ दिन ह्वै हैं ॥
चढ़ि धवरहर बिलोकि दखिन दिसि
बूझ धौं पथिक कहाँ ते आये वै हैं ॥ १ ॥
बहुरि बिचारि हारि हिय सोचत
पुलक गात लागे लोचन च्वैहैं ।
निसिबासरन वर्ष पुरवैगो बिधि
मेरे तहाँ कर्म कठिन कृत कैहैं ॥ २ ॥
बन रघुबीर मातु गृह जीवति
निलज प्रान सुनि सनि सुख स्वैहैं ।
तुलसिदास मोसों कठोर चित
कुलिस साल भञ्जनि को ह्वैहैं ॥ ३ ॥

कौशल्याजी कहती हैं कि रघुनन्दन के आने की अवधि आज ही है कि और दिन होगा। दक्षिण दिशा को देख धवरहरे पर चढ़ सखी से कहती हैं कि देख तो वे पथिक कहाँ से आये। उनसे पूछो तो, कहो, रघुनन्दन से भेंट तो नहीं भई ॥ १ ॥ उस अवधि को विचारकर अर्थात् अभी प्रभु के आने का दिन नहीं आया, यह जान हृदय में हार शोच करती हैं, इससे नेत्रों में जल टपकने लगा, गात प्रेम से पुलकि आया। दुःख में अधीर हो कहती हैं कि जहाँ विधाता हैं वहाँ हमारे कृत कहे कीन्हें कठिन कुत्सित कर्म हैं, तिन के वश हो विधाता अपने दिनों से चौदह वर्ष पूरे करेगा, यह प्रेम की आतुरता है ॥ २ ॥ श्रीरघुनन्दन तो वनवास-दुःख में हैं, उनकी माता हम गृह में जीती हैं। वन का चरित सुन-सुन हमारे निर्लज्ज प्राण सुख से सोवैंगे। इससे मुझसे कठोर चित्त कुलिश की साल कहे साँखू उसकी भंजनि नाशकर्त्ता कुल्हाड़ी वज्र की वह भी हमसे कठोर नहीं हो सकती अथवा साल जो छेद श्रवण नासिका मुखादि उसको भंजनि प्रतिमा वज्र की वह भी हम सरीखी कठोर नहीं है ॥ ३ ॥

आली अब रामलखन कित ह्वैहैं।
चित्रकूट तजौ तबते न लही सुधि बधूसमेत कुसल सुत द्वै हैं ॥ १ ॥
बारि बयारि बिषम हिम आतप सहि बिनु बसन भूमितल स्वैहैं।
कंदमूल फल फूल असन बन भोजन समय मिलत कैसे ह्वैहैं २
जिनहिं बिलोकि सोचिहैं लताद्रुमखगमृगमुनिलोचनच्वैहैं।
तुलसिदास तिनकी जननी हौं मोसों निठुरचित औरो कहुँ ह्वैहैं ३

श्रीकौशल्याजी कहती हैं कि हे आली श्रीरघुनन्दन-लषन अब कहाँ होंगे? जब से चित्रकूट को छोड़ा तब से कुशल नहीं पाई कि

पुत्रवधू'सहित दोनों पुत्र कुशलसहित हैं। हनुमान् जी से सुना था सो व्याकुलता में भूल गई ॥ १ ॥ वर्षा का जल हिम ऋतु की विषम बयार से जाड़ा-ग्रीष्म का घाम आदि सब सहेंगे, विना वस्त्र भूमि में शयन करेंगे, वन में कन्दमूल फलफूल भोजन, सो भी भोजन समय पर कैसे मिलता होगा ॥ २ ॥ जिन रघुनन्दन को देख वृक्ष-वेलो जो जड़ वे भी शोच करिहैं, पक्षी व मृग और मुनियों के नेत्रों से प्रेम के आँसू बहेंगे। उनकी माता मैं हूँ। सो मुझसे कठोरचित्त वाली और कौन होगी ॥ ३ ॥

राग सोरठ

बैठी सगुन मनावत माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता ॥ १ ॥
दूध भात की दोनी देहौं सोने चोंच मढ़ैहौं।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम लखन उर लैहौं ॥ २ ॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक बोलाइ पायँ परि पूछत प्रेममगन मृदु बानी ॥ ३ ॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट ते समाचार लै आयो।
प्रभुआगमन सुनत तुलसी मनु मीन मरत जल पायो ॥ ४ ॥

शुभ दिशा पर काग बोलता है, उसको देख माता सगुन जानि मनावती हैं—हे काग, साँची बात कहो। मेरे बालक कब कुशल से आवेंगे ॥ १ ॥ हे काग, दूध-भात की दोनी तुमको खाने को दूँगी और सोने से चोंच मढ़ाऊँगी, जब जानकी सहित राम-लषण को देख हृदय में लगाऊँगी ॥ २ ॥ अवधि कही वादा नगीच जान माता जी में आतुर हो अत्यन्त अकुला उठीं। इससे ज्योतिषी बुला पैरों में पड़ प्रेम में मग्न कोमल वाणी से

पूछती हैं कि कृपा करके बताओ, कब मेरे पुत्र कुशल से आवेंगे ? ॥ ३ ॥ इसी अवसर में भरतजी के पास से प्रभु के आगमन का समाचार किसी ने आकर कहा। उसको सुनते ही गोसाईंजी कहते हैं कि माता कौशल्यादि कैसे जी उठीं, मानों मीन सूख भूमि में मरती थी, उसी समय किसी ने उसे जल में डाल दिया ॥ ४ ॥

राग गौरी

छेमकरी बलि बोलि सुबानी।
कुसल छेम सिय राम लखन कब
ऐहैं अवधि अवध रजधानी ॥ १ ॥
ससि मुख कुंकुम बरनि सुलोचनि
मोचनि सोचनि बेद बखानी।
देबि दया करि देहि दरस फल
जोरि पानि बिनवहिं सब रानी ॥ २ ॥
सुभ सनेहमय बचन निकट ह्वै
मंजुल मंडल कै मड़रानी।
सुभ मंगल आनन्द गगन धुनि
अकनि अकनि उर जरनि जुड़ानी ॥ ३ ॥
फरकन लगे सुअंग बिदिसि दिसि
मन प्रसन्न दुख दसा सिरानी।
करहिं प्रनाम सप्रेम पुलकि तन
मानि बिबिध बलि सगुन सयानी ॥ ४ ॥

तेहि अवसर हनुमान भरत सों
कही सकल कल्यान कहानी।
तुलसिदास सोइ चाह सजीवनि
बिषम बियोग बिथा बड़ि भानी ॥ ५ ॥

श्वेत मुख की चील्ह को शुभ स्थान पर बैठ बोलती देख कौशल्याजी कहती हैं, हे क्षेमकरी, मैं बलि जाऊँ। सुन्दर वाणी बोल। अवधि जो चौदह वर्ष की उसके अन्तदिन अवध राजधानी को जानकी सहित रामलषण कुशलसहित कब आवेंगे, सो बोल ॥१॥ हे चन्द्रमुखी, अरुणवरणी, सुन्दरलोचनी, शोचनि जो शोच उसको मोचनहारी हो, ऐसा तुमको वेद बखानते हैं। हे देवि, दया करके अपने दर्शन का फल दो। भाव रघुनन्दन आवें ऐसी बिनती हाथ जोड़कर सब रानी कहती हैं ॥ २ ॥ ऐसे सनेहमय वचन रानियों के सुनकर निकट होकर सुन्दरमण्डल देकर मड़रानी और शुभमंगलमय आनन्दमय वचन गगन में बोलीं। निकट होने से यह जनाया कि प्रभु निकट आ गये। आकाश में उड़ने से यह जनाया कि आकाशमार्ग में बिमान पर आवत हैं। मण्डल दे मड़राने में यह जनाया कि त्रैलोक्यविजयी मण्डलेश्वर रावण को जीत मण्डल के विषय में यश प्रकाश हुआ। मधुर वचन बोलने में यह जनाया कि लषणलाल शुभक्षेम हैं और जानकीजी मंगलपूर्वक प्रभु के वामभाग में विराजमान हैं और रघुनाथजी सानन्द हैं। इसका हेतु लषण का घायल होना जानकी का हरण हनुमान्‌जी से सुना था। इससे लषण शुभक्षेम जानकी मंगलमय प्रभु निकट और रावण को जीत देवतों को अभय किया। इससे प्रभु आनन्द

ऐसी शुभमंगल आनन्दमय धुनि क्षेमकरी की गगन में सुन उसका हेतु समझ कौशल्यादि माताओं की उर की जलन सो जुड़ा गई ॥ ३ ॥ उस अवसर में वाम भुजा, वाम नेत्रादि सब अंग फड़कने लगे। दिशा (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर), विदिशा (आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान), आकाश और भूमि इत्यादि सब दिशाओं में शुभ सगुन होने लगे। तहाँ दक्षिण को मुख किये कौशल्याजी बैठी हैं; पूर्व दिशा में बायें काग बोलता है; आग्नेय से सौभागिनी स्त्री बालकों को लिये आती हैं; दक्षिणदिशा से ग्वालिन दधि लिये आती हैं; नैर्ऋत्य में मृगगण घूम-घूम जाते हैं ; पश्चिम में क्षेमकरी बोल रही है; वायव्य में नकुल दरस दे रहा है; उत्तर में सरयूजल के घट लिये सौभागिनी चली आती हैं; ईशान से कोविदजन पुस्तक लिये चले आते हैं। आकाश में निर्मल शीतल मन्द सुगन्धित पवन चल रही है। पृथ्वी हरित हो रही है। उसको विचार मन प्रसन्न हुआ। प्रथम दुःख की जो दशा, यथा विशाखा नक्षत्र पर केतु उदय होय तो अयोध्या के राज्य का नाश करे ॥ प्रमाणं मयूरचित्रे ॥ यस्मिन्नृक्षे स्थितः केतुराकाशे संप्रदृश्यते । तद्दिग्व्यूहान्समाहंति योऽत्र शेषो वदामि तम् ॥ १ ॥ कुरुक्षेत्राधिपं त्वाष्ट्रे हस्ते दण्डकनायकम् ॥ वाते कांबोजकाश्मीरं द्विदैवे कोसलाधिपम् ॥ २ ॥ सो दुःख की दशा मिट गई। सयानी जो कौशल्यादि रानी हैं, वे शुभ गुणियों को देख प्रेमसहित पुलकित तनु से नमस्कार करके निर्विघ्नता हेतु देवों की अनेक पूजा बलिदान मानती हैं ॥ ४ ॥ उसी अवसर में भरतजी से हनुमान्‌जी ने कल्याण की सकल कहानी अर्थात् रिपुरन जीति सुजस सुर गावत । सीता अनुज सहित प्रभु आवत इत्यादि इतिहास कहा। गोसाईंजी कहते हैं कि सोई जो कहानी भरतजी की मन की चाह को जिलानेवाली सजीवन सो जनित कहे उत्पन्न जो

व्यथा उसको भानी अर्थात् चाह सजीवन ने वियोग की व्यथा का नाश कर दिया ॥ ५ ॥

राग धनाश्री

सुनियत सागर सेतु बँधायो ।
कोसलपति की कुसल सकल सुधि
कोउ इक दूत भरत पहिं ल्यायो ॥ १ ॥
बधि बिराध त्रिसिरा खर दूषन
सूर्पनखा को रूप नसायो ।
हति कबन्ध बलअंधबालि दलि
कृपासिन्धु सुग्रीव बसायो ॥ २ ॥
सरनागत अपनाइ बिभीखन
रावन सकुल समूह बहायो ।
बिबुधसमाज निवाजि बाँह दै
बंदि छोर बर बिरद कहायो ॥ ३ ॥
एक एक सों समाचार सुनि
नगरलोग जहँ तहँ सब धायो ।
घनधुनि अकनि मुदित मयूर ज्यों
बूड़त जलधि पार सो पायो ॥ ४ ॥
अवधि आजु यों कहत परस्पर
बेगि बिमान निकट पुर आयो ।

उतरि अनुज अनुगन समेत प्रभु
गुरु द्विज गन चरनन सिर नायो ॥ ५ ॥
जो जेहि जोगि राम तेहि बिधि मिलि
सबके मन अति मोद बढ़ायो ।
भेंटी मातु भरत भरतानुज
क्यों कहि प्रेम अमित अनमायो ॥ ६ ॥
तेही दिन मुनिबृन्द अनन्दित
तुरित तिलक को साज सजायो ।
महाराज रघुबंस तिलक को
सादर तुलसिदास गुन गायो ॥ ७ ॥

सब समाचार सुन पुरवासी परस्पर वार्ता करते हैं। तहाँ प्रथम के चरित्र छोड़ प्रथम सेतु बाँधना इससे कहा कि अपूर्व आश्चर्य की बात है। सुनते हैं, प्रभु ने समुद्र में सेतु बँधाया है। कोशलपति श्रीरघुनाथजी के कुशल का सब समाचार कोई एक दूत भरतजी के पास लाया है ॥ १ ॥ कौन समाचार, सो कहते हैं चित्रकूट से चलि विराध को मारा, पुनः पंचवटी में सूर्पणखा की नासिका-कान काटि कुरूप किया। पीछे खर, दूषण, त्रिशिरा का नाश किया। वहाँ से आगे कबन्ध को मारा। बल से अन्ध महाबली बालि को मार कृपा के समुद्र रघुनाथजी ने दीन जानि सुग्रीव को बसाया राज्य दिया ॥ २ ॥ समुद्रतट विभीषण शरण में आया। उसको अपनाकर रावण को कुलसहित मूल बहाया, भात्र वंशसहित दुष्टों को मिटा दिया। देवतों के समाज को अभय बाँह दे निवाजा, इससे श्रेष्ठ बानावाले बन्दी छोर

कहाये ॥ ३ ॥ ऐसे समाचार एक-एक ते सुन जो जहाँ था सो वहीं से प्रभु के दर्शन हेतु पुरवासी सब धाये। कैसे आनंद भयो यथा मेघ की धुनि सुनि मयूर को आनन्द हो। व्याकुलता कैसे मिटी मानों समुद्र में बूड़ते समय पार पाया ॥ ४ ॥ प्रभु के आने की अवधि का दिन आज ही है, यह परस्पर वार्त्ता करते थे, उसी समय विमान शीघ्र ही पुर के निकट आया। वहाँ से उतर अनुग जो सेवक हनुमानादि अनुज लक्ष्मण तिन सहित गुरु जो वशिष्ठ द्विजगण जो अपर ब्राह्मण हैं, तिनके पाँयन को प्रभु माथ नवावते भये ॥ ५ ॥ जो जिस योग्य था उसे उसी विधि प्रभु ने मिलकर सबके मन में आनन्द बढ़ाया। मातन को भेंटे, शत्रुहनसहित भरतजी को भेंटे। उस समय का प्रेम कैसे कहूँ, अनमायो कहे हृदय में नहीं समाता है ॥ ६ ॥ उसी दिन मुनिवृन्दसहित वशिष्ठजी ने आनन्द से सब तिलक का साज सजाकर प्रभु को राजसिंहासन पर बैठाया। महाराज रघुवंश के तिलक जो श्रीरघुनाथजी तिनके गुणानुवाद आदर सहित तुलसिदास ने गाये। सेतु बाँधने की शक्ति गुण है। दुष्ट मारने का वीर्य गुण है। सुग्रीव पर कृपा गुण है। विभीषण पर शरण-पाल गुण है। लोकों को अभय करने में प्रताप गुण है। वशिष्ठादि के मिलने में मर्यादापुरुषोत्तम गुण है। पुरवासियों के मिलने में सौशील सौहृद गुण है। भरतजी सों मिलने में अनुराग गुण है। इत्यादि समूह गुण हैं ॥ ७ ॥

राग जैतश्री

रन जीति राम राउ आये।
सानुज सदल ससीय कुसल आजु अवध आनंद वधाये ॥ १ ॥
अरिपुर जारि उजारि मारि रिपु बिबुध सुबास बसाये।

धरनि धेनु महिदेव साधु सबके सब सोच नसाये ॥ २ ॥
दई लंक थिर थप्यो बिभीषन बचन पियूष पियाये ।
सुधा सींचि कपि कृपा नगर नरनारि निहारि जियाये ॥ ३ ॥
मिलि गुरु बंधु मातु जन परिजन भये सकल मनभाये ।
दरस हरष दसचारि बरस के दुख पल में बिसराये ॥ ४ ॥
बोलि सचिव सुचि सोधि सुदिन मुनि मंगलसाज सजाये ।
महाराज अभिषेक बरषि सुर सुमन निसान बजाये ॥ ५ ॥
लै लै भेंट नृप अहिप लोकपति अति सनेह सिर नाये ।
पूजि प्रीति पहिचानि आदरे राम अधिक अपनाये ॥ ६ ॥
दान मान सनमानि जानि रुचि जाचकजन पहिराये ।
गये सोकसर सूखि मोदसरितासमुद्र गहिराये ॥ ७ ॥
प्रभुप्रतापरबि अहित अमंगल अघ उलूक तम ताये ।
कियो बिसोक हित कोक कोकनद लोक सुजस सुभ छाये ॥ ८ ॥
रामराज कुलकाज सुमंगल सबन सबै सुख पाये ।
देहिं असीस भूमिसुर प्रमुदित प्रजा प्रमोद बढ़ाये ॥ ९ ॥
आश्रम धर्म बिभाग बेदपथ पावन लोग चलाये ।
धरमनिरत सियारामचरनरत मनोंरामसिय जाये ॥१०॥
कामधेनु महि बिटप कामतरु कोउ बिधि बामन लाये ।
ते तब अब तुलसी तेउ जिन हित सहित राम गुन गाये ॥११॥

श्रीजनकनंदिनी लषणलाल कपिसेना सहित कुशलपूर्वक श्रीमहाराज राजाधिराज श्रीकोशलेंद्रकुमार आज आये । इससे

श्रीअयोध्याजी में आनन्द बधावने बजते हैं ॥१॥ अरिपुर लंका को जला रिपु रावण को मार देवतों को आनन्द से बसाया। पृथ्वी के गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु आदि के सब तरह के सब शोच नशावत भये ॥ २ ॥ विभीषण को लंका का राज्य देकर स्थिर करिकै थाप्यो, भाव कल्प भर यहाँ अचल राज्य कर फिर हमारे धाम को आयो, ऐसे वचनरूप अमृत पियाये । सुधा से सींच कपि-भालुओं को जिलाया । कृपा की नजर हेरि पुर के नरनारियों को जिलाया । जन सेवक परिजन परिवार के लोग मातु कौशल्यादि बंधु भरतादि गुरु वशिष्ठ तिनको प्रभु मिले । मन-भाया भया सबका, क्योंकि प्रभु के दर्शन का जो है सुख उससे चौदह वर्ष के वियोग के दुःख को एक पल भर में बिसरा दिया। अभिप्राय यह कि जैसे कोई पदार्थ जाता रहा तो उसका दुःख तब तक है, जब तक वह मिलता नहीं । जहाँ मिला तहाँ दुःख गया ॥ ४ ॥ सुमंतादि जे षोड़श मंत्री पवित्र हैं, तिनको बुलाकर वशिष्ठजी सुन्दर दिन शोध मंगल के साज अर्थात् मंगल के जो चालीस अंग हैं, यथा—विप्र १ चौक २ कन्या ३ ध्वजा ४ पताका ५ कलश ६ वंदनवार ७ केतु ८ तोरण ९ चमर १० गान ११ वाद्य १२ नृत्य १३ दधि १४ दूर्वा १५ हरदी १६ अक्षत १७ चँदवा १८ दर्पण १९ सप्तान्न २० दीप २१ सवत्सधेनु २२ चित्रान २३ चतुरंगसेना २४ छत्र २५ व्यजन २६ घृत २७ वेदध्वनि २८ वंदी २९ मागध ३० सूत ३१ पंचपल्लव ३२ अंकुरारोपण, जिसमें यव ३३ फूल ३४ फल ३५ केला ३६ वारमुख्या ३७ ताम्बूल ३८ धूप ३९ मीन ४० प्रमाणं यथा मंगलविधाने ॥ विप्राद्यं मणिचौकचारु-कलशं दीपान्नसत्पल्लवं रंभावंदनवारकेतुचमरं दूर्वांकुरारोपणम्। कन्यातोर्णवितानदर्पणध्वजाताम्बूलदध्यक्षतं छत्रं रोचनगानवाद्य-व्यजनं पुष्पाज्यधूपांगनाः ॥ १ ॥ चित्रामधेनुश्चतुरंगसेना पौराणि-

कौमागधवंदिगायकाः । पताकयुक्तं तु फलादिमीनाखवेदयुक्तं शुभमंगलांगाः ॥ २ ॥ इत्यादि मंगलसाज सजाकर महाराज रघुनाथजी को राजसिंहासन पर बिठाया । उस समय में अभिषेक का उत्सव देख देवतों ने निशान बजाये ॥ ५ ॥ नृप भूमि के राजा, अहिप अनन्तादि नागों के राजा, लोकपति इन्द्र वरुण कुवेरादि, ये सब भेंट ले ले आये। अत्यंत स्नेहपूर्वक श्रीरघुनाथजी को माथ नाय पूजत भये । जिस भाँति की प्रीति से जो आया, उसकी वैसी ही प्रीति पहिचान उससे अधिक आदर-सम्मान कर श्रीरघुनाथजी ने अपना लिया । भाव शोभा सुशीतलता गुण से सबके चित्त अपने में लगा लिये ॥ ६ ॥ दान दिया, मान कहे आदर सहित, सम्मान कहे सत्मान अर्थात् हृदय से प्रीतिपूर्वक सत्कार कर। भाव, जैसी रुचि उसके हृदय की जानी याचकों को पहिरावत भये। श्रीरघुनाथजी के दान और कृपा से शोकरूपी तड़ाग सूख गया, और मोदरूपी सरिता नदी ते गहिराये अथाह समुद्र समान भईं । अभिप्राय यह कि मोद-समुद्र सम ताके आगे शोकतड़ाग सम तुच्छ वह भी सूख गया, नाममात्र रह गया ॥ ७ ॥ अहित जो अनहित, अमंगल जो विघ्न, अघ जो पापादि उलूकों को सुखदायी अविद्या निशा उसमें महामोह तम उसको प्रभु को प्रतापरूप सूर्य से ताये कहे तपाये उससे लोप भया। हितू जो हैं चक्रवाक और कमल सम तिनको विशोक किया। भाव देवता आदि को राज्यसुख का बिछोह मिटा वही कोक सम हैं। सज्जन अनीति में संपुटित रहे, सो कमलसम प्रफुल्लित भये । इससे प्रभु का सुन्दर यश लोकों में छा रहा है ॥ ८ ॥ कुलकाज लौकिक पारलौकिक जप तप सत्य शौच दान तीर्थ व्रत यज्ञ विद्या राजऋषि वा निज जन्म विवाहादि यावत् जग के कार्य हैं सो सब प्रभु के राज्य में निर्विघ्न सुमंगलमय भये।

उससे देव नाग नर वर्णाश्रम सबने अपने योग्य सब प्रकार का सुख पाया। प्रजा प्रमोद बढ़ाये । भाव आनन्द सहित प्रभु की प्रशंसा कर रहे हैं। भूमिसुर ब्राह्मण श्रीरघुनाथजी को आनन्द से आशीर्वाद दे रहे हैं। निरन्तर ६ ब्राह्मणवर्ण में चार आश्रम ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यास क्षत्रिय में चार वर्ण गृहस्थ धर्मशील तापस भक्त वैश्य में चार गुप्त गृहस्थ सुकर्म तापस साधु शूद्र में तीन गृहस्थ दास तीन वर्ण सेवक देवसेवी देवदास भगवद्दास इत्यादि वर्ण आश्रमादि का धर्मविभाग कहे न्यारे-न्यारे वेदमार्ग अनुकूल पवित्र पातकरहित धर्मकर्म के मार्ग सब लोग चलाते भये। सो सब अपने धर्म में निरत, धर्म अनुकूल कर्त्तव्यता में निपुण और श्रीराम-जानकीजी के चरण में रत कहे सब विकाररहित रामानुरागी हैं । मानों रामजानकी के जाये कहे पुत्र हैं। यहाँ प्रभु भक्तवत्सलता से बालक सम सबको पालते हैं। इससे सब लोग अनन्य हैं ॥ १० ॥ मही कामधेनु भई वृक्ष कल्पतरु सम भये। मनवाञ्छित पानेवाला सुख हुआ और किसी पर विधाता वाम न भया। किसी को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं। प्रजा सब सुखी रहैं। गोसाईंजी कहते हैं कि जो जन मन-वचन-कर्म करिकै हित-सहित श्रीरघुनन्दन के गुणों को गाते हैं वे अब भी सुखी हैं ॥ ११ ॥

राग टोड़ी

आजु अवध आनन्द बधावन रिपु रन जीति राम आये ।
सजि सुबिमान निसान बजावत मुदित देव देखन धाये ॥ १ ॥
घरघर चौक चारु चन्दन मनि मंगल कलस सबन साजे ।
ध्वजपताकतोरन बितानबर बिबिध भाँति बाजन बाजे ॥ २ ॥

रामतिलक सुनि द्वीप-द्वीप के नृप आये उपहार लिये।
सीय सहित आसीन सिंहासन निरखि जोहारत हरषि हिये॥ ३ ॥
मंगलगान बेदधुनि जयधुनि मुनिअसीसधुनि भुवन भरे।
बर्षि सुमन सुर सिद्ध प्रसंसत सबके सब संताप हरे॥ ४ ॥
रामकाज भइ कामधेनु महि सुख-संपदा लोक छायो।
जन्म-जन्म जानकी-नाथ के गुनगन तुलसिदास गायो॥ ५ ॥

रिपु रावण को जीत श्रीरघुनाथजी घर को आये। इससे आज अयोध्याजी में आनन्द का बधावा बजता है। सु कहे सुन्दर विमान बड़े साज से सँवारि सजि-सजि निर्भय हो डंका बजावते हर्ष-पूर्वक अपने लोकनते देवता प्रभु को राजसुख देखने को धाये॥१॥ चन्दन मणि श्वेत मणि मोतियों से अथवा चन्दन और मणियों से सुन्दरियों ने चौकें घर-घर में रचीं। मंगलमयी यव के अंकुर सहित कलस सजे दीप जलते हैं, पल्लव धान्य सहित ध्वजा चिह्न सहित पताका सदा फहराता हैं, बंदनवार फूलपल्लव की झालर वा तोरण रेशम की झालर जरी ज़रबफ़्त कारचोबी रेशमी बेलबूटेदार वर कहे श्रेष्ठ वितान जो चँदवा तने हैं। बाजा विविध भाँति नगाड़ा, ताशा, जंगी ढोल, झाँझ, नरसिंहा, तुरही वा मृदंग, बीना, रबाब व तबला, सारंगी, मंजीरा, सितार, तँबूरा, ढोलक, झिकारा, डफ, खँझरी, मुरचंग, जलतरंग, उपंग इत्यादि विविध भाँति के बाजे बजे॥ २॥ सिंहासन की सांगो-पांग शोभा यथा प्रथम मंडूक उस पर कालाग्नि रुद्र उस पर कच्छप उस पर आधारशक्ति उस पर शेष उस पर वाराह उस पर पृथ्वी उस पर अयोध्याजी उसके मध्य कनक रत्नमय मन्दिर, वहाँ कल्पवृक्ष उसके तले रत्नवेदिका उस पर दशावरण यंत्र
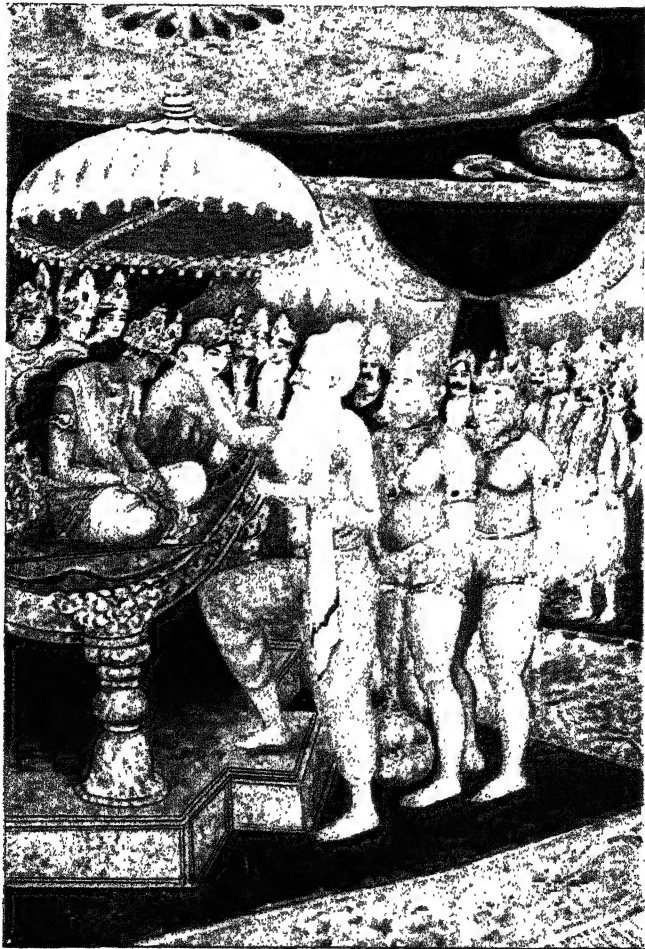
राज्याभिषेक

राजमध्य षट्कोण उस पर सिंहासन द्वितीयावरण मण्डल में पूर्व परमात्मा दक्षिण आत्मा पश्चिम अंतरात्मा। तृतीयावरण अष्टदल उस पर पूर्व में वासुदेव आग्नेय में श्री दक्षिण में संकर्षण नैऋत्य में सरस्वती पश्चिम में अनिरुद्ध वायव्य में कीर्ति उत्तर में प्रद्युम्न ईशान में रति। चतुर्थावरण में अष्टदल पूर्व में हनुमान् आग्नेय में सुग्रीव दक्षिण में भरत नैऋत्य में विभीषण पश्चिम में लक्ष्मण वायव्य में अंगद उत्तर में शत्रुहन ईशान में जाम्बवन्त। पंचमावरण अष्ट दल आठ मंत्री पूर्व में धष्ट आग्नेय में जयंत दक्षिण में विजय नैऋत्य में सौराष्ट्र पश्चिम में राष्ट्रवर्द्धन वायव्य में अकोपन उत्तर में धर्मपाल ईशान में सुमंत। षष्ठावरण बारह दल उस पर मुनि पूर्व में वशिष्ठ वामदेव जाबालि अपराजित गौतम, पश्चिम में भरद्वाज कौशिक वाल्मीकि नारद, उत्तरमें सनन्द सनक सनातन सनतकुमार कमंडलुधर। सप्तमावरण षोडशदल, उसमें वानर, पूर्व में नील नल सुखेण मयंद, दक्षिण में सुपर्ण द्विविद चन्दन गवाक्ष, पश्चिम में किरीटकुण्डल श्रीवत्सकौस्तुभ, उत्तर में शंखचक्र गदा पद्म। अष्टमावरण बत्तीस दल, उसमें लोकपाल पूर्व में ध्रुवधरा सोम आप, आग्नेय में अनल अनिल प्रसख प्रभास, दक्षिण में वीरभद्र शंभु गिरीश अजैकपाद, नैऋत्य में अहिर्बुध्न्य पिनाकी भुवनेश्वर कपाली, पश्चिम में स्थाणु भव वरुण वायव्य में सूर्य वेदांग भानु इन्द्र, उत्तर में रवि गभस्ति यम हिरण्यरेता ईशान में दिवाकर मित्र विष्णु धाता। नवमावरण में दशदिग्पाल पूर्व में इंद्र, आग्नेय में अग्नि, दक्षिण में यम, नैऋत्य में निऋति, पश्चिम में वरुण, वायव्य में वायु, उत्तर में कुबेर, ईशान में ईशान। पूर्व ईशानमध्ये ब्रह्मा, नैऋत्य पश्चिम मध्ये विष्णु। दशमावरण में वज्रादि आयुध वज्र शक्ति दण्डखड्ग पाश ध्वजा गदा त्रिशूल अम्बुज चक्र इतिदशमावरण। प्रमाणं, सुन्दरीतंत्रे ॥

द्वितीयात्मादिकैर्देवैरष्टाब्जे मूलके तथा ॥ तृतीये वासुदेवाद्यैरष्टपत्रैस्तथैव च ॥ १ ॥ चतुर्थे वायुपुत्राद्यैः पत्राग्रे पूर्वतः क्रमात् ॥ साधनैः पञ्चमावृत्तिर्द्वितीयाष्टदले तथा ॥ २ ॥ षष्ठे द्वादशपत्रेषु वशिष्ठाद्यैर्महर्षिभिः ॥ सप्तमे षोडशाब्जे तु नीलाद्यैः कपिपुङ्गवैः ॥ ३ ॥ ध्रुवाद्यैरष्टमे ज्ञेया द्वात्रिंशद्दलपद्मके ॥ इन्द्राद्यैर्भू गृहे नित्यं नवमावरणं भवेत् ॥ ४॥ तदस्त्रैर्वज्रशक्त्याद्यैर्दशमावरणं शुभम् ॥ इत्यादि दश आवरण के मध्य में सुन्दर रत्नमय सिंहासन उसमें ज्ञान वैराग्य धर्म ऐश्वर्य ये चार पाये हैं और अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य ये चार पाटी हैं । सब मन्त्र बीज मणि से जड़े हैं । उस पर पद्म आसन है । आनन्द उसकी जड़, ज्ञान, नाल कर्णिका में शेष सर्वतत्त्वदल पञ्चाशद्वर्णकेशरः, उस पर सूर्यमण्डल बारह कला उस पर चंद्रमंडल षोड़शकला उस पर अग्निमंडल दशकला उस पर मायातत्त्वकला तत्त्वविद्या तत्त्वकमल दलों पर विमला उत्कर्षनी ज्ञांता क्रियायोगा प्रभा ईशानादि शक्ति । उसके मध्य सुन्दर आसन उस पर श्रीरघुवंश भूषण श्रीजानकीजी सहित विराजमान । कैसी शोभा है तन में श्याम गौरवर्ण नील पीत पट धारे शीश पर त्रिखण्ड मुकुट इत चंद्रिका आँछे सौगंधित वर भाल पर तिलक इत माँग में मोती सिंदूर भाल में बेंदा नेत्र में काजल कान में तारंक नासिका में बेसर उत कुण्डल बुलाक कमलसम नेत्र कण्ठ में कण्ठा बनमाल पदिक उत चन्द्रहार पचलरी हार हमेल बाजूबन्द चरी वलय मुद्रिका आरसी उत अंगद पहुँची मुद्रिका कटि में किंकिणी पायँ में मंजीर जेहरि बिछिया महाउर आदि शोभा से युक्त दक्षिण पर भरतजी चँवर लिये बाँये शत्रुघ्नजी व्यजन लिये पीछे लक्ष्मणजी छत्र लिये सम्मुख हनुमान्‌जी स्तुति करते । इसी अवसर में राजतिलक प्रभु का सुन द्वीप-द्वीप के राजा उपहार भेंट की सामग्री ले-ले आये । कौन सामग्री

हाथी घोड़ा रथ पालकी मणिमुक्ता रोमपाट पाटांबर जरी आदि सो सब आकर श्रीजानकीजी सहित श्रीरघुनाथजी को सिंहासन पर विराजमान देख हृदय से हर्षि जुहारत जुहार करते भेट देते प्रेम से सब देखते ॥ ३ ॥ स्त्री आदि के मंगलगान कोविद की वेद्धुनि बन्दीजनकी जयधुनि मुनिन की आशिषधुनि से सब शब्द की धुनि भुवन में भर रही है। फूल वर्षि देवता और सिद्ध प्रभु की प्रशंसा कर रहे हैं। इस अवसर में सबके सब प्रकार के सन्ताप नाश भये ॥ ४ ॥ श्रीरघुनाथजी के राज में भूमि कामधेनु होत भई। सुख सहित सम्पदा सब लोकन में छा रही है। श्री-जानकीनाथ के परम दिव्य गुणन के गण समूह जन्म-जन्म प्रति तुलसीदास ने गान किये हैं इसमें वाल्मीकि को अपना अवतार सूचित किया। अभिप्राय कि लंकाकाण्ड ही में राज्याभिषेक वाल्मीकिजी ने भी कहा और विशेष माधुर्य्य वाल्मीकिजी ने भी गान किया। उसी तरह इस ग्रंथ में गुसाईंजी ने माधुर्य्य ही चरित्र गान किये हैं ॥ ५ ॥

सवैया

हाटकहर्म्यगवाक्षमनिन्द्र विचित्रवितानन दीपलतासो।
आसनपुष्पकमध्यकृताधृत चामरछत्रसखाचहुँधासो॥
मूर्ध्निकचाद्भुतकोटप्रभास्य दृगांबुजद्यौमकराकृतभासो।
श्रीरघुराजप्रियायुतचाहत बैजसुनाथसदाउरबासो॥ १ ॥

इति रसिकलताश्रितकल्पद्रुमसियावल्लभशरणबैजनाथकृतगीतावली-मणिदीपिकाटीकासहितलंकाकाण्ड समाप्त।

श्रीगणेशाय नमः

गीतावली

(मणिदीपिका टीकासहित)

उत्तरकाण्ड

श्लोक
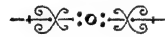
बामाङ्के जनकाधिराजतनया शक्तीश्वरी शोभते
ब्रह्मेशानपुरस्सराः सुरगणास्स्तोत्रैर्नुतिंकुर्वते ॥
व्यासागस्त्यकुशात्मजप्रभृतिभीरामस्य याथार्थ्यतो
यस्याबोधिनवेदपारचरितं देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥

बन ते आइकै राजा राम भये भुवाल ।
मुदित चौदह भुवन सब सुख सुखी सब सब काल ॥ १ ॥
मिटे कलुष कलेश कलुष न कपट कुपथ कुचाल ।
गये दारिद दोषदारुन दम्भ दुरित दुकाल ॥ २ ॥
कामधुक महि कामतरु तरु उपलमनिगननाल ।
नारि नर तेहि समय सुकृती भरे भाग्य सुभाल ॥ ३ ॥

बर्न आस्रम धर्मरत मन बचन बेष मराल ।
रामसियसेवक सनेही साधु सुमुख रसाल ॥ ४ ॥
राम राज समाज बरनत सिद्ध मुनि दिगपाल ।
सुमिरि सो तुलसी अजहुँ हिय हर्ष होत बिशाल ॥ ५ ॥

वन से आकर श्रीअयोध्याजी में श्रीरघुनाथजी भूमि के पालने-वाले हुए। उनके प्रभाव से चौदह भुवन में सब जीव सब सुख से सुखी सदा आनन्द हैं। सब काल में भूतकाल में पितृ स्वर्गवासी वर्तमान में तो सब सुखी हैं ही, भविष्य में सब मुक्ति के अधिकारी हैं ॥ १ ॥ सब जीव सुकृती भये। इससे कलुष पाप का करना मिट गया। उससे दरिद्र गया, क्लेश मिटे, दोष गया। कलुषन कहे पग पर पग रख सोना तृणखण्डनादि कलुषन मिटने से दारुण दुःखादि गया। कपट मिटने से दंभ गया। कुपथ मिटने से दुरित पाप संचित गया। कुचाल मिटने से देश का दुकाल पड़ना मिट गया ॥२॥ पृथ्वी कामधेनु भई। वृक्ष कल्पवृक्ष भये। पाषाण मणिगणलाल इत्यादि भये। उस अवसर में नारि नर सब सुकृती भये। इससे विषमता सब मिट गई। सुकृती करिकै सुन्दर भाग्य से भाल भरते भये ॥ ३ ॥ वर्ण चार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र। ब्राह्मण में चार आश्रम गृहस्थ ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ संन्यास इत्यादि। अपने-अपने धर्म में रत हैं। बिना धर्म वर्ण आश्रम यथार्थ नहीं हो सकते। यथा ब्राह्मण जो कहिये जीव ब्राह्मण है तो चर अचर का जीव एक रूप है। यथा नलकूबर यमलार्जुन भये। अहल्या पाषाण भई। काक-भुशुण्डि शूद्र से सर्प, सर्प से ब्राह्मण, पीछे काक भये। जड़भरत मुनि से मृग, मृग से ब्राह्मण भये। इससे जीव कुछ वर्णाश्रम नहीं। जो कहो देह ब्राह्मण तो पाँच तत्त्व से सबकी देह। जन्म-

मरण क्षुधा पिपासा सबको एक रस। अथवा माता पिता की देह पुत्र अग्निदाह करता सो ब्रह्मदोष क्यों नहीं होता। इससे देह ब्राह्मण नहीं है। जो जाति कुल ब्राह्मण कहिये, तो अनेक नीच कुल से ऋषीश्वर भये। यथा श्रृंगी ऋषि मृगीपुत्र, कौशिकी कुशास्तृणे, गौतम सापृष्ठे, बाल्मीकि बल्मीक्यां, व्यास केवटकन्या से, वशिष्ठ वेश्यापुत्र, विश्वामित्र क्षत्रिय से, अगस्त्य कलश से, मांडव्य मेडुकी से, मातंगी मातंगीपुत्र, पाराशर चांडालीपुत्र इति। पुनः कश्यप ऋषि से सूर्यवंश क्षत्रिय, चन्द्रमा वैश्य से चन्द्रवंश क्षत्रिय, मत्स्योदरी केवटकन्या से पांडु कौरव क्षत्रिय, कश्यप ब्राह्मण से सूर्य क्षत्रिय उनसे शनैश्चर शूद्र इति। वर्त्तमान में अनेक जाति से और जाति हो गईं। इससे जातिकुल ब्राह्मणादि नहीं। प्रमाणं पाद्मे ॥ जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते। वेदाभ्यासी भवेद्विप्रो ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः। इससे वर्णाश्रम धर्म में रत प्रथम ब्राह्मण धर्म १० दोहा ॥ देवऋषी अरु विप्रकहि क्षत्रिय वैश्य बखान। शूद्रबिडाल म्लेच्छ पशु श्वपच सहित दश मान॥ सकल धर्मनिधि अर्थविद पढ़ै पढ़ावै सोइ। भिक्षासों करि जीविका देव विप्र सो होइ। षट्कर्मी तपसत्य मय ऋषी विप्र सो जान। श्रद्धा विफला मूल सो विप्र विप्र गुजरान॥ अश्व चढ़ै आयुध गहै द्विज क्षत्रीयन शूर। खेती गोरक्षा वणिज वैश्य विप्र सो पूर॥ तेल लोन घृत दूध दधि तिल पुनि लाख सुनील। अरु मधु बेंचै विप्र है शूद्र विप्र दुःशील॥ भूतद्रोह शठ कर्म रत पर छिद्रहि नित देखु। हिंसा में तत्पर सदा द्विज मञ्जार सु लेखु॥ भरै जो वापी कूप सर बागादिक करि नाश। सन्ध्या अरु स्नान नहिं म्लेच्छ विप्र अघराश॥ भक्षाभक्ष कृतघ्न अति गम्यागम्य निशंक। पशु ब्राह्मण सो जानिकै सदा करो तेहि शंक॥ निन्दक लोभी पिशुन अति निर्दय परधन हारि। विप्र-

जान सोई श्वपच द्विज दश विधि निरधारि ॥ ब्राह्मण के नव कर्म मुख्य, शम, दम, शौच, शांति, दया, ज्ञान, विज्ञान, शाप, आशीर्वाद, सामर्थ्य। ब्राह्मण की आश्रम संज्ञा सो चार गृहस्थ, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास। गृहस्थ कर्म, जो पदार्थ प्राप्त हो उस में सत्रहें अंश पुण्य करे अतिथि कुटुम्ब सेवन। तीन ऋण होते हैं प्रथम पितृऋण से तर्पण श्राद्ध करके उद्धार होता है। ऋषिऋण तीर्थ व्रत दान करि उद्धार होता है। एक देवऋण उसका इन्द्र वरुण कुबेर धर्मराज अग्नि ये पाँच वलिदे विष्णु, शिव, देवी, गणेश, सूर्य पूजि विष्णु से मुक्ति माँगै इति गृहस्थ कर्म ॥ अथ ब्रह्मचर्य-कर्म ॥ विद्याध्ययन स्वयम्पाकी गुरु आज्ञा तत्पर इन्द्रियजित् इति ॥ अथ वानप्रस्थ ॥ ब्रह्मचर्य स्त्रीयुत वन में तप करै इति। अथ संन्यासकर्म ॥ वैश्य त्रिदण्डधारी शैव, एक दण्ड ग्रहण दो रात्रि न कहीं टिके। ग्राम वास, रात्रि-भोजन, धातु-पात्र, वाहन त्याग, वेद आज्ञा लिये कर्म करे। परमहंस धर्म कर्म-त्याग ब्रह्मनिष्ठी ब्रह्मवेत्ता वैराग्यवान् इन्द्रियजित् इति ॥ अथ क्षत्रिय कर्म-धर्म ॥ खड्ग दान तप में शूर तेजस्वी प्रतापी धैर्यवान् साव-धान दक्ष विद्यावान् नीतिमान् युद्ध में अचल वेदविधान कर्म ईश्वर अर्पण। क्षत्रिय की वर्मा संज्ञा। सो चार भाँति। एकगृहित वर्म। दूसरे धर्म वर्म। सत्य शौच तप दान धर्मशील। तीसरे तपवर्म। जो स्त्रीयुत वन में तप करे। यथा मनुशतरूपा। चौथे भक्तिवर्म। नवधा प्रेमा परायुत यथा सुरथ रुक्मांगद अम्बरीष अर्जुन भीष्म। उनको भक्त कहिए। इति ॥ अथ वैश्य कृषी वाणिज्य गोरक्षा। तिनकी गुप्त संज्ञा। सो चार। एक गृहस्थ, दूसरे कर्म गुप्त, जो तीर्थ व्रत दान माता पिता गुरु ब्राह्मण गऊ को मानें। तीसरे तापस तप गुप्त। यथा सरवन। चौथे साधुता गुप्त। जिसका मन शांत हो भगवत्

भक्तिरत। यथा तुलाधार इति ॥ अथ शूद्र तीनवर्ण की सेवा नम्रतायुत। इनकी दास संज्ञा। एक गृहस्थ, दूसरे भगवद्दास, यथा शबरी श्वपच रयदास आदि। इत्यादि वर्णाश्रम। अपने अपने धर्म में रत मन से वचन से हंस सम वेषधारी अर्थात् वचन मधुर वेष उज्ज्वल रामसिया के सेवक और नेही परकार्य साधक सुमुख प्रसन्न मुख रसाल नम्रता युत ॥ ४ ॥ श्रीरघुनाथ के राज का समाज वर्णते हैं। सिद्ध मुनि देवता दिग्पालादि उस अवसर के सुमिरे से आज भी हृदय में सुन्दर हर्ष होता है। यह गोसाईंजी कहते हैं कि सो अवसर सुमिरे अजहूँ दुःख दूरि होत ॥ ५ ॥

राग ललित

भोर जानकी जीवन जागे।
सूत मागध प्रवीन बेनु बीना धुनिद्वार गायक सरस राग रागे ॥ १ ॥
श्यामल सलोने गात आलस बस जमुहात प्रिया प्रेमरस पागे।
उनींदे लोचन चारु मुख सुखमा शृंगारु हेरि हेरि हारे मारभूमि भागे २
सहज सुहाई छबि उपमा न लहै कबि मुदित बिलोकन लागे।
तुलसिदास निसिबासर अनूप रूप रहत प्रेम अनुरागे ॥ ३ ॥

प्रथम राजसमाज प्रताप वर्णन कर अब माधुर्यलीला में अष्टयाम की रीति से माधुरी की अवलोकनि शृंगाररस में वर्णन करते हैं। राग बाजे में प्रवीण तिनके गान की ध्वनि और वेणुवीणा इत्यादि बाजों की ध्वनि द्वारपर होने से सरस कही रस सहित राग रागे कही गावत सोई ध्वनि सुनि जागे। यह शेष है ॥ १ ॥ जागे की शोभा कहते हैं सलोने

कही शोभामय श्यामलगात से प्रिया जो जानकीजी तिनके प्रेमानन्द में पागे। इससे आलस्य के वश से जम्हाते हैं। चारु कही सुन्दर नेत्र नींद के भरे। उस समय मुख की शोभा देख देखं श्रृंगाररस हार गया। अनेक काम लज्जित हो भागे। एक की कौन कहे। अर्थात् समता नहीं पाते हैं। काहे से यहाँ प्रेमानन्द समाधि है ॥ २ ॥ सहज ही में छवि सोई कही रोचक उसकी उपमा कवि नहीं पाते। इससे आपही हर्षित हो विलोकन लागे। गोसाईंजी कहते हैं कि यह अनूप रूप के प्रेम में दास अनुरागे रहते हैं। दिनरात तो वर्णन कौन कर सके ॥ ३ ॥

राग कल्याण

रघुपति राजीव नयन सोभा तन कोटिमयन
करुनारस अयन चैन रूप भूप माई।
देखौ सखि अतुलित छबि संतकंजकाननरबि
गावत कलकीरति कबि कोबिदसमुदाई ॥ १ ॥
मज्जनकरि सरजुतीर ठाड़े रघुबंसबीर
सेवत पद कमल धीर निरमल चितलाई।
ब्रह्ममण्डली मुनीन्द्रबृन्द मध्य इन्दु वदन
राजत सुखसदन लोकलोचनसुखदाई ॥ २ ॥
बिथुरित सिररुहबरूथ कुंचित बिच सुमनजूथ
मनिजुत सिसुफनिअनीक ससि समीप आई।
जनु सभीत दै अकोर राखे जुगरुचिर मोर
कुण्डलछबि निरखि चोर सकुचत अधिकाई ॥ ३ ॥

ललित भृकुटि तिलक भाल चिबुक अधर द्विज रसाल
हास चारुतर कपोल नासिका सोहाई ।
मधुकर जुग पंकज बिच सुक बिलोकि नीरज पर
लरत मधुप अवलि मानों बीच कियो जाई ॥ ४ ॥
सुन्दर पट पीत बिसद भ्राजत बनमाल उरसि
तुलसि का प्रसूनरचित बिबिधि बिध बनाई ।
तरु तमाल अधबिच जनु त्रिबिध कीरपाँति रुचिर
हेमजाल अन्तर परि ताते न उड़ाई ॥ ५ ॥
संकरहृदय पुंडरीक निसिबस हरि चंचरीक
निर्ब्यलीक मानस गृह सन्तत रहे छाई ।
अतिसय आनन्दमूल तुलसिदास सानुकूल
हरन सकल सूल अवधमण्डल रघुराई ॥ ६ ॥

प्रथम जागरण वर्णन कर अब मज्जन शृंगार वर्णन करते हैं। उस माधुरी का कहना सुनना सखियों का अधिकार है। इससे सखी प्रति सखी कहती है, हे माई, रघुपति कमल नयन, जिनके तन में कोटियों मैन की शोभा है, करुणारस के स्थान चैन कहाँ आनन्ददायक, सगुण भूपरूप हैं। हे सखी, अतुलित छवि है उस को देखो। संत जो कमलवन हैं तिनके प्रकाश करने को रवि हैं। तिनकी कल कही सुन्दर कीर्ति उसको कवि शेषादि, कोविद ब्रह्मादि समूह, सो गाते हैं। सोई रघुवंशवीर मज्जन, करके सरयू-तीर ठाढ़े हैं। धीर जो ज्ञानी भक्त हैं सो अपना निर्मल मन लगा कर पद-कमल को सेवते हैं। ब्रह्ममंडली ब्रह्मवेत्ता मुनीन्द्र मनन-

शील तिनके वृन्दमध्य लोकके नेत्र चकोरन के सुखदाता चंद्रवदन सुख के सदन श्रीरघुनाथजी विराजते हैं ॥ १ । २ ॥ शिररुह बाल। कुंचित टेढ़े। वरूथ समूह। बिथरित बिथुरे। तिन के बीच फूलन के गुच्छा शोभित। उसकी उत्प्रेक्षा करते हैं कि फणि सर्प तिनके शिशुकही बालकनकी अनी कहीं सेना सो मणिनसहित चन्द्रमा के समीप आई। तिनको देखि चन्द्रमा सभीत कही डरिकै अकोर दै कुण्डल रूप जो दो मोर तिनको अपनी रक्षा हेतु रक्खे है। काहे से सर्प को मयूर भक्षण करलेता है। तिन कुण्डलों की शोभा देखि चोर जो हैं सर्प बालक सो अत्यन्त सकुचाते हैं। इससे चन्द्रमा के समीप नहीं जा सकते। यहाँ पुष्प के गुच्छा मणि हैं। बिथुरे टेढ़े बाल सर्प बालकों की सेना हैं। कुण्डल मयूर हैं। मुख चन्द्रमा है। कुण्डल की आड़ बीच में पड़ने से बाल मुख पर नहीं आ सकते सोई संकोच है। मणि सर्प के गुप्त रहती, यहाँ प्रकट। काहे से लिखा। जब रात्रि समय सर्प भोजन हेतु निकलता है तब मणि निकाल उसके प्रकाश में भोजन करता है। सो यहाँ चन्द्र-समीप अमृत पान हेतु आये। इससे मणि प्रकट करली, यह कहा॥ ३ ॥ ललित नेत्र सहित सुन्दरी भृकुटी माथे पै तिलक चिबुक ठोढ़ी ओठ दांत हँसनि इत्यादि रसभरी ऊपर अलकें उनके नीचे कपोल। बीच में नासिका शोभायमान। भृकुटी दो भ्रमर नेत्र-कमल पर हैं। तिन दोनों के बीच नासिका शुक है। मुख नीरज है। उसके रसपान हेतु अलकें मधुपावली हैं। वे लड़ते हैं। नासिका सुवा सोई बीच कियो। यहाँ नेत्र और मुख दो कमल भृकुटी अलकें। इससे दोबार भ्रमर कहे। नेत्र अलके उपमेय में नहीं हैं। उपमा से मालूम होते हैं ॥ ४ ॥ सुन्दर पीतपट धारण विशद वनमाल उर भ्राजत। तुलसी, कुन्द, मंदार पारिजात, सरोरुह इत्यादि विविधविधि से

रचित। उसकी उत्प्रेक्षा करते हैं। श्यामलगात सोई तमाल वृक्ष है। उसके अधबीच वक्षःस्थल में वनमाला श्वेत अरुण हरित सोई त्रिविध शुकों की पाँति बैठी है। पीतपट हेमजाल। उसकी आड़ में है। इससे उड़ा नहीं सकती ॥ ५ ॥ शंकरजी के उर कमल में हरि रघुनाथजी भ्रमर हो वास करते हैं। निर्व्यलीक कपट-रहित। मनरूपी गृह में निरन्तर छा रहे हैं। सो अतिशय आनन्द के मूल सब प्रकार के शूल कही क्लेश के हरनेवाले अवध के मण्डल-भूषण रघुराज तुलसीदास पर अनुकूल रहो ॥ ६ ॥

राजत रघुबीर धीर भंजन भव भीर पीर
हरन सकल सरजुतीर निरखहु सखि सोहै।
संग अनुज मनुज-निकर दनुजबलबिभंगकरन
अंग अंग छबि अनंग अगनित मन मोहै ॥ १ ॥
सुखमासुखसील अयन नयन निरखु निरखु नील
कुंचित कच कुण्डल कल नासिका चित पोहै।
मनहुँ इन्दुबिम्बमध्य कंज मीन खंजन लखि
मधुप मकर कीर आइ तकि तकि निज गोहै ॥ २ ॥
ललित गंडमंडल सुबिसाल भाल तिलक झलक
मंजुतर मयंक अंक रुचिर बंक भौंहै।
अरुन अधर मधुर बोल दसन दमकि दामिनि द्युति
हुलसनि हिय हँसनि चारु चितवनितिरछोहै ॥ ३ ॥
कंबु कंठ भुज बिसाल उरसि तरुन तुलसिमाल
मंजु मुकतावलिजुत जागत जिय जोहै।

जनु कलिन्दनन्दिनि मनि इन्द्रनीलसिखर परसि
धसति लसति हंसश्रेणिसंकुल अधिकोहै ॥ ४ ॥
दिव्यतर दुकूल भव्य नव्य रुचिर चंपकचय
चंचलाकलाप कनकनिकर अलि किधौं है ।
सज्जन चषझषनिकेत भूखन मनिगन समेत
रूपजलधि बपुष लेत मन गयन्द वोहै ॥ ५ ॥
अकनि बचन चातुरी तुरीय पेखि प्रेममगन
पगन परत इत उत सब चकित तेहि समोहै ।
तुलसिदास यह सुधि नहिं कौन की कहाँ ते आइ
कौन काज काके ढिग कौन ठाँव को है ॥ ६ ॥

राजत इति भव संसार उसकी भीर जन्म मरण उसके भञ्जन नाशकर्त्ता । त्रय तापादि पीर के हरनेवाले । रण में धैर्यवान् । ऐसे रघुवीर सरयू तीर पर राजते हैं । सोहैं कहे सम्मुख । हे सखी, तिनको निरखहु कैसे शोभित हैं । जिनके संग में भाई और बहुत मनुष्य हैं । पुनः कैसे हैं दनुज दुष्टों के वल को तोड़नेवाले हैं । ऐसा शोभायमान रूप है जिनका । एक एक अंग की छवि पर अनेक काम मोहने हैं ॥ १ ॥ सुखमा शोभा और सुख और शील के स्थान जो नयन हैं, तिन्हें देखो । उनके पास श्याम टेढ़े बालों में कुण्डल की शोभा । और नासिका जो चित को पोहे कही आप में लगाये लेत उसको देखो । मानो मुख चन्द्रमण्डल मध्य में नेत्र कंज मीन खंजन हैं । तिन्हें देख अपना सजातीय जान भ्रमर से शुक आया । यहाँ गोहै कही सजातीय । तहाँ नेत्र खंजन जानि अपना सजातीय । तहाँ नेत्रकंज जानि अलकावली सोई भ्रमर आये । नेत्र

मीन जानि सजातीय विचारि कुण्डल मकर आये। नेत्र खंजन जानि अपना सजातीय पक्षी नासिका शुक आया॥ २॥ गोल ललित कपोल मण्डल विशाल भाल पर तिलक झलकता है। मंजुतर कही सुन्दरों से सुन्दर मुख चन्द्रमा उसमें जो श्याम चिह्न होता है सो यहाँ सुन्दरी टेढ़ी भौहें हैं। कोमल अरुण ओंठ बोल मधुर बिजलीसी द्युति दाँतों की चमक सुन्दर। मंद हँसनि युत तिरछी चितवनि सो हृदय में हुलास करते। यथा शंख में तीन रेखा तद्वत् कंठ भुजा विशाल कही लम्बायमान। उर में नवीन तुलसी की माला मंजुल मोतियों की मालायुत सोहती है। उसको जागते जो योगीश्वर सो जी से जोहत कही देखते हैं। उसकी उत्प्रेक्षा—श्याम शरीर इन्द्रनील मणि है। कन्धा शिखर हैं। वहाँ से परसि कै। तुलसी की माला कलिन्दनन्दिनी यमुनाजी की धारा है। सो धसत कही गिरती हैं। मोतियों की माला हंसों की श्रेणी कही पाँति है। संकुल कही पूरण। अधिको है एक में एक लसत कही विराजमान हैं॥ ३। ४॥ दिव्यतर दिव्य से दिव्य पीत वस्त्र भव्य कही सुन्दर। मंगलीक। नव्य कही नवीन सुन्दर वस्त्र हैं। किधौं चम्पा के फूलों का समूह है, किधौं बिजुली का समूह है, किधौं सोने के भ्रमरों का समूह है। वही प्रभु का रूप समुद्र है। अंग के भूषण समुद्र। मछलियों का निवास है। यहाँ सज्जनों के नेत्र झष कही मछली हैं। उनके रहने का निकेत है। उसी रूप समुद्र में सखियों के मन-रूप हाथी की देह बोह लेत कही बूड़ती उतराती है॥ ५॥ उस सखी के चातुरी के वचन अकनि कही सुन विचार शुद्ध हृदय से तुरीय अवस्था में प्रभु को देख या तुरीय जो रघुनाथजी तिन को देख प्रेम में मगन कही बूड़ गईं। इससे न इधर को पग पड़े, न घर की ओर, न उधर को

पग पड़े सरयू की ओर । उस समय सब चकित हो गई । गोसाईंजी कहते हैं उस समय सखियों को यह सुध नहीं है कि कौन की हूँ, कहाँ से आई हूँ, कौन काम करना है, किसके पास हूँ, कौन ठाँव की रहनेवाली हूँ ॥ ६ ॥

देखु सखि आज रघुनाथ सोभा बनी ।
नील नीरद बरन बपुष भुवनाभरन
पीत अम्बर धरन हरन द्युतिदामिनी ॥ १ ॥
सरजू मज्जन किहे संग सज्जन लिहे
हेतु जन पर हिये कृपा कोमल धनी ।
सजनि आवत भवन मत्त गजवर गवन
लंक मृगपति ठवनि कुँवर कोसलधनी ॥ २ ॥
सघन चिक्कन कुटिल चिकुर बिलुलित मृदुल
करनि बिवरत चतुर सरस सुखमा जनी ।
ललित अहि सिसुनिकर मनहुँ ससि सन समर
लरत धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी ॥ ३ ॥
भाल भ्राजत तिलक जलजलोचन पलक
चारु भ्रू नासिका सुभग सुक आननी ।
चिबुक सुन्दर अधर अरुन द्विज दुति सुघर
बचन गंभीर मृदु हास भवभाननी ॥ ४ ॥
श्रवन कुंडल विमल गंड मंडित चपल
ललित कल क्रांति अति भाँति कछु तिन तनी ।

जुगल कंचन मकर मनहुँ विधुकर मधुर
पिबत पहिचानि करि सिंधु कीरति भनी ॥ ५ ॥
उरसि राजत पदिक ज्योति रचना अधिक
माल सुविसाल चहुँ पास बनी गजमनी ।
स्याम नवजलद पर निरखि दिनकर कला
कौतुकी मनहुँ रहि घेरि उडुगन अनी ॥ ६ ॥
मंदिरन पर खड़ी नारि आनँद भरी
निरखि वर्षहिं विपुल कुसुम कुमकुम कनी॥
दास तुलसी राम परम करुनाधाम
काम सतकोटि मद हरत छबि आपनी ॥ ७ ॥

हे सखी, आज रघुनाथजी की शोभा बनी है, उसको देख । श्याम मेघ वरण सुन्दर स्वरूप आभरण कही सकल भुवन का भूषण हैं । उस अंग में पीत वस्त्र धारण किये सो दामिनी की द्युति को हरता है ॥ १ ॥ इत्यर्थः । सरयूजी में स्नान करके संग में सज्जन लिये जन जो दास तिन पर हेतु कही प्रीति है हृदय में जिनके कृपा और कोमलता के धनी कही अधिक हैं जिन में, लंक कटि ठवनि ऐंड़ सिंह की ऐसी मत्त हस्ती की चाल से श्रेष्ठ मंद मंद चाल से कोशलधनी कुबेर हे सजनी भवन को आते हैं ॥ २ ॥ सघन चिक्कन टेढ़े बाल स्नान किये से बिलुलित कही अरुझ गये हैं, उनको चतुर जो रघुनाथ कोमल करों से बिवरते कही अरझा छुड़ाते हैं, उससे रस भरी परम शोभा जनी कहे उत्पन्न भई । उसकी उत्प्रेक्षा यहाँ बाल जो हैं सो मानों सर्पन के सुन्दर बच्चा समूह हैं सो अमी लेने हेतु मुख-

चन्द्र से समर लड़ते हैं और हाथ मानों दो बड़े सर्प हैं, तो उलझे बाल मुख पर से सुधारना सोई धरहरि कही बीच बराव करते बड़े सर्प छोटों को समझाते हैं कि पराई वस्तु लेने को जबरदस्ती करते हो ॥ ३ ॥ सुन्दर तिलक माथे पर शोभित। कमल ऐसे नेत्रों में लंबी पलकें शोभित। उन पर मैन चाप सम टेढ़ी सुन्दर भृकुटी। उनके बीच शुक का ऐसा मुख। सुन्दर नासिका। सुन्दर टेढ़ी पर अरुण अधर सहित दाँतन की पाँति को प्रकाश शोभा धारण किये। वचन गम्भीर। मन्द हँसनि। भवसागर के दुःख को नशानेवाली है ॥ ४ ॥ श्रवणों में कुण्डल से गंड जो हैं कपोल निर्मल उन पर मंडित कही भूषित हैं सो चंचल हैं तिनकी कल कही सुन्दर क्रांति अति कही अनेक भाँति की कुछ अद्भुत पदार्थ है। उसको उन कुण्डलों ने तनी कही फैलाई है। सोई कलित कही शोभित है। उसकी उत्प्रेक्षा करते हैं। कुण्डल सोई मानों दो कंजन के मकर कही मछुरा हैं। मुख चन्द्रमा है। रूप मधुर अमृत है। उस का पान करते। सिंधु की कीरति वर्णन कर भाव तुम सिंधु के पुत्र हो सो हमारा जीने का स्थान है। इससे हम तुम्हारे पदार्थ के आसरे बन्द हैं यह पहचान करके ॥ ५ ॥ अधिक है रचना जिस में ऐसा पदिकहार उसकी ज्योति उर बिषे विराजती है। उसकी चारों तरफ गजमुक्तन की सुन्दर माला बन रही है। उसकी उत्प्रेक्षा। रघुनाथजी का वक्षस्थल सोई मानों नवीन श्याम मेघ है। उसपर पदिक की ज्योति मानों सूर्यन की कला है। उसको देख गजमुक्ता सोई मानों कौतुकी नक्षत्रन की सेना है सो घेरि रही है। यहाँ मेघ पर सूर्यन की कला होना कौतुक है। उसको देख नक्षत्र भी बिपरीत कर्तव्यता मंजूर करो इससे मेघ पर सूर्यन की कला को घेरि बैठे मेघ पर सूर्य का अभाव सूर्य के पास नक्षत्र अभाव ॥ ६ ॥

स्त्रीगण मन्दिरन पर चढ़ि रघुनाथजी की छवि देख आनन्द की भरी अनेक प्रकार के फूल और केसर की कनी पराग उसको बरसती हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि करुणा के धाम श्रीरघुनाथजी अपनी छवि से सैकड़ों करोड़ों काम के मद हरते हैं ॥ ७ ॥

आजु रघुबीर छबि जात नहीं कछु कही।
सुभग सिंहासनासीन सीतारमन
भुवन अभिराम बहु काम सोभा लही ॥ १ ॥
चारु चामर ब्यजन छत्र मनिगन बिपुल
दाम मुक्तावली ज्योति जगमगि रही।
मनहुँ राकेस सँग हंस उडुगन बरहिं
मिलन आये हृदय जानि निज नाथ ही ॥ २ ॥
मुकुट सुन्दर सिरसि भाल वर तिलक
भ्रू कुटिल कच कुंडलन परम आभा लही।
मनहुँ हर उर जुगल मारध्वज के मकर
लागि श्रवनन करत मेर की बतकही ॥ ३ ॥
अरुन राजीवदल नयन करुना अयन
बदन सुखमासदन हास त्रय ताप ही।
बिविध कंकन हार उरसि गजमनि माल
मनहुँ बगपाँति जुग मिलि चली जलद ही ॥ ४ ॥
पीत निर्मल चैल मनहुँ मरकत सैल
पृथुल दामिनि रही छाइ तजि सहज ही।

ललित सायक चाप पीन भुज बल अतुल
मनुज तनु दनुज बन दहन मंडन मही ॥ ५ ॥
जासु गुन रूप नहिं कलित निरगुन सगुन
सम्भु सनकादि सुक भक्ति दृढ़ करि गही ।
दास तुलसी रामचरन पंकज सदा
बचन मन कर्म चहै प्रीति नित निर्बही ॥ ६ ॥

अब सिंहासन पर की शोभा कहते हैं । आज रघुबीर की छवि कुछ कही नहीं जाती । काहे से अनेकन काम की ऐसी शोभा है जिनमें साँची और चौदहों भुवन के अभिराम दाता ऐसे सीतारमण सुन्दर सिंहासन पर आसीन हैं ॥ १ ॥ आस-पास सेवक कोई चमर लिये सुन्दर कोई पंखा लिये कोई छत्र लिये उनमें अनेक प्रकार के मणिन के गण कही समूह मोतिन का लरन के गुच्छा तिनकी ज्योति जगमगाइ रही है । उसकी उत्प्रेक्षा । यहाँ छत्र मानों चन्द्रमा है । उसके संग चामर हंस है । पंखा मयूर है । मणि मुक्तावली मानों नक्षत्र हैं । सो चन्द्रमा के साथ निज नाथ रघुनाथ को हृदय में जानि मिलने को आये हैं ॥ २ ॥ हेममणियों से रचित सुन्दर मुकुट शीश पर सोहता है । केसर का उत्तम तिलक माथे पर है । टेढ़ी भौंहैं हैं । बालों के समीप श्रवणों में कुण्डलों की परम शोभा प्राप्त है । उसकी उत्प्रेक्षा । यहाँ कुण्डल मानों काम की ध्वजा के मकर कही मछली हैं । ते काम के नाशकर्त्ता शिव के डर से शिवजी को स्वामी जान मेल करने को कानन में लागि बतकही करते हैं रघुनाथजी से कि हमारे स्वामी का शिवजी ने नाश किया, इससे हम भी डरते हैं । आप स्वामी हो । हमारा मेल शिवजी से

करा दो तो अभय हों ॥ ३ ॥ करुणा के अयन कही स्थाने लाल कमलदल नयन हैं। शोभा का स्थान मुख, उसकी मन्द हँसनि तीनों ताप का नाश करनेवाली है । अपर भूषण अंग अंग के शोभित । कर में कंकन कही कड़ा शोभित । सुन्दर वनमाला आदि उर पर गजमोतियों का हार । श्याम शरीर मानों श्याम मेघ उस पर मोतियों की माला, मानों दो बगपाँति मेघ में मिलकर चली हैं। यहाँ प्रथम पद में रूपक अलंकार और दूसरे में उत्प्रेक्षा अलंकार है। इस पद में राजसमाज सहित सिंहासन पर वर्णन है ॥ ४ ॥ श्यामशरीर मानों मर्कतमणि का पर्वत है । उसपर पीताम्बर निर्मल ॥२८ । मानों पृथुल कही समूह दामिनी अपना चंचल स्वभाव तजि सहज ही में थिर होकर छा रही है। पीन कही पुष्ट भुजा । आजानु । अतुल है बल जिन में। तिन में सुन्दर धनुष बाण धारण किये। मनुज का ऐसा रूप। दैत्यवन को भस्म करने को अग्नि है ॥ ५ ॥ पृथ्वी को भूषित करनेवाले हैं । जिनके रूप गुण का कोई निर्गुण या सगुण करि वर्णन करे तो कलित कही शोभित नहीं होता । भाव यथार्थ निश्चय कोई नहीं कर सकता इससे शंभु सनकादि तिनकी भक्ति को दृढ़ करिकै पकड़ी है । ऐसे रघुनाथजी के चरणकमलों में तुलसीदास मन वच कर्म करि निरन्तर प्रीति का निर्वाह चाहता है ॥ ६ ॥

रामराज राजमौलि मुनिबर मनहरन सरन
लायक सुखदायक रघुनायक देखो री।
लोक लोचनाभिराम नीलमनि तमाल श्याम
रूपसील धाम अंग अंग छबि अनंग को री ॥ १ ॥

भ्राजत सिर मुकुट पुरटनिर्मित मनिरचित चारु
कुंचित कच रुचिर परम सोभा नहिं थोरी ।
मनहुँ चंचरीक पुञ्ज कन्द बृन्द प्रीति लागि
गुञ्जत कलगान तान दिनमनि रिझयो री ॥ २ ॥

अरुन कंजदल बिसाल लोचन भ्रू तिलक भाल
मण्डित श्रुति कुण्डल बर सुन्दरतर जोरी ।
मनहुँ संबरारि मारि ललित मकर युग बिचारि
दीन्हें ससि कहँ तुरारि भ्राजत दुहुँ ओरी ॥ ३ ॥

सुन्दर नासा कपोल चिबुक अधर अरुन बोल
मधुर दसन राजत जब चितवत मुख मोरी ।
कंजकोस भीतर जनु कंज राग सिखर निकर
रुचिर रचित बिधि बिचित्र तड़ितरंग बोरी ॥ ४ ॥

कंबु कंठ उर बिसाल तुलसिका नवीन माल
मधुकर बर बास बिबस उपमा सुनु सोरी ।
जनु कलिन्दजात नील सैल ते धसी समीप
कन्द बृन्द बर्षत छबि मधुर घोरि घोरी ॥ ५ ॥

निर्मल अति पीत चैल दामिनि जनु जलद नील
राखी निज सोभा हित बिपुल बिधि निहोरी ।
नैननि को फल बिसेष ब्रह्म अगुन सगुन बेष
निरखहु तजि पलक सफल जीवन ले खोरी ॥ ६ ॥

सुन्दर सीतासमेत सोभित करुना निकेत
सेवक सुख देत लेत चितवत चित चोरी ।
बरनत यह अमित रूप थकित निगम नाग भूप
तुलसिदास छबि बिलोकि शारद भइ भोरी ॥ ७ ॥

राजों के जो राजा तिनके शिरमौर रघुनाथजी श्रेष्ठ मुनियों के मन के हरणहार शरण सुग्रीव विभीषणादि को सुख देने लायक ऐसे रघुनाथ को देखो री। हे सखियो, जगत् के नेत्रों के अभि-राम कही आनन्ददाता नीलमणि सम चमक और चिक्कन तमालसम श्यामरूप शील-गुण के धाम । जिनके अंग में कोरि कही करोड़ों काम की छवि है ॥ १ ॥ पुरट सोना उससे निर्मित अर्थात् बना और मणियों से रचित कही चित्रित। ऐसा सुन्दर मुकुट शीश पर भ्राजत है। उसके तले कुंचित कही टेढ़े कच जो हैं बाल सो परम सुन्दर तिनकी शोभा थोरी नहीं अर्थात् बड़ी है। वे बाल मानों चंचरीक कही भ्रमरन के गण हैं । नेत्र व मुख वही मानों कमलों के वृन्द हैं। तिनकी प्रीति हेतु गुंजारते हैं। सो सुन्दर तान सहित गान करि । मुकुट मानों सूर्य है । तिनको रिझाया है। जिसमें सदा उदित रहैं तो कमल प्रफुल्लित रहैं ॥ २ ॥ लाल कमल दल सम नेत्र। विशाल कही बड़े। तिन पर सुंदरी भ्रू कही भृकुटी। तिनके बीच माथेपर तिलक मण्डित कही भूषित है । अत्यंत सुन्दर श्रेष्ठ कुण्डलों की जोड़ी कानों में शोभित। मानों शम्बरारि जो कन्दर्प उसको मार उसकी ध्वजा के दो मकर सुन्दर विचार कर शिवजी ने चन्द्रमा को दिये, सो दोनों ओर विराजमान हैं । यहाँ मुख चंद्रमा । कुंडल काम के ध्वजा के मकर हैं ॥ ३ ॥ नासिका कपोल दाढ़ी सुंदर। जब मुख मोड़कर तिरछी चितवनि चितै मधुर वचन बोलते हैं तब लाल

ओठन में दाँतों की पाँति कैसी शोभित होती मा नों मुख नहीं कमल का कोश है। उसके भीतर बिजली के रंग में बोरकर विधाता ने पद्मराग मणि के निकर समूह, शिखर कँगूरा रचे हैं। विचित्र आश्चर्यमय। सुन्दर हैं। यहाँ मुखकंज कोश है। दंत पद्मरागमणि के शिखर हैं। चमक बिजली का रंग है ॥ ४॥ शंख सम कंठ। चौड़ी छाती। उस पर फूल युत तुलसी की नवीन माला। उसके सुगन्धवश भ्रमर गुञ्जारते हैं। उसकी उपमा सुन री। हे सखी, तुलसी की माला मानों कलिन्दजात कही यमुनाजी की धारा है। रघुनाथजी का गात नील शैल है। उस पर से माला लटकी है, सोई मानों धारा धसी कही बही है। उसके समीप जो भौंर सो मानों कंद कही मेघन के वृन्द हैं। सो फूलों का रस पान करने में मुख से चू पड़ते हैं सो मानों मधुर छवि को घोर घोर कर बरसते हैं। गुञ्जार शब्द मानों गर्जन है ॥ ५ ॥ श्याम शरीर पर अत्यन्त निर्मल पीतांबर कैसा सोहता है मानों श्याम मेघ ने अपनी शोभा बढ़ाने के हेतु विविध प्रकार का निहोरा करके दामिनी को स्थिर करि अपने समीप रक्खा है यहाँ पीत चैल दामिनि में रूपक। जनु पद में उत्प्रेक्षा। नील जलद केवल उपमान, इससे रूपकातिशयोक्ति। तीनों मिल कर संकर अलंकार है। त्रिगुण से परे अगुण ब्रह्म सो सगुणरूप श्रीरघुनाथजी नेत्रों को विशेष फल की प्राप्ति है। तिन को पलक रहित हो निरखो तो जीवन जन्म सफल करि जानो॥ ६॥ अत्यंत कृपा कर सेवक को सुख देते हैं और जिस पर करुणा करके चितै देते हैं उसका मन चित्त चुरा लेते हैं भाव अपने में लगा लेते हैं ऐसे करुणा के स्थान श्रीरघुनाथजी जानकीजी सहित सुन्दर साकेत मन्दिर में विराजमान हैं। इससे यह रूप अमित है जिसका वर्णन करने में वेद और शेषजी थकित

भये। गोसाईंजी कहते हैं, जिनकी छवि देख शारदा भोरी बावली भई॥ ७॥

राग केदार।

सखी रघुनाथ रूप निहारु।
सरदबिधु रबिसुवन मनसिज मानभंजनहारु॥ १॥
स्याम सुभग सरीर जनमनकाम पूरनहारु।
चारु चंदन मनहुँ मरकत सिखर लसत निहारु॥ २॥
रुचिर उर उपबीत राजत पदिकगन मनिहारु।
मनहुँ सुरधनु नखतगन बिच तिमिरगंजनहारु॥ ३॥
नील पीत दुकूल दामिनि द्युतिबिनिन्दनिहारु।
बदन सुखमा सदन सोभित मदनमोह निहारु॥ ४॥
सकल अंग अनूप नहिं कोउ सुकबि बरननिहारु।
दास तुलसी निरखि त्यहि सुख लहत निरखनिहारु॥ ५॥

शरद की निर्मलता मुख सो रविसुवन अश्विनीकुमार या केवल प्रताप दै उपमा दै दिये। और मन मनसिज की शोभा इत्यादि। काम के अभिमान के भञ्जनहार श्रीरघुनाथजी का रूप। उसको हे सखी निहारु॥ १॥ जनक की मनोकामना को पूर्ण करनेवाले जो सुन्दर श्याम शरीर हैं, सोई मानो मरकतमणि का शिखर है। उस पर चन्दन का लेप मानों निहारु कही बरफ है। निहारस्तुषारस्तुहिनमित्यमरः॥ २॥ उर में सुन्दर यज्ञोपवीत और पदिक कही जड़ाऊ चौकी उसके ढिग गजमुक्ता का हार शोभित। पीत यज्ञोपवीत श्याम तन में हरित द्युति टेढ़ी रीति

से श्याम तन पर राजत सो मानों इन्द्रधनुष है। गजमुक्ता नक्षत्रगण हैं। उनके बीच पदिक सो तिमिर के गंजनहार सूर्य हैं ॥ ३ ॥ दामिनि की द्युति की निन्दा करनेवाला विशेष निर्मल पीत वसन श्याम अंग पर शोभित। मदन के मन को मोहनेवाला शोभा का सदन सुन्दर वदन राजता है जिनका ॥ ४ ॥ मुख उर कर पदादि यावत् अंग हैं सो अनूप हैं। जिनका वर्णन करनेवाला कोऊ कवि नहीं है, जो उपमा दे सके। गोसाईंजी कहते हैं, देखनेवाला देखते ही में सुख को प्राप्त होता है, इससे वर्णन करते नहीं बनता। बिना भूषण भूषित तन उसको रूप कहिए ॥ ५ ॥

सखि रघुबीर मुख छबि देखु।
चित्त भीति सुप्रीति रंग स्वरूप ता अवरेखु ॥ १ ॥
नयन सुखमा निरखि नागरि सफल जीवन लेखु।
मनहुँ बिधि जुग जलज बिरचे ससि सपूरन मेखु ॥ २ ॥
भृकुटि भाल बिसाल राजित रुचिर कुमकुमरेखु।
भ्रमर द्वै रबि किरन लाये करन जन उनमेखु ॥ ३ ॥
सुमुखि केस सुदेस सुन्दर सुमन संजुत पेखु।
मनहुँ उडुगन बाहु आये मिलन तम तजि द्वेषु ॥ ४ ॥
श्रवन कुण्डल मनहुँ गुरु कवि करत बाद बिसेषु।
नासिका द्विज अधर जनु रह्यो कदन करि बपुबेषु ॥ ५ ॥
रूप बर्नि न सकत नारद संभु सारद सेषु।
कहै तुलसीदास क्यों मतिमन्द सकल जनेषु ॥ ६ ॥

यहाँ प्रीति के अंग करिकै चित्त की माधुरी छवि का अवलोकन वर्णन है। इससे सहित अंग प्रीति का अरु छवि का

लिखित है । प्रीति यथा । प्रणय प्रेम आसक्ति पुनि लगन लाग अनुराग । नेह सहित सव प्रीति के जानत अंग विभाग ॥ १ ॥ मम तव तव मम प्रणय यह सौम्य दृष्टि तेहि होइ । प्रीति उमँग सोइ प्रेम है विह्वल दृष्टी सोइ ॥ २ ॥ चित अशक्त आशक्ति सोइ यकटक दृष्टी ताहि । बनी रहै सुधि लगन की उत्कण्ठा दृग माँहि ॥ ३ ॥ जाके रस में लीन चित चाप दृष्टि सोइ लाग। जासु प्रीति में रँग रँगे मस्त दृष्टि अनुराग ॥ ४ ॥ मिलनि हँसनि बोलनि भलो ललित दृष्टि सो नेह । प्रीति होय व्योहार शुभ दृष्टि अधीन सनेह ॥ ५ ॥ इति प्रीति अंग । अथ शोभा अंग ॥ द्युति लावण्य स्वरूप पुनि सुन्दरता रमणीय । कान्ति मधुर मृदुता बहुरि सुकुमारता गनीय ॥ १ ॥ शरद चन्द की झलक सम द्युति तन माँहि लखाइ। मुक्ता पानिप सम गनौ लावण्यता सुभाइ ॥ २ ॥ बिन भूषण भूषित जु तनु रूप अनूपम गौर । सब अँग सुभग सुठौर शुचि सुन्दरता सिरमौर ॥ ३ ॥ देखी अनदेखी मनों रमनी अवनी सोइ । कांति अंग की ज्योति सम भूमि स्वर्ण सी होइ ॥ ४ ॥ देखत तृप्ति न मानिये तेहि माधुरी बखान । परसे-परस न जानिये सोई मृदुता जान ॥ ५ ॥ कमलदलन सों सेज रचि कोमल वसन डसाइ । नाक चढ़त बैठत तहाँ सुकुमारता सुभाइ ॥ ६ ॥ इति शोभा के अंग हैं । सो रघुनाथजी के रूप की स्वरूपता कही अंग अंग की माधुरी सों चित्त रूपी भीति पर प्रीति के जो अंग कह आये हैं सोई प्रीति के अंग हैं तिनको । अवरेषु कही लिख कर । हे सखी, रघुवीर के मुखमण्डल की छवि को बुद्धिरूपी नेत्रों से देख । चंचल बड़े कजरारे । मीन मृग खंजन वारे । लम्बी बरुनीयुत । बनकवारे । सब अंग सुठौर ऐसे पैने अनियारे नेत्र की सुन्दरता । उसके प्रेम अंग प्रीति-रंग से चित्त भीति पर लिखि बुद्धि करि विकल दृष्टि से निहारि।

हे नागरि चतुर सखी, अपना जीवन जन्म सफल करि लेखु। नेत्र सहित मुख की शोभा वर्णते हैं। मेष राशि पर चन्द्रमा शरद्पूर्णिमा को रहता है, उसकी झलक सम प्रकाशमय मुख की द्युति उसको आसक्ति अंग प्रीति रंग से चित्त भीति पर मुख की द्युति को लिखि इकटक दृष्टि करि चकोरवत् विलोकु। मुख में नेत्र कैसे शोभित हैं, मानों शरद्पूर्ण चन्द्र मध्य विधाता ने दो कमल विशेष करके रचे हैं। वे चंद्रमा के विरोध से विकाश कैसे होइँ। इसको देखु। आगे कहते हैं ॥ २॥ उन नेत्रों पर काम धनुष सम टेढ़ी भृकुटी, उन पर विशाल भाल, उस पर केसर के तिलक की दो रेखा, जिनके देखने की इच्छा सदा रहती है। ऐसी रमणीकता भृकुटी भालतिलक की। उसको प्रणय अंग प्रीति रँग से चित्त भीति पर लिख सौम्यदृष्टि से देख। कैसे शोभित होती है, मानो भृकुटी नहीं, भ्रमर हैं। नेत्र-कमलों के उन्मेख कहीं विकास करने के हेतु तिलकरूप रवि की किरण लाये, जिसमें नेत्र कमल विकास होय, हम रसपान करें॥ ३॥ विक्कन कारे चमकारे घूँघरवारे रसराज तमपन्नगवारे सुदेश अपने स्थान पर ऐसे अतर लगाये ऐसे बालों के बीच फूलों के गुच्छे। तिन सहित बालों की मृदुता को लोग अंग प्रीति रंग से चित्त भीति पर लिख चोप दृष्टि से हे सुमुखि, देख। कैसे सोहते हैं मानो बाल नहीं हैं अंधकार है। फूल मानो नक्षत्र हैं। तिनकी बाँह से द्वेष छोड़ तिलक रवि किरण के मिलन हेतु आया ॥ ४॥ कनकमणियों से रचित ज्योतिवन्त चञ्चल कुण्डल कानन में शोभित। उनकी कांति की लगन अंग प्रीति के रंग से चित्तरूपी भीति पर लिख उसको उत्कण्ठा-दृष्टि से देख। कैसी शोभा है, मानो श्रुति सोई वेद। उनमें कुण्डल गुरु कहीं बृहस्पति, कवि शुक्राचार्य, वे परस्पर वेद में वाद कर रहे हैं।

चञ्चलता कुण्डलों की सोई वाद है। नासिकायुत बुलाक मुसक्यानयुत दाँतों का लावण्य उसको नेह अङ्गप्रीति के रङ्ग से चित्तरूप भीति पर लिख ललित दृष्टि से देख। उसी के समीप अरुण रसीले कोमल ओठों की सुकुमारता, उसका अनुराग अङ्ग प्रीति रङ्ग से चित्तरूपी भीत पर लिख उसके रङ्ग में नेत्र रँगे समेत दृष्टि करि देख। सो नासिका दाँत ओठ कैसे शोभित होत, मानो मदन बहु वेष करि यहाँ रहता है। नासिका शुक वेष, तिल सुमन वेष; बुलाक शुक्र वेष; ओष्ठ कण वेष; दाँत हीरा वेष; दाड़िम बीज वेष; कुन्द कली वेष; मुसक्यान शशि-प्रभा वेष, कञ्जकोश में स्थिर दामिनी वेष; ओठ बिम्ब के पक्के फल वेष, बन्धुक-कुसुम वेष, विद्रुम वेष इत्यादि वेष करि मदनवास किये है। यहाँ नेत्रों की सुन्दरता प्रेम से विह्वल दृष्टि, मुख की प्रकाशता आसक्त करि एकटक दृष्टि, भाल भृकुटी तिलक की रमणीयता प्रणय से सौम्य दृष्टि, बालों की मृदुलता लाग करि चोप दृष्टि, कुण्डल की कांति में लगन से उत्कण्ठादृष्टि, दाँतों के लावण्य में नेह से ललित दृष्टि, ओठों की सुकुमारता में अनुराग से मत्त दृष्टि इत्यादि स्वरूप प्रीति के रंग से चित्त पर लिखि उसका देखना वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥ जो विना भूषण भूषित है. ऐसा सुन्दर रूप रघुनाथजी का उसके अंग अंग की माधुरी जो देखें वे देखने वाले तृप्त न हों। सोई माधुरी सर्वांग प्रीति के रंग से चित्तरूपी भीति पर लिखि तन मन धन वारि अपनपौ बिसारि आत्मा समर्पि अधीन दृष्टि से हे सखी, देख। कैसा रूप है, जिसका वर्णन मुनि भक्तों में श्रेष्ठ नारद नहीं कर सकते। भक्त शिरोमणि शिवजी वर्णन नहीं कर सकते। कवियों में श्रेष्ठ शेष, पण्डितों में शारदा भी वर्णन नहीं कर सकतीं उसको मैं तुलसीदास नरों में मतिमन्द कैसे वर्णन करूँ ॥ ६ ॥

राग जैतश्री ।

देखो राघव बदन बिराजत चारु ।
जात न बरनि बिलोकत ही सुख
मुख कीधौं छबि बरनारि सिंगारु ॥ १ ॥
रुचिर चिबुक रद जोति अनूपम
अधर अरुन सित हास निहारु ।
मानौ ससि कर बस्यो चहत कमल महँ
प्रकटत दुरत न बनत बिचारु ॥ २ ॥
नासिक सुभग मनहुँ ससि सुन्दर
चितवत चकित चरज अपारु ।
कल कपोल मृदु बोल मनोहर
रीझि चित चतुर अपनपौ बारु ॥ ३ ॥
निगम सेष सारद सुक संकर
बरनत रूप न पावत पारु ।
तुलसिदास कहै कहौं कौन बिधि
अति लघु मति जड़ कूर गँवारु ॥ ४ ॥

हे सखी, देखो राघवजी का सुन्दर वदन विराजता है। जिस के देखते ही देखनेवाले सुख में बूड़ जाते हैं, इससे वर्णन किया नहीं जाता तब प्रेम में विह्वल हो कुछ कहते हैं कि सुन्दर मुख है, या श्रेष्ठ छविरूपा नारी उसके अंग-अंग का शृंगार है। प्रथम छवि के अंग लिखे हैं ॥ १ ॥ सुन्दर दाढ़ी पर लाल ओठों के

मध्य दाँतों की ज्योति अनूप है । उनकी मन्द हँसनि उज्ज्वलता है सेखी निहारु। सो हँसनि मानों चन्द्रमा की कर कही किरण है। सो ओठ रूप कमल में वसा चाहती है सो विचार नहीं बनता, इससे प्रकटती है । दुरत हँसनि आना प्रकटता है, बन्द होना छिपना है ॥ २ ॥ सुन्दर नासिका मानों तोते का मुख है । यह आश्चर्य अपर मानि देखनेवाले चित्त चकित हो देखते हैं। सुन्दर कपोल मधुर बोल, मन को हरनेवाले । उनको सुन चित्त में जो चतुर हैं वे रीझ कर अपनपौ जो है देह की सुध या अपनी आतमा वारते हैं ॥ ३ ॥ टेढ़े बालों में सुन्दर कुण्डल कमलसम नेत्रों पर सुन्दरी भृकुटी, उन पर सुन्दर विशाल भाल पर तिलक इत्यादि शोभा का सार स्वरूप है। कुण्डल नहीं हैं मानों काम की ध्वजा के मकर हैं । भृकुटी धनुष है । तिलकरेख बाण है। रघुनाथजी का रूप देख काम मोहित है इससे चाप शर मकर इत्यादि भूल गया ॥ ४ ॥ सबका ज्ञाता वेद कवियों में शेष कोविदों में शारदा ज्ञानियों में शुकदेव भक्तों में शङ्कर इत्यादि सब वर्णते हैं, पर रूपसमुद्र के पार नहीं जा सकते । गोसाईंजी कहते हैं कि उस रूप को मैं किस विधि कहूँ । बुद्धि से लघु मन से जड़ चित्त से क्रूर कही कठोर सुजानता से गँवार ॥ ५ ॥

राग बिलावल।

आजु रघुपति मुख देखत लागत सुख
सेवक सुरुख सोभा सरद ससि सिहाई।
दसन बसन लाल बिसद हास रसाल
मानो हिमकर कर राखे राजीव मनाई ॥ १ ॥

अरुन नयन बिसाल ललित भृकुटी भाल
　　तिलक चारुतर कपोल चिबुक नासिका सुहाई।
बिथुरे कुटिल कच मानहुँ मधु लालच अलि
　　नलिन जुगल ऊपर रहे लोभाई ॥ २ ॥
श्रवन सुन्दर सम कुण्डल कल जुग्म
　　तुलसिदास अनूप उपमा कही न जाई ।
मनहु मरकत सीप सुन्दर ससि समीप
　　कनक मकर जुत बिधि बिरचि बनाई ॥ ३ ॥

सु कहे सुन्दर-सुखपूर्वक अर्थात् अनुकूल हैं सेवकों पर। हे आली, इससे आज रघुपति का मुख देखे से सुखदायक लगता है। जिसकी शोभा देख शरद पूर्णिमा सिहाती है। जिसमें दशन बसन कही ओठ सो लाल हैं। उनके बीच सुन्दरि हँसनि रसीली है। सो मानों हिमकर चन्द्रमा उसके कर कही किरणें हैं। उनको मुख-कमल ने मानों मनाइ कही विरोध छुड़ा कर अपने में रक्खा है ॥ १ ॥ रतनारे विशाल नेत्र उन पर सुन्दरी भृकुटी। उन पर सुन्दर भाल, उसमें अत्यंत सुन्दर तिलक और सुन्दर कपोल और टेढ़ी बीच में नासिका देखने में सोहाती है। श्याम चिक्कन टेढ़े बिथुरे बाल मानों भ्रमर हैं। सो शोभारूप मधु के लालच से दोनों नेत्र-नलिन कही कमलों पर लुभा रहे हैं ॥ २ ॥ श्रवणों में कुण्डल सम, यथा कान सुन्दर वैसे ही कुण्डल सुन्दर। युग्म दो। गोसाईंजी कहते हैं कि उनकी उपमा कही नहीं जाती। जगत् में ऐसा पदार्थ नहीं है, जिसकी समता दें। इससे अनूप है। जैसी तीनों काल में नहीं भई, ऐसी अद्भुत उपमा ठहराई मानों कान नहीं, मरकत मणि के सीप हैं। सुन्दर कुण्डल नहीं,

मानो कनक के मकर कही मछली हैं । तिन सहित मरकत के सीप सुंदर चंद्रमा के समीप ब्रह्मा ने विशेष रचकर बनाये हैं॥ ३॥

प्रातकाल रघुबीर बदन छबि चितौ चतुर चित मेरे ।
होइ बिबेक बिलोचन निर्मल सफल सुसीतल तेरे ॥ १ ॥
भाल बिसाल बिकट भृकुटी बिच तिलकरेख रुचि राजै ।
मनहुँ मदन तम तकि मरकत धनु जुगल कनक सर साजै॥ २ ॥
रुचिर पलक लोचन जुग तारक स्याम अरुन सित कोये ।
जनु अलि नलिन कोस महँ बंधुक सुमन सेज सजि सोये ॥ ३ ॥
बिलुलित ललित कपोलन पर कच मेचक कुटिल सोहाये ।
मनु बिधु महँ बनरुह बिलोकि अलि बिपुल सकौतुक आये ॥ ४ ॥
सोभित श्रवन कनक कुंडल कल लंबित बिबि भुज मूले ।
मनहुँ केकि तकि गहन चहत जुग उरग इंदु प्रतिकूले ॥ ५ ॥
अधर अरुन तर दसन पाँति बर मधुर मनोहर हासा ।
मनहुँ सोन सरसिज महँ कुलिसनि तड़ित सहित कृत वासा ॥ ६ ॥
चारु चिबुक सुक तुण्ड विनिंदक सुभग सु उन्नत नासा ।
तुलसिदास छबि धाम रामसुख सुखद समन भवत्रासा ॥ ७ ॥

हे मेरे चित्त चतुर, प्रभात काल रघुवीर के वदन की छवि देख तो तेरे विवेक के नेत्र मोहादि मल से रहित हों । नेत्रों का विषय रूप उसको इच्छा भरि निहार जिससे सफल हो, जग की ताप जाय । ताते शीतल हो चित्त चतुर बड़ाई दे सम्मुख करे ॥ १ ॥ विशाल भाल पर टेढ़ी भृकुटियों के बीच केसर के तिलक की रेखा रूप दो कनक के बाण साजे हैं ॥ २ ॥ सुन्दरी

पलकों से युत नेत्र उनके बीच तारक जो पुतली हैं सो श्याम हैं और कोये कही कोवा सो श्वेत अरुण मिश्रित हैं । नेत्र सोई नलिन कही कमल के कोश हैं । पलक की ललाई बन्धूक दुपहरी के फूलों की शय्या है, उसको सज कर पुतली रूप भ्रमर मानो शयन किये हैं ॥ ३ ॥ श्याम टेढ़े उलझे बाल सुन्दर कपोलों पर देखते सोहाते हैं। मानो मुखचन्द्र में नेत्ररूप कमल आश्चर्य देख उस पर बाल रूप भ्रमर समूह कौतुक कही परस्पर क्रीड़ा करते आये ॥ ४ ॥ बिबि कही दोनों भुजा लम्बायमान । तिनकी लूम पर कल कही सुन्दर कनक के कुण्डल श्रवण में शोभित हैं । मानो मुख रूप चन्द्रमा से प्रतिकूल कही विमुख भुजरूप सर्पन को देखि तिनको कुण्डल रूप केकी जो मयूर सो पकड़ा चाहते हैं ॥५॥ अत्यंत सुन्दर लाल ओठों के मध्य दाँतों की श्रेष्ठ पाँति उसकी मधुर हँसनि मन की हरनेवाली है। दाँत नहीं हैं, मानो हीरों का समूह है। हँसनि रूप तड़ित के साथ ओठरूप सोने के कमल में वास किये हैं ॥ ६ ॥ सुंदर दाढ़ी है। सुवा की चोंच की बनक को निन्दनेवाली उन्नत सुन्दर नासिका है । गोसाईंजी कहते हैं कि छवि का धाम राममुख सुखदाता दुःख भव की त्रास को नाशनेवाला है ॥ ७ ॥

राग केदार ।

सुमिरत श्रीरघुबीर की बाँहैं।
होत सुभग भव उदधि अगम अति,
कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहैं ॥ १ ॥
सुन्दर स्याम सरीर सैल ते,
धँसि जनु द्वै जमुना अवगाहैं ।

अमित अमल जल बल परिपूरन,
जनु जनमी सिंगार सविता हैं ॥ २ ॥
धारै बान कूल भनु भूषन,
जलचर भौंर सुभग सबघा हैं।
बिलसत बीचि बिजय बिरदावलि,
कर सरोज सोहत सुषमा हैं ॥ ३ ॥
सकल भुवन मंगल मंदिर को,
द्वार बिसाल सोहाई साहैं ।
जे पूजी कौसिक मख ऋषियन,
जनक गनप संकर गिरिजा हैं ॥ ४ ॥
भवधनु दलि जानकी बिबाही,
भये बिहाल नृपाल त्रपा हैं ।
परसि पानि जिन कियो महामुनि,
जो चितये कबहूँ न कृपा हैं ॥ ५ ॥
जातुधान तिय जानि बियोगिनि,
दुखई सीय सुनाइ कुचाहैं ।
जिन रिपु मारि सुरारि नारि तेइ,
सीस उघारि देवाई धाहैं ॥ ६ ॥
दसमुख बिबस त्रिलोक लोकपति,
बिकल बिनाये नाक चना हैं ।

सुबसबसे गावत जिनको जस,
अमर नाग नर सुमुखि सनाहैं ॥ ७ ॥
जे भुज बेद पुरान सेस सुक,
सारद सहित सनेह सराहैं ।
कलपलतहु की कलपलता बर,
कामदुहहु की कामदुहा हैं ॥ ८ ॥
सरनागत आरत प्रनतन को,
दै दै अभय पद और निबाहैं ।
करि आईं करि हैं करती हैं,
तुलसिदास दासन पर छाँहैं ॥ ९ ॥

यहाँ तक माधुरी का अवलोकन है, इससे सखियों का अधिकार। शृंगाररस में मुख की विशेष शोभा कही। अब अपर अंग का वर्णन ऐश्वर्य सहित करते हैं। श्रीरघुवीर की बाहुओं को स्मरण मात्र करते ही अत्यन्त अगम जो भवसागर सो सुगम होता है। कोई लाँघता है। जो वासनारहित भक्त हैं वे तुरन्त पार हो जाते हैं। जो वासनासहित हैं वे थाहै उतरत कही प्रारब्ध अनुकूल जग में दुःख सुख भोग करि कुछ देर में पार जाते हैं॥ १॥ श्यामरूप पर्वत सो भुजारूप मानों दो यमुनाजी की धारा अथाह धसीं नीचे को बही हैं। मितिरहित निर्मल बल सोई जल सें परिपूर्ण है। यमुना सूर्य से उत्पन्न हुई हैं। यहाँ शृंगाररस सोई सविता कही सूर्य हैं, उनसे भुजारूप यमुना उत्पन्न हुई हैं॥ २॥ धारण किये हैं बाण धनुष वही दोनो कूल हैं या बाण जिसकी धारा है। धनुष कूल। दो भुजाओं के भूषण वही जलचर

हैं। घाहैं कही अँगुलियों के बीच के गावा वहां सुन्दर भ्रमर पड़ते हैं। शत्रुओं को पराजित करि अपनी विजय पाई है। उसकी बिरदावली यश का वर्णन सोई बीचि कही तरंगों का विलास है। सुषमा कही शोभा सहित जो कर शोभित सोई सरोज कही कमल हैं ॥ ३ ॥ जिनके भय से अमंगल रहा ऐसे राक्षसों को मार रघुनाथजी ने मंगल ब्रह्मांड में कराया इससे सकल भुवन मंगलरूप मन्दिर के द्वार की सुहाई कही सुन्दरी साहै कहे बाजू हैं भुजा। भाव मंगल मन्दिर का द्वार भुजन के आधार हैं। इसका प्रमाण विश्वामित्र सहित ऋषीश्वरों ने जिन भुजाओं को पूज यज्ञरूप मंगल पूर्ण किया। जनकजी ने पूज प्रण स्वयंवररूप मंगल पूर्ण किया। गनप गणेश पूज अग्र-पूजनीय मंगलरूप हुए। शिवजी जिनको पूज अविनाशी हो काशी में मुक्ति-दाता हुए, जो अमंगल वेष किये मंगलराशि हैं गिरिजा, जिनको पूज शिवजी के अर्द्धांग में वास पाइ सुहाग मंगल करि पूर्ण हुईं इत्यादि ॥ ४ ॥ भव जो शिवजी तिनका धनुष जिन भुजाओं ने तोड़ जानकीजी को विवाहा, उसको देख दुष्ट नृपाल त्रपा कही लज्जा के वश विहाल भये और जो कृपा करि कभी किसी को नहीं चितये ऐसे तीक्ष्ण स्वभाववाले परशुरामजी को जिन भुजाओं ने महामुनि किया। भाव सन्तोषरूप बनाया ॥ ५ ॥ श्रीजानकीजी को वियोगिनी जान राक्षसों की स्त्री कुचाहैं सुनाय दुःख देती भईं। जिन भुजाओं से। वही रिपुओं को मार तिन राक्षसियों के शीश उघारकर धाहै कहे दुहाई दिवा कर हनुमान्जी के क्रोध का भय करिकै जो दुःखदायी राक्षसी वही शीश उघारि जानकीजी की दुहाई देती भईं ॥ ६ ॥ तीनो लोक के लोकपालों को विशेष वश करके रावण ने विकल कर नाक से चना बिन-वाये, ऐसे रावण का वंशसमेत नाश कर, जिन भुजाओं ने सबको

अभय किया इससे सुबसबसे तीनो लोक, अमर स्वर्गवासी, नाग पातालवासी, नर मृत्युलोकवासी, तिनकी स्त्री सनाहैं कही पतिन सहित अपने घर में निर्भय हो आनंदसहित जिन भुजाओं का पावन यश सदा प्रेम से गान करती हैं ॥ ७ ॥ जिन भुजाओं को चारो वेद, अठारह पुराण, शेष, शुकदेव, शारदादि सराहते कही प्रशंसा करते हैं कि ये भुजा कल्पलता की भी कल्पलता। वर कही श्रेष्ठ हैं। और कामधेनु की भी कामधेनु हैं। भाव जो कल्पवृक्ष कामधेनु सबका मनोरथ पूर्ण करते हैं, उनका भी मनोरथ पूर्ण करनेवाली हैं ॥ ८ ॥ प्रणत कही नम्रतायुत जो आरत जीव शरणागत हैं तिनको अभयपद देकर ओर कही अंत तक निर्वाह करती हैं। गोसाईंजी कहते हैं वही भुजा अपने दासों पर छाहीं प्रथम कर आई हैं, पीछे करेंगी, अब करती हैं ॥ ९ ॥

राग भैरव

रामचन्द्र करकंज कामतरु बामदेव हितकारी।
सियसनेहबरबेलि बलित बर प्रेमबन्धुबर बारी ॥ १ ॥
मंजुल मंगलमूल मूलतनु करज मनोहर शाखा।
रोम परन नख सुमन सुफल सबकाल सुजन अभिलाखा ॥ २ ॥
अबिचल अमल अनामय अबिरल ललित रहित छल-छाया।
समन सकलसंताप पापरुज मोह मान मद माया ॥ ३ ॥
सेवहिं सुचि मुनि भृङ्ग बिहँग मन मुदित मनोरथ पाये।
सुमिरत हिय हुलास तुलसी अनुराग उमँगि गुन गाये ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजी का करकमल शिवजी का हितकारी कल्पवृक्ष

है। जानकीजी का स्नेह सोई एक सुन्दर श्रेष्ठ लता है। उससे वलित कही वेष्टित है बंधु लक्ष्मणजी का उत्तम प्रेम। वही जिसकी बारी कही घेरा है ॥ १ ॥ उज्ज्वल मंगल का मूल जो तन है, वही मूल। इसमें करज कही अँगुरी वही हैं शाखा मन की हरनेवाली। रोम सोई पत्र हैं, नख सोई फूल। सब काल में सज्जन की अविषाद सोई फल है ॥ २ ॥ उसकी छाँह अविचल सदा एकरस शीतल है। इससे संताप कही त्रिताप का नाश करती है। अमल है इससे मल पापादिक का नाश करती है। अनामय है इससे रुज कही रोग का नाश करती है। अविरल कही सघन है इससे मोहतपन की किरण नहीं आ सकती। देखने में ललित है इससे मानमद का नाश करती है। छल से रहित इससे माया का नाश करती है इत्यादि गुण जिसकी छाँह में ॥ ३ ॥ बांछालित शुचि कही पवित्र मनवाले मुनि ते भृङ्ग हो सेवते, केवल मकरन्दरूप माधुरी चाहते हैं और जे मनोरथ पाकर मन में आनन्द हो सेवते हैं, ते विहंग हो फल के ग्राहक। गोसाईंजी कहते हैं, जो हृदय में हुलासयुत स्मरण करते हैं, सो भृङ्ग हैं और जो अनुरागपूर्वक उमँग से गुणगान करते हैं सो फलग्राहक विहंग हैं ॥ ४ ॥

रामचरन अभिराम कामप्रद तीरथराज बिराजै।
संकरहृदयभक्तिभूतल पर प्रेम अछयबट राजै ॥ १ ॥
स्यामबरन पद पृष्ठ अरुन तल लसत बिसद नख श्रेनी।
जनु रविसुता सारदा सुरसरि मिलि चलि ललित त्रिबेनी ॥ २ ॥
अंकुस कुलिस कमलधुज सुन्दर भँवरतरंग बिलासा।
मज्जहिं सुर सज्जन मुनिजन मन मुदित मनोहर बासा ॥ ३ ॥

बिनु बिराग जप जाग जोग ब्रत बिनु तीरथ तनु त्यागे ।
सब सुख सुलभ दास तुलसी प्रभुपद प्रयाग अनुरागे ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजी के चरण का तीर्थराज का सावयव रूपक करि वर्णन करते हैं। सुन्दर मनोकामना का दाता रघुनाथजी का चरण-रूप तीर्थराज विराजता है। शंकर के हृदय में जो भक्ति है सोई भूमिथल है। भक्ति में जो प्रेम है सोई चरणरूप तीर्थराज में अक्षयवट है ॥ १ ॥ पद का पृष्ठ श्यामवर्ण। तल कही तरवा। अरुण कही लालवर्ण। नखन की श्रेणी कही पंक्ति। ते विशद कही उज्ज्वल। लसत कही विराजती हैं। मानो यमुना, सरस्वती, गंगाजी मिलकर ललित त्रिवेणी हो बह चलीं। यथा सरस्वती गुप्त तथा ॥ २ ॥ अंकुश, वज्र, ध्वजा, कमल आदि जो चिह्न वही भ्रमर और तरंगों का विलास है। सज्जन तेई देवता हैं। तिनके श्रवण कीर्त्तन के प्रेम का पुलकांग सोई सुर सज्जन का मज्जन है। और मननशील जो मुनिजन मन को लगाकर आनन्द से ध्यान करते हैं सोई वास करना है ॥ ३ ॥ वैराग्य जप यज्ञ योग व्रत तीर्थ में तनुत्यागादि विना किये गोसाईंजी कहते हैं कि प्रभु के पदप्रयाग में अनुराग किये सब सुख सद्य कही तुरन्त ही सुलभ हैं ॥ ४ ॥

रघुबररूप बिलोकु नेकु मन ।
सकल लोक लोचन सुखदायक,
नख सिख सुभग स्याम सुन्दर तन ॥ १ ॥
चारु चरन तल चिह्न चारि फल,
चारि देत परिचारि जानि जन ।

राजत नख जनु कमलदलन पर,
अरुनप्रभा रंजित तुषारकन ॥ २ ॥

जंघा जानु आनु उर उरु कटि,
किंकिनिजुत पट पीत सुहावन ।
रुचिर नितंब नाभि रोमावलि,
त्रिबलि बलित उपमा कछु आव न ॥ ३ ॥

भृगुपदचिह्न पदिक उर सोभित,
मुक्तमाल कुंकुम अरु लेपन ।
मनहुँ परस्पर मिलि पंकज रवि,
प्रकट्यो निज अनुराग सुजस घन ॥ ४ ॥

बाहु बिसाल ललित सायक धनु,
कर कंकन केयूर महा धन ।
बिमल दुकूल दलन दामिनि दुति,
यज्ञोपवीत लसत अति पावन ॥ ५ ॥

कंबु ग्रीव छबि सीव चिबुक द्विज,
अधर कपोल बोल भयमोचन ।
नासिक सुभग कृपा परिपूरन,
तरुन अरुन राजीव बिलोचन ॥ ६ ॥

भृकुटि कुटिल बर भाल तिलक रुचि,
सुचि सुन्दरतर श्रवन बिभूषन ।

मनहुँ मार मनसिज पुरारि दिये,
ससिहि चाप सर मकर अदूषन ॥ ७ ॥
कुञ्चित कच कञ्चन किरीट सिर,
जड़ित ज्योतिमय बहुबिधि मनिगन ।
तुलसिदास रघुकुलरबि छबि कबि,
कहि न सकत सुक सम्भु सहसफन ॥ ८ ॥

अब नख-शिखरूप वर्णन करते हैं । मन, रघुवर का रूप नेक विलोक तो सुन्दर श्यामशरीर नख से शिखा तक अंग-अंग सुभग ठौर है, इससे सकल लोक के लोचन के सुख को देनेवाला रूप है। जो विना भूषण भूषित उसको रूपक कहिए ॥ १ ॥ सुन्दर चरणों के तलवे उनमें अड़तालिस चिह्न । जिनमें चार मुख्य हैं। दक्षिण पग में अँगूठे के समीप वज्रकमल है, और एँड़ी के समीप ध्वज अंकुश है। ये चार चिह्न कैसे हैं, जो अपने जनों को जानि परचारि कही ललकार कर चारो फल देते हैं। यथा वज्र पाप-नाशक, सो अर्थ देता है । कमल भवभयनाशक, सो धर्म देता है, ध्वजा विजयदायक, सो काम देती है । अंकुश ज्ञानदायक, सो मुक्ति देता है । नख कैसे सोहते हैं मानों कमल के दलों के ऊपर प्रभात सू॰ की प्रभायुत तुषार जो बरफ़ उसके कण रंजित कही शोभित हैं। उँगली कमलदलों पर तुषारकण। ललाई अरुण-प्रभा ॥ २ ॥ चरण ऊपर जाँघ उस पर जानुनी कही टिहुनी उस-पर ऊरू इत्यादि । उर में बसाउ, कटि में किंकिणीयुत पीतांबर सुहावना लगता है । नितम्ब, सुन्दर नाभि, उस पर त्रिबली तीन रेखा सो रोम-राजी से बलित कहा वेष्टित है । उसकी उपमा कुछ कहते नहीं बनती ॥ ३ ॥ भृगुपद का चिह्न और पदिक

जड़ाऊ चौकी और मोतियों की माला और केसर का लेप इत्यादि हृदय पर कैसे सोहते हैं मानों कमल और रवि पर सर्प अपना अनुराग सुयश घन कही समूह उसको प्रकट किया है। भृगुलता कमल है उसने अपना अनुराग सूर्य पर प्रकट किया सोई कुंकुम-लेप है। पदिक प्रकाशमय सूर्य हैं। उन्होंने अपनी किरणावली से तम का नाश कर कमल का विकाश किया। उसका सूर्यरूप प्रकट मोतियों की माला है। प्रीति से अनुराग होता है। कमल ने रवि से प्रीति की उससे अनुराग प्रकट। और बाहुबल से सुयश होता है। रवि अपने करबल से तम नाश कर कमल का हित करता है उससे सुयश प्रकट ॥ ४ ॥ विशाल कही लम्बायमान भुजा, उनमें ललित कही सुन्दर धनुषबाण धारण कर मूल में कंकन कही कड़ा शोभित भुजा में केयूर कही बहुत-सा महाधन कही अमोल नग जटित विमल कही निर्मल दुकूल वसन अर्थात् पीतरंग का जामा अंग में कैसा शोभित है कि दामिनी की द्युति दलता है। अति पावन पीतरंग का नवीन यज्ञोपवीत शोभित ॥ ५ ॥ छवि की मर्याद सरीखी शंख सम ग्रीवा में तीन रेखा। उन पर सुन्दर दाढ़ा, उसके समीप गोल कपोल, उसके पास अरुण रसीले ओठ, उनके बीच दाड़िमबीज सम दाँत, उस मुख के जो मधुर वचन सो भय को हरते हैं। सुन्दर नासिका नवीन अरुन कमलसम नेत्र सो कृपा से परिपूर्ण, भाव कृपा से भरे सज्जन पर अनुकूल ॥ ६ ॥ टेढ़ी भृकुटी श्रेष्ठ भाल पर तिलक रुचिर केसर का पवित्र अत्यंत सुन्दर। कानों में कुण्डल इत्यादि शोभित हैं, मानों शिवजी ने काम को मारकर उसके धनुष बाण और अदूषण मकरध्वज के सो चन्द्रमा को दिये हैं। भ्रुकुटी धनुष हैं। तिलक बाण हैं। कुण्डल मकर हैं। मुख चन्द्रमा है ॥ ७ ॥ टेढ़े चिकने बालों के ऊपर बहुविध मणियों से जटित प्रकाशमय कंचन का

किरीट' शिर पर शोभित इति। नखशिख छवि रविकुल के रवि रघुनाथजी। उसका वर्णन शुकदेव शंकर शेषादि कवि नहीं कर सकते, सो तुलसीदास कैसे कहे ॥ ८ ॥

राग कान्हरा

देखो रघुपतिछबि अतुलित अति।
जनु त्रिलोकसुखमा सकेलि बिधि,
राखी रुचिर अंग अंगन प्रति ॥ १ ॥
पदुमराग रुचि मृदु पदतल ध्वज,
अंकुस कुलिस कमल यहि सूरति।
रही आनि चहुँ बिधि भक्तन की,
जनु अनुराग भरी अन्तरगति ॥ २ ॥
सकल सुचिह्न सुजन सुखदायक,
ऊरध रेख बिसेष बिराजति।
मनहुँ भानुमण्डलहि सँवारत,
धरो सूत्र बिधिसुत बिचित्र मति ॥ ३ ॥
सुभग अँगुष्ठ आँगुरी अबिरल,
कछुक अरुन नखजोति जगमगति।
चरन पीठ उन्नत नतपालक,
गूढ़ गुलफ जंघा कदलीजति ॥ ४ ॥
कामतूनतल सरिस जानु जुग,
ऊरू करिकरभहि बिलखावति।

रसना रचित रतन चामीकर,
पीत बसन कटि कसे सरसावति ॥ ५ ॥
नाभी सर त्रिबली निसेनिका,
रोमराजि सेवार छबि पावति ।
उर मुकतामनि माल मनोहर,
मनहुँ हंस अवली उड़ि आवति ॥ ६ ॥
हृदय पदिक भृगुचरन चिह्न बर,
बाहु बिसाल जानु लगि पहुँचति ।
कल केयूर पूर कंचन मनि,
पहुँची मंजु कंज कर सोहति ॥ ७ ॥
सुजव सुरेख सुनख अंगुलिजुत,
सुन्दर पानि मुद्रिका राजति ।
अँगुलीत्रान कमान बानछबि,
सुरन सुखद असुरन उरशालति ॥ ८ ॥
स्याम सरीर सुचंदन चरचित,
पीत दुकूल अधिक छबि छाजति ।
नील जलद पर निरखि चन्द्रिका,
दुरनि त्यागि दामिनि जनु दमकति ॥ ९ ॥
यज्ञोपवीत पुनीत बिराजत,
गूढ़ जत्रुवनि पीन अंसतति ।

सुभट पुष्ट उन्नत कृकाटिका,
कम्बु कण्ठ सोभा मन मानति ॥ १० ॥
सरद समय सरसीरुहनिन्दक,
मुख सुखमा कछु कहत न बानति ।
निरखत ही नयनन निरुपम सुख,
रबिसुत मदन सोमदुति निदरति ॥ ११ ॥
अरुन अधर द्विजपाँति अनूपम,
ललित हँसनि जन मन आकर्षति ।
बिद्रुमरचित बिमान मध्य मानों,
सुरमण्डली सुमन जय बर्षति ॥ १२ ॥
मंजुल चिबुक मनोहर हनुथल,
कलकपोल नासा मनमोहति ।
पंकजमान बिमोचन लोचन,
चितवनि चारु अमृतजल सींचति ॥ १३ ॥
केस सुदेस गँभीर बचन बर,
श्रुतिकुण्डल डोलनि जिय जागति ।
लखि नवनील पयोद रसित सुनि,
रुचिर मोर जोरी जनु नाचति ॥ १४ ॥
भौंहैं बंक मयंक अंक रुचि,
कुंकुमरेख भाल भलि भ्राजति ।

सिरसि हेम हीरा मानिकमय,
मुकुटप्रभा सब भुवन प्रकासति ॥ १५ ॥
बरनत रूप पार नहिं पावत,
निगम सेष सुक संकर भारति ।
तुलसिदास केहि बिधि बखानि कहैं,
यह मन बचन अगोचर मूरति ॥ १६ ॥

अति अतुलित छवि रघुपति की देखो, कैसी शोभित है मानों विधाता ने तीनों लोक की शोभा बटोर कर सुन्दर अंग-अंग प्रति रक्खी है ॥ १ ॥ पद्मराग जो लालमणि सम ललित कही तलवा उनमें ध्वजा अंकुश वज्र कमल आदि चार चिह्न ऐसी सूरत के शोभित हैं मानों चारो प्रकार के भक्तों की अन्तर्गति कही अन्तर्वासना अनुराग की भरी आकर प्रभु के चरणों में रही है। चार भक्त कौन हैं, प्रथम आरत यथा गज द्रौपदी सुग्रीव, जिनका प्रारब्ध पाकर कुसंकट पड़ा उसे मिटाने को पाप नाश करने की वासना करि प्रभु का स्मरण करते हैं। सो प्रभु की कृपा से पाप नाश भये । वे संकट छूट गये। पापनाशक वज्र चिह्न है। प्रमाण महारामायणे ॥ वज्राद्वज्रसमुत्पन्नो पापं यद्व-द्र्धयति च । ताते वज्र चिह्न नहीं है आरत भक्त का दुःख छुड़ाने को पाप नाश करने की वासना है। तलवों की ललाई सोई अनु-राग भरी है। दूसरे भक्त जिज्ञासु यथा परीक्षित, पार्वती, गरुड़, जो मोहादि फन्दों में बँधे वे भवसागर में पड़ने के भय से छूटने की वासना कर महात्माओं से उपदेश पाकर भक्ति पर आरूढ़ हो मोहादि फन्द से छूटे। भय नाश हुआ कमल चिह्न भवभय नाशक प्रमाण। पंकजात्पंकजं जातं विष्णुहस्ते मुदावहम्। न लीयते कदा-

चिद्द्वैतस्यध्यानीभवार्णवे ॥ कृतेपि कुत्रचिद्वासे पद्मपत्रमिवांभसा ॥ १ ॥ इससे कमल चिह्न नहीं है जिज्ञासुभक्त के भवसागर पार जाने की वासना है अनुराग भरी । तृतीय अर्थार्थी भक्त यथा ध्रुव अर्जुन विभीषण जो पराजय आदि की ग्लानि मानकर विजय की वासना से प्रभु के शरणागत हैं। वे विजय पाकर सर्वांग सुख को प्राप्त हुए । तथा ध्वज चिह्न विजयदायक है। प्रमाण—ध्वजया विजयो जातो । इससे ध्वजा चिह्न नहीं है, अर्थार्थी भक्त की विजय की वासना है । चतुर्थ ज्ञानी भक्त, यथा शुक सनकादि शम्भु, जो सकल वासना त्याग कर मत्त मातंग सरीखे मन को ज्ञानांकुश से प्रभु के सम्मुख करते हैं । तथा अंकुश चिह्न मन को प्रभु-सम्मुख करता है। प्रमाण महारामायणे—अंकुशाद्ज्ञानसंजातं सर्वलोकमलापहम् । प्रापयत्येव सन्मार्गं मत्त-मातंगजं मनः । इससे अंकुश नहीं है, ज्ञानी भक्त को ज्ञानांकुश से प्रभु सम्मुख मन करने की वासना है ॥ २ ॥ सुजनों के सुखदाता सब चिह्न सुन्दर हैं, तिनके मध्य एँड़ी से मध्यपर्यंत लाल रंग की ऊर्ध्व रेखा दक्षिणपद में विशेष शोभित। सो ऊर्ध्वरेखा नहीं है, मानों विचित्र मति विधिसुत विश्वकर्मा ने भानुमंडल सँवारने में सूर्य की रेखा दी है। पद की अरुणता भानुमंडल है ॥ ३ ॥ अवि-रल कही घनी अँगुरी, सुन्दर अँगूठा कुछ ललाई लिये नखों की ज्योति जगमगा रही है। पद की पीठ ऊँची नत कही शरण-पालक घुटुना गूढ़ हैं। उस पर जंघा कैसी सोहती तथा कदली के खंभा सुन्दर ॥ ४ ॥ काम के तरकस के नीचे भाग सरीखे जानुनी कही दोनों टिहुनी हैं। उन पर ऊरू कैसी शोभित। जो हाथी के बच्चा का मानमर्दन कर बिलखाती हैं। चामीकर सोना और रत्नों से रचित रसना कही किंकिणी पर बसति जो तरकस उस सहित पीताम्बर कटि में कसे हैं ॥ ५ ॥ नाभी तड़ाग है।

उस पर त्रिबली तीन रेखा सोई निसेनी कही सीढ़ी हैं। उस पर रोमन की पाँति सोई सेवारन की छवि सम सोहती है। उर पर मणि की व मोतियों की मनोहर माला सो मानों हंसन की पाँति उड़ी नाभी तड़ाग पर आती है ॥ ६ ॥ पदिक कही कंचन मणियों से जटित चौकी और भृगुपद-चिह्न जो भृगुलता सो उर कही हृदय पर शोभित, वर कही श्रेष्ठ। विशाल लम्बायमान। भुजा जानु कही टिहुनी तक पहुँचती हैं। कल कही सुन्दर केयूर जो पहूँटा सो कंचन से निर्मित मणियों से पूरि कही भरा सो भुजा पर शोभित। और कमलसम कर उसके मूल में सुन्दर पहुँची सोहती हैं ॥ ७ ॥ यवाकार रेखा सुन्दर नख ऐसी उँगली सहित सुन्दर पाणि, उनमें मुद्रिका विराजमान, रोदा की चपेट की रक्षा हेतु गोह के चाम का बनता है, सो दो उँगलियों में पहनते हैं। उसको अँगुली त्राण कही। प्रमाण वाल्मीकीये। बद्धगोधांगुलित्राणौ। सोई अँगुलीत्राण और धनुष बाण उसकी छवि कैसी, जो देवतों को सुखदाता और असुरों के उर में शालत कही छेदत ॥ ८ ॥ श्याम शरीर पर चन्दन की विचित्र रचना है। उसी शरीर पर पवित्र पीताम्बर अधिक छवि को छा रहा है। मानों नील मेघ पर चन्द्रिका को देख दुरनि जो छिप जाना उसको त्याग कर थिर हो दामिनी दमक रही है। श्याम तन मेघ। चन्दन चन्द्रिका। पीताम्बर दामिनी ॥ ९ ॥ पवित्र यज्ञोपवीत विराजता है। इससे गूढ़ कही ढकी है जत्रुवनि भुजा और अंसन की संधि है। तथा--स्कन्धो भुजशिरोंसो स्त्री संधी तस्यैव जत्रुणी इत्यमरः। अंस जो कन्धे सो पीन कही ऊँचे विस्तृत हैं, सुन्दर गढ़न पीठ की और कृकाटिका जो घाँटी सो उन्नत है। कंबु जो शंख तेहि सम कण्ठ में तान रेखा उसकी छवि को मन मानत कही प्रसन्न होती है। कृकाटिका यथा—कंबुग्रीवात्रिरेखासाऽवटु-

घाँटा कृकाटिका इत्यमरः ॥ १० ॥ शरद समय के कमल की निंदा करनेवाला मुख उसकी शोभा कुछ कहते नहीं बनती, उसको निरखते ही में नेत्रों का अनूप सुख होता है । कैसी द्युति है जो रविसुवन जो अश्विनीकुमार और मदन और चन्द्रमा, उनकी द्युति को निन्दित करती है मुख की द्युति ॥ ११ ॥ कोमल रसीले अरुणारे ओठों के बीच हीरा से दाँतों की पाँति की शोभा अनूप है और जनके मन को खींचनेवाली ललित हँसनि है लाल ओठ नहीं हैं, मानों मूँगा के रचित विमान हैं । उसके बीच दाँत नहीं मानों देवतों की मंडली है । हँसनि नहीं मानों देवतों के समूह फूलों की वृष्टि है ॥१२॥ मंजुल चिबुक कही सुन्दर दाढ़ी आदर्श-सम सुन्दर गोल कपोल उसके नीचे भाग को हनुथल कही सो मन को हरनेवाला है । सुन्दर नासिका मन को मोहती है । कमल के मान को छुड़ानेवाली है नेत्रों की चितवन सुन्दर अमृत जल सम सींचती है ॥ १३ ॥ केश जो बाल सुदेश कही ऐंछे चिक्कन अपने स्थान पर वर कही श्रेष्ठ वचन गम्भीर है । श्रुति जो कान उनमें कुण्डलों की डोलनि जागत कही जीव में प्रकाश करती है । बाल नहीं हैं, मानों नवीन श्याम मेघ हैं । उनको देख गंभीर वचन नहीं हैं, मानों मेघ का गर्जन है । उसको सुन कुण्डल मानों सुन्दर मयूर की जोड़ी हैं । वे हिलते हैं, सोई मानों मोर की जोड़ी नाच रही है ॥ १४ ॥ बङ्क कही टेढ़ी भौंहें मानों मुखचंद के अंक कही श्याम चिह्न, रुचिर कुंकुम कही रेखा-तिलक, सो भाल पर भली प्रकार से भ्राजता है हीरा माणिकमय हेम का मुकुट शीश पर शोभित है । कोटि सूर्य सम जिसकी प्रभा सब भुवनन में प्रकाश करती है । प्रमाण सनत्कुमारसंहिता में । भानुकोटिप्रतीकाशं किरीटेन विराजितम् ॥ १५ ॥ वेद और शेष शङ्कर सरस्वती आदि वर्णन करने में रूपसमुद्र का पार नहीं पाते । मनसे, वचन

से नेत्रादि इन्द्रियों से परे रघुनाथजी की मूर्त्ति का तुलसीदास किस तरह बखान करे ॥ १६ ॥

आली री राघोजी के रुचिर हिंडोलना झूलन जैये ।
फटिक भीति चारु चहुँ दिसि मंजुल मनिमय पौरि ।
गच काँच लखि मनु नाच सिखि जनु पाँच सरसिफ सौरि ॥ १ ॥
तोरन बितान पताक चामर धुज सुमन फल घौरि ।
प्रतिछाँह छबि कबि साखि दै प्रति सों कहै गुरु हौरि ॥ २ ॥
मदन जय के खम्भ से रचे खम्भ सरल बिसाल ।
पाटीरपाटि बिचित्र भौंरा बलित बेलन लाल ॥ ३ ॥
डाँड़ी कनक कुंकुम तिलक रेखैं चिमन निज भाल ।
पटुली पदिक रति हृदय जनु कलधौत कोमल माल ॥ ४ ॥
उनये सघन घन घोर मृदु झरि सुखद सावन लाग ।
बगपंक्ति सुरधनु दमकि दामिनि हरित भूमि बिभाग ॥ ५ ॥
दादुर मुदित भर सरित सर महि उमँग जनु अनुराग ।
पिक मोर मधुप चकोर चातक सोर उपवन बाग ॥ ६ ॥
सो समय देखि सोहावनो नवसत सिंगार सँवारि ।
गुन रूप जौबन सींव सुन्दरि चला झुण्डनि झारि ॥ ७ ॥
हिंडोलसाल बिलोकि सब अंचल पसारि पसारि ।
लागीं असीसन रामसीतहिं सुख सोहाग निहारि ॥ ८ ॥
झूलहिं झुलावहिं ओसरिन गावहिं सुगौड़ मलार ।
मंजीर नूपुर बलय धुनि जनु कामकरतलतार ॥ ९ ॥

अतिमुचंत श्रमकन मुखनि बिथुरे चिकुर बिलुलत हार ।
तम तड़ित उडुगन अरुन बिधु जनु करत ब्योम बिहार ॥१०॥
हिय हरषि बरषि प्रसून बरषहिं बिबुधतिय तृन तोरि ।
आनन्दजल लोचन मुदित मन पुलक तन भरि पूरि ॥११॥
सब कहहिं अबिचल राज नित कल्यान मंगल भूरि ।
चिरजीव जानकिनाथ जग तुलसी सजीवनमूरि ॥१२॥

अब पावसऋतु की शोभा में झूला का विहार राम जानकीजी का सखियों के विहार के अन्तर्गत वर्णन करते हैं । आली राघवजी के रुचिर हिंडोला पर झूलने जाइये । कैसी शोभा है, वहाँ निर्मल श्वेतरंग स्फटिक मणि की भीत चारो दिशा में है और उज्ज्वल मणि हीरा आदि से रचित मय कही समूह । पौरि कही दरवाज़ा है । काँच की जो गच है, उसको देख शिखी जो मयूर उसके समान मन नाच उठता है, मानों गच काँच नहीं है पंचशर जो काम उसकी फाँसी है । भाव विशेष शोभा उसको आगे कहते हैं ॥ १ ॥ तोरन कही रंग रंग के मणि-मोतियों की झालर, वितान जरी आदि के चँदोवा पताका फहराते हैं । चामर ध्वजा । रेशमी वस्त्र पर हेमतार से कुछ चिह्न अंकित सुमन वृक्षादिक में वा कृत्रिम मणि के वा गुच्छा आदि जहाँ तहाँ टँगे तथा फलों की घौरी इत्यादि वस्तु शोभित हैं । उसकी प्रति छाँह कही परछाहीं गच काँच के भीतर देखते हैं । सो प्रतिछाहीं कवि की साख देकर अपनी प्रति से कहते हैं कि गुरु हौरी, भाव हम में शोभा तुम से गुरु है । अभिप्राय यह कि जो वस्तु शोभित उसी की छाँह काँच के भीतर शोभा अधिक दिखाती है । और कविजन शोभा के जाननेवाले हैं इसी से कवि की

साक्षी देता है ॥ २ ॥ सरल कही सीधे सुन्दर लम्बे खम्भे जैसे शोभित मानों काम ने अपने विजय के खम्भ रोपे हैं । पाटीर चन्दन उसकी पाटी शोभित। उनमें चित्र विचित्र भौंरा, उनसे वलित कही वेष्टित है । उसके मध्य में बेलन लाल है जिसके सहारे झूला रहता है ॥ ३ ॥ उसमें कनक की डाँड़ी कैसी शोभित, मानों मनसिज काम उसके भाल कही माथे में कुंकुम जो केसर, उसके तिलक की रेखा है । पटुली जो पटरा, सो कैसा शोभित, मानों रति के हृदय में कलधौत जो सोना उसका कोमल पदिक हार है ॥ ४ ॥ सुख के देनेवाला सावन मास लगा आकाश में सघन समूह घन उनये हैं घोर ध्वनि से गर्जत मृदु झरि नन्ही नन्ही बूँदें बरस रही हैं । उनमें बगलों की पाँति इन्द्र धनुष शोभित दामिनी दमक रही है । भूमि हरित है । विभाग कही तरह तरह की हरेरी है ॥ ५ ॥ सरिता नदी तड़ाग जल से पूरि उनमें दादुर मुदित मन से बोल रहे हैं मानों भूमि अनुराग से उमँग रही है। पिक कोयल मोर चकोर भ्रमर पपीहा ते शब्द उपवन बागन में कर रहे हैं ॥ ६ ॥ सो समय सोहावना देख नवशत कही सोरहों शृंगार, यथा उबटन करि वस्त्र पहन जावक लगा माँग गुहि सिंदूर दे तिलक रचि मेहँदी लगाइ अंग में अरगजा लगाइ फूल-हार मणिहार पहिन मीसी लगाइ पान खाइ अंजन लगाइ चातुर्यतासहित इति सोरहों शृङ्गार सजि। उसके सहायक बारह आभूषण। तहाँ भूषण तो अनेक हैं परंतु बारह स्थान अंग में भूषण करने के हैं । इससे स्थान प्रति एक एक मुख्य कही बारह कहे यथा प्रथम शीश उसमें अर्द्धचन्द्र किरीट चूड़ामणि माँग-फूल माँग मोती द्वितीय भाल उसमें टीका बन्दी पटिका बुन्दा जुगनू तृतीय श्रवण उसमें कर्णिकार कर्णफूल उतन्ना बारी झुमका ताटंक चतुर्थ नासिका उसमें बेसरि बुलाक नथ लटकन पोलवा

कील पंञ्चम ग्रीव उसमें कंठी त्रिमनी पंचम तिलरी पचलरी कंठशिरी चम्पकली कण्ठा षष्ठ हृदय उसपर पदिकहार चन्द्रहार नागफनीहार हैकल हमेल जवमाला मणिहार सप्तम भुजा उसमें भुजबल बाजू अंगद बाँक जोशन अष्टम करमूल उसमें चूरी पछेलवा जिसमें बलय मूषकदन्ती पहुँची बलय नवम कटि उसमें किंकिणी नीबी दशम कर अँगुरी उनमें आरसी अंगुश्ताना मुद्रिका पोटिया झुमकी छल्ला छाप एकादश घुटना उसमें जेहरि पायजेब नूपुर पायल कड़ा गुजरी द्वादश पग अँगुरी उनमें पकपान अनवट बिछिया कनिष्ठिका चुटकी इत्यादि शृंगार भूषण सँवारि सँवारि जो सखी गुण की रूप की यौवन की मर्यादा गुण यथा शीलवान् मधुभाषी सुन्दरचित पति अनुकूल सरलस्वभाव चातुर्ययुत चञ्चलता रहित मन्दचाल इति गुणरूप। यथा बिना भूषण भूषित तन स्वरूप यौवन चौदहवर्ष की अवस्था इत्यादि सुन्दरी झुण्ड झुण्ड समूह सखी झूलने चलीं ॥ ७ ॥ वे हिंडोलशाला की शोभा देख और रघुनाथजी का मुख और जानकीजी का सोहाग निहारि या रघुनाथजी की कृपा से अपना सुख सोहाग निहारि अंचल पसार पसार कर रामजानकीजी को आशीर्वाद देने लगीं, जो सुख समाज पाठ हो तो सुख का समाज निहारि ॥ ८ ॥ आप झूलते औरों को झुलाते ओसरी समेत और सूहा और गौड़मलार आदि ताल स्वर सहित गाते हैं। मंजीर पायजेब के घुँघरू नूपुर खाली घुघुल बलय जो कंकणादिकों की ध्वनि कैसी सोहती, मानों काम के कर की तारी हैं ॥ ९ ॥ अत्यन्त जो झूला मचता, उससे श्रमकनी पसीना मुखों में छाई हैं। उस पर चिकुर बाल बिलुलित कहो उलझे मणियों के हार समेत मुख पर कैसी शोभा देते, मानों बाल रूप अन्धकार श्रमकन रूप नक्षत्र मुखका प्रकाशरूप तड़ित् हार रूप अरुण सूर्य मुखरूप

चन्द्रमा इत्यादि मानों व्योम में विहार करते हैं ॥ १० ॥ हृदय से हरषि फूल बरषि देवतों की स्त्री निरखती हैं तृण तोरि, जिसमें नजर न लगे या तृण घूँघट आदि खोल लज्जा तृण सम तोरि या पलक चलना तृण तोरि वा निज मुख को तृण सम तोरि आनन्द का जल नेत्रों में भरा। मन में प्रमोद देह पुलक से भरिपूरि रोमांच खड़े ॥ ११ ॥ कल्याण जो कुशल मंगल जो उत्सव उससे नित्य भरि पूरि अचल राज्यसहित तुलसी के सजीवनमूरि जानकीनाथ जगत् में चिरंजीव रहो, ऐसा सब कहते हैं जिसमें सदा सुख रहे ॥ १२ ॥

राग सोहाव

कोसलपुरी सोहावनी सरि सरजू के तीर ।
भूपावली मुकुट मनि नृपति जहाँ रघुबीर ॥ १ ॥
पुर नर नारि चतुर अति धरमनिपुन रत नीति ।
सहज सुभाय सकल उर श्रीरघुबर पद प्रीति ॥ २ ॥

छन्द

श्रीराम पद जलजात सबके प्रीति अबिरल पावनी ।
जो चहत सुक सनकादि संभु बिरंचिमुनि मनभावनी ॥ ३ ॥
सबही के सुन्दर मन्दिराजित राउ रंक न लखिपरै ।
नाकेसदुर्लभ भोग लोग करहिं न मन विषयनि हरै ॥ ४ ॥
सब ऋतु सुखप्रद सोपुरी पावस अति कमनीय ।
निरखत मनहिं हरति हठि हरित अवनि रमनीय ॥ ५ ॥
बीरबहूटी बिराजही दादुर धुनि चहुँ ओर ।
मधुर गरजि घन बरसहिं सुनि सुनि बोलत मोर ॥ ६ ॥

बोलत जो चातक मोर कोकिल कीर पारावत घने।
खग बिपुल पाले बालकन कूजत उड़ात सोहावने॥ ७॥
बकराज़ राजित गगन हरि धनु तड़ित दिशि दिशि सोहहीं।
नभ नगर की शोभा अतुल अवलोकि मुनिमन मोहहीं॥ ८॥

गृह गृह रचे हिंडोलना महि गच काँच सुढार।
चित्र बिचित्र चहूँ दिसि परदा फटिक पगार॥ ९॥
सरल बिसाल बिराजहिं बिद्रुम खम्भ सुजोर।
चारु पाटि पुट पुरट की झरकत मरकत भौंर॥ १०॥

मरकत भवँर डाँड़ी कनक मनि जटित दुति जगमगि रही।
पटुली मनहुँ बिधि निपुनता निज प्रकट करि राखी सही॥ ११॥
बहुरंग लसत बितान मुकता दाम सहित मनोहरा।
नव सुमन माल सुगंध लोभे मंजु गुंजत मधुकरा॥ १२॥

झुण्ड झुण्ड झूलन चलीं गजगामिनि बरनारि।
कुसुम चीर तन सोहहीं भूषन बिबिध सँवारि॥ १३॥
पिकबयनी मृगलोचनी सारद ससिसम तुण्ड।
राम सुजस सब गावहीं सुस्वर सुसारँग गुण्ड॥ १४॥

सारँग गौंड़ मलार सोरठ सुहाव सुघर नेवाजहीं।
बहु भाँति तान तरंग सुनि गंधर्ब किन्नर लाजहीं॥ १५॥
अति मचत छूटत कुटिल कच छबि अधिक सुन्दरि पावहीं।
पट उड़त भूषन खसत हँसि हँसि अपर सखी झुलावहीं॥ १६॥

फिरि फिरि झूलहिं भामिनी अपनी अपनी बार ।
बिबुध बिमान थकित भये देखत चरित अपार ॥ १७ ॥
बरषि सुमन हर्षहिं सुर बरनहिं हरिगुन गाथ ।
पुनि पुनि प्रभुहि प्रशंसहिं जै जै जानकिनाथ ॥ १८ ॥
जै जानकीपति बिसद कीरति सकल लोक मलापहा ।
सुरबधू देहिं असीस चिरजिव रामसुख सम्पति महा ॥ १९ ॥
पावस समय कछु अवध बरनत सुनि अघौघ नसावहीं ।
रघुबीर के गुनगन नवल नित दास तुलसी गावहीं ॥ २० ॥

श्रीसरयू सरिता के तट पर श्रीअयोध्याजी सोहावनी शोभित समूह भूपों के शिरोमणि नृपति जहाँ रघुवीर विराजमान हैं ॥ १ ॥ वहाँ के वासी नर नारी अपने धर्म करने में निपुण नीति में रत सहज सुभाव ही में सबके उर में प्रभु के पद में प्रीति है ॥ २ ॥ श्रीरघुनाथ के पदकमलों में कैसी प्रीति सब अयोध्यावासियों के हृदय में है। अविरल कही सघन जिसकी शुकदेव सनकादि शम्भु चाहना करते हैं. जो ब्रह्मा के मन में भाती है व मुनियों के मन भाती है ॥ ३ ॥ उस पुरी में सुन्दर मन्दिर सबके अजिर कही आँगन दिव्य मणिमय इससे राजा का मन्दिर व दरिद्री का मन्दिर यह चिह्न नहीं देख पड़ता। भाव नृपगृह सो भोग सरिस सदन सबके नाक स्वर्ग के ईश इंद्र उनको दुर्लभ जो भोग सो अवधवासी करते हैं । परन्तु लोगों ने मन विषय से नहीं हारा है, विषय वश नहीं है ॥ ४ ॥ सो पुरी सब ऋतुओं में सुख देनेवाली है परन्तु पावस में कमनीय कही अत्यन्त सुन्दर है क्योंकि हरित भूमि की जो रमणीकता है सो देखने से बरबस मन को हर लेती है इससे पावस में अधिक है ॥ ५ ॥ उस हरित

भूमि पर लालमणि सी बीरबहूटी विराजमान। चारों दिशा से दादुर की धुनि हो रही है। मधुर गरज कर मेघ बरस रहे हैं। वह शब्द सुन मोर बोलते हैं॥ ६॥ पपीहा मोर सुवा कबूतर आदि बोलि रहे हैं अपर पक्षी बालकों के पाले नगर में कुहकते अरु उड़ाते हैं, सो अति सुहावने लगते हैं॥ ७॥ श्याम सघन मेघ में श्वेत बगलों की पाँति उड़ने में शोभा दिखाती है। किसी दिशि में इन्द्रधनुष उदय है, दिशि दिशि में बिजली चमक रही है। इत्यादि। नभ की व नगर की शोभा अतुल है, जो मुनियों के मन में मोह करती, और जीवों की को कहे॥ ८॥ मन्दिर मन्दिर में हिंडोला रचे हैं, पृथ्वी में काँच की गच रची है। सुढार बरोबर निर्मल जल सम झलक रही है। रेशमी रंग रंग जरी आदिक के चित्र विचित्र परदे द्वार प्रति चारों दिशा में पड़े हैं। वहाँ फटिक मणि की पगार कही भीत शोभित है॥ ९॥ सीधे लंबायमान बलिष्ठ मूँगा के खम्भा विराजमान हैं। सुन्दर सोने से रचित सुन्दरी पाटी मन को हरनेवाली। तिन में मरकत मणि के भौंरे प्रकाशमान लटके झरकत कही झलक रहे हैं॥ १०॥ मरकत मणि के भौंरे और कनक की डंडी मणियों से जटित तिनकी द्युति जो प्रकाश सो जगमगा रहा है। पटुली पटरा कैसा शोभित है, मानों विधाता ने अपनी सच्ची चतुरता सोई प्रकट करके रक्खी है॥ ११॥ श्वेत पीत अरुण हरित द्विरंग त्रिरंग चौरंग पँचरंग सादे ज़रीके कारचोबी कढ़े आदि बहुरंगके वितान कही चँदोवा विराजमान हैं। तिनमें मोतियों के दाम कही लडों के घपसा टँगे हैं, तिनकी सुगन्ध में लोभे मंजु कही मनोहर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं॥ १२॥ गुण रूप यौवन की भरी गज की ऐसी मन्द-चाल कुसुम रंग के चीर तन में धारण कर सोलहो शृंगार सँवार विविध प्रकार के भूषण सज सज ऐसी श्रेष्ठ स्त्री झुंड झुंड

मिल झूलने को चलीं ॥ १३ ॥ कोयल सम मधुर वचन मृग सम बड़े बड़े नेत्र शरदपूर्णचन्द्रसम मुख जिन का वे सारंग गौड़ादि रागिनियों में सुन्दर स्वर से श्रीरघुनाथजा का सुन्दर सुयश प्रेमसहित गाती हैं ॥ १४ ॥ सारंग गौड़ मलार सोरठ सुहाव आदि सुघर रागिनियाँ बाजहीं अर्थात् श्रोता को प्रसन्न कर देती हैं। तिनकी तानों की बहुत भाँति की जो तरंगें हैं, तिनको सुनकर गन्धर्व किन्नर लाजते हैं। भाव हमसे ऐसा गान नहीं बनता है ॥ १५ ॥ अत्यंत झूला मचता है। उसके झोंका लगने से टेढ़े बाल छूटकर मुखों पर पड़ते हैं। भूषण गिर पड़ते हैं। बालों में उलझे पवन लगेसे वस्त्र उड़ते हैं। उससे स्त्री अधिक छवि पाती हैं। उनको देख हँस हँस अपर सखी झुलाती हैं ॥ १६ ॥ तौ जो झुलानेवाली भामिनी हैं सो अपनी बार कही ओसरी पाकर फिर फिर झूलती हैं। उन सखियों सहित ऐसे अपार जो चरित प्रभु के हैं, नित्य तिनको देखते देवतों के विमान थकित भये ॥१७॥ फूल वर्षाकर देवता हर्षपूर्वक रघुनाथजी के गुणों की सुन्दर गाथा वर्णन करने में बार बार प्रभु की प्रशंसा करते हैं कि ब्रह्मांड को सुख देनेवाले जानकीनाथ की सदा जयजयकार बनी रहे ॥१८॥ सब लोकन के मल जो हैं पाप तिन की आपहा कही नाश करनेवाली विशद कही उज्ज्वल कीर्ति है जिनकी ऐसे जानकी के पति की जय हो। देवतों की स्त्री आशीर्वाद देती हैं कि महा सुख सम्पत्ति सहित रघुनाथजी चिरकाल ज़ीवें ॥ १९ ॥ गोसाईंजी कहते हैं कि रघुवर के गुण के गान कही समूह नित्य नवल कही सदा नवीन हैं। तिनको शङ्कर सनकादि नारद हनुमानआदि जो दास हैं, सो सदा नित्य नवलगुण के गान गाते हैं पर उसका पार नहीं पाते। उसी समूह से अयोध्याजी में पावसऋतु का विहार सखियों सहित रघुवीर जानकी को मति की अनु-

हारि कुछ मैं भी कहता हूँ, जिसके सुनने से समूह पाप नाश होता है ॥ २० ॥

राग आसावरी

साँझ समय रघुबीरपुरी की सोभा आजु बनी ।
ललित दीपमालिका बिलोकहिं हित करि अवधधनी॥ १ ॥
फटिक भीति सिखरन पर राजत कंचनदीप अनी ।
जनु अहिनाथ मिलन आये मनि सोभित सहसफनी ॥ २ ॥
प्रति मन्दिर कलसन पर भ्राजहिं मनिगन दुति अपनी ।
मानहुँ बिपुल प्रकटि पुर लोहित पठइ दिये अवनी ॥ ३ ॥
घर घर मंगलचार एकरस हर्षित रंक गनी ।
तुलसिदास कल कीरति गावत जो कलिमलसमनी ॥ ४ ॥

दीपमालिका वर्णन । आज साँझ समय में रघुबीरपुरी की अपूर्व शोभा बनी है । ललित जो दीपमालिका का उत्सव है उस को अवधधनी जो श्रीरघुनाथजी सो हित करिकै देखते हैं ॥ १ ॥ फटिकमणि की भीत के शिखरों पर कंचन के दीप जल रहे हैं तिनकी अनी कही टेम की मुनी चारों दिशा में कैसी विराजमान हैं मानों हजारों फणियों पर मणि प्रकट रख अहिनाथ जो शेषजी सो प्रभु के मिलने को आये हैं । तिनके हज़ारों फणों पर मणि आकर शोभित हैं । यहाँ फटिकभीति शेष है । दीप फण हैं । टेम मणि है ॥ २ ॥ प्रति मन्दिर कलशों के ऊपर मणियों के गण अपनी द्युति कही प्रकाश सहित भ्राजते हैं । वे मणि कैसी शोभित होती हैं मानों अवनि जो पृथ्वी उसमें लोहित जो है मंगल तिनका विपुल कही समूह प्रकट कर अयोध्यापुर को भेज

दिया। वही विराजमान हैं ॥ ३ ॥ रंक कोई है ही नहीं, तब रंक लिखने का कौन प्रयोजन है? यहाँ रघुनाथजी के प्रभाव से जे प्रारब्ध से रंक रहे वे भी प्रभु के राज्य में गनी कही धनी के समान सब हर्षित हैं। इससे घर घर में मंगलाचार एक रस हो रहा है। ऐसा प्रभाव जिनका तिन रघुनाथजी की कल सुन्दर कीर्ति तुलसीदास गाता है, जो कलिमल पाप की शमनी नाश करने-वाली है ॥ ४ ॥

राग गौरी

अवध नगर अति सुन्दरवर सरिता के तीर।
नीतिनिपुन नर तिय सबहि धरमधुरन्धर धीर ॥ १ ॥
सकल ऋतुन सुखदायक तामहँ अधिक बसन्त।
भूपमौलिमनि जहँ बसि नृपति जानकीकन्त ॥ २ ॥
बन उपबन नव किसलय कुसुमित नाना रङ्ग।
बोलत मधुर मुखर खग पिक बर गुञ्जत भृङ्ग ॥ ३ ॥
समय बिचारि कृपानिधि द्वार देखि अति भीर।
खेलहु मुदित नारि नर बिहँसि कहेउ रघुबीर ॥ ४ ॥
नगर नारि नर हरषित सब चले खेलन फागु।
देखि रामछबि अतुलित उमँगत उर अनुरागु ॥ ५ ॥
स्याम तमाल जलद तन निर्मल पीत दुकूल।
अरुन कंज दल लोचन सदा दास अनुकूल ॥ ६ ॥
सिर किरीट श्रुति कुण्डल तिलक मनोहर भाल।
कुंचित केस कुटिल भ्रुव चितवनि भक्त कृपाल ॥ ७ ॥

कल कपोल सुक नासिका ललित द्विज जोति ।
अरुन कंज महँ जनु जुग पाँति रुचिर गजमोति ॥ ८ ॥
बर दर ग्रीव अमित बल बाहु सु पीन बिसाल ।
कंकन हार मनोहर उरसि लसत बनमाल ॥ ९ ॥
उर भृगुचरन बिराजत द्विज प्रिय चरन पुनीत ।
भक्त हेतु नर विग्रह सुरवर गुन गोतीत ॥ १० ॥
उदर त्रिरेख मनोहर सुन्दर नाभि गँभीर ।
हाटक घटित जटित मनि कटि तट रट मंजीर ॥ ११ ॥
ऊरू जानु पीन मृदु मरकत खंभ समान ।
नूपुर मुनिमन मोहत करत सुकोमल गान ॥ १२ ॥
अरुन बरन पदपंकज नखदुति इन्दु प्रकास ।
जनकसुता कर पल्लव लालित बिपुल बिलास ॥ १३ ॥
कंज कुलिस धुज अंकुस रेख चरन सुभ चारि ।
जनमन मीन हरन कहँ बंसी रची सँवारि ॥ १४ ॥
अंग अंग में अतुलित सोभा बरनि न जाइ ।
यह सुख मगन होइ मन फिरि नहिं अनत लुभाइ ॥ १५ ॥
खेलत फागु अवधपति अनुज सखा सब संग ।
बरषि सुमन सुर निरखहिं सोभा अमित अनंग ॥ १६ ॥
ताल मृदंग झाँझ डफ बाजहिं पनव निसान ।
सुधर सरस सहनाइन गावहिं समय समान ॥ १७ ॥

बीना बेनु मधुर धुनि सुनि किन्नर गन्धर्व ।
निज गुन गरुअ हरुअ अति मानहिं मन तजि गर्व ॥ १८ ॥
निज निज अटनि मनोहर गान करहिं पिकबैनि ।
मनहुँ हिमालय सिखरनि लसहिं अमरमृगनैनि ॥ १९ ॥
धवल धाम ते निकसहिं जहँ तहँ नारिबरूथ ।
मानहुँ मथत पयोनिधि बिपुल अप्सराजूथ ॥ २० ॥
किंसुक बरन सुअंसुक सुखमा सुखनि समेत ।
जनु बिधु निबह राह करि दामिनि करत निकेत ॥ २१ ॥
कुमकुम सुरस अबीरन भरहिं चतुर बर नारि ।
ऋतु सुभाय सुठि सोभित देहिं बिबिध बिधि गारि ॥ २२ ॥
जो सुख जोग जाग जग जप तप तीरथ ते दूरि ।
रामकृपा ते सोइ सुख अवध गलिन रह्यो पूरि ॥ २३ ॥
खेलि बसन्त कियो प्रभु मज्जन सरजू नीर ।
बिबिध भाँति जाचकजन पायो भूषन चीर ॥ २४ ॥
तुलसिदास तेहि अवसर माँगी भक्ति अनूप ।
मृदु मुसक्याय दीन तब कृपादृष्टि रघुभूप ॥ २५ ॥

वर सरिता सरयू के तीर अवधनगर अतिसुन्दर है। वहाँ के वासी नर नारी नीति पर चलने में निपुण हैं और धर्म की जो धुरी है सत्य शौच तप दानादि उसके धारण करने में धीरजवान् हैं ॥ १ ॥ श्रीअयोध्यापुरी सब ऋतुओं में सुखदायक उस पर भी वसन्त में अधिक सुख देनेवाली है। सब राजों के शिरोमणि राजा जहाँ श्रीजानकीकन्त वास करते हैं ॥ २ ॥ उस पुर में वन

जो विना लगाये हुए। वन बारह हैं अशोक, प्रमोद, सन्तानक, मन्दार, पारिजात, चन्दन, चम्पक, रमनक, आम्र, पलाश, कदम्ब, तमाल इत्यादि। वन और उपवन तो सब नवीन पल्लव लिये अनेक रंग के फूल फूल रहे हैं। उन पर कोयल आदि श्रेष्ठ पक्षी मधुर स्वर से बोल रहे हैं और भौंर गुञ्जार रहे हैं ॥ ३ ॥ सो समय वसन्त विचारि और द्वार पर भीड़ देख कृपासिन्धु रघुवीर हँसकर बोले कि नारी नर आनन्द से फाग खेलो ॥ ४ ॥ वे प्रभु के वचन सुन पुर के नर नारी हर्षसहित फाग खेलने को चलते भये। रघुनाथजी की अतुलित छवि देख उनके हृदय में अनुराग उमँग आया ॥ ५ ॥ कैसी छवि है प्रभु की तमाल और मेघ सम श्याम तन है। उसमें निर्मल पीत रंग का वस्त्र धारण किये हैं। सुन्दर लाल कमल दलसम नेत्र, जो सदा दास पर अनुकूल कहीं प्रसन्न रहते हैं ॥ ६ ॥ कांचन मणि से जड़ित प्रकाशमान मुकुट शीश पर है। चमकदार कुण्डल कान में। सुन्दर विशाल भाल पर मन को हरण करनेवाला केसर का तिलक है। काले चिक्कन चमकदार टेढ़े बाल हैं। टेढ़ी सुन्दर भृकुटी नेत्र की चितवन भक्त पर कृपा की भरी है ॥ ७ ॥ सुन्दर कल गोल कपोल सुवा के मुखसम सुन्दर नासिका अधरों के बीच सुन्दर दाँतों की ज्योति कैसी सोहती है मानो ओठरूप लाल कमल के बीच दाँतरूप गजमुक्का की सुन्दर दो पाँत हैं ॥ ८ ॥ पीन पुष्ट लंबायमान अमित है बल जिनमें ऐसी सुन्दरी भुजा हैं। कंकणहार फूल का गजरा करमूल में मन को हरनेवाला है। उर में वनमाला शोभित है सुन्दर चरित पुनीत ॥ यथा भागवते ॥ रामस्य कोशलेन्द्रस्य चरितं कल्मषापहम्। इससे पापनाशक पुनीत यश है जिनका ऐसे ब्रह्मण्यदेव। यथा। नमो ब्रह्मण्य देवाय। द्विज हैं प्रिय इससे भृगु का चरण रघुनाथजी के उर में विराजता है जिनके वे कैसे

हैं, सुर जो देव तिनते वर कही श्रेष्ठ हैं तीनों गुण वे और गो जो इन्द्री तिनसे अतीत कही परे हैं वही परात्पर रूप रघुनाथजी सो भक्त जो हैं मनु आदि तिनके हेतु नर विग्रहभाव नर का ऐसा रूप धारण किये। यहाँ देव जो इन्द्रादिक से वर रघुनाथजी को कहा तो सामान्य है इससे ब्रह्मा शिवसहित चौबीस अवतार, विष्णु इत्यादि त्रिदेव उनसे वर। गुण से परे। तत्र प्रमाणं सुन्दरीतंत्रे। जानक्युवाच। महाशम्भुर्महाविष्णुर्महामाया जलेशया। महानहंकृतिर्विश्वं कारणानि च सर्वशः ॥ १ ॥ गुणत्रयप्रकृत्यैव सूर्येन्दूहृव्यवाहनः। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेंद्रऋषयस्तथा ॥ २ ॥ स्थावरा जंगमाश्चैव ये चान्ये भूतभाविनः। एते तावत्कला योगिन् ममरामः स्वयं हरिः ॥ ३ ॥ वाराहपुराणे। मत्स्यः कूर्मोवराहोनरहरिरतुलोवामनोजामदग्निः सभ्राताकंसशत्रुः करुणमयवपुर्म्लेच्छविध्वंसनश्च। एतेचान्येऽपि सर्वे तरणिकुलभुवो यस्य जाताः कलांशैस्तं व्याप्तं ब्रह्मरूपं विमलगुणमयं रामचन्द्रं नमामि ४ सामवेदे भरद्वाजसंहितायां। अवतारा बहवः संति कलाश्चांशविभूतयः। राम एव परब्रह्म सच्चिदानन्दमव्ययम् १ सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः। ब्रह्मसंहितायां ॥ पूर्णः पूर्णावतारश्च श्यामो रामो रघूद्वहः। अंशा नृसिंहकृष्णाद्या राघवो भगवान् स्वयम् ॥ ६।१० ॥ उदर पर तीनरेखा मन को हरनेवाली तिनके तले गंभीर नाभि उसके तले हाटक सोना और मणियों से जटित मंजीर, जो किंकिणी, सो कटितट में घटित कही शोभित रट कही शब्द कर रही है ॥ ११ ॥ ऊरु जानु जंघा आदि पुष्ट व कोमल मरकत मणि के खंभा समान हैं। पदमूल में नूपुर सुन्दर कोमल गान जो मधुर शब्द होता है उसको सुन मुनियों का मन मोहित है ॥ १२ ॥ अरुणकमलवर्ण चरणों में चन्द्रमा का सा प्रकाश नख की द्युति है। कैसे चरण हैं, विपुल विशाल कहो समूह हैं आनन्द जिनमें।

वे जनकसुता के करपल्लवों से सेवित कहे सेवा की अग्रणीय हैं। अभिप्राय यह कि जो कोई भक्ति ज्ञानप्राप्त्यर्थ चरण की सेवा चाहे तो विना जानकीजी की कृपा प्रभुपद की सेवा नहीं बन सकती। तत्प्रमाणमगस्त्यसंहितायां श्रीमुखवाक्यं शिवं प्रति। आह्लादिनीं परां शक्तिं स्तूयाः सात्वतसम्मताम्। तदाराध्यस्तदारामस्तदाधीनस्तया विना १ तिष्ठामि न क्षणं शम्भो जीवनं परमं मम। पुनः शिववाक्यं जानकीं प्रति। यावन्न ते सरसिजद्युतिहारिपादे न स्याद्रतिस्तरुनवांकुरखण्डिताभे। तावत्कथं तरुणिमौलिमनेजनानां ज्ञानं दृढम्भवति भामिनि रामरूपे॥१३॥ कमल, वज्र, ध्वजा, अंकुश इत्यादि चार चिह्न चरणों में शुभ कैसे शोभित हैं, मानों जनों के मनरूप मछली पकड़ने को बंसी सँवार कर रची है। बंसी में चार अंग होते हैं। चारा काँटा स्पाटपीठ डोर। तहाँ ध्वजा मनोरथदाता सोई चारा है। अंकुश ज्ञान से मन को खींच लेता है, सो काँटा है। कमल भी जल से बिलग रखता है, सो स्पाटापीठ है। वज्र पाप-नाश कर मन शुद्ध कर देता है, सो डोर है। अथवा जन जो चार प्रकार के भक्त तिनको मनोरथरूप चारा दे अपने में मन को लगा लेते हैं। आरत को सुख चारा देकर वज्रचिह्न बंसीसम मन को खींच लेता है। जिज्ञासु को परम तत्त्व चारा, कमलचिह्न बंसी। अर्थी को अर्थचारा, ध्वजा बंसी। ज्ञान को ज्ञानचारा, अंकुश बंसी॥ १४॥ अंग अंग में अतुलित शोभा है। सो वर्णन करते नहीं बनती। इस शोभारूप सुख में जिसका मन मगन हो तो फिर अन्यत्र न लोभावे॥ १५॥ भाई और सखों को साथ लिये अवधपति आनन्द से फाग खेलते हैं। उस समय अनेक काम की शोभा को देवता हर्ष सहित फूल बरसाकर निरखते हैं॥ १६॥ निशान नगाड़ा, पणव ढोल, झाँझ मृदंगादि तालसहित बज रहे हैं। उस समय के समान बसंत

होरी आदि राग सुधारस सहित शहनाई में गा रहे हैं॥ १७॥ वीणा वेणु आदि की मधुर ध्वनि सुनकर किन्नर गंधर्व जिनके मन में गान गुण के गरूर का गर्व है, वे गर्व छोड़ मनन से अपने गुरुगुण को हरु कही हलका मानते हैं कि ऐसा गुण हममें नहीं है॥ १८॥ पिक का ऐसा मधुर स्वर है जिनका वे ही स्त्री अपनी अपनी अटारियों पर से मधुर स्वर से गान कर रही हैं। वे कैसी शोभित होती हैं मानों हिमाचल गिरि के शिखर पर देवतों की मृगनयनी स्त्री विराजमान हैं॥ १९॥ धवल श्वेत रंग के मन्दिरों से जहाँ तहाँ स्त्रीगण समूह निकलती हैं। वे कैसी शोभित होती हैं मानों क्षीरसागर मथते में समूह अप्सरा निकलती हैं व अप्सराएँ क्षीरसागर मथती हैं। श्वेत धाम क्षीरसागर। नारी अप्सरा॥ २०॥ ते स्त्री किंशुक कही लालरंग के अंकुश कही समूह, निकेत जो मन्दिर, तिनको कार कही बनाकर उनमें निबाह कही समूह विधु जो चन्द्रमा सो राह कही वास करता है। यहाँ लाल घूँघट दामिनि के निकेत करि उसमें मुखरूप समूह चन्द्रमा बसता है॥ २१॥ चतुर श्रेष्ठ स्त्री, वे सुरस कही सुन्दर घुला अबीर केसर का रंग सो लाख के कुमकुमों में भरत बहाकर मारने के लिए। और अनेक प्रकार की गाली देती हैं सो ऋतु के स्वभाव से सुन्दर शोभित होती हैं, सबको भली लगती हैं॥ २२॥ यम नियम आसन प्रत्याहार ध्यान प्राणायाम धारणा समाधि इत्यष्टांगयोग। अश्वमेध गोमेध नरमेध वाजपेय इत्यादि यज्ञ। सिद्धि साध्य सुसिद्धि अरिऋणी धनी शुभ दिशा मुहूर्त कूर्म चक्र शोध कर। जीवन जनन ताड़नादि संस्कार कर। मंत्र स्पष्टाक्षर प्रति सहस्र पादलक्ष पुरश्चरण, भूमिशयन, सत्य वचन, सूक्ष्म भोजन, श्रद्धा, विश्वास युत इति। जप रवि सम्मुख। अग्नि-सेवन, जलशयन, फलाहार, निराहारादि तप।

पुष्कर, नैमिषारण्य, प्रयागादि तीर्थ। इत्यादि सुकर्म करके सो सुख चाहें तो दूर है नहीं मिल सकता। भाव तीर्थादिक से स्वर्ग पर्यंत सुख मिल सकता है और यह सुख प्रेमा परा भक्ति से प्रभु के नामरूप लीलाधाम में अनुराग से आसक्ति निशिदिन वासना रहित प्रभु के चरणकमल में प्रीति। सो सुख विना प्रभु की कृपा नहीं मिल सकता। और रघुनाथजी की कृपा से वही सुख अयोध्याजी की गलियों में भरि पूरि रहा है। भाव जोहीं अवध गलियों में जाय सोई सुख में मग्न हो जाय ॥ २३ ॥ वसंत खेल से रघुनाथजी ने सरयू जल में स्नान किया, उस समय याचकजन ने विविध प्रकार के भूषण वस्त्र निछावर पाये ॥ २४ ॥ याचकों पर अनुकूल प्रभु को जानकर उस अवसर में तुलसीदास ने अनूप भक्ति माँगी, भाव कलिकाल में मेरी भक्ति निर्विघ्न निर्वाह हो। सो सुन रघुकुल के भूप श्रीरघुनाथजी ने मधुर मुस्क्याकर कृपादृष्टि से सो अनूप भक्ति दी। प्रभु के मुसक्याने का यह हेतु कि जग में कुटिल जीवों को उद्धार की कांक्षा से परस्वार्थी है। इसी हेतु अनूप भक्ति है। भाव कलिकाल के कुटिल जीवों का उद्धार करनेवाली—इससे अनूप। प्रमाणं भक्तमाले। कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भये ॥ २५ ॥

राग वसंत

खेलत बसन्त राजाधिराज।
नभ कौतुक देखत सुर समाज ॥ १ ॥
सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ।
झोरिन अबीर पिचकारि हाथ ॥ २ ॥

बाजैं मृदंग डफ ताल बेनु ।
छिरकैं सुगन्ध भरैं मलय रेनु ॥ ३ ॥
उत जुवति जूथ जानकी संग ।
पहिरे पट भूषन सरस रंग ॥ ४ ॥
लिये छड़ी बेंत सोधैं बिभाग ।
चाचरि गुमक गावें सरस राग ॥ ५ ॥
नूपुर किंकिनि धुनि अति सुहाइ ।
ललना गन जब जेहि धरहिं धाइ ॥ ६ ॥
लोचन अँजाय फगुवा मँगाइ ।
छाँड़हिं नचाइ हाहा कराइ ॥ ७ ॥
चढ़ि खरनि बिदूषक स्वाँग ताजि ।
करैं कूट निपट गइ लाज भाजि ॥ ८ ॥
नर नारि परस्पर गारिदेत ।
सुनि हँसत राम भाइन समेत ॥ ९ ॥
बरसत प्रसून बर बिबुध बृंद ।
जय जय दिनकर कुल कुमुद चंद ॥ १० ॥
ब्रह्मादि प्रसंसत अवध बास ।
गावत कल कीरति तुलसिदास ॥ ११ ॥

राजों के राजा महाराजाधिराज श्रीकोशलेन्द्र-कुमार दिव्य परिकरयुत सरयूतट अवधपुर में आनन्द से वसंत खेलते हैं। अपूर्वलीला का कौतुक आकाश में विमानारूढ़ देवतों का समाज

आनन्द से देखता है ॥ १ ॥ भरतादि अनुज और अपर सखा किरीट कुण्डल आदि भूषण विविध प्रकार जरी आदि के वस्त्र धारण किये। किशोर अवस्था के समूह झोलियों में अबीर कनकमणि जटित कर कमलों में लिये हर्ष सहित रघुनाथजी के साथ में हैं ॥ २ ॥ वे केवड़ा गुलाब आदि सुगन्धित जल में केसर आदि रंग घोल पिचकारियों से सखियों पर छिड़कते हैं। मलय चन्दन कपूर आदि धूल अबीर गुलाल आदि से भरें कही मुख पर सखियों के झाक देते हैं उसी आनन्द में मृदंग डफ वेणु आदि बाजे ताल सहित बज रहे हैं ॥ ३ ॥ अब जानकीजी की शोभा कहते हैं। सरसरंग कही रस के भरे से भूषण अंग अंग में सजे रंग रंग के चीर धारण कर गज गतिरूप यौवन की गरबीली। मधुर स्वर वचन रसीली । गुण की गहेली । ऐसी युवती अलबेली सखी-यूथ समूह सो संग में लिये कोटियों रतिवारी तनतड़ित छटाधारी हरिदृग चकोर शरदपूर्ण चन्द्र-वदनवाली जगदुत्पत्ति-स्थिति-लयकारी युगकुल उजियारी परम-सुकुमारी श्रीमिथिलेन्द्र-किशोरी ऐसी श्रीजानकीजी सहित आनन्द से फाग खेलने को गत कही दूसरी दिशा में विराजती हैं ॥ ४ ॥ सोधैं कही सुगन्ध केसर मृगमद कपूर चन्दन आदि के। अरगजा उसके विभाग कही बिलग बिलग और फूलों की गुही बेंत की छड़ी इत्यादि सखी कोमल कर कमलों में लिये। चाचरि झूमका आदि रसीले राग मधुर स्वर से गा रही हैं ॥ ५ ॥ वे सखी बरबस सखों के पकड़ने को औचक चपलासी चमकि झमकि चाल शीघ्रपद पड़ने से नूपुर किंकिणी के शब्द की ध्वनि छमछम कामबाण का सा प्रहार होता है, सो अत्यन्त सोहावनी लगती है । वे गुणरूप गरबीले लोने लोने छैल छबीले कुँवर मृदु-गात के मधुर सखा हैं । उनके जब जब जिन जिन राजकुमारों

को ललना कही सखीगण दौड़कर पकड़ लेती हैं॥ ६॥ वे राजकुमारों के नेत्रों में अंजन लगाकर टिकली सेंदुर बिछियादि स्त्रियों के भूषण वस्त्र पहिनाकर युवती बनाकर जनकनन्दिनी के सम्मुख नृत्य कराकर फगुवा मँगाकर हाहा कही चिरौरी कराकर तब सखी छोड़ती हैं॥ ७॥ निपट लाज भाग गई है जिनकी, ऐसे निर्लज्ज विदूषक जो भाँड़ उनका ऐसा स्वाँग साजकर खर जो गधा तिन पर सवार हो विविध भाँति के कूट करते हैं॥ ८॥ परस्पर स्त्री पुरुष गाली देते हैं उनको सुन भाइयों सहित रघुनाथजी हँसते हैं। इस औसर की गाली प्रमाणं होलिकामाहात्म्ये। निर्लज्जपुंसस्त्री चैव मासमात्रं तु लीलया। कामगीतं तु नर्तक्या भगनामसहस्रकम्॥६॥ दिनकर सूर्य के कुलरूप कुमुदिनी के प्रकाशक पूर्णचन्द्र श्रीरघुनाथजी की जयजयकार करके श्रेष्ठ देवतों के वृन्द आनन्द से फूलों की वृष्टि करते हैं॥१०॥ श्रीअवध के वास की प्रशंसा ब्रह्मा आदि देवता करते हैं। माधुरी के अनुरागी याचक तिनको सुन्दर लीलारूप आनन्द के दानि रघुनाथजी की सुन्दर कीर्ति तुलसीदास गाते हैं॥ ११॥

राग केदार

देखत अवध को आनन्द।

हरष बरषत सुमन निसि दिन देवतन को बृन्द॥ १॥

नगर रचना सिखन को बिधि तकत बहु बिधि बृन्द।

निपट लागत अगम ज्यौं जलचरहि गमन स्वछन्द॥ २॥

मुदित पुरलोगन सराहत निरखि सुखमा कन्द।

जिनके सु अलि चख पियत राम० मुखारविन्दमरन्द॥ ३॥

मध्य ब्योम बिलम्बि चलत दिनेस उडुगन चन्द।
रामपुरी बिलोकि तुलसी मिटत सब दुख द्वन्द॥ ४॥

देवतों के वृन्द श्रीअवध का आनन्द देख प्रतिदिन आनन्द फूलों की वृष्टि करते हैं॥ १॥ श्रीअवधनगर की दिव्य विचित्र रचना सीखने को विधाता नगर को बहुत प्रकार से वृन्द वृन्द देखते हैं, सो पुर की रचना अगम लगती है। यथा जलचर का स्वच्छन्द अपनी इच्छा से गमन अगम है। भाव जल के आश्रय से चल सकता है तथा ब्रह्मा मायाकृत रचना के अधिकारी, तिनको अवध की दिव्य रचना अगम लागत है॥ २॥ सुखमाकन्द श्रीरघुनाथजी मुखकमल का मकरन्द जो छविरूपी रस उसको जिन पुरवासियों के चख जो नेत्र ते अलि कही भ्रमर हो पान करते हैं, इससे धन्य हैं॥ ३॥ सूर्य चन्द्रमा नक्षत्रादि यह पुर-शोभा देखने को आकाश के मध्य में विलम्ब करके चलते हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि ऐसी श्रीरघुनाथजी की पुरी है, जिसके विलोकने से द्वन्द जो राग द्वेष उससे जो दुःख सो सब मिट जाता है॥ ४॥

राग सोरठ

पालत राज यों राज राम धरमधुरीन।
सावधान सुजान एकरस रहत नय लय लीन॥ १॥
श्वान खग यति न्याव देख्यो आपु बैठि प्रबीन।
नीच हति महिदेवबालक कियो मीचु बिहीन॥ २॥
भरत ज्यों अनुकूल जग निरुपाधि नेह नवीन।
सकल चाहत राम ही ज्यों जल अगाधहिं मीन॥ ३॥

गाइ राज समाज याचत दास तुलसी दीन।
लेहु निज करि देहु निजपद प्रेम पावन पान ॥ ४ ॥

सत्य शौच तप दान आदि जो धर्म की धुरी हैं उनके धारण करनेवाले और सारासार वस्तु जानने में सुज्ञान सावधान, हर्ष-शोक-रहित, एकरस, सदा प्रसन्न चित्त जिनका, ऐसे राजा श्रीरघुनाथजी नय जो राजनीति उसमें लय सहित लीन रहते हैं। भाव, हर्ष-सहित नीति पै आरूढ़ हैं वे राजा को यों कही इस प्रकार पालते हैं सो आगे लिखते हैं ॥ १ ॥ नीति-प्रवीण रघुनाथजी ने श्वान और यती का और खग उलूक और गीध का न्याय आप बैठकर देखा, भाव, उचित निर्वाह किया। श्वान को मार्ग में बैठा देख ब्राह्मण ने लात मारी। उसकी फ़र्याद रघुनाथजी से श्वान ने की। तब प्रभु ने श्वान से पूछा कि विप्र ने तुम्हारे लात मारी है, उसको कौन दण्ड दें? श्वान बोला कि इसको यती बनाकर हाथी पर चढ़ाकर नगर घुमाकर शिवमन्दिर का अधिकारी कर दीजिये। यह सुन प्रभु ने ऐसा ही कर श्वान से पूछा, इसमें विप्र को कौन दण्ड हुआ? श्वान ने कहा पूर्व का मैं विप्र हूँ। एक बार शिव की धान्य खाकर श्वान हुआ। यह जन्मभर शिवधान्य खाकर कौन दशा को प्राप्त होगा। यह चरित्र रामाश्वमेध में प्रसिद्ध है। खग का न्याय। एक गृद्ध ने उलूक का गृह बरबस छीन लिया। इसी से दोनों प्रभु समीप आये। प्रभु ने पूछा। पूर्व किसका गृह है? गृद्ध ने कहा, मेरा गृह है, उलूक ने कहा, मेरा गृह है। तब प्रभु ने सचिवों को बुलाकर निर्वाह कराकर सो गृह उलूक को दिलाया। उस गृद्ध से प्रभु ने पूछा कि तू कौन है, जो हमारे राज्य में ऐसी अनीति की दण्ड देने योग्य। उसने कहा कि मैं पूर्व जन्म का राजा हूँ। ऋषि

के शाप से गृद्ध हुआ सो आपके दर्शन से उद्धार पाया। यह चरित्र पद्मपुराण सृष्टिखण्ड के सैंतिस अध्याय में है। प्रसिद्ध। प्रमाणार्थ कुछ थोड़ा लिखते हैं। गृद्धोलूकौ प्रवसितौ बहुवर्षगणानपि। अथोलूकस्य भवनं गृद्धः पापविनिश्चयः १ ममेदमितिकृत्वासौ कलहं तेन कारितम्। राजा सर्वस्य लोकस्य रामोराजीवलोचनः २ तं प्रपद्यावहे शीघ्रं यस्यैतद्भवनं भवेत्। गृद्धोलूकौ-प्रपद्येतां जातकोपावमर्षणौ ३ अथ दृष्ट्वा राघवेन्द्रं गृद्धो वचनमब्रवीत्। सुराणामसुराणां च त्वम्प्रधानो मतो मम ४ मयालयंपूर्वकृतं बाहुवीर्येण वै प्रभो। गृह्णात्युलूकस्तं राजंस्त्वत्समीपे विशेषतः ५ ईदृशोयन्दुराचारस्त्वदाज्ञालंघकोनृप। प्राणान्तकेन दण्डेन इमं शासितुमर्हसि ६ एवमुक्तस्तु गृद्ध्रेण उलूकोवाक्यमब्रवीत्। शृणु देव मम ज्ञाप्यमेकचित्तो नराधिप ७ भवान् देवमनुष्येषु शास्ता वै नरपुंगवः। एतच्छ्रुत्वा च वै रामः सचिवानाह्वयत्स्वयम् ८ गृद्धोलूकौ विवदन्तौ पृच्छतिस्म रघूत्तमः। कति वर्षाणि भो गृद्ध तवेदं निलयं कृतम् ९ इयं वसुमती राम मनुष्यै बहुबाहुभिः। उच्छ्रितै रचिता या सा तदा प्रभृति मद्गृहम् १० उलूकस्त्वब्रवीद्रामं पादपैरुपशोभिता। यदेयं पृथिवी राजंस्तदाप्रभृतिमद्गृहम् ११ एतच्छ्रुत्वा तु सचिवा राममेवाब्रुवंस्तदा। उलूकः शोभते राजन्नतु-गृद्धो महामते १२ नीच एक शूद्र तपस्या करता था। इस अनीति से एक ब्राह्मण का बालक मर गया। विप्र नें प्रभु समीप आर्ति से कहा कि आपके राज्य में अकालमृत्यु मेरा बालक मर गया, यह कैसी बात है? सो प्रभु नें सुन मुनीशों से पूछा, इसका क्या कारण है? तब नारदजी ने कहा, एक शूद्र तपस्या करता है, इससे विप्रबालक मर गया। सो सुन प्रभु विमान पर सवार हो जहाँ शूद्र तपस्या करता था वहाँ गये। उससे पूछा कि तुम कौन हो? तब उसने कहा, मैं शूद्र हूँ। उसी क्षण प्रभु ने

उसका शीश काट डाला। तब बालक जी उठा। यह चरित पद्मपुराण में सृष्टिखण्ड के पैंतिस अध्याय में प्रसिद्ध है। प्रमाणार्थ कुछ लिखे देते हैं। एतस्मिन्नेव दिवसे वृद्धो जानपदद्विजः। मृतं पुत्रमुपादाय रामद्वारमुपागतः १ शुश्राव राघवः सर्वं दुःखशोकसमन्वितम्। निवार्य तं द्विजं रामो वशिष्ठं वाक्यमब्रवीत् २ शूद्रस्तपति दुर्बुद्धिस्तेन बालवधः कृतः। नारदेनैवमुक्ते तु साश्चर्यो रघुनन्दनः३ ततो दिशं समाक्रम्य दक्षिणां रघुनन्दनः। ददर्श राघवो भीमं लम्बमानमधोमुखम्४उवाच राघवो वाक्यं धन्यस्त्वममरः प्रभुः। कस्यां योनौ तपोवृद्धिर्वर्तते दृढनिश्चय ५ शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूकोनामनामतः। भाषतस्तस्य काकुत्स्थो खड्गन्तुरुचिरप्रभम्६ निःकृष्यकोशाद्विमलं शिरश्चिच्छेद राघवः। कर्मणा यदि मे प्रीतो द्विजपुत्रः सजीवतु ७ जिन्होंने माता पिता के दिये राज्य का तिरस्कार किया ऐसे भरतजी यथा अनुकूल प्रभु को सम्मुख हैं तथा उपाधिरहित नवीन नेह सहित सब जगत् प्रभु के अनुकूल होकर सब रघुनाथजी ही की सुख-सम्पत्ति-वृद्धि चाहता है जैसे जल की अगाधता मीन चाहते हैं ॥ ३ ॥ ऐसा राजसमाज का गान करके तुलसीदास दीन हो शरण चाहते हैं। उनको अपनाकर निजपद में पवित्र प्रेम पुष्ट कर दो ॥ ४ ॥

संकट सुकृत को सोचत जानि जिय रघुराउ।
सहस द्वादस पंचसत मैं कछुक है अब आउ ॥ १ ॥
भोग पुनि पितु आयु को सो किये बनै बनाउ।
परिहरे बिन जानकी नहिं और अनघ उपाउ ॥ २ ॥
पालिबे असिधारब्रत प्रिय प्रेमपाल सुभाउ।
होइ हित केहि भाँति नित सुबिचारि नहिं चित चाउ ॥ ३ ॥

निपट असमंजसहु बिलसत सुख मनोहर ताउ ।
परम धीरधुरीन हृदय कि हर्ष बिस्मय काउ ॥ ४ ॥
अनुज सेवक सचिव हैं सब सुमति साधु सखाउ ।
जान कोउ न जानकी बिन अगम अलख लखाउ ॥ ५ ॥
राम जोगवत सीयमन पिय मनहिं प्रान पियाउ ।
परम पावन प्रेम परिमित समुझि तुलसी गाउ ॥ ६ ॥

सुकृत का संकट जी में जानकर शोच करते हैं । बारह हजार पाँच सौ वर्ष में आयु जो आयुर्बल कछुक कुछ अब है ॥ १ ॥ पिता की आयु का भोग कुछ शेष है, सो किये से बनाव बनता है । त्याग विना और उपाय पापरहित नहीं है ॥ २ ॥ प्रेमपाल स्वभाव कैसे त्यागते बने और व्रत का पालना असि कृपाण की धार सम है । सो दोनो ओर का हित कौन भाँति से हो । सो विचार नहीं बनता, इससे चित्त में आनन्द नहीं ॥ ३ ॥ परम धीरज की धुरी के धारण करनेवाले हृदय में जिनके हर्ष विस्मय कभी नहीं । मनोहर सुख सदा है । फिर भी असमंजस का विलास करते हैं निपटकर ॥ ४ ॥ अनुज भरतादि, सेवक हनूमान् आदि, सचिव सुमन्त्रादि, अपर सखा, वे सब सुन्दर बुद्धि के साधु हैं । पर प्रभु का आगम लखते हैं । लखाउ चरित्र उसको दूसरा नहीं जान सकता ॥ ५ ॥ परस्पर सम प्रीति के पवित्र परम प्रेम की मर्यादा समझ तुलसी गाता है । भाव, परस्पर प्रीति कर प्रेम तो अगम है, पर यह नरनाट्य लीला है । उसको कौन जाननेवाला है ॥ ६ ॥

राम बिचारि राखी ठीक दै मन माहिं ।
लोकबेद सनेह पालत पल कृपालहिं जाहिं ॥ १ ॥

प्रियतमा पति देवता जेहिं उमा रमा सिहाहिं ।
गुर्बिनी सुकुमारि सिय तियमन समुझि सकुचाहिं ॥ २ ॥
मेरही सुख सुखी सुख अपनो सो सपनेहु नाहिं ।
गेहिनी गुन गेहिनी गुन सुमिरि सोच समाहिं ॥ ३ ॥
रामसियासनेह बरनत अगम सुकबि सकाहिं ।
रामसीयरहस्य तुलसी कहत रामकृपाहिं ॥ ४ ॥

पूर्व पद का आशय विचार कर ठीक करके मन में राखी । लोक वेद दोनो सनेह पालते में पल पल बीतता है ॥ १ ॥ प्रियतमा अत्यन्त प्रियत्व है जिनमें, पति देवता पतिव्रता, जिनको देख उमा रमा सिहाती हैं । पतिव्रता स्त्रियों की शिरोमणि सो सुकुमारी उस पर गुर्बिणी समझकर संकोच करती हैं ॥ २ ॥ अपना सुख त्यागकर हमारे सुख में सुखी ऐसी गेहिनी गुणन की गेहिनी उसका गुण समझ सकोच में समाते हैं ॥ ३ ॥ परस्पर स्नेह आगम के वर्णन में सुकवि सकाते हैं । यह अगम रहस्य तुलसी रामकृपा से कहता है ॥ ४ ॥

चरचा चरनि सो चरची जानमनि रघुराइ ।
दूतमुख सुनि लोकधुनि घर घरनि बूझी आय ॥ १ ॥
प्रिया निज अभिलाष रुचि कहँ कहत सिय सकुचाइ ।
सीय-तनयसमेत तापस पूजिहौं बन जाइ ॥ २ ॥
जानि करुनासिन्धु भावीबिबस सकल सहाइ ।
धीर धरि रघुबीर भोरहिं लिये लषन बोलाइ ॥ ३ ॥

सीता-वनवास

तात तुरतहिं साजि स्यन्दन सीय लेहु चढ़ाइ।
बालमीकि मुनीसआश्रम आइयो पहुँचाइ ॥ ४ ॥
भलहि नाथ सुहाथ माथे राखि रामरजाइ।
चले तुलसी पालि सेवकधर्म अवधि अघाइ ॥ ५ ॥

जानमणि सुजानन के शिरोमणि चर दूतों से चर्चा नगर की रुचि जान रक्खी। रजकसमाजादि दूतों के मुख से सुनकर लोक की धुनि, आशय मन में रखकर घर में घरनी से बूझते भये ॥ १ ॥ अपने मन की रुचि की अभिलाषा कहो। सकोच रहित कहा कि वन में तपस्वियों को सपुत्रदारा पूजने की लालसा है ॥ २ ॥ ऐसे ही होनहार इससे भावी सहाय भई। धीरज धरि प्रभात ही बुलाते भये ॥ ३ ॥ शीघ्र रथ साजकर गंगातट ब्रह्मावर्त घाट पर ॥ ४ ॥ बहुत भली कही रजाय माथे रखकर सेवक-धर्म की मर्यादा अघा कर पाली। इससे अधिक और क्या हो सकता है ॥ ५ ॥

आये लखन लै सौंपि सिय कहँ सो मुनीसहिं आनि।
नाइ सिर रहे पाइ आसिष जोरि पंकजपानि ॥ १ ॥
बालमीकि बिलोकि ब्याकुल लखनगरत गलानि।
सर्वबिद बूझत न बिधि की बामता पहिचानि ॥ २ ॥
जानि जिय अनुमानहीं सिय सहस बिधि सनमानि।
राम सद्गुनधाम परिमित भई कछुक मलानि ॥ ३ ॥
दीनबन्धु दयाल देवरु देखि अति अकुलानि।
कहत बचन उदार तुलसीदास त्रिभुवनरानि ॥ ४ ॥

मुनीशहिं वालमीकि को माथ नवाकर, आशीर्वाद पाकर कर कमल जोड़कर खड़े हुए ॥ १ ॥ ग्लानि से विह्वल सर्वविद् सब जाननेवाले विधाता की टेढ़ाई समझ पूछ नहीं सकते ॥ २ ॥ अनुमान ही से सब जी में जानि अनेक भाँति आदर किया। सद् सुन्दर गुणों के धाम के परिमित कहे मर्यादा हैं। उन्होंने यह क्या बात की, ऐसी मुनि की मति मलान हुई ॥ ३ ॥ दीनों के बंधु दया के स्थान समीप से जाते देख त्रिभुवनपति के इस प्रसंग का कौन कठोर-हृदय है, जो खुलासा अर्थ करे ॥ ४ ॥

तौ लौं बलि आपु ही कीबी बिनय समुझि सुधारि।
जौलौं हौं सिखि लेउँ बन ऋषि रीति बसि दिनचारि ॥ १ ॥
तापसी कहि कहा पठवत नृपति को मनुहारि।
बहुरि त्यहि बिधि आइ कहिहैं साधु कोउ हितकारि ॥ २ ॥
लखन लाल कृपाल निपटहिं डारिबी न बिसारि।
पालबी सब तापसिन ज्यों राजधरम बिचारि ॥ ३ ॥
सुनत सीता-बचन मोचत सकल लोचनवारि।
बालमीकि न सके तुलसी सो सनेह सँभारि ॥ ४ ॥

शीघ्रगमन-निवारणार्थ नम्र वचन कहते हैं। जौलौं जब तक हौं चार दिन बन बसि ऋषियों की रीति सीख लूँ तौलौं तबतक आप भी रहिये। कदाचित् स्वामी-भय, इससे कहती हैं कि आपही विनय कीबी समुझकर सुधार लो ॥ १ ॥ काहेसे नृपति का मन हरनेवाली उसको तपसी कहि तापसी बनाकर क्या भेजते हो। उसे विधिपूर्वक पतियुत वामाङ्गी आदि नाम फिर कोई साधु हितकारी करेगा ॥ २ ॥ कृपालु निपट ही न

बिसार डालना। तनु सम्बन्ध मानिये तो राजधर्म बिचारि यथा सब तापसी तथा मानिये॥ ३॥ ऐसे सुनकर सबके नेत्रों से आँसू गिरते हैं। और को कौन कहे, सो स्नेह वाल्मीकि न सँभाल सके॥ ४॥

सुनि व्याकुल भये उतरु कह्यौ न जाइ।
जानि जिय बिधि बाम दीन्हीं मोहिं सरुख सजाइ॥ १॥
कहत हिय मेरी कठिनई लखि गई प्रीति लजाइ।
आजु अवसर ऐसे हूँ चले जान मान बजाइ॥ २॥
इतहिं सीय सनेहसंकट उतहिं रामरजाइ।
मौन ही गहि चरन गवने सिख सु आसिख पाइ॥ ३॥
प्रेमनिधि पितु को कहौ मैं परुष बचन अघाइ।
पाप तेहिं परिताप तुलसी उचित सहे सिराइ॥ ४॥

व्याकुलता से जवाब न आया। जी में ऐसा बिचारे कि वाम विधाता ने सरोष होकर मुझको सजा दीन्हीं॥ १॥ हमारे हृदय की कठोरता देख प्रीति लजा गई। काहे से जो ऐसे अवसर में भी प्राण बजाइ न चले हृदय विदीर्ण न भया॥ २॥ इधर स्नेह उधर रजाय, दोनो के सङ्कट में पड़कर मौन ही चरण गहि सिखापन आशीष पाकर जाते भये॥ ३॥ प्रेम के समुद्र पिता को मैंने कठोर वचन अघाकर कहे, उस पाप का परिताप दुख सहने से चुकेगा॥ ४॥

गौने मौन ही बारहिंबार परि परि पाँय।
जात जनु रथ रची कर लछिमन गमन पछिताय॥ १॥
असन बिनु वन बरम बिनु रन बच्यों कठिन कुघाय।
दुसह साँसति सहन को हनुमान ज्यायो जाय॥ २॥

हेतु हौं सियहरन को तब अजहुँ भयो सहाय।
होत हठि मोहिं दाहिनो दिन दइव दारुन दाय ॥ ३ ॥
तजो तन संग्राम ज्यहि लगि गीध जसी जटाय।
ताहि हौं पहुँचाइ कानन चल्यों अवध सुभाय ॥ ४ ॥
घोर हृदय कठोर करतब सृज्यौं हौं बिधि बाय।
दास तुलसी जानि राख्यो कृपानिधि रघुराय ॥ ५ ॥

बारबार पैरों पड़ मौन ही गौने इस अयश का भाजन हम भये। इस पश्चात्ताप में बूड़े रथ पर कैसे देख पड़ते हैं, यथा कर रची प्रतिमा ॥१॥ भोजन विना वन में बचा, बखतर बिना रण में बचा। कठिन कुघाव शक्ति लगने पर हनुमान ने सजीवन लाकर जिलाया, इससे मेरा जीना ऐसो साँसत सहने को है ॥ २ ॥ प्रथम रावण के हरने का हेतु मैं ही हूँ। प्रभु सौंप गये, मैं छोड़ कर चला गया, इसका कारण उसी अवसर का कुटिल कर्म हमारा अब भी सहाय हुआ, जिससे इस अयश का भाजन भये। हमारा दाहिना दिन जो होता, उसमें भी दारुण दैव हठ करके दाय कही बायाँ हो जाता है। भाव प्रभु की आज्ञा करना दाहने दिन में, दैव ने हठ करबाम हो ऐसे अयश का पात्र बनाया ॥ ३ ॥ जिसके हेतु संग्राम में तन तजकर गीध जटायु यशी भया, उसको वन में भेज मैं सहज ही अवध को चला ॥ ४ ॥ वाम विधाता ने कठोर कर्त्तव्य करने को घोर हृदय मुझको सिरजा है। सोई कृपानिधि ने जान रक्खा, इससे ऐसे काम करने को मुझे आज्ञा देते हैं ॥ ५ ॥

पुत्री न सोचिये आइहौं जनकगृह जिय जानि।
कालि ही कल्यान कौतुक कुसल तुव कल्यानि ॥ १ ॥

राजऋषि पितु ससुर प्रभु पति तू सुमंगलखानि।
ऐसे हू थल बामता बड़ि बाम बिधि की बानि॥ २॥
बोलि मुनिकन्या सिखाई प्रीति गति पहिचानि।
आलसिन की देवसरि सिय सेइयो सनमानि॥ ३॥
न्हाइ प्रातहिं पूजियो बट बिटप अभिमत दानि।
सुवन लाहु उछाहु दिन दिन देव अनहित हानि॥ ४॥
पाप ताप बिमोचनो कहि कथा सरस पुरानि।
बालमीकि प्रबोधि तुलसी गई गरुव गलानि॥ ५॥

हे पुत्री, जैसे पिता के गृह आई हौ, ऐसा जानकर सोच न करिये। हे कल्याणरूपा, तव कुशल और कल्याण का कौतुक कालि ही कहे शीघ्र है॥ १॥ तव पिता औ ससुर राजऋषि हैं। प्रभु पति हैं। तू सुन्दर मंगल की खान है। ऐसे भी स्थान पर वामता! इससे विधि की बानि रहनि वाम कहे बड़ी टेढ़ी है॥ २॥ कन्या मानकर प्रीति की गति पहचानकर बुलाकर समीप मुनि ने सिखावन दी कि आलसियों की गति देनेवाली देवता गंगाजी, तिनका सन्मान सहित सेवन करो। इसी में तुम्हारा सब हित है॥ ३॥ प्रात ही स्नान करके वाञ्छितदाता वट विटप को पूजना, इससे अनहित की हानि हो और पुत्र का लाभ हो तिनका उत्साह प्रतिदिन। भाव त्रैलोक्य विजयी होकर पिता का राज्य करेंगे इत्यादि। दिनप्रति उछाह होइ॥ ४॥ पुरानी प्रथम ही ऋषीश्वरों की भाषी रस की भरी, वात्सल्य रस की भरी, पुत्र सुखादि इससे ताप को छुड़ानेवाली कथा कह-कर वाल्मीकि ने प्रबोध किया यह सुनकर कि पुत्र राजधानी

का राज्य करेंगे। इसी से उर ने प्रबोध पाया, त्याग की भारी ग्लानि जाती रही ॥ ५ ॥

जब ते जानकी रही रुचिर आश्रम आइ।
गगन जल थल बिमल तब ते सकल सुमंगलदाइ ॥ १ ॥
निरस भूरुह सरस फूलत फलत अति अधिकाइ।
कंद मूल अनेक अंकुर स्वाद सुधा लजाइ ॥ २ ॥
मलय मरुत मराल मधुकर मोर पिक समुदाइ।
मुदित मन मृग बिहँग बिहरत बिषम बैर बिहाइ ॥ ३ ॥
रहत रबि अनुकूल दिन ससि रजनि सजनि सुहाइ।
सीय सुनि सादर सराहत सखिन भली मनाइ ॥ ४ ॥
मोद बिपिन बिनोद चितवत लेत चितहि चोराइ।
राम बिनु सिय सुखद बन तुलसी कहै किमि गाइ ॥ ५ ॥

जब से सुन्दर आश्रम में आकर वास किया तब से जल भूमि आकाशादि निर्मल हो सकल मंगल के दाता भये ॥ १ ॥ भूरुह वृक्ष सो रस सहित भये। अपर वृक्ष अत्यन्त अधिक फूलते-फलते भये। कंद मूल अंकुर आदि ऐसे स्वाद के हैं, जिसके आगे अमृत लजाता है ॥ २ ॥ मलयगिरि परस कर सुगंधित दक्षिण पवन बह रही है। हंस भ्रमर मयूर कोयल आदि पक्षी और मृग विषम बैर छोड़ आनन्द मन से विहार कर रहे हैं परस्पर ॥ ३ ॥ दिन में रवि सुखदायक, रजनी में विमल आकाश उसमें विविध नक्षत्रयुत श्वेत चाँदनी फैलाये खिल रही है इति। सजनी चन्द्रमा की रजनी में सुहाई लगती भई इत्यादि आनन्द सखियों से सुन उनका भला मनाकर आदर सहित प्रशंसा

करती हैं ॥ ४ ॥ मोददायक वन में विनोद तो ऐसा है जो चितवत ही चित्त को चुरा लेता है। उस पर भी वनसुखदायक कवि कैसे कह सके। यथा ज्वर में षट्रस स्वाद तथा ॥ ५ ॥

सुभ दिन सुभ घरी नीको नखत लगत सुहाइ ।
पूत जाये जानकी द्वै मुनिबधू उठि गाइ ॥ १ ॥
हर्षि बर्षत सुमन सुर गहगहे बधाय बजाइ ।
भुवन कानन आश्रमनि रहे मोद मंगल छाइ ॥ २ ॥
तेहि निसा तहँ सत्रुसूदन रहे बिधिबस आइ ।
माँगि मुनि सों बिदा गवने भोर ही सुख पाइ ॥ ३ ॥
मातु मौसी बहिनि हू ते सासु ते अधिकाइ ।
करहिं तापसतीय तनया सीयहित चित लाइ ॥ ४ ॥
कियो बिधि ब्यवहार मुनिवर बिप्रबृन्द बोलाइ ।
कहत सब ऋषिकृपा को फल भयो आजु अघाइ ॥ ५ ॥
सरुख ऋषि सुख सुतन को सिय सुखद सकल सोहाइ ।
सूल रामसनेह को तुलसी न जिय ते जाइ ॥ ६ ॥

सुदिन शुभ घड़ी, उत्तम नक्षत्र शुद्ध लग्न में जानकी ने दो पुत्र जाये। उस समय आनन्द से मुनिवधू गान करने लगीं ॥१॥ गहगहे उत्सव भरे बधाये बजाकर देवता हर्षित फूल वर्षते हैं इत्यादि। भुवन में और वन आश्रम में मोद मंगल छा रहा है ॥२॥ शत्रुघ्न का लवणासुर वध हेतु जाते मग में उस रात्रि को वहाँ निवास पड़ा। इससे विधि-वश भोर ही मुनि से बिदा माँग चले गये ॥३॥ माता मौसी बहन सास से अधिक तापसों की स्त्री कन्या चित

लाकर हित करती हैं॥ ४॥ ब्राह्मणों के वृन्द बुलाकर विधि व्यवहार जातकर्मादि मुनि ने किये। उस समय सब कहते हैं कि ऋषि की कृपा का फल आज अघाकर भया॥ ५॥ एक तो ऋषि हित सहित अनुकूल दूसरे पुत्रों का सुख इत्यादि सब सुखद हैं; पर स्नेह का शूल हृदय से नहीं जाता है॥ ६॥

मुनिवर करि छठी कीन्हीं बारहे की रीति।
बन बसन पहिराय तापस तोषि पोषे प्रीति॥ १॥
नामकरन सु अन्नप्रासन बेद बाँधी नीति।
समय सब ऋषिराज करत समाज साजि समीति॥ २॥
बाल लालन कहत करि हैं राज सब जग जीति।
रामसियसुत गुरुअनुग्रह उचित अचल प्रतीति॥ ३॥
निरखि बालबिनोद तुलसी जात बासर बीति।
पियचरित सियचित चितेरो लिखत नित हितभीति॥ ४॥

मुनिवर ने छठी करके पुनि रीति सहित बरहाँ किया। वहाँ भोजन कराकर वनवसन पहनाकर तापसों को तोषि पोषे खुशी होकर संतोषे॥ १॥ वेद की बाँधी नीति दशकर्म या षोड्श संस्कार, जिनमें नामकरण अन्नप्राशन आदि समय पाकर समीत कहे मित्र सहित समाज साजकर ऋषिराज सब उत्सव करते हैं॥ २॥ बालकों को दुलरावते में कहते कि सब जग जीत कर राज्य करेंगे। ऐसे मुनि के वचन सुन सब विचारते हैं कि ऐसे माता पिता के पुत्र, उस पर गुरु की अत्यन्त कृपा, इससे जग जीत कर राज्य करना उचित है, यह अचल प्रतीति सबके मन में है॥ ३॥ बालकों का विनोद

देखे से दिन व्यतीत होता, रात्रि में हित प्रीति, भीत पर जीवन का चरित्र नित्य चित्त चितेरा होकर लिखता है। रात्रि शेष ॥ ४ ॥

बालक सिय के बिहरत मुदितमन दोउ भाइ।
नाम लव कुस रामसिय अनुहरत सुन्दरताइ ॥ १ ॥
देत मुनि मुनिसिसु खिलौना लेत धरत दुराइ।
खेल खेलत नृप सिसुन के बालबृन्द बोलाइ ॥ २ ॥
भूप भूषन बसन बाहन राजसाज सजाइ।
बर्म्म चर्म्म कृपान धनु सर तून लेत बनाइ ॥ ३ ॥
दुखी सिय पतिबिरह तुलसी सुखी सुत सुख पाइ।
आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ ॥ ४ ॥

बालक दोनो भाई वन में आनन्द से विहरते कहीं खेलते हैं। माता पिता के अनुहारि सुन्दरता है जिनकी ॥ १ ॥ मुनिबालकों के खैलौना मुनि देते हैं, तिनको चुरा रखते हैं। बालकों के वृन्द बुलाकर राजकुमारों के खेल खेलते हैं—सो आगे लिखते हैं ॥ २ ॥ भूषण मुकुटादि, वसन जामा आदि, वाहन हाथी घोड़ा रथ, राजसाज चोपदार नकीब डंका निशान सवार पैदल, मरहीमरातिब आदि। साज सजकर बख्तर पहिनकर ढाल तलवार बाण धनुष तरकस आदि बना लेते हैं। इति राजकुमारों के खेल ॥ ३ ॥ विरह से दुःखी सुतों को देख सुख विरह अग्नि से पय दूध सम उफनाता है। पुत्रसुख जल तासों सींचते ही वह कुछ शान्त हो जाता है ॥ ४ ॥

कैकेयी जौलों जियत रही।
तौलौं बात मात सों मुँह भरि भरत न भूलि कही ॥ १ ॥

मानी राम अधिक जननी ते जननिहु गहनि गही ।
सीय लखन रिपुदवन रामरुख लखि सबकी निबही ॥ २ ॥
लोक बेद मरजाद दोष गुन गति चित चखन चही ।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी रामसनेह सही ॥ ३ ॥

जब तक कैकेयी जीती रही तो माता से मुँह भरि हित सहित बात भरतजी भूलकर भी नहीं कही ॥ १ ॥ रघुनाथजी ने कैकेयी को कौशल्याजी से अधिक माना। कौशल्याजी गँवगाँठ दुर्भाव की नहीं गहा। सिया लषण रिपुदवन आदि रघुनाथजी का रुख देख सब कैकेयी की प्रीति प्रतीति का निर्वाह किया ॥ २ ॥ वेदोक्त महात्माओं के मुख से सुन अपने मन में समझ सबका सारांश रामसनेह को भरतजी ने सही करि उर में दृढ़ करि रक्खा और लोकवेद-मर्यादा को दोष गुण की गति न चित्त से चाहना की न नेत्र से चाहना की ॥ ३ ॥

राग रामकली ।

रघुनाथ तुम्हारे चरित मनोहर गावत सकल अवध बासी ।
अति उदार अवतार मनुज बपु धरे ब्रह्म अज अबिनासी ॥ १ ॥
प्रथम ताड़का हति सुबाहु बधि मख राख्यो द्विज हितकारी ।
देखि दुखी अति सिलासापबस रघुपति बिप्रनारि तारी ॥ २ ॥
सब भूपन को गर्ब हरेउ हरि भंज्यो संभुचाप भारी ।
जनकसुता समेत आवत गृह परसुराम अति मदहारी ॥ ३ ॥
तात बचन तजि राज-काज सुर चित्रकूट मुनि बेष धरेउ ।
एक नयन कीन्हों सुरपतिसुत बधि बिराध ऋषिसोक हरेउ ॥ ४ ॥

पंचबटी पावन राघव करि सूर्पनखा कुरूप कीन्हों ।
खरदूखन संहारि कपट मृग गृध्रराज कहँ गति दीन्हों ॥ ५ ॥
हति कबन्ध सुग्रीव सखा करि बेधे ताल बालि मारेउ ।
वानर रीछ सहाय अनुज सँग सिंधु नाँघि जस बिस्तारेउ ॥ ६ ॥
सकल पुत्र दल सहित दसानन मारि असुर सुर दुख टारेउ ।
परम साधु जियजानि बिभीखन लंकापुरी तिलक सारेउ ॥ ७ ॥
सीता अरु लछमन सँग लीन्हें औरो जिते दास आये ।
नगर निकट बिमान आयो सब नर नारी देखन धाये ॥ ८ ॥
सिव बिरंचिशुकनारदादिमुनिअस्तुतिकरतबिमलबानी ।
चौदह भुवन चराचर हर्षित आये राम राजधानी ॥ ९ ॥
मिलेभरत जननी गुरु परिजन सहित परम आनन्द भरे ।
दुसह बियोगजनित दारुन दुख रामचरन देखत बिसरे ॥ १० ॥
बेदपुरान बिचारि लगन सुभ महाराज अभिषेक कियो ।
तुलसिदासजियजानिसुअवसरभक्तिदानतबमांगिलियो ॥ ११ ॥

हे रघुनाथजी, तुम्हारे मनोहर चरितों को सब अवधवासी प्रेम से गान करते हैं । इस ग्रन्थ में माधुर्यलीला है । इससे चरित मनोहर कहे । अज अजन्म अविनाशी नाशरहित ऐसे ब्रह्म का सारांश राम से अतिउदार महादानी भूमि पर अवतीर्ण हो नर का ऐसा रूप धारण किया ॥ १ ॥ कौन चरित किये ? प्रथम ताड़का मारने से भवअवतार का प्रभाव सूचित भया। इससे प्रथम लिखा और यही द्वार सातो काण्ड का चरित्र सूचन किया । उस चरित्र को सब अवधवासी गाते हैं। द्विज विश्वामित्र

के हितकारी हैं। सुबाहु को मारकर यज्ञ की रक्षा की। शापवश शिला भई को अतिदुःखित देख रघुनाथजी ने गौतमनारि अहल्या का उद्धार किया ॥ २ ॥ जनकपुर में शिवधनुष तोड़ नृपों का अभिमान हर विवाह कर श्रीजानकीजी सहित आते मग में परशुरामजी का मद खण्डन किया ॥ ३ ॥ पिता का वचन मान राज्य तज चित्रकूट में मुनि का वेष रक्खा, जयन्त का एक नेत्र फोड़ा, विराध का वध करि ऋषियों का दुःख हरा ॥ ४ ॥ शुक का शाप-उद्धार कर पञ्चवटी पावन कर शूर्पणखा को कुरूप कर खर दूषण का संहार कर कपटमृग मारीच मार गीध को मुक्ति दी ॥ ५ ॥ कबन्ध को मार सुग्रीव से मित्रता कर तालवृक्ष वेध बालि को मार वानर रीछ की सेना लक्ष्मणजी सहित समुद्र में सेतु बाँध यश का विस्तार किया ॥ ६ ॥ सेना पुत्रकुल-सहित असुर रावण को मार देवतों के दुःख टारे। विभीषण को परम साधु जान लङ्कापुरी के राज्य का तिलक दिया ॥ ७ ॥ सीता लक्ष्मण सहित अपर वानर रीछ आदि जो दास तिन सहित पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो अवध के निकट आये। पुर के नर नारि देखने को धावते भये ॥ ८ ॥ शिव ब्रह्मा शुक नारदादि मुनीश्वर विमलवाणी से स्तुति करते हैं, श्रीराम राजधानी को आये जान चौदहों भुवन के चराचर हर्षित भये ॥ ९ ॥ गुरु वशिष्ठ जननी कौशल्यादि परिजनसहित भरतजी जिनको चाहते रहे वे प्रभु मिले, इससे परम आनंद भरे हैं। प्रभु के वियोग से जनित उत्पन्न जो दुसह दारुण दुःख सो श्रीरघुनाथजी के चरणकमल देखने से बिसर गया ॥ १० ॥ वशिष्ठजी ने वेदपुराण से विचारि शुभ लग्न में महाराज कोशलेन्द्रकुमार को अभिषेक कही राजसिंहासन पर बैठाया सो शुभ अवसर जान भक्ति दान तुलसीदास ने माँग लिया ॥ ११ ॥

कवित्त ।

सांद्रनीलवारिदाभविभ्रदंशविमलां
मुकुटप्रकाशकर्णिकारगण्डभाल हे ।
पूरणमयंकमुख नासिकांबुजात्तग्रीव
वृषभोन्नदंशपीन बाहु चाप शार्ङ्ग हे ॥
बिस्तृतोरनागमणिदामनाभिरोमपांति
क्षौम वस्त्रधार मध्यलयेतून तत्र हे ।
जंघाजानु ऊरूरंभ अंबुजांघ्रिमृद्धगम्य
रूपराघवेन्द्र बैजनाथ तं नमामहे ॥

इति रसिकलताश्रितकल्पद्रुमसियावल्लभशरणबैजनाथकृतगीतावली-
मणिदीपिकाटीकासहितउत्तरकाण्ड समाप्त ।